आधुनिक

सामान्य कृषि विज्ञान

लेखक :
मत्तुराम सिंह
एम० एस-सी० (एजी०); एम० एड०
प्रधानाचार्य, रा० सी० उ० मा० वि० नीमकाथाना (सीकर)
राज्यस्तरीय शिक्षक पुरस्कार द्वारा पुरस्कृत

राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर–2

* प्रकाशक :
राजेन्द्रकुमार जसोरिया
राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार,
जयपुर–302002

* मूल्य ·
* लाइब्रेरी संस्करण : 95/–
* संस्करण : 1990

* कम्पोजिंग :
जनरल कम्पोजिंग एजेन्सी
किशनपोल बाजार, जयपुर–3

* मुद्रक :
मॉडर्न प्रिन्टर्स,
गोधों का रास्ता
जयपुर–302003

दो शब्द

नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत सीनियर हायर सैकेण्डरी की नवीनतम स्वीकृत पाठ्यक्रमानुसार सरल हिन्दी भाषा मे लिखी गई इस पुस्तक मे सस्य विज्ञान, पशुपालन और बागवानी शीर्षक के अन्तर्गत फसल उत्पादन के महत्वपूर्ण घटक फसल चक्र, खाद, उन्नत जातियाँ, खरपतवार नियन्त्रण और पशुपालन दुग्ध उत्पादन तथा सब्जियों का उत्पादन, प्रसारण के तरीके व फल तथा सब्जी परिरक्षण के क्षेत्र मे उपयोगी अनुसंधानों के आधार पर नवीनतम जानकारी दी गई है। यह पुस्तक बोर्ड के पाठ्यक्रमानुसार तो है ही साथ ही बी० पी० एजी के विद्यार्थियों की आवश्यकता को पूर्ण करती है।

इस पुस्तक को अधिक उपयोगी और वैज्ञानिक बनाने में कृषि, पशुपालन व बागवानी के अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों, बुलेटिनो, जर्नलों एवं शोधपत्रों की सहायता ली गई है इनके मूल लेखकों के प्रति मैं आभारी हूँ। विषय को अधिक रुचिकर बनाने और स्पष्ट करने के लिए यथास्थान आवश्यक चित्रो, रेखाचित्रों एवं तालिका भी दी गई है।

जिन महानुभावों, साथी अध्यापको एवं प्रिय छात्रों से पुस्तक संरचना के लिए प्रेरणा मिली है, उन्हे भी हृदय से धन्यवाद देना मेरा परम कर्त्तव्य है। इनसे सर्वश्री रामदास गुप्ता, रिछपालसिंह, रामअवतार पोरवाल, सत्यपालसिंह, रामपालसिंह, प्रकाशचन्द्र वर्मा, विमलकुमार जैन, राजबहादुर सिंह, जगदीशप्रसाद सिंह, बाबूलाल गुप्ता, श्रीरामशर्मा, कन्हैयासिंह, कैलाशनाथ चौबे आदि है।

पुस्तक प्रकाशन के लिए मैं श्री राजेन्द्र जसोरिया, राजस्थान प्रकाशन एवं मुद्रक श्री मॉडर्न प्रिण्टर्स का भी आभार प्रदर्शित करता हूँ जिनके अथक परिश्रम के बिना पुस्तक का यह रूप कम समय में देखना सभव नही था।

यदि यह पुस्तक विद्यार्थियों, अध्यापकों, कृषकों एव कृषको एवं कृषि विषय में रुचि रखने वाले सज्जनों के लिए किसी प्रकार उपयोगी सिद्ध हुई तो यह प्रयास सार्थक हो सकेगा एवं साथ ही हमारा उत्साहवर्द्धन हो सकेगा।

लेखक :
मनुरामसिंह

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

शस्य विज्ञान

द्वितीय खण्ड

पशु पालन

खण्ड तृतीय

सब्जी एवं फल

अध्याय 1

शस्य विज्ञान का कृषि में महत्व

अर्थ—शस्य विज्ञान अंग्रेजी के Agronomy शब्द का भावार्थ है, जो लैटिन भाषा के Agronomos से लिया गया है। Agronomos दो शब्द से मिलकर बना है।

(1) Agro अर्थात् field (भूमि)

(2) Nomos अर्थात to Manage (प्रबन्ध)

इस तरह Agronomy का अर्थ भूमि प्रबन्ध से है परन्तु इस वैज्ञानिक युग में शस्य विज्ञान का अर्थ व्यापक हो गया है।

परिभाषा—(1) शस्य विज्ञान के अन्तर्गत फसल उत्पादन और भूमि प्रबन्ध के सिद्धान्तों और क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

(2) भूमि का अच्छी प्रकार से प्रबन्ध करके उसके ऊपर वैज्ञानिक विधि से फसलों का उगाना ही शस्य विज्ञान कहलाता है।

सी. आर. बाल के अनुसार शस्य विज्ञान वह कला एवं विज्ञान है जिसके अन्तर्गत भूमि तथा पौधों को वैज्ञानिक ढंग से इस प्रकार प्रबन्ध तथा उगाने का प्रयत्न किया जाता है, जिससे की भूमि, पानी तथा प्रकाश की प्रत्येक इकाई कम से कम खर्च के साथ भूमि की उर्वरा शक्ति को स्थिर रखकर अधिक से अधिक तथा अच्छी किस्म की ऐच्छिक फसल का उत्पादन किया जा सके।

शस्य विज्ञान, कला के रूप में—कला का सम्बन्ध दक्षता से लिया जाता है जो मानसिक दृष्टिकोण और भौतिक दृष्टिकोण से सम्बन्ध रखता है। किसान विभिन्न कृषि कार्यों को करने में अपने दक्षता का प्रदर्शन करता है। जो किसान दक्ष होता है वह अन्य कृषकों की अपेक्षा दिये गये कार्य को शीघ्रता, सरलता व कुशलता से करता है। इसलिए ऐसे किसान को कुशल व दक्ष कहते हैं अतः सिद्ध होता है कि शस्य विज्ञान एक कला है।

शस्य विज्ञान, विज्ञान के रूप में—सी. आर. बाल के अनुसार शस्य विज्ञान कला और विज्ञान दोनों हैं। किसी भी चीज के क्रमबद्ध ज्ञान (अध्ययन) को विज्ञान कहते हैं। शस्य विज्ञान के विभिन्न कार्य इस प्रकार क्रमबद्ध होते हैं कि सामान्य नियम अथवा सिद्धान्त प्रतिपादित होते हैं जो अनुसंधान आधारित होते हैं। फसल को बोने की पूर्व तैयारी से लेकर फसल काटने तक तमाम अन्तर कृषि

क्रियायें क्रमबद्ध रूप से सम्पन्न होते रहते हैं इसलिए शस्य विज्ञान को विज्ञान भी माना जाता है। शस्य विज्ञान को बीसवीं शताब्दी में कृषि विज्ञान की शाखा के रूप में माना जाने लगा। अमेरिकन सोसाइटी ऑफ एग्रोनामी की स्थापना 1908 में हुई और इससे शस्य विज्ञान को काफी प्रचार, प्रसार व विस्तार मिला। इस तरह शस्य विज्ञान कला और विज्ञान दोनों ही है।

शस्य विज्ञान का क्षेत्र

बढ़ती हुई जनसंख्या के इस युग में अनाज की प्रमुख आवश्यकता के कारण शस्य विज्ञान की मांग बढ़ गई है। खेती के अन्तर्गत भूमि बड़ी सीमित है जो बढ़ाई नही जा सकती इसलिए अनाज समस्या को हल करने के लिए जरूरी है कि अनाज का उत्पादन बढ़ाया जाये। शस्य विज्ञान के क्षेत्र का विवेचन निम्न प्रकार है —

1. अनाज समस्या का समाधान
2. वस्त्र समस्या का समाधान
3. उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति
4. बेरोजगारी समस्या का समाधान
5. मृदा-उर्वरता में वृद्धि
6. चारे की उपलब्धि
7. घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति
8. रहन-सहन के स्तर में वृद्धि
9. राष्ट्रीय आय में वृद्धि
10. अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि

रोटी, कपड़ा व मकान, मनुष्य की प्रारंभिक आवश्यक आवश्यकताओं में से तीन है। शस्य विज्ञान के अन्तर्गत इन तीनों समस्याओं का समाधान कई फसलों द्वारा होता है। राष्ट्रीय आय वृद्धि में सस्य विज्ञान की प्रमुख भूमिका है। देश की निर्यात सामग्री में 70% निर्यात सामग्री सस्य पदार्थों की होती है।

इसके अलावा चीनी, तेल, कपास आदि के प्रमुख उद्योगों को कच्चा माल शस्य उत्पादन से प्राप्त होता है। इससे तमाम लोगों को परोक्ष और अपरोक्ष रूप से रोजगार मिलता है। फसल चक्र अपनाकर मृदा उर्वरता में वृद्धि की जाती है। पशुओं के लिए चारा कृषि द्वारा ही संभव है। रोटी कपड़ा के अलावा तेल, ईंधन, सब्जी आदि आवश्यकताओं की पूर्ति भी शस्य-उत्पादन से करते हैं। सस्य विज्ञान के द्वारा व्यक्ति अपने रहन-सहन के स्तर में वृद्धि तो करता ही है, राष्ट्रीय आय वृद्धि में सहायक होता है और, अच्छे उत्पादन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में ख्याति भी अर्जित करता है। इस तरह शस्य विज्ञान का महत्व काफी है।

शस्य विज्ञान का महत्त्व

जिस प्रकार एक साधारण डाक्टर आवश्यकता पड़ने पर किसी खास रोग के बारे में अन्य विशेषज्ञ से सलाह लेता है अथवा उसके पास रोगी को जाने की सलाह देता है ठीक उसी प्रकार शस्य वैज्ञानिक फसल की पैदावर बढ़ाने के लिए जिम्मेदार घटकों जैसे मृदा मौसम, फसल की जाति, बीमारियाँ, बुवाई, बोने का समय, खाद, सिंचाई, खरपतवार नियंत्रण आदि का आपस में सम्बन्ध स्थापित करता है, इसके लिए भिन्न-भिन्न कृषि वैज्ञानिकों से सलाह लेता है और अनुसंधान के जरिये पैदावार बढाने मे सफल होता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि सस्य वैज्ञानिक कृषि के अन्य वैज्ञानिकों से समन्वय स्थापित करता है, इसलिए शस्य विज्ञान का कृषि में काफी महत्त्व है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शस्य विज्ञान का क्या तात्पर्य है ? इसका अर्थ ....
2. शस्य विज्ञान, कला है, या विज्ञान विवेचन करें।
3. 'शस्य विज्ञान का क्षेत्र' पर संक्षिप्त लेख लिखें।
4. शस्य विज्ञान के महत्त्व पर टिप्पणी लिखें।

अध्याय-2

फसल एवं उनका वर्गीकरण

परिभाषा–किसी निश्चित आर्थिक उद्देश्य से खेत मे उगाये गये सदृश पौधों को फसल कहते है।

वर्गीकरण–फसलों का वर्गीकरण कई बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है, जैसे—

(I) ऋतुओं के आधार पर

(II) विशेष लक्षणों एवं गुणों के आधार पर

(III) आर्थिक आधार पर

ऋतुओं के आधार पर वर्गीकरण—हमारे देश मे ऋतु के अनुसार तीन फसलें पैदा की जाती है।

1. जायद की फसलें–इनके लिए शुष्क व हवादार मौसम चाहिए। सिंचाई के साधन उपलब्ध होने पर ही फरवरी से मई तक इस ऋतु की फसलें उगायी जा सकती है। इस फसल मे खीरा, ककड़ी, लौकी, कद्दू, तरबूज, खरबूजा, भिण्डी बैंगन आदि फसलें पैदा की जाती है।

2. खरीफ की फसलें—इनको गर्म व तर वातावरण चाहिए। इस ऋतु की फसलें प्रायः मानसून के शुरू होने पर बोयी जाती है। अगेती बुवाई के लिए पलेवा की आवश्यकता पड़ती है। धान, कपास, ज्वार, बाजरा, मक्का, मूंगफली, तिल, अण्डी, उर्द, मूंग, लौकी, कद्दू, भिण्डी, बैंगन आदि इसमें उगाई जाती है।

3. रबी की फसलें—इन फसलों को बोने के समय वातावरण में कुछ नमी व सर्दी चाहिए किन्तु पकते समय मौसम शुष्क रहना चाहिए। ये फसलें अधिकतर अक्टबर, नवम्बर मे बोई जाती है। जैसे–गेहूं, जौ, चना, सरसों, अलसी, मटर, आलू, गोभी आदि।

विशेष लक्षणों व गुणों के आधार पर वर्गीकरण

क्र.सं. विशेष लक्षण (गुण)	फसलों की किस्मों का वर्गीकरण
1. नमी के आधार पर–	1. सूखा सहने वाली किस्में
	2. शुष्कता अवरोधी किस्में
	3. शुष्कता प्रभावी किस्में
	4. जल मग्नता अवरोधी किस्में
2. ऊंचाई के आधार पर–	1. ऊंची किस्में
	2. अर्द्धबौनी किस्में
	3. बौनी किस्में
3. वृद्धि और फैलाव के आधार पर–	1. फैलने वाली किस्में
	2. गुच्छेदार किस्में
	3. शीघ्र बढ़ने वाली किस्में
	4. धीरे-धीरे बढ़ने वाली किस्में
4. अवधि के आधार पर–	1. अगेती किस्में
	2. मध्यम किस्में
	3. पछेती किस्में
5. मृदा उर्वरता के आधार पर–	1. निम्न उर्वरा मृदा की किस्में
	2. औसत उर्वरा मृदा की किस्में
	3. उच्च उर्वरा मृदा की किस्में
6. रोग के आधार पर–	1. रोग अवरोधी किस्में
	2. रोग सहन करने वाली किस्में
	3. प्रभावित होने वाली किस्में
7. दाना झड़ने के आधार पर–	1. खेत में झड़ने वाली किस्में
	2. न झड़ने वाली किस्में
8. उपज के आधार पर–	1. अधिक उपज देने वाली किस्में
	2. औसत उपज देने वाली किस्में
	3. कम उपज देने वाली किस्में
9. उपयोगिता के आधार पर–	1. चारे की किस्में
	2. अनाज की किस्में
	3. अन्य उपयोग की किस्में
10. संकरण के आधार पर–	1. संकरित किस्में
	2. असंस्क़रित किस्में

आर्थिक आधार पर वर्गीकरण—फसलों को उनके उपयोग के आधार पर जो वर्गीकरण किया जाता है उसे आर्थिक वर्गीकरण कहते हैं। व्यापार के दृष्टिकोण से यह बहुत ही महत्वपूर्ण वर्गीकरण है। संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

1. **अनाज (Careal crops) वाली फसलें**—इसमें फसलों के दानों का अनाज के रूप में प्रयोग किया जाता है, जैसे–गेहूं, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, धान आदि।

2. **दलहन (Pulse crops) वाली फसलें**—इसमें फसलों के बीजों का प्रयोग प्रोटीन के रूप में किया जाता है जैसे–चना, मटर, अरहर, मूंग, मसूर आदि।

3. **तिलहन (Oil seed crops) वाली फसलें**—इसमें फसलों से तेल प्राप्त किया जाता है जो वसा के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें दलहनी और अदहलनी सभी फसलें आती हैं। जैसे–सरसों, तारामीरा, सूरजमुखी, मूंगफली, तिल, अलसी आदि।

4. **सब्जी (Vegetable crops) वाली फसलें**–ऐसी फसलों को इस वर्ग में रखा जाता है जिनका प्रयोग सब्जी बनाने में काम आता है। विशेष विधियों के द्वारा ही इन्हें अधिक समय तक संग्रह किया जा सकता है अर्थात् ये जल्दी खराब हो जाती हैं। जैसे–गोभी, मूली, टमाटर, गाजर, भिण्डी, बैंगन, करेला आदि।

5. **चारे (Fodder crops) वाली फसलें**–पशुओं को खिलाई जाने वाली फसलों को इस वर्ग में रखा जाता है। जैसे–ज्वार, बाजरा, ग्वार, लोबिया, मक्का, बरसीम, जई आदि। इनका प्रयोग हरे व सूखे चारे दोनों रूपों में किया जा सकता है।

6. **रेशे (Fibre crops) वाली फसलें**–ऐसी फसलों को इस वर्ग में रखा जाता है जिनसे कपड़ा, टाट, रस्सी, बोरा आदि बनता है जैसे–कपास, जूट, सनई, अलसी आदि।

7. **शर्करा (*Sugar crops*) वाली फसलें**–फसल के तने और जड़ों में ये वर्ग शंकरा इकट्ठा करती है जिससे बाद में गुड़, खांड व चीनी बनाई जाती है। जैसे गन्ना, चुकन्दर आदि।

8. **फल (Fruit crops) वाली फसलें**–इस वर्ग में फल आता है जैसे–ककड़ी खीरा, खरबूजा, तरबूजा आदि।

9. **औषधि (Medicinal crops) वाली फसलें**–इस वर्ग की फसलों का प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है, इनका औषधिक महत्व है जैसे–पोदीना, हल्दी, अदरक, लहसुन आदि।

10. **जड़ तथा ट्यूबर (Root and tuber crops) वाली फसलें**–इस वर्ग

की फसलों का तना ट्यूबर के रूप में बदल जाता है, जैसे–आलू और जड़ें भी भोज्य पदार्थ संग्रह करके मोटी हो जाती है जैसे–मूली, गाजर, शलगम आदि।

11. मसाले (Speies crops) वाली फसलें-सब्जियों तथा अचार मे अधिकतर खुशबू और स्वाद प्रयोग किया जाता है। ऐसी फसलें जिनमें खुशबू और स्वाद होता है, इस वर्ग में रखी जाती है। जैसे–जीरा, धनिया, पोदीना, हल्दी, सौंफ, अदरक, मेथी, प्याज, मिर्च, लहसुन आदि।

12. रंग (Colour crops) वाली फसलें–कुछ ऐसी फसलें होती है जिनसे रंग पैदा होता है, वे इस वर्ग में रखी जाती है। जैसे नील आदि।

13. उद्दीपक (Stimulent crops) वाली फसलें–ऐसी फसलें जिनके उपयोग से शरीर में उत्तेजना पैदा होती है, नशा होता है, उन्हें इस वर्ग मे रखा जाता है। जैसे-तम्बाकू, चाय, काफी व पोस्त आदि।

14. नगदी (Cash crops) फसलें–ऐसी फसल इस वर्ग मे आते है जिनसे नगद (रोकड़) और अधिक रुपया मिलता है। अच्छी आमदनी के लिए इनको बोया जाता है। जैसे–गन्ना, आलू व तम्बाकू आदि।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फसल किसे कहते है ? ऋतुओं के आधार पर फसलों का वर्गीकरण करें।
2. आर्थिक वर्गीकरण से क्या तात्पर्य है ? फसलों का आर्थिक वर्गीकरण करे।
3. फसलों का वर्गीकरण विशेष बिन्दुओं (लक्षण एवं गुण) के आधार पर करें।
4. निम्न पर टिप्पणी लिखें —

(I) Vegetable crops
(II) Oil sead crops
(III) Fruit crops
(IV) Root and tubes crops
(V) Fodder crops

अध्याय-3

फसल चक्र
(शस्यावर्तन)
(CROP-ROTATION)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आश्रित है। हमारे देश में प्रति व्यक्ति केवल 0.44 हेक्टेयर भूमि जोतने के लिए उपलब्ध है। जबकि सम्पूर्ण संसार में प्रति व्यक्ति 0.20 हेक्टेयर भूमि जोत के अन्दर है। रूस तथा अमेरिका में क्रमशः 1.12 व 1.20 हेक्टेयर भूमि प्रति व्यक्ति है। हमें साधनों में आत्म-निर्भर होने के लिए सही ढंग से फसल चक्रों को अपनाना चाहिए।

फसल चक्र--किसी निश्चित क्षेत्र में, निश्चित अवधि में, निश्चित फसलों को इस प्रकार हेर-फेर कर उगाना जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट न हो और अधिक से अधिक उपज प्राप्त हो, फसल चक्र या शस्यावर्तन कहलाता है।

फसल चक्र को प्रभावित करने वाले कारक

1. **जलवायु**—विभिन्न फसलों को विभिन्न तापक्रम, आर्द्रता तथा अन्य वायुमण्डलीय दशाओं की आवश्यकता होती है। रबी, खरीफ तथा जायद की फसलें मौसम को अपनी उचित दिशाओं के आधार पर ही उगायी जाती हैं। खरीफ की फसलें रबी या जायद में नहीं उगा सकते। इसलिए फसल चक्र अपनाते समय क्षेत्र विशेष की जलवायु को ध्यान में रखना आवश्यक है।

2. **भूमि**--भूमि की आवश्यकता, विभिन्न फसलों की जाति और स्वभाव के अनुसार विभिन्न प्रकार की होती है। फसलों के उत्पादन पर भूमि के भौतिक व रासायनिक गुणों का बहुत प्रभाव पड़ता है। मटियार भूमि में धान की फसल सुगमतापूर्वक उगायी जा सकती है। जबकि आलू के लिए वह अनुपयुक्त है। अतः फसल चक्र भूमि के आधार पर ही बनाना चाहिए।

3. **सिंचाई के साधन**—सिंचित क्षेत्रों में सघन फसलें नहीं उगाई जा सकती और सिंचित क्षेत्रों में एक ही वर्ष में कई फसलें उगाई जा सकती हैं, गन्ना व आलू की फसलों के लिए अधिक पानी चाहिये। अतः जहां पर सिंचाई के साधन नहीं है वहां पर इन फसलों को आसानी से नहीं उगाया जा सकता। ऐसे क्षेत्रों के लिए ज्वार, बाजरा, चना आदि फसलें उपयुक्त हैं।

4. मनुष्य तथा पशु शक्ति की उपलब्धता—बहुत सी ऐसी फसलें हैं जिनके उत्पादन के लिए मनुष्य तथा पशु शक्ति की अधिक समय तक आवश्यकता होती है। ऐसी सुविधाओं के अभाव में फसल उत्पादन कठिन हो जाता है। गन्ना तथा मक्का की फसल की वर्ष में अधिकांश समय में रखवाली करनी पड़ती है अतः पशु एवं मानव शक्ति के आधार पर फसल चक्र बनाना चाहिये।

5. घरेलू आवश्यकता—एक कृषक के लिए भिन्न-भिन्न वस्तुओं की आवश्यकता होती है। पशुओं के लिए चारा, भोजन के लिए दाल, अन्न, तरकारी, मसाले एवं तेल आदि तथा कपड़ों के लिए कपास तथा ईंधन की आवश्यकता होती है। अतः इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर फसलें उगानी चाहिए।

6. बाजार की मांग एवं शहर की दूरी—शहर के पास सब्जी की अधिक मांग होती है। अतः फसल चक्र में ऐसी तरकारी की फसलें सम्मिलित की जानी चाहिए, जिनकी मांग बाजार में अधिक हो। शहर से दूर वाले स्थान पर सब्जी की फसलें नहीं उगानी चाहिए। क्योंकि बाजार में ले जाने में अधिक समय लगेगा।

7. बाजार में भेजने की उचित सुविधायें—गन्ना मिलों के पास अधिक उगाया जाता है क्योंकि इसकी खपत सुविधापूर्वक हो जाती है। सूती मिलों के पास कपास की खेती की जाती है।

8. कृषक की फसल उगाने की दक्षता—जो किसान जिस फसल को उगाने में दक्ष होता है वह उसी फसल को उगाना पसन्द करता है, कुछ लोग सब्जी उगाने में अधिक दक्ष होते हैं।

फसल चक्र के सिद्धान्त

1. मूसला जड़ वाली फसलों के बाद झकड़ा जड़ वाली फसलें बोनी चाहिए—ऐसी फसलें बोने से भूमि से विभिन्न गहराई से वे खाद्य तत्वों को लेती हैं। अतः भूमि की कभी ऊपरी परत तथा कभी निचली परत प्रयोग में आती रहती है। इस प्रकार भूमि की उर्वरा शक्ति क्षीण नहीं हो पाती है। जैसे कपास एवं अरहर के बाद गेहूं बोना चाहिए।

2. एक दाल वाली फसलों के बाद दो दाल वाली फसल को बोना चाहिए—एक दाल वाली फसलें भूमि से खाद्य तत्वों को केवल ग्रहण करती हैं, जबकि दो दाल वाली फसलें भूमि में नाइट्रोजन को संस्थापित करती है। इन फसलों की जड़ों में बैक्टीरिया होते हैं। इस प्रकार भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है। जैसे ज्वार के बाद चना।

3. अधिक खाद चाहने वाली फसलों के बाद कम खाद चाहने वाली फसलों को बोना चाहिए—अधिक खाद चाहने वाली फसलों के पश्चात् खाद के अवशेष कुछ मात्रा में रह जाते हैं। कम खाद चाहने वाली फसलें उगाकर इस अवशेष का उपयोग अच्छी पैदावार के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार

खाद की बचत हो जाती है। जैसे आलू के बाद तम्बाकू या प्याज बोने से आलू की फसल की बची हुई खाद से ही आवश्यकता पूरी हो जाती है। इस प्रकार लाभ अधिक होता है।

4. अधिक निकाई-गुड़ाई चाहने वाली फसलों के बाद कम निकाई-गुड़ाई चाहने वाली फसलों को बोना चाहिए—परीक्षणों द्वारा यह ज्ञात हो चुका है कि भू-परिष्करण क्रियाओं द्वारा भूमि के साथ अधिक छेड़-छाड़ नहीं करनी चाहिये, इससे भूमि की भौतिक दशा विशेष कर संरचना खराब हो जाती है। इसके फलस्वरूप उपज घटने लगती है। अतएव लगातार ऐसी क्रियाओं से बचने के लिए ऐसी फसलें बोई जानी चाहिये जो कम से कम निकाई-गुड़ाई में अच्छी उपज दे सकती है। इसके अतिरिक्त खेत की तैयारी तथा खरपतवारों को निकालने के व्यय में बचत हो जाती है जैसे आलू के पश्चात तम्बाकू, मक्का के पश्चात् चना, मूंगफली के पश्चात् गेहूं बोना चाहिये।

5. अधिक पानी चाहने वाली फसलों के पश्चात् कम पानी चाहने वाली फसलें उगानी चाहिए—कुछ फसलों की जल मांग अधिक होती है, इससे वायु संचार में बाधा पड़ती है। वायु संचार कम होने पर रासायनिक तथा जैविक क्रियाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और भूमि की उर्वरा शक्ति घट जाती है। इसलिए अधिक पानी चाहने वाली फसलों के बाद कम पानी चाहने वाली फसलें बोनी चाहिये। जैसे धान के बाद चना, ज्वार के बाद बरसीम।

6. घरेलू आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए फसलों को चुनना चाहिये—दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर फसलें उगाना चाहिये। जैसे—ज्वार+तिल के बाद चना, धान, गेहूं।

7. एक ही कुल की फसलें लगातार नहीं उगाना चाहिए—ऐसी फसलें जो कि एक ही कुल की हो, लगातार बोने से कीटों एवं बीमारियों का आक्रमण अधिक होता है। इससे बचने के लिये, एक कुल की फसल के बाद दूसरे कुल की फसल बोनी चाहिये। जैसे बाजरा के बाद चना या मटर, सनई के बाद गेहूं।

8. फसलों को इस प्रकार से हेर-फेर कर बोना चाहिये, जिससे वर्ष भर पशु तथा मानव शक्ति का उचित प्रयोग किया जा सके।

9. मृदा क्षरण को प्रोत्साहन देने वाली फसलों के बाद क्षरण को रोकने वाली फसलों को बोना चाहिए। जैसे मक्का के बाद बरसीम।

फसल चक्र से लाभ—

1. भू-परिष्करण (फसल उगाने सम्बन्धी खेत की तैयारी) समुचित ढंग से हो जाती है। इस प्रकार भूमि के कण तथा उनकी संरचना को उचित दिशा में रखने से सहायता मिलती है।

2. भूमि की उर्वरा शक्ति, फलीदार फसलों एवं हरी खाद को फसल चक्र सम्मिलित करने से, प्रचुर मात्रा में बढ़ जाती है।
3. भूमि में विशालता उत्पन्न होने की सम्भावना दूर हो जाती है।
4. भूमि के जीवाणु अपना कार्य सुचारु रूप से करने में समर्थ होते हैं जो कि भूमि की उर्वरा शक्ति को सुधारते हैं।
5. सिंचाई के जल में बचत होती है।
6. शुष्क कृषि की दशाओं में समुचित फसल चक्रों द्वारा मिट्टी में नमी संरक्षण तथा उर्वरक शक्ति की वृद्धि के लिए यथेष्ट अवकाश प्राप्त हो जाता है।
7. फसल चक्रों द्वारा खरपतवारों के नियन्त्रणों में सहायता मिलती है।
8. फसल चक्र द्वारा फफूंद की बीमारियाँ तथा कीट नियन्त्रण में सहायता मिलती है।
9. मृदा क्षरण में रुकावट होती है।
10. कृषक को वर्ष में कई बार आय प्राप्त होती है।
11. बाजार की मांग पूरी करके अधिक धन कमाया जा सकता है।
12. फसलों का उत्पादन व्यय कम होता है।
13. पशु एवं मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग होता है।
14. भूमि की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशा ठीक बनी रहती है।
15. घरेलू आवश्यकता अधिक पूरी की जाती है।

विभिन्न राज्यों के लिए फसल चक्र

(अ) जम्मू और कश्मीर के लिए फसल चक्र—

(1) धान–गेहूं+सरसों+सब्जी (गर्मी की)	एक वर्ष का फसल चक्र
(2) गर्मी का धान-धान–गेहूं।	" " "
(3) साठा मक्का, संकर मक्का–गेहूं।	" " "
(4) मूंगफली–जौ या गेहूं।	" " "

(ब) पंजाब, हरियाणा और दिल्ली के लिए फसल चक्र—

(1) मक्का–आलू–गेहूं।	एक वर्ष का फसल चक्र
(2) संकर मक्का–गेहूं	" " "
(3) कपास–गेहूं–लोबिया।	" " "
(4) धान–चना।	" " "
(5) मूंग+मक्का–गेहूं।	" " "
(6) हरी खाद–गेहूं–गन्ना–पेडी।	तीन वर्ष का फसल चक्र

(स) राजस्थान के लिए फसल चक्र—

(1) ज्वार+ग्वार–गेहूं ।	एक वर्ष का फसल चक्र
(2) कपास या मक्का–गेहूं ।	" "
(3) कपास–मटर ।	" "
(4) ग्वार–गेहूं–कपास–गेहूं ।	" "
(5) बाजरा+मूंग–ज्वार–जौ	"
(6) बाजरा–चना+ज्वार–बरसीम	" "

(द) उत्तर प्रदेश के लिए फसल चक्र—

(1) ज्वार (चारे के लिये)–बरसीम	एक वर्ष का फसल चक्र
(2) मक्का–आलू–प्याज ।	" " "
(3) मक्का–आलू–तम्बाकू ।	" " "
(4) धान–मटर या बरसीम ।	" " "
(5) हरी खाद–(सनई) गेहूं ।	" " "
(6) मक्का–आलू-टिंडा तोरई ।	" " "
(7) मक्का–आलू–गन्ना ।	दो वर्ष का फसल चक्र
(8) ज्वार–आलू–गन्ना ।	" " "
(9) बाजरा–चना–धान–मटर ।	" " "
(10) मक्का-आलू-मूंगफली, तम्बाकू-कपास-मटर ।	" " "
(11) मक्का–आलू-मूंगफली- गेहूं	" " "
(12) हरी खाद–गेहूं-गन्ना पेडी ।	तीन वर्ष " "
(13) मक्का-आलू-गन्ना-पेडी ।	
(14) मूंगफली-अरहर-गन्ना-पेडी-परती- गेहूं ।	" " "

(य) शहर के पास वाले क्षेत्र का फसल चक्र—

(1) पालक–आलू–प्याज ।	एक वर्ष का फसल चक्र
(2) ककड़ी या खीरा–आलू–भिण्डी ।	" " "
(3) मिर्च–भिण्डी ।	" " "
(4) बैंगन-बन्द गोभी ।	" " "
(5) टमाटर–मटर–करेला ।	" " "
(6) अरबी–फूल गोभी–टिण्डा ।	" " "
(7) बैंगन–बन्द गोभी–टिण्डा ।	चार " "
(8) टमाटर–फूल गोभी–भिण्डी ।	" " "

एक वर्ष में चार फसलें—

(1) मक्का (संकर गंगा–3) तोरया –गेहूं [शर्बती सुनहरा]–मूंग [वैशाखी]

(2) धान [साबरमती या आलू या गाजर या–गेहूं (सोना अवंती)] –मूंग
जमुना गोभी या शलजम वैशाखी

(3) ग्वार (पूसा मासनी)–मूली–(जापानी सफेद) गेहूं (NP. 7,8) लोबिया
K–397]

(4) मक्का (संकर गंगा–3)–आलू [Up-to-date] गेहूं (WH. 147)–लोबिया
[या शलजम (K–397)
[Purpil Top]

(5) ज्वार (CSH–1 या 3)–गोभी (अर्ली मार्केट)–गेहूं (H.D. 2009)–लोबीया
(July–Sept) (Oct–Dec.) (Jan–April) (पूसा फागुनी)
(April–June)

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. फसल चक्र से क्या समझते हो ? फसल चक्र बनाते समय किन-किन बातों को ध्यान में रखोगे।
2. फसल चक्र से क्या-क्या लाभ होता है ? राजस्थान के लिए कोई दो उपयुक्त फसल चक्र बनायें।
3. फसल चक्र को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारण है ? एक वर्ग में चार फसलों का कोई तीन फसल चक्र बनाओ।
4. शस्यावर्तन किसे कहते है ? फसल चक्र बनाने के सिद्धात बताइये। (राज. बोर्ड 1980)
5. शस्यावर्तन से क्या-क्या लाभ है ? राजस्थान के सिंचित क्षेत्र में अपनाये जाने वाले कोई दो वैज्ञानिक शस्यावर्तन लिखिए और उनकी विशेषतायें बतलाइये। (राज. बोर्ड. हा. सै. 1979, 1981)
6. शस्यावर्तन की परिभाषा लिखिए। इसके लाभ एवं सिद्धांतों का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए। (हा. सै. 1984)

अध्याय—4

शस्योत्पादन योजना एवं शस्योत्पादन कारक

शस्योत्पादन योजना (CROPPING SCHEME)

किसी भी कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए पूर्व निर्धारित कार्यक्रम होना आवश्यक है। प्रत्येक व्यापारी, उद्योगपति अपने उद्योग को चलाने के लिये योजना तैयार करता है। किन्तु भारतवर्ष का किसान अपने कृषि व्यवसाय को योजनाबद्ध ढंग से नहीं चलाता। यदि किसान शस्योत्पादन की सुनिश्चित योजना बनाकर खेती के कार्यक्रम को चलाये तो अपनी खेती को दूसरे व्यवसाय की तरह लाभप्रद बना सकता है। कुछ शस्य योजना के नमूने निम्न प्रकार से हैं—

शस्य योजना नं० 1

कुल क्षेत्रफल—10 हेक्टेयर।
सिंचाई की सुविधा—5 हेक्टेयर क्षेत्रफल में।
स्थान—श्रीगंगानगर।
योजना की अवधि—दो वर्ष।
अन्य सुविधा—चीनी मिल से 5 कि. मी. दूर सड़क के निकट।
उपयुक्त सुविधा शस्यावर्तन—

(1) ग्वार—गन्ना
(2) मक्का—चुकन्दर—संकर बाजरा—चना।
(3) कपास—गेहूं—लोबिया—ज्वार (हरा चारा) बरसीम
(4) संकर बजारा—मटर—मक्का—चुकन्दर
(5) मक्का—मटर—(बाजरा + लोबिया)—कपास—गेहूं—मूंग (हरा चारा)
(6) बाजरा + मूंग—चना—मक्का—सरसों
(7) भिण्डी—फूल गोभी—तर ककड़ी—टमाटर—प्याज (गुणा रबी)

तालिका नं० 1

खेत नं०	क्षेत्रफल	प्रथम वर्ष खरीफ	प्रथम वर्ष रबी	प्रथम वर्ष जायद	द्वितीय वर्ष खरीफ	द्वितीय वर्ष रबी	द्वितीय वर्ष जायद
1.	2 हेक्टेयर	ग्वार	गन्ना	लगातार	—	पेड़ी	(Ratoon)
2.	"	चुकन्दर	चुकन्दर	—	संकर बाजरा	चना	—
3.	1 "	संकर बाजरा	मटर (सब्जी हेतु)	मक्का (भुट्टे के लिये)	मक्का	चुकन्दर	—
4.	"	कपास	गेहूं	लोबिया	ज्वार (चरी)	बरसीम	—
5.	"	मक्का	मटर	बाजरा लोबिया (हरा चारा)	कपास	गेहूं	मूंग नं. 1
6.	½ "	भिण्डी	फूल गोभी	तर ककड़ी	टमाटर (पूसा रूबी)	प्याज	—
7.	"	टमाटर (पूसा रूबी)	प्याज		भिण्डी	फूल गोभी	तर ककड़ी
8.	"	कपास	गेहूं	ज्वार	गन्ना	—	लगातार
9.	"	ज्वार (हरा चारा)	बरसीम		कपास	गेहूं	लोबिया
10.	"	बाजरा+मूंग	चना	—	मक्का	सरसों	—
योग क्षेत्रफल–9½ हे.		9½ हे.	6½ हे.	9 हे.	9½ हे.	9½ हे.	3½ हे.

शेष—$\frac{1}{2}$ हेक्टेयर क्षेत्रफल सिंचाई की नालियों, मेड़ों व रास्तों के लिए छोड़ा गया।

$$\text{शस्य सघनता} = \frac{\text{कुल क्षेत्र जिसमें उगाई गई}}{\text{वानस्पतिक क्षेत्रफल}} \times 100$$

$$= \frac{25}{5.9} \times 100 = 263 \text{ प्रतिशत}$$

शस्य योजना नं.

कुल क्षेत्रफल = 5 हेक्टेयर।

सिंचाई की सुविधा = 5 हेक्टेयर।

स्थान—जयपुर शहर के निकट।

योजना की अवधि—दो वर्ष।

अन्य सुविधायें—यातायात की पूर्ण सुविधा एवं पर्याप्त शहरी कम्पोस्ट व सीवेज वाटर उपलब्ध।

उपयुक्त शस्यावर्तन—

1. ज्वार (हरा चारा)—बरसीम–मक्का–मटर–टमाटर।
   (भुट्टा + चारा)
2. भिन्डी-आलू-प्याज-तोरी-मूली-अरवी।
3. करेला-शलजम-लोबिया-मक्का-आलू-बन्द गोभी।
   (अर्ली)
4. लौकी-मेथी-टमाटर-गाजर-प्याज।
5. मिर्च-पालक-तोरी-बैंगन।

तालिका-नं० 2

प्लाट नं.	क्षेत्रफल	प्रथम वर्ष			द्वितीय वर्ष		
		खरीफ	रबी	जायद	खरीफ	रबी	जायद
1	½-हे.	(ज्वार हरा चारा)	बरसीम	——	मक्का	मटर	टमाटर
2	"	मक्का	मटर	टमाटर	ज्वार (हरा चारा)	बरसीम	——
3	"	भिण्डी	आलू	प्याज	तोरई	मूली	अरबी
4	"	तोरई	मूली	अरबी	भिण्डी	आलू	प्याज
5	"	करेला	शलजम	लोबिया (सब्जी के लिए)	मक्का	आलू (अर्ली किस्म)	बन्द गोभी
6	"	मक्का	आलू	(बन्द गोभी)	करेला	शलजम	लोबिया
7	"	लोकी	मेथी	टमाटर	लगातार	गाजर	प्याज
8	"	टमाटर	गाजर	प्याज	लोकी	मेथी	टमाटर
9	"	मिर्च	पालक	तोरई	लगातार	बैंगन	लगातार
10	"	तोरी	बैंगन	लगातार	मिर्च	पालक	तोरई
कुल क्षेत्र, 9 3/4		9 3/4 हे	9 3/4 हे	9 3/4 हे	9 3/4 हे	9 3/4 हे	9 3/4 हे

1/4 हे सिंचाई की नाली सड़क मेंड़ आदि के लिए छोड़ा गया ।

शस्योत्पादन कारक

शस्योत्पादन में निम्नलिखित कारकों का विशेष स्थान माना जाता है—

1. जलवायु—भिन्न-भिन्न फसलों या शस्यों का उत्पादन कार्य विशिष्ट जलवायु में ही किया जा सकता है। जैसे ज्वार, बाजरा, मक्का, मूंगफली, उड़द, अरहर, कपास आदि शस्यों के लिए गर्म-नम या गर्म-तर जलवायु की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार गेहूं जौ, बरसीम, सरसो, मटर, मसुर, चना आदि शस्यों के लिए ठण्डी नम जलवायु अनुकूल मानी जाती है।

2. भूमि—शस्योत्पादन का भूमि से गहरा सम्बन्ध है। अलग-अलग फसलों के लिए विशेष प्रकार की मृदा, विशिष्ट मृदा, विन्यास वाली मृदा एवं विशेष प्रकृति वाली मृदा उपयुक्त मानी जाती है। जैसे ज्वार, बाजरा, मूंग, मोठ, उड़द, चना, मटर, मसूर आदि शस्यों की खेती के लिए रेतीली एवं रेतीली दोमट भूमि उपयुक्त मानी जाती है। इसी प्रकार मटियार व चिकनी ठोस मृदा विन्यास वाली हल्की क्षारीय प्रकृति की भूमि धान की खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है। मटियार दोमट भूमि गन्ना, गेहूं, कपास, बरसीम तथा विभिन्न शाक शस्यों के उत्पादन के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

3. भू-परिष्करण क्रियायें—शस्योत्पादन के लिए प्रारम्भिक एवं सम्बन्धित दो प्रकार की भू-परिष्करण क्रियायें आवश्यक हैं। प्रारम्भिक भू-परिष्करण क्रियायें जैसे जुताई करने मिट्टी को भुर-भुरी बनाना, खेत से खरपतवार को नष्ट करना, खाद मिलाना, भूमि को समतल करना आदि सभी क्रियाओं का सीधा सम्बन्ध बीजों के अंकुरण एवं पौधों की वृद्धि से है। यदि प्रारम्भिक भू-परिष्करण ठीक ढंग से किया गया है, तो बीजो का अंकुरण एवं शस्यों की वृद्धि तेजी से होगी। इस प्रकार सम्बन्धित भू-परिष्करण क्रियायें जैसे खड़ी फसल में निकाई-गुड़ाई पौधों की जड़ों पर मिट्टी चढना आदि क्रियाओं के फलस्वरूप भी शस्योत्पादन में वृद्धि होती है।

4. उन्नत किस्में—शस्योत्पादन में उन्नत किस्मों का महत्त्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। कृषि वैज्ञानिकों का ऐसा विश्वास है कि उन्नत किस्मों का शस्य उत्पादन में उपयोग करके उत्पादन को तेजी से बढ़ाया जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि देशी व उन्नत किस्म बिना खाद व सिचाई के समान परिस्थिति में बोने पर उन्नत किस्मों में देशी किस्म की अपेक्षा लगभग 30 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त होती है। उन्नत किस्मों को शस्यों को पर्याप्त खाद व पानी देकर देशी किस्म की तुलना में दुगनी व तिगुनी उपज प्राप्त की जा सकती है। उन्नत किस्मों में रोगों एवं कीटों के आक्रमण को सहन करने की क्षमता भी होती है। इसी प्रकार विभिन्न शस्यों की बौनी किस्मों को उगाकर अधिक से अधिक उर्वरक उन्हें देने पर भी उनके गिरने का भय नहीं रहता और उपज अधिक से अधिक ली जा सकती है। अनेक शस्यों

की शीघ्र तैयार होने वाली किस्में भी तैयार कर ली गई है जिससे एक ही खेत से एक वर्ष में एक से अधिक फसल आसानी से ली जा सकती है। जैसे—

फूल गोभी (अर्ली) — आलू (60 दिन मे तैयार होने वाली) — आलू (देर मे तैयार होने वाली) — कद्दू (जायद) (1 वर्ष)

5. बुआई का समय –अलग-अलग शस्यों की बुवाई का समय निश्चित है। बुआई का समय बीजों के अंकुरण से जुड़ा हुआ है। जिन बीजों का अंकुरण कम ताप पर होता है। यदि उन्हें अधिक मृदा ताप की उपस्थिति में उगाया जाय तो उनका अंकुरण ठीक से नहीं हो पायेगा और भूमि में नमी की अधिकता होने पर बीज सड़ भी जाते हैं। जैसे आलू की बुवाई यदि मैदानी भागों में अक्टूबर से पहले कर दी जाय तो आलू की गांठें गल जाती हैं और अंकुरण बहुत कम होता है। इसलिए बुवाई ठीक समय पर ही करना चाहियें।

6. दूरी—शस्योत्पादन में पौधे से पौधे व लाइन से लाइन की दूरी पौधे के फैलाव के अनुसार पर्याप्त होनी चाहिये। यदि यह दूरी बहुत कम कर दी जाय तो पौधों की जड़ों में भोजन एवं वृद्धि के लिए प्ररोह में प्रकाश प्राप्त करने के लिए संघर्ष होने लगता है। फलस्वरूप शस्यों की वृद्धि बहुत कम होती है। पौधों के निचले भाग में प्रकाश नहीं पहुँच पाता, फसल कम होती है एवं उपज घट जाती है।

इस प्रकार पौधों या लाइनों के बीच आवश्यकता से अधिक दूरी होने पर पादप संख्या (plant population) कम रह जाती है जिससे उत्पादन भी कम मिलता है। अतः अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए पादपों एवं कतारों के मध्य उचित एवं पर्याप्त दूरी होनी चाहिये।

7. बुवाई के उन्नत तरीके—शस्योत्पादन को व्यावसायिक स्थान दिलाने के लिए बुवाई के उन्नत तरीकों को अपनाना आवश्यक है जैसे-धान की अधिकतम उत्पादन के लिए रोपाई विधि एवं एक स्थान पर केवल एक से तीन पौधे रोपना पर्याप्त है। गेहूं की डिलवर व सीड ड्रील द्वारा बुआई, गन्ने के एक आंख (Bud) या कलिका वाले टुकड़े से पौधे तैयार करके पुनः रोपाई करके अधिक से अधिक उपज ली जा सकती है। हल्की भूमियों में गन्ने को नालियों में बोकर गिरने से बचाया जा सकता है। इसी प्रकार मूली, शकरकन्द आदि शाक शस्यों की बुआई मेडों पर करके अधिक उपज ली जा सकती है।

8. उत्तम बीज—शस्योत्पादन में उन्नत बीज के साथ-साथ सामान्य रूप से हृष्ट-पुष्ट, पका हुआ, चमकीला, नया रोग, कीट एवं खरपतवार के बीजों रहित पूर्ण सूखा बीज होने पर अंकुरण अधिक से अधिक होगा, तथा उनसे वाले पौधे अधिक से अधिक स्वस्थ होंगे जिससे उत्पादन अधिक मिलेगा।

9. सही बीज की मात्रा—बीज की मात्रा, बीजों के आकार, भार, बुआई का समय भूमि की स्थिति, सिंचाई की सुविधा, भूमि में नमी की मात्रा, पौधे व लाइन से लाइन की दूरी आदि विभिन्न बातों पर निर्भर करता है। विभिन्न बातों को ध्यान मे रखते हुए बीज की सही मात्रा ही बोनी चाहिये। कम मात्रा में बीज की बुवाई करने पर पौधों की संख्या कम रह जाती है और अधिक मात्रा में बीज बोने पर शस्यों के बीच सघनता बढ़ जाती है। दोनों ही परिस्थितियों मे उपज कम मिलती है।

10. उचित खाद एवं उर्वरकों की व्यवस्था—अधिक उपज प्राप्त करने के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद एवं उर्वरकों को सही समय पर तथा सही तरीके से प्रयोग करके शस्योत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। जैसे गेहूं, जौ एवं बाजरा जैसी फसलों में जिनमें कल्ले (lillers) फूटते हैं, उनमें बुवाई के तीन सप्ताह बाद प्रथम कल्ले फूटने की अवस्था में नत्रजन युक्त उर्वरक देने से उपज में काफी वृद्धि होती है। हरे चारे की फसलों मे प्रत्येक कटाई के बाद नत्रजन युक्त उर्वरक देने से हरे चारे की उपज बढ़ जाती है। (वर्षा पर आधारित) शस्यों की उपज यूरिया के घोल का छिड़काव करके बढाई जा सकती है।

11. सिंचाई—शस्योत्पादन में सिंचाई का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति की विपम परिस्थितियों के होने पर भी सिंचाई की उचित व्यवस्था करके शस्योत्पादन कार्य किया जा सकता है। इसी प्रकार अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए भी पर्याप्त मात्रा में खादों एवं उर्वरकों के प्रयोग के साथ-साथ सिंचाई की उचित व्यवस्था भी होना आवश्यक है, शस्यों के जल मांग के कुछ "संकट काल" भी होते हैं। जिस समय सिंचाई करना आवश्यक है, यदि उस समय सिंचाई करना तो उपज को भारी कमी आ जाती है जैसे गेहूं में कल्ले फूटने तथा दोनों के दूधिया अवस्था में होने पर चावल में दानों के दूधिया अवस्था में तथा गन्ने में मार्च से वर्षा के प्रारम्भ होने तक एवं अगस्त के अन्त से अक्टूबर तक सिंचाई की विशेष आवश्यकता होती है।

12. खरपतवार नियन्त्रण—खरपतवार शस्यों के उपयोगी पोषक तत्वों एवं मृदा जल को भूमि से अधिक से अधिक मात्रा ग्रहण करके भूमि को अनुपजाऊ बनाते हैं, साथ ही शस्यों की वृद्धि में बाधा डालते हैं। खरपतवारों की उपस्थिति में रोग एवं कीड़ों का आक्रमण भी तेजी से होता है। अतः शस्यों की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए समय-समय पर निकाई-गुड़ाई एवं उपयुक्त घास नाशक विषों (Weedicidses) का छिड़काव करना चाहिये।

13. शस्यों की उचित समय पर कटाई—शस्यों की उत्तम वृद्धि एवं फलन के होते हुए भी यदि कटाई सही समय पर नहीं की गई, तो उपज में कमी आ जाती है। अनाज वाली फसलों की कटाई बालियों के पक कर पीले पड़ जाने पर तथा

फलीदारी फसलों की कटाई फलियों के पक जाने एवं पत्तियों के पीले पड़ जाने पर, किन्तु फलियां के अधिक शुष्क होने से पूर्व ही कटाई कर लेनी चाहिए।

14. पादप रक्षण—शस्योत्पादन की पूर्ण सफलता विभिन्न शस्योत्पादन कारकों के साथ-साथ रोग एवं कीट नियन्त्रण की उचित व्यवस्था पर निर्भर करता है। अधिक उपज लेने के लिए विभिन्न पादप रक्षण उपायों जैसे-भूमि शोधन, बीजोपचार, उपयुक्त रोग एवं कीटनाशक विषयों का छिड़काव, रोगरोधी किस्में बोना, शस्यावर्तन का-उपयोग-आदि उपायों को काम में लाना चाहिये।

उपयुक्त सभी शस्योत्पादन कारकों का सही सामजंस्य होने पर शस्योत्पादन एक जीवन यापन का साधन ही नहीं अपितु एक उत्तम एवं लाभप्रदाय व्यवसाय बन सकता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. राजस्थान की परिस्थिति में श्री गंगानगर शहर के निकट तथा बीकानेर जैसे रेतीले इलाके के लिए 5 हेक्टर क्षेत्रफल के लिए शस्य योजना तैयार करो। योजना की अवधि एक वर्ष है।
2. उपरोक्त शस्य योजना के आधार पर एक शस्य सघनता ज्ञात करो।
3. विभिन्न शस्योत्पादन कारकों को लिखिए। किन्ही चार शस्योत्पादन कारकों का वर्णन कीजिए।
4. किन्ही दो शस्योत्पादन कारकों का अधिकतम उपज प्राप्त करने में क्या स्थान है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

अध्याय—5

पौधों के आवश्यक पोषक तत्व

पौधों के लिए आवश्यक तत्व एवं उनका पौधों पर प्रभाव—

पौधों को अपनी वृद्धि के लिये मनुष्यों के समान ही भोजन आवश्यकता होती है जिससे वे भूमि वायु तथा जल से प्राप्त करते हैं जिससे अनेक तत्व घुलित अवस्था में होते हैं।

वृद्धि के समय पौधे भूमि तथा वायु से बहुत से तत्वों का शोषण करते हैं। पौधो का विश्लेषण करने पर पौधों के शरीर मे अनेकों तत्व पाये गये हैं। किन्तु अभी तक केवल 16 तत्व ऐसे ज्ञात हुए हैं जिनकी पौधो को विशेष आवश्यकता होती है, जो निम्नलिखित हैं–

C, H, O, N, P, K, Ca Mg S Fe Mn BO Cu, Zn, Cl, MO है।

उपर्युक्त तत्वों का उपलब्ध साधनो के आधार पर निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है—

तालिका सं. 3
पौधों के आवश्यक पोषक तत्व

अधिक मात्रा मे प्रयोग होने वाले तत्व (मूल तत्व : Nicro nutrients)		कम मात्रा में प्रयोग होने वाले तत्व सूक्ष्म तत्व : Micro nutrients or Trace elements)
हवा एवं पानी से प्राप्त तत्व	भूमि से प्राप्त तत्व	भूमि से प्राप्त होने वाले तत्व
कार्बन, हाइड्रोजन C H आक्सीजन O	नत्रजन, फास्फोरस N, P, K, पोटाश, कैल्सियम, मैगनिसियम, सल्फर Ca, Mg, S	लोहा, मैंगनिज, बोरान, मोलीबिडेनम, Fe, Mn, BO, MC, कापर जिंक तथा क्लोरीन Cu, Zn, Cl,

नवीन खोजों के अनुसार सूक्ष्म पोषक तत्वों की श्रेणी मे सोडियम (Na) आयोडीन को भी रखा गया है।

उपरोक्त तालिका के अनुसार C, H, व O वायु तथा जल से प्राप्त होने वाले पोषक तत्व हैं।

जबकि N_2 की कुछ मात्रा वायु से, कुछ विशेष प्रकार के जीवाणुओं द्वारा भूमि में संस्थापित की जाती है।

अन्य सभी तत्व अधिक या कम मात्रा मे मिट्टी से प्राप्त होते हैं।

पौधे के शरीर से 14 से 99% कार्बन, हाइड्रोजन, तथा O_2 पायी जाती हैं। इन्हीं से मुख्यतया पौधे का निर्माण होता है। शेष भाग तथा अन्य 13 तत्वों का बना होता है। भूमि से प्राप्त होने वाले 13 में N, F, K, Ca, Mg, तथा S पौधे द्वारा अधिक मात्रा में लाये जाते हैं।

जबकि शेष अन्य सात पौधों द्वारा थोड़ी मात्रा में प्रयोग किये जाते है।

पौधे के ये तत्व उपलब्ध कराने के आधार पर इन्हे तीन प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है—

10955 1-8-9-1192

1. प्रथम वर्ग—

इस वर्ग में C, H, तथा O_2 आते हैं जो पानी तथा हवा से प्राप्त होते है—

2. द्वितीय वर्ग—

इस वर्ग में विशेषतया N, P, K, सम्मिलित किये जाते हैं इस वर्ग मे S को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

क्योंकि गन्धक की अधिकतर मात्रा पौधे के दिये गए N, P, तथा K वाले उर्वरकों से पूरी की जाती है।

N, P, K, अधिक मात्रा पौधो के द्वारा लिये जाने के कारण अति आवश्यक तत्व कहलाते है। इनकी पूर्ति ऊर्वरको द्वारा की जाती है। इसलिए उन्हे ऊर्वरक तत्व भी कहते है।

3. तृतीय वर्ग -

इस वर्ग में Ca तथा Mg सम्मिलित किये जाते हैं जो अधिकतर चूने द्वारा प्राप्त होते हैं तथा मिट्टी के क्षारीय अथवा अम्लीय पदार्थों को प्रदर्शित करते है।

4. चतुर्थ वर्ग –

इस वर्ग में Fe, Mn, Bo, Cl, Zn, Cu, तथा MO तत्व आते है जिनका बहुत कम मात्रा में पौधों द्वारा प्रयोग किया जाता है। अतः इन्हें Traca elements of micro nutcients कहते है।

आवश्यक तत्वों के कार्य तथा उनकी कमी के लक्षण

1. कार्बन—

पौधे इसे वायु से प्राप्त करते है। अतः इनकी कमी होने नहीं पाती। CO_2 तथा पानी की सहायता से प्रकाश की उपस्थिति मे पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया (भोजन बनाने की क्रिया) होती है अतः C पौधे के भोजन बनाने के लिए महत्वपूर्ण तत्व है। इसके अलावा पौधों की कोशिकाओं के निर्माण मे इसकी आवश्यकता अधिक मात्रा में होती है।

2. हाइड्रोजन—

हाइड्रोजन O_2 के साथ क्रिया करके पानी बनाती है तथा C के साथ क्रिया करके पानी की सहायता से कार्बनिक पदार्थ बनाती है। क्योंकि यह पानी का अंग है अतः इसके बिना पौधों की वृद्धि सम्भव नहीं होती।

3 आक्सीजन—

पौधों की प्रकाश संश्लेषण की क्रिया O_2 बाहर निकालती है तथा पौधों द्वारा श्वसन क्रिया में प्रयोग की जाती है। इसके अलावा मिट्टी में पाये जाने वाले जीवाणु भी श्वसन क्रिया में इसका प्रयोग करते हैं तथा जड़ों के विस्तार के लिए भी इसकी आवश्यकता होती है। यह कोशिका के निर्माण में भी सहयोग देती है।

4. नाइट्रोजन—

N_2 पौधे अधिकतर भूमि से प्राप्त करते हैं लेकिन दो दाल वाले पौधे जीवाणुओं के माध्यम से वायु से ही प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं N_2 भारतीय मिट्टियों में बहुत कम मात्रा में पाई जाती है जबकि पौधों को अत्यधिक आवश्यकता होती है। पौधों की वृद्धि तथा फलों के पकने के लिए N_2 की विशेष आवश्यकता होती है।

नाइट्रोजन का महत्व—

1. N_2 पौधों की वानस्पतिक वृद्धि करती है।

2. पत्तियों में अधिक क्लोरोफिल बनता है जिससे उसका रंग अधिक गहरा हो जाता है।

3. पौधों की जड़ों का तीव्र विकास होता है।

4. फलों की अच्छी वृद्धि होती है और अच्छे सुडौल बीज बनते हैं।

5. पौधों में प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है।

6. N_2 की खादें एवं उर्वरकों का प्रयोग करने से मिट्टी में N_2 के जीवाणु अधिक संख्या में हो जाते हैं।

7. पौधों को उपयुक्त मात्रा में N_2 मिलने से एक ही बीज से कई पौधे बढ़ जाते हैं इन्हें कल्ले (Tillers) कहते है।

नाइट्रोजन की कमी के लक्षण—

N_2 की कमी से पौध पर निम्नलिखित प्रभाव दिखाई देते हैं—

1. N_2 की कमी से पौधों की पत्तियों का रंग पीला अथवा हलका हरा हो जाता है।

2. पौधे की वृद्धि कम होती है। ये आकार में छोटे रहते हैं जिससे उनकी वानस्पतिक वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है।

3. एक दाल वाली फसलों जैसे गेहू गन्ना बाजरा आदि में किल्ले (Tillers) कम फूटते हैं।

4. दो दाल वाले पौधों में शाखायें कम फूटती हैं।

5. पत्तियां आकार में छोटी रह जाती हैं।

6. दाने वाली फसलों में नीचे वाली पत्तियाँ पहले सूखना प्रारम्भ करती है बाद में ऊपर वाली पत्तियां सूखती हैं।

7. गेहूं, जौ, गन्ना तथा धान जैसी फसलों में फूट होना रुक जाता है।

8. फलों वाले पौधों में N_2 की कमी से फलों का आकार छोटा रह जाता है तथा बहुत से फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं।

9. N_2 की कमी से हरी पत्तियों के मध्य में कहीं-कहीं सफेद धब्बे हो जाते हैं जिसे क्लोरोसिस (Colorosis) कहते हैं। N_2 की अधिक कमी होने पर पत्तियों का रंग बिल्कुल सफेद हो जाता है तथा कभी-कभी वो जल जाती है।

नाइट्रोजन N_2 की अधिकता का प्रभाव—

1. N_2 की अधिकता से पौधों की वानस्पतिक वृद्धि अधिक होने के कारण फसलें देर से पकती हैं।

2. पौधों की लम्बाई अधिक बढ़ जाने कारण उनके तने कमजोर हो जाते हैं, जिससे ज्वार, बाजरा, मक्का, गन्ना आदि फसलों में गिरने का भय रहता है।

3. वानस्पतिक वृद्धि अधिक होने के कारण कीट तथा बीमारियों का अधिक प्रभाव होता है तथा पौधे की वृद्धि भी सन्तुलित नहीं हो पाती।

4. कुछ फसलों के दानों में उनके प्राकृतिक गुण नष्ट हो जाते हैं।

5. गन्ने की फसल अधिक N_2 होने के कारण चीनी की प्रतिशत मात्रा कम हो जाती है।

6. नाइट्रोजन की अधिकता होने पर पत्तियों का आकार बड़ा तथा रंग गहरा हो जाता है।

5. फास्फोरस का महत्व—

1. यह तत्व न्यूक्लिक अम्ल का एक मुख्य अवयव है जो पौधों की कोशाओं के विभाजन को प्रभावित करता है। अतः कोशाओं के विभाजन के लिए P एक आवश्यक तत्व है।

2. फास्फोरस ऊर्जा के स्थानान्तरण में सक्रिय सहयोग देता है तथा वसा व प्रोटीन निर्माण में भाग लेता है।

3. P_2 नाइट्रोजन के प्रभाव को कम या उदासीन करता है।

4. पौधों में दीमक तथा चींटी के आक्रमण को सहन करने की शक्ति बढ़ जाती है।

5. P_2 के कारण पौधों पर फूल शीघ्र आते हैं तथा यह फसलों को शीघ्र पकाता है।

6. बीजों के निर्माण में सहायक होता है तथा उन्हें सुडौल बनाता है।

7. फलीदार फसलों की जड़ों में ग्रन्थियों की संख्या व आकार में वृद्धि करता है। N_2 स्थिरीकरण में सहायक होता है।

8. जड़ों की अच्छी वृद्धि तथा तने को मजबूत बनाने में यह सहायक होता है।

9. P_2 के कारण उत्पादन में भूसे के साथ दाने का अनुपात बढ़ जाता है।

फास्फोरस की कमी के लक्षण—

1. P_2 की कमी से फसल देर में पककर तैयार होती है।

2. इसकी कमी से दानों का आकार छोटा हो जाता है तथा फलों एवं बीजों की पैदावार भी कम हो जाती है।

3. P_2 की अधिक कमी होने पर पत्तियों तथा तने का रंग बैंगनी अथवा लाल हो जाता है।

4. पौधों के तने छोटे रह जाते है तथा एक दाल वाली फसलों मे कल्ले कम निकलते है।

5. पौधो की नीचे वाली पत्तियां पीली होकर सूख जाती है तथा छोटी रह जाती हैं।

पोटाश का महत्व—

1. यह तत्व पत्तियों में शर्करा एवं स्टार्च के निर्माण में वृद्धि करता है।

2. K पौधो द्वारा दी जाने वाली पानी की हानि पर नियंत्रण करता है।

3. Fe आयरन के वाहक के रूप में अनेकों प्रकार की आक्सीकरण तथा अपचयन क्रियाओं में सहायक होता है।

4. यह N_2 तथा P_2 के प्रभाव को संकुचित रखता है।

5. यह तत्व दानो मे या फलों मे अधिक गूदा पैदा करता है जिससे फसल के दाने हृष्ट-पुष्ट और मजबूत लगते है तथा फसलों का अच्छा आकार एवं स्वस्थ रहता है।

6. यह पौधों मे बीमारियों तथा कीड़ों को सहने की शक्ति में वृद्धि करता है तथा कार्बोहाइड्रेट के स्थानान्तरण मे सहायक होता है।

7. यह तत्व पौधों द्वारा प्राप्त NH_4 आयन्स से अमीनो एसिड तथा प्रोटीन का निर्माण करने में मैत्रीपूर्ण कार्य करता है।

8. गेहूं तथा धान की फसल के पौधों के तनों को मजबूत बनाता है जिससे फसल गिरने से बच जाती है।

9. कणो में रंग विकास में सहायक होता है।

पोटाश की कमी के लक्षण—

1. इसके अभाव मे पत्तियां भूरी तथा धब्बेदार हो जाती हैं।

2. पौधों की पत्तियों के सिरे झुलसने लगते हैं तथा पत्तियां मोटी होकर सिरों की ओर मुड़ने लगती हैं।

3. पौधो की वृद्धि ठीक प्रकार से नहीं हो पाती।

4. पौधों मे दो स्थानो के बीच का अन्तर कम हो जाता है।

5. कपास की फसल मे पत्तियां पहले गिरने लगती हैं तथा डोडे ठीक प्रकार मे नहीं मिल पाते।

6. पोटाश की अधिक कमी होने पर पत्तियाँ मोटी तथा मांसल हो जाती हैं।

7. फलों के पकने पर उनका प्राकृतिक रंग हल्का रह जाता है।

8. गन्ना, चुकन्दर आदि में चीनी की प्रतिशत मात्रा घट जाती है।

9. तम्बाकू के पौधों में पत्तियों की नसों के बीच में, उनके अगले सिरों पर या किनारों पर कोशाओं के निर्जीव हो जाने से छोटे-छोटे धब्बे पड़ जाते हैं।

कैल्शियम के प्रभाव—

1. यह तत्व कोशाओं की दीवार के निर्माण में आवश्यक है तथा नये ऊतकों (Tissues) के निर्माण में आवश्यक है।

2. पौधों में होने वाली विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न कार्बनिक अम्लों के प्रभाव को उदासीन करता है।

3. यह बीजों के निर्माण में सहायक होता है।

4. दो दाल वाले पौधों की जड़ों में ग्रन्थियों के निर्माण को उत्साहित करता है।

5. Ca मृदा का PH मान को बढ़ाता है तथा कार्बोहाइड्रेड के स्थानान्तरण में सहायक होता है।

कैल्शियम की कमी के लक्षण—

1. इसकी कमी के प्रभाव सबसे पहले निकलने वाली कलिकाओं के ऊपर होता है। इसका विकास रुक जाता है।

2. पत्तियों के किनारे तथा अगला सिरा सूख जाता है।

3. दो दाल वाले पौधों की जड़ों में ग्रन्थियों का निर्माण कम हो जाता है तथा वे छोटी रह जाती हैं।

4. अनाज की बालियों में बाँझपन आ जाता है जिससे बीजों का निर्माण नहीं होता है।

मैग्नीशियम के कार्य—

1. यह तत्व क्लोरोफिल का मुख्य तत्व है। इसके बिना पौधे हरे नहीं रह सकते हैं।

2. P_2 के ग्रहण करने में तथा इसके स्थानान्तरण में सहायक होता है।

3. बोरिक अम्लों तथा तेलों के संश्लेषण में सहायक होता है।

4. कार्बोहाइड्रेड से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं की सक्रियता को बढ़ाता है।

5. पौधे में N_2 से सम्बन्धित रासायनिक क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

6. पौधों में शर्करा तथा स्टार्च को निश्चित स्थान पर पहुँचने में सहायता देता है।

मैग्नीशियम की कमी के लक्षण—

1. इस तत्व की कमी से पत्तियों की नसों के बीच-बीच में सफेद धब्बे पड़ जाते हैं।

इसकी अधिक कमी से पत्तियों का रंग पीला व भूरा हो जाता है।

3. इसकी कमी से पुरानी पत्तियां सूख जाती हैं लेकिन उनकी शिराएं हरी बनी रहती है।

गंधक के कार्य—

1. यह क्लोरोफिल के निर्माण में सहायक होता है तथा पौधों के हरे भाग की वृद्धि करती है।

2. बीजों के बनने में सहायक होता है।

3. सरसों के तेल तथा अन्य तेलों में सल्फर के यौगिक पाये जाते है।

4. इसकी उपस्थिति में दो दाल वाले पौधों की जड़ों की ग्रन्थियों में जीवाणुओं की संख्या बढ़ जाती है।

गन्धक की कमी के लक्षण—

1. इसकी कमी से चोटी की कलियां जीवित रहती हैं किन्तु, उनसे बनने वाली नई पत्तियां पीली पड़ जाती हैं।

2. पौधों में तने काफी बड़े जाते है तथा कभी-कभी ये बहुत पहले और लम्बे हो जाते है।

3. जड़ो की वृद्धि रुक जाती है तथा पौधों की वृद्धि भी प्रभावित होती है।

लोहे के प्रभाव—

1. क्लोरोफिल के निर्माण मे आवश्यक तत्व है।

2. पौधों द्वारा N के पोषण और प्रोटीन के निर्माण मे सहायक होता है।

3. यह कोशाओं के विभाजन के लिए एक आवश्यक तत्व है।

4. पौधों की श्वसन क्रिया में Fe O_2 के वाहक का कार्य करता है।

5. पौधो की क्रियाओं मे होने वाली आक्सीकरण, क्रियाओं मे उत्प्रेरक का काम करता है।

लोहे की कमी के लक्षण—

1. आयरन की कमियों से पत्तियों का रंग पीला व सफेद हो जाता है।

2. दो दाल वाले पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती है, लेकिन उनकी शिराएं हरी भरी बनी रहती हैं।

3. पत्तियों के किनारे वाली कोशाएं सूखकर पत्तियां गिरने लगती है।

मैंगनीज के कार्य—

1. यह क्लोरोफिल के निर्माण में सहायक होता है।

2. आक्सीकरण की क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

3. कार्बोहाइड्रेट के निर्माण में सहायक होता है।

मैग्नीज की कमी के लक्षण—

1. Mn की अधिक कमी में पत्तियों का रंग सफेद हो जाता है।

2. इनकी कमियों मे कार्बोहाइड्रेट का निर्माण कम हो जाता है जिससे पौधों के फूलने तथा फलने पर प्रभाव पड़ता है।

बोरान का महत्व -

1. यह प्रोटीन तथा पानी के विच्छेद तथा कार्बोहाइड्रेट के स्थानान्तरण में काम आता है, इसके अलावा कोशिकाओं के विभाजन तथा कोशा भित्ति के निर्माण में भी यह सहायक है।

1. N_2 के शोषण में सहायक होता है तथा पानी के शोषण को नियन्त्रित करता है।

3. यह परागण तथा प्रजनन क्रियाओं मे सहायक होता है तथा फल, फूल एवं बीज बनने की क्रिया को प्रभावित करता है।

बोरान की कमी के कारण—

1. दो दाल वाले पौधों में जड़ ग्रन्थियों का निर्माण रुक जाता है।

2. इस तत्व की कमी से अधिकांश पौधों में शीर्ष कलिकाएं मर जाती है।

3. पत्तियों में मोटापन, कड़वापन, मुड़ जाना, मुर्झाना, सूख जाना, झुर्रिय पड़ जाना, धब्बे होना इस तत्व की कमी दर्शाता है।

4. जड़ों से पत्तियों तक घुलनशील तत्वों को ले जाने वाले तन्तुओं की प्रणाली खराब हो जाती है।

तांबे का महत्व —

1. यह तत्व क्लोरोफिल के निर्माण में सहायक होता है तथा इसके विनाश को रोकता है।

2. इससे पौधे की श्वसन क्रिया प्रभावित होती है।

3. यह तत्व अवसीकरण तथा आक्सीकरण क्रियाओं के लिए आवश्यक है तथा आयरन के उपयोग में सहायक होता है।

तांबा की कमी के लक्षण –

1. फल वाले पौधों की छाल पर गोंद जैसा चिपचिपा पदार्थ जमा हो जाता है।

2. नीबू वर्गीय पौधों की पत्तियां कुरूप हो जाती हैं तथा उनका रंग हल्का हो जाता है।

3. दो दाल वाली पौधो की नई पत्तियां सूख जाती हैं तथा इनकी नसें हल्की हरी बनी रहती हैं।

जस्ता प्रभाव—

1. यह तत्व कार्बोहाइड्रेट के रूप मे परिवर्तन, आवश्यक है तथा प्रोटीन कैरोटीन के निर्माण मे सहायक होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पौधे के कुल आवश्यक पोषक तत्व कितने होते हैं ? अधिक मात्रा में प्रयोग होने वाले तत्वों का वर्णन करो।
2. नाइट्रोजन का क्या महत्व है ? इसकी कमी या अधिकता से पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
3. पोटाश की कमी से पौधों को क्या नुकसान होता है। जमीन में इसकी पूर्ति कैसे करोगे।
4. कम मात्रा में प्रयोग होने वाले तत्वों (सूक्ष्म-तत्व) की संक्षिप्त जानकारी दें।
5. कैलसियम और जस्ता की कमी से पौधे में कौन से लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं

2. जस्ता (Zn) क्लोरोफिल के निर्माण में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

3. पौधों की जल शोषण शक्ति को बढ़ाता है तथा विभिन्न प्रकार के लाभदायक जीवाणुओं की शक्ति में वृद्धि करता है।

जस्ते की कमी के लक्षण—

1. इसकी कमी से पौधो की लम्बाई कम हो जाती है तथा पत्तियां मुड़ जाती हैं।

1. नीबू की पत्तियों की महीन शिराओं में पीले धब्बे पड़ जाते हैं।

2. आलू के पौधे में Zn की कमी से पत्तियों के ऊपर काले अनिश्चित आकार में धब्बे पड़ जाते हैं।

मोलीबिडेनम का महत्व—

1. यह तत्व N_2 स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

2. यह तत्व विटामिन C के निर्माण में सहायक होता है।

3. यह P के विघटन को प्रभावित करता है।

4. यह तत्व कार्बोहाइड्रेट के निर्माण में सहायक है, तथा पौधों में अमोनियम या नाइट्रेट के आत्मसीकरण के लिए आवश्यक है।

मोलीबिडेनम की कमी के लक्षण—

1. पौधों के तने पीले व छोटे हो जाते है तथा पत्तियों पर पीले धब्बे बन जाते हैं।

2. दो दाल वाली फसलों की जड़ों में ग्रन्थियां कम रह जाती हैं।

3. फूल गोभी में ह्विटेल (Whetail) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जबकि नीबू के फलों पर पीले धब्बे वाली बीमारी लग जाती है।

क्लोरीन के कार्य—

1. यह रसाकर्षण दबाव को बढ़ाता है।

2. प्रोटीन के निर्माण को प्रभावित करती है।

क्लोरीन की कमी के लक्षण -

1. टमाटर के पौधों में नई पत्तियां मुरझा जाती हैं तथा पुरानी पत्तियां तांबे जैसी होकर सूख जाती हैं।

2. इसकी कमी से फूल गोभी में सुगन्धित हो जाती है।

3. बरसीम की पत्तियां छोटी व मोटी हो जाती हैं और उनके सिरों पर कटाव उत्पन्न हो जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पौधे के कुल आवश्यक पोषक तत्व कितने होते हैं ? अधिक मात्रा में प्रयोग होने वाले तत्वों का वर्णन करो।
2. नाइट्रोजन का क्या महत्व है ? इसकी कमी या अधिकता से पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
3. पोटाश की कमी से पौधों को क्या नुकसान होता है। जमीन में इसकी पूर्ति कैसे करोगे।
4. कम मात्रा में प्रयोग होने वाले तत्वों (सूक्ष्म-तत्व) की संक्षिप्त जानकारी दें।
5. कैलसियम और जस्ता की कमी से पौधे में कौन से लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं ?

अध्याय-6

खाद

खाद व उर्वरक दो भिन्न वस्तुएं है, परन्तु उद्देश्य दोनों का एक ही है मृदा की उर्वरता बढ़ाना।

(1) खाद—

वे सभी पदार्थ जो वनस्पतियों तथा पशु-पक्षियों के मलमूत्र से प्राप्त होते हैं अथवा फार्म पर उगाई गई फसलों के सह-उत्पादन होते हैं। इन सभी का विघटन होने के बाद जो पदार्थ प्राप्त होता है, वह खाद कहलाता है।

(2) उर्वरक—

ये अकार्बनिक रासायनिक पदार्थ जो कारखानों में तैयार किये जाते हैं तथा जिनमें इन्ही विशेष तत्वों की प्रतिशत मात्रा निश्चित होती हैं। उर्वरक कहलाते हैं। इनका वर्णन आगे किया गया है।

खाद का वर्गीकरण—

खाद को दो भागों में विभाजित किया जाता है—

(i) साधारण खादें, अथवा
कार्बनिक खादें या
पूर्ण खादें

(ii) विशेष खादें अथवा
अकार्बनिक खादें या
अपूर्ण खादें

(1) साधारण खादें—

साधारण खादों में विशेषतया निम्नलिखित खादें

(1) गोबर की खाद
(2) कम्पोस्ट खाद
(3) हरी खाद
(4) विष्टा की खाद
(5) मछली की खाद
(6) खली की खाद
(7) शीरे की खाद
(8) सूखे हुये खून की खाद

(2) विशेष खादें—

ये प्रायः उर्वरक कहलाते हैं जिन्हें निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया सकता है—

(i) नाइट्रोजन वाले उर्वरक—

जैसे $NaNO_3$ $(NH_4)_2$ SO_4, NH_4, NO_3 कैल्शियम नाइट्रेट तथा यूरिया।

(ii) फास्फोरस वाले उर्वरक—

जैसे-सिंगल सुपर फास्फेट, डबल सुपर फास्फेट, ट्रिपल सुपर फास्फेट, बेसिक स्लैग, हड्डियों का चूरा, राक फास्फेट इत्यादि।

(iii) पोटाश वाले उर्वरक—

जैसे KCl या म्यूरेट आफ पोटाश, KSO_4, KNO_3 इत्यादि। उपर्युक्त उर्वरकों के अलावा इन्हीं उर्वरकों के आपस में एक निश्चित अनुपात मे मिला देने से जो उर्वरक तैयार किये जाते है वे मिश्रित उर्वरक कहलाते हैं।

गोबर की खाद (फार्म की खाद F.Y M.)

यह खाद निम्नलिखित पदार्थों से मिलकर बनाते हैं—

(1) पशुओं का गोबर।

(2) पशुओं का मूत्र।

(3) बचा हुआ या खराब भूसा एवं फसलों मे अवशेष भाग तथा पशुओ के लिए बिछाये गए पदार्थ को भी सम्मिलित करते हैं।

गोबर की खाद या भूमि का प्रभाव—

यह खाद भूमि पर भौतिक, रासायनिक तथा जैविक तीनो प्रकार का प्रभाव डालती है।

(A) भौतिक प्रभाव—

1. भारी भूमि में गोबर की खाद का प्रयोग करने से हल्की तथा भुरभुरी बन जाती है तथा बलुई दानेदार हो जाती है।

2. मृदा में वायु का आवागमन बढ़ जाता है।

3 मृदा में जल साधारण करने तथा सोखने की क्षमता बढ़ जाती है।

4. मृदा का कटाव कम हो जाता है तथा जल का निकास सुधर जाता है।

(B) रासायनिक प्रभाव—

1. पौधों को भूमि से पोषक तत्व प्राप्त होते रहते हैं।

2. मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है।

3. क्षारीय मृदाओं का PH मान कम हो जाता है।

4. मृदा में पाये जाने वाले कुछ विषैले पदार्थ समाप्त हो जाते हैं और मृदा उदासीन हो जाती है।

(C) जैविक प्रभाव–

1. लाभदायक जीवाणुओं की संख्या बढ़ जाती है।

2 N_2 के स्थिरीकरण की क्रियायें बढ़ जाती हैं।

गोबर की खाद का विच्छेद–

पशु के भोजन की पाचन क्रिया में बहुत से परिवर्तन होते हैं और इन परिवर्तनों के बाद जो पदार्थ शेष रह जाते हैं, वे मलमूत्र के रूप मे विच्छेदित होते हैं क्योंकि इसमे अनेकों प्रकार के जीवाणु तथा फफूंदी एवं रस मिले रहते हैं।

N_2 युक्त पदार्थों का किन्वन–

(A) मूत्र का अमोनीकल किन्वन या (यूरिया किन्वन)

(B) कार्बनिक नाइट्रोजन युक्त पदार्थों का किन्वन।

3. नाइट्रोजन रहित पदार्थों का किन्वन–

(i) वसीय पदार्थों, अम्लों का किन्वन।

(ii) हाइड्रोजन सल्फाइड, ($H_2 S$) का किन्वन।

(iii) सेल्यूलोज का विच्छेदन।

(iv) स्टार्च तथा अन्य कार्बोहाइड्रेट का किन्वन।

(1) N_2 युक्त पदार्थों का किन्वन––

(A) यूरिया का विच्छेदन–

वायुमण्डल के अनेक जीवाणु मूत्र का विच्छेदन करते है जो पहले यूरिया को अमोनिया कार्बोनेट (NH_4 CO_3) में बदलते है, तथा खाद में NH_4 CO_3 को पानी तथा CO_2 से विच्छेदन करते हैं।



$CO\ (NH_2)+2H_2\ O \rightarrow (NH_4)_2\ CO_2$

बैक्टीरिया



$(NH_4)_2\ CO_3 \rightarrow 2NH_3+CO_2+H_2O$

(B) कार्बन N युक्त पदार्थों का विच्छेदन–

कच्चे खाद मे उपस्थित जटिल प्रोटीन को अनेक प्रकार के जीवाणु विच्छेदित करते है तथा वाह्य जीवी जीवाणु इस प्रोटीन को पानी, CO_2 तथा HN_3 मे बदलते हैं, जबकि अवायु जीवी जीवाणु तथा अन्य पदार्थों में बदलते है जिससे ही CH_4 तथा HS जैसी गन्ध युक्त गैसें भी स्वतन्त्र हो जाती हैं।

(2) रहित पदार्थों का किन्वन––

(1) वसीय पदार्थ एवं अम्लों का किन्वन—

वसीय पदार्थ एवं अम्ल-प्रायः कैल्शियम लवणों के रूप मे पाये जाते हैं। जीवाणुओं द्वारा ये लवण CH_2 COOH फार्मिक एसिड, CO_2 तथा अल्कोहल मे विच्छेदित हो जाते हैं।

(2) H S का किण्वन

खाद मे पाये जाने वाले एलब्यूमिन (प्रोटीन) मे मुख्यतः गन्धक होती है जो जीवाणुओं द्वारा H S में बदल जाती है।

(3) सेल्यूलोज का विच्छेदन—

पशुओं के गोबर मे उनके भोजन का आधा भाग बाहर आता है जो किन्वीकरण की किया में जीवाणुओं द्वारा वायु की उपस्थिति में CO_2 तथा पानी मे विच्छेदन हो जाता है।

(4) स्टार्च तथा अन्य कार्बोहाईड्रेट का किन्वन—

गोबर मे उपस्थित स्टार्च तथा कार्बोहाइड्रेट जीवाणुओं द्वारा विच्छेदित होकर पानी CO_2, लैक्टिक अम्ल, ब्यूटाइरिक अम्ल तथा स्वतन्त्र H_2 मे परिवर्तित हो जाते हैं।

खाद के विच्छेदक को प्रभावित करने वाले कारक—

(1) सूक्ष्म जीवाणुओं के लिए भोजन।

(2) खाद में उचित नमी की मात्रा (60% नमी होनी चाहिए)।

(3) वायु का आगमन पर्याप्त होना चाहिये।

(4) उचित ताप की मात्रा–70°C से अधिक होना चाहिए।

(5) प्रतिक्रिया खाद का PH मान 7 और 7 5 के बीच होना चाहिए।

(6) C और N का अनुपात।

गोबर की खाद तैयार करने की विधियां—

(1) खाद तैयार करने की संशोधित गड्ढा विधि—

अच्छी तरह की गोवर की खाद तैयार करने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं—

(1) उचित प्रकार का गड्ढा तैयार करना।

(2) पशुओं के गोबर, मूत्र तथा वनस्पतियों के बचे भागों का अधिक से अधिक उपयोग करना।

(3) गोबर, मूत्र तथा पशुओं के बिछावन के गड्ढों में समान रूप से बिछाना तथा समय-समय पर पानी छिड़कना।

(4) खाद को धूप व वर्षा से बचाना।

इस विधि से खाद तैयार करने के लिए 2.5 × 1.8 × 1 मी. लम्बाई, चौ. तथा गहराई के गड्ढे तैयार किये जाते हैं, जो ऊंचे स्थान पर होने चाहिए। पशुओं की संख्या अधिक होने पर गड्ढे की लम्बाई को बढ़ाया जा सकता है। गोबर और मूत्र खाद के मुख्य भाग होते है। अतः इनका अधिक उपयोग किया जाना चाहिये। पशुओं की संख्या चार से अधिक होने पर गड्ढे की ल., चौ व गहराई क्रमशः 3.5 × 2.5 × 1 मीटर कर देनी चाहिए। पशुओं की संख्या बढ़ने के साथ-साथ गड्ढों की

संख्या बढ़ाई जा सकती है। खाद बनाने के लिए रेतीली भूमि में होने पर पक्के गड्ढे तथा भारी भूमि होने पर कच्चे गड्ढे उपयुक्त होते हैं।

गड्ढों की भराई—गोबर की खाद या चारों की खाद बनाने के लिए गड्ढे में सबसे नीचे 10 से 15 सेमी. मोटी तह पशुओं के बचे हुए चारे तथा बिछावन को डालते हैं। उसके ऊपर 7.5 से 10 सेमी. मोटी तह पशुओं के गोबर व पेशाब को डालते हैं। इसके बाद गोबर, पेशाब व बचे हुए चारे को मिश्रित रूप से गड्ढे में भरते हैं। सम्पूर्ण गड्ढे की भराई एक साथ करते हैं। जब गड्ढा धरातल से लगभग 15 सेमी. ऊँचाई तक भर जाता है। तो ऊपर से समतल करके 5 सेमी. मिट्टी की मोटी पर्त डाल कर ढक देते हैं। खाद लगभग 5 से 6 महीने में सड़कर तैयार हो जाती है।

(2) खाद तैयार करने की ट्रेंच (Trench) विधि—

यह विधि Dr. C. N Acharya द्वारा प्रचलित की गई थी। अतः इसे आचार्य विधि भी कहा जाता है। इस विधि मे 6 से 8मीटर लम्बी, डेढ़से 2 मीटर चौड़ी तथा 1 मीटर गहरी नालियां तैयार की जाती हैं। नाली की 1 मीटर की लम्बाई में विभाजित करके समान रूप से भरा जाता है, तो उसे गोलाकार आकृति देकर के गोबर तथा मिट्टी के मिश्रण से लेप देते हैं। इस प्रकार नाली के सभी भाग लेप दिये जाते हैं। जैसे ही दूसरी Trench भरी जाती है पहली भरी हुई नाली में खाद तैयार हो जाती है। अतः इसे निकालकर उपयोग कर लिया जाता है। प्रत्येक नाली की खाद 6 महीने मे तैयार हो जाती है। इस प्रकार से तैयार की गई N_2 की मात्रा 1% से 1·4% तक पायी जाती है।

खाद तैयार करने की कृत्रिम विधि—

इस विधि मे गोबर तथा मूत्र का प्रयोग नहीं किया जाता। केवल बचे हुए भूसे तथा वनस्पतियों के अवशेष भाग प्रयोग किये जाते है। इनका किण्वन प्रारम्भ करने के लिए N_2 युक्त उर्वरक प्रयोग मे लाये जाते हैं। जैसे $(NH_4)_2 SO_4$ तथा खलियो का भी प्रयोग किया जाता है। एक विशेष पाउडर (Adco powder) का प्रयोग करने के कारण इसे (Adco Method) भी कहा जाता है।

इस विधि में समतल स्थान का चयन किया जाता है। सबसे पहले 15 सेमी. से 30 से. मी. मोटाई की भूसे की परत बिछाते हैं। इसके ऊपर पानी छिड़कते है। तत्पश्चात् Adco Powder का प्रयोग किया जाता है। तत्पश्चात् पुनः भूसे की परत लगाते हैं। पानी फेरते हैं तथा Adco powder छिड़का जाता है और यह क्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक कि खाद के ढेर की ऊंचाई 1.8 मीटर नहीं हो पाती। इसके बाद इसे सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है। किण्वन की क्रिया प्रारम्भ होते ही ढेर का तापमान बढ़ता जाता है अतः चार सप्ताह के बाद ढेर को पलट दिया जाता है तथा इसके ऊपर पानी फेरकर तापक्रम कम कर देते हैं। 4 सप्ताह के बाद पुनः ढेर को पलट दिया जाता तथा पुनः पानी

फेरकर ढेर लगा देते हैं। खाद के ढेर की तीसरी पलटाई 1·1/3 महिने के बाद पुनः की जाती है जो अन्तिम पलटाई होती है और जैसे ही 4 से 6 महिने के बीच समय हो जाता है। खाद तैयार हो जाती है।

कम्पोस्ट (Compost)

पौधों के अवशेष पदार्थों तथा बचा हुआ चारा एवं अन्य कूड़ा करकट मिला कर जीवाणुओं तथा फफूंदी द्वारा विशेष दशाओं में विच्छेदन के पश्चात् बना हुआ पदार्थ Compost कहलाता है तथा इस क्रिया को Composting कहते हैं।

Composting एक जैविक क्रिया है, प्रक्रम है जिसमें वायुजीवी तथा अवायु जीवी दोनों प्रकार के जीवाणु कार्बनिक पदार्थों का विच्छेदन करके एक विशेष प्रकार की खाद तैयार करते है जिसे Compost कहते है तथा इस क्रिया को Composting कहते हैं।

(1) Farm (फर्म लीटर) बिछावन–

इस खाद में जानवरों से बचे चारे, खरपतवार, फसलों के अवशेष भाग तथा गोबर का प्रयोग किया जाता है।

(2) शहरी कूड़े करकट—

इस खाद में सब्जियों के विशेष भाग में अलग या घरों तथा नालियों एवं सड़कों का आवश्यक कूड़ा होता है।

कम्पोस्ट बनाने के लिए अनिवार्य आवश्यकतायें–

1. पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक अवशेष पदार्थ।
2. उपयुक्त प्रारम्भ (Adco powder) या पशुओं का गोबर तथा मूत्र।
3. उचित मात्रा में नमी।
4. उचित वायु संचार।

कम्पोस्ट बनाने की विधियां–

कम्पोस्ट तैयार करने के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है।

1. एडको विधि (Adco Method)।
2. इन्दौर विधि।
3. आचार्य विधि।
4. मायादास विधि।
5. एक्टीवेटेड कम्पोस्ट विधि।
6. बंगलोर विधि।

(1) एड्को विधि (Adco Method)

इस विधि का प्राविष्कार सन् 1931 में England में किया गया। इस विधि में एक विशेष प्रकार के Powder का प्रयोग करते हैं जो $(NH_4)_2SO_4$ साइनामाइड तथा यूरिया से तैयार किया जाता है। कुछ अन्य वैज्ञानिकों के अनुसार यह Powder $(NH_4)_2 SO_4$ सुपर फास्फेट KCl, तथा चूने के मिश्रण से तैयार किया जाता है। Adco Company के अनुसार 1000 Kg. शुष्क कार्बनिक पदार्थ के लिए 7 Kg. Powder की आवश्यकता पड़ती है।

इस विधि में Compost तैयार करने के लिए 10 वर्ग मीटर भूमि पर कार्बनिक पदार्थ की 30 सेमी ऊंची तह लगाते हैं। जिस पर अच्छी तरह पानी छिड़क कर Adco Powder छिड़क देते है। इसी प्रकार की लगभग 1·8 मीटर की ऊंचाई तक 8 तहें लगाई जाती हैं। ढेर तैयार होने के बाद आवश्यकतानुसार पानी छिड़कते रहते हैं। 3 सप्ताह में विच्छेदन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है और 4 से 6 महिनों में Compost तैयार हो जाती है।

(2) इन्दौर विधि—

इस विधि का आविष्कार हावर्ड तथा वाड ने इन्दौर में तैयार किया था। इस विधि से खाद तैयार करने के लिए 9×4.2 स्त्री 6 मी. आकार के 33 गड्ढे बनाये गये। गड्डो को एक ही स्थान पर तैयार किया गया तथा दूसरे जोड़े का अन्तर 3.6 मीटर रखा जाता है। गड्ढों के किनारे ढालू रखे जाते हैं तथा पानी पहुंचाने के लिए समुचित व्यवस्था की जाती है।

गड्ढों को भरने की विधि—

गड्ढे के नीचे वनस्पति के अवशेष भागों की 7·5 सेमी. मोटी तह रखते हैं। इसके ऊपर लकड़ी की राख या मूत्र युक्त मिट्टी अच्छी तरह छिड़कते हैं। इसके बाद 5 सेमी. मोटी गोबर की तह बिछाई जाती है। तत्पश्चात् इस पूरी मोटी तह को पानी से तर कर दिया जाता है और यह विधि उस समय तक अपनायी जाती है जब तक कि खाद की पर्तों की ऊंचाई भूमि की तह से 7·5 सेमी ऊंची न हो जाये। दोनों समय पानी छिड़कते रहते हैं और बाद में 2 सप्ताह पश्चात् जैसे ही किन्वन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है आवश्यक तथा पानी पहुंचने के लिए खाद को तीन बार पलटा जाता है। पहली पलटाई गड्ढा भरने के 10 से 14 दिन के बीच में करते है। दूसरी पलटाई 15 दिन के बाद तथा तीसरी पलटाई पुनः 2 महीने के बाद की जाती है। अन्तिम कटाई के समय पदार्थों का रंग गहरा भूरा हो जाता है। इस समय इसे गड्ढों से निकालकर भूमि के ऊपर बिछा देते हैं और इसी अवस्था में इसे 1 महीने तक रखा जाता है ताकि N_2 की मात्रा में और वृद्धि हो सके। बाद में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(3) आचार्य विधि—

इस विधि का आविष्कार सी. एन. आचार्य द्वारा बंगलौर में किया गया अतः इसे आचार्य विधि भी कहा जाता है। इस विधि में खाद खाइयों में तैयार

किया जाता है जिसका अधिकतम आकार 12×27×1·2 मीटर होता है। खाई की तह में सबसे पहले 20 से 25 सेमी मोटी कचरा तथा अवशेष पदार्थों की तह लगाई जाती है। इसके बाद मानव विष्ठा की 7·5 सेमी. मोटी तह लगाते हैं और यह क्रिया भूमि की 30 सेमी. ऊंचाई तक की जाती है। अन्तिम 5 सेमी. मोटी तह कचरे की रखी जाती है तथा ऊपर 2·5 सेमी. मोटी तह मिट्टी की होनी चाहिये। खाई भरने के चार-पांच दिन बाद ही किन्वन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है और 3–4 दिन बाद ही खाद का तापक्रम 70°C तक पहुंच जाता है। लगभग 5 से 4 सप्ताह तक इतना ही तापक्रम रहने से खाद तैयार हो जाती है।

(4) मायादास विधि—

यह विधि उत्तर प्रदेश के कृषि विभाग द्वारा निकाली गई है। जिसमें Compost को पलटने की कोई आवश्यकता नहीं होती। गड्ढे की लम्बाई-चौड़ाई तथा गहराई को आवश्यकतानुसार रखते हैं तथा गड्ढा भरते समय पौधों के अवशेष भाग एवं मूत्र तथा गोबर की तह उस समय तक लगाते रहते हैं जब तक कि ढेर की ऊंचाई भूमि के तल से 2 मी. ऊंची नहीं हो जाती। प्रत्येक स्थान पर 2 गड्ढे एक साथ बनाये जाते है जिनमें एक बड़ा होता है तथा दूसरा छोटा गड्ढा वायु पहुंचने का कार्य करता है। दोनों गड्ढों के बीच में एक सुराख होता है।

कम्पोस्ट (Compost) का मृदा पर प्रभाव

(1) भौतिक प्रभाव—

1. भूमि की संरचना में सुधार होता है। रेतीली मिट्टी सघन हो जाती है तथा चिकनी मिट्टी में रन्ध्रता बढ जाती है।

2. भूमि की जल धारण शक्ति बढ़ जाती है।

3. क्षारीय एवं लवणीय भूमि को खेती योग्य बनाया जा सकता है।

4. भूमि में वायु का आवागमन होता रहता है तथा कटाव कम हो जाता है।

(2) रासायनिक प्रभाव—

1. पौधों में आवश्यक तत्वों की पूर्ति होती रहती है।

2. Compost के विच्छेदन से CO_2 बनती है जो पानी के साथ मिलकर कार्बनिक अम्ल (H_2CO_3) बनती है और वह एसिड फास्फोरस को घुलनशील बनाने में सहायक होती है।

3. क्षारीय मृदाओं का PH मान कम होता है।

(3) जैविक प्रभाव—

1. कम्पोस्ट में असंख्य फफूंदी तथा जीवाणु पाये जाते है जिससे इनकी संख्या में वृद्धि होती है।

जीवाणुओं की क्रियाशीलता में वृद्धि होने से पोषक तत्त्व पौधों को प्राप्त होते रहते हैं तथा मिट्टी में होने वाली नाइट्रीकरण, अमोनीकरण तथा नाइट्रोजन (N_2) स्थिरीकरण की क्रियाओं में वृद्धि होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) खाद व उर्वरक से क्या समझते हो ? खाद का वर्गीकरण करो तथा विभिन्न खादों के नाम लिखिए।

(2) गोबर की खाद बनाने की विधि का वर्णन करो। गोबर की खाद का भूमि पर क्या भौतिक, रासायनिक एवं जैविक प्रभाव डालता है ?

(3) कम्पोस्ट से क्या समझते हो ? तैयार करने की विधि का वर्णन करें।

(4) निम्न पर टिप्पणी लिखो —

(I) आचार्य विधि
(II) एडको विधि
(III) ट्रेन्च विधि

नाइट्रोजन के उर्वरक

बनावटी या अकार्बनिक खादें रासायनिक ढंग से बनाई जाती हैं तथा इनमें पौधे की आवश्यकता के एक या दो पोषक तत्व पाये जाते हैं। ये खादें मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती हैं—

[1] नाइट्रोजन देने वाली खादें [Nitrogenous manures]।
[2] फास्फोरस देने वाली खादें [Phosphatic manures]।
[3] पोटाश देने वाली खादें [Potassic manures]।

नाइट्रोजन देने वाली खादें

पौधे की आवश्यकता तथा वृद्धि के लिए नाइट्रोजन का बहुत अधिक महत्व है। कभी-कभी यह फसल पैदा करने के लिए सीमन कारक [Limiting factor] सिद्ध होता है। आवश्यक तत्वों में भी यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व है। नाइट्रोजन देने वाली खादें अकार्बनिक तथा कार्बनिक दो प्रकार की होती हैं। दोनों प्रकार की खादें पौधे को नाइट्रोजन देती है। अकार्बनिक नाइट्रोजन खादें अपनी नाइट्रोजन शीघ्र ही दे देती हैं जबकि कार्बनिक खादों का पहले विच्छेदन होता है जिससे नाइट्रोजन के ऐसे यौगिक बनते हैं जिन्हें पौधा ले सके।

मृदा में पाये जाने वाले नाइट्रोजन यौगिक

मिट्टी में नाइट्रोजन के साधारण अकार्बनिक यौगिक तथा जटिल कार्बनिक यौगिक पाए जाते हैं। मृदा वायु में स्वतंत्र नाइट्रोजन की सबसे अधिक मात्रा होती है। इसके बाद कार्बनिक यौगिकों के रूप में पाई जाने वाली नाइट्रोजन की मात्रा होती है जो साधारण खेती की जाने वाली भूमि में 0.05 से 0.3 प्रतिशत तक होती है। उन भूमियों में जिनमें वायु की कम मात्रा होती है, जैसे दलदल और पानी भरी मृदायें, नाइट्राइट्स तथा अमोनियम लवण पाये जाते हैं, जबकि भली प्रकार वातित [Aerated] मृदाओं में नाइट्रेट्स अधिक पाये जाते है।

पौधे पर नाइट्रोजन के प्रभाव

प्रायः व्यापारिक खादों के रूप में दिये गये तीनों आवश्यक तत्वों में नाइट्रोजन का प्रभाव शीघ्र तथा बहुत अधिक होता है। पौधे पर पड़ने वाले नाइट्रोजन के प्रभाव अग्रलिखित हैं—

[अ] लाभदायक प्रभाव—

[1] यह मुख्य रूप से पौधे की भूमि से ऊपर की वनस्पतिक वृद्धि को बढ़ाती है। [2] इसकी अधिकता से पत्तियों का रंग गहरा हरा हो जाता है। [3] धान्यों [Cereals] में यह दाने भरे हुए बनाती है और उसमें प्रोटीन की मात्रा बढ़ाती है। [4] सभी पौधों में नाइट्रोजन नियामक [Regulator] का काम करती है जिससे यह फास्फोरस, पोटेशियम तथा दूसरे तत्वों के उपयोग को विनियमित करती है। [5] इसके अतिरिक्त नाइट्रोजन के प्रयोग से पौधों में सरसता पैदा होती है जो कुछ फसलों के लिए वान्छित होती है। [6] पौधों को इसकी अपर्याप्त मात्रा मिलने से उनकी वृद्धि रुक जाती है तथा मूल संहति [Root system] सीमित हो जाती है। [7] नाइट्रोजन की कमी से पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं तथा गिरने लगती हैं। फलों का रंग कभी-कभी बहुत गहरा हो जाता है। कुछ गहरे लाल तथा कुछ पीले रंग के हो जाते हैं।

[ब] हानिकारक प्रभाव—

नाइट्रोजन की बहुत अधिक मात्रा देना भी हानिकारक है। यह अधिक मात्रा में होने से मृदा से नष्ट हो सकती है तथा इसकी अधिक मात्रा देने में खर्च भी अधिक होता है। कुछ फसलों पर इसकी अधिक मात्रा का हानिकारक प्रभाव पड़ता है। गहरे हरे रंग की मुलायम तथा सरस पत्तियों के होने से यह कहा जा सकता है कि पौधे को नाइट्रोजन की अधिक मात्रा मिली है। निम्नलिखित इसके हानिकारक प्रभाव हैं—

[1] इसकी अधिक मात्रा से फसल देर से पकती है। चूँकि नाइट्रोजन की अधिक मात्रा मिलने से उसकी वनस्पति वृद्धि बहुत अधिक होती है और इस प्रकार वह पकने के सामान्य समय तक हरी ही बनी रहती है। यदि पोटाश तथा फास्फोरस की कम मात्रा मिलती हो तो फसल में दाना भी देर से पड़ता है।

[2] धान्यों [Cereals] में इसकी अधिक मात्रा मिलने से भूसे तथा दाने का अनुपात तथा पत्तियों और भूमि के अन्दर की जड़ों के भाग का अनुपात अधिक हो जाता है। गेहूँ में इसकी अधिकता से भूसा, अनाज की अपेक्षा अधिक हो जाता है।

[3] नाइट्रोजन की अधिक मात्रा से फसलों के भूसे कमजोर हो जाते हैं जिससे फसलें अधिक बढ़ने पर नीचे गिर जाती हैं। भूसे की अधिक मात्रा होने से फसल वायु तथा वर्षा से गिर जाती है।

[4] नाइट्रोजन की अधिकता से फसलों के दाने की रचना बदल जाती है तथा वह हीन प्रकार [Poor quality] की हो जाती है। नाइट्रोजन यौगिक अधिक मात्रा में होने से सूखे पदार्थ में कार्बोहाइड्रेट्स, पोटाश, फास्फेट तथा

समस्त राख की मात्रा कम हो जाती है। इस प्रकार का प्रभाव दानों और फलों दोनों में देखा गया है।

[5] कभी-कभी नाइट्रोजन की अधिकता मिलने से पौधे में बीमारी लग जाती है। पत्तियों की दीवार पतली होने से या पत्तियों के रस [Sap] या ऊति [Tissue] के रचना बदल जाने मे बहुत से कीड़े पत्तियों पर आक्रमण कर देते हैं।

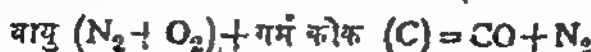
बाजार में कई प्रकार की नाइट्रोजन खाद तथा उर्वरक मिलते हैं। इनमे से प्रधान बनावटी नाइट्रोजन उर्वरक, सोडियम नाइट्रेट [$NaNO_3$], एमोनियम सल्फेट [$(NH_4)_2SO_4$], एमोनियम नाइट्रेट [NH_4NO_3], एमोनियम सल्फेट नाइट्रेट, कैलशियम नाइट्रेट [$Ca(N\ _3)_2$], पोटेशियम नाइट्रेट [KNO_3], कैलशियम साइनामाइड [$CaCN_2$], तथा यूरिया [Urea] [$CO(NH_2)_2$] है। इनमें से एमोनियम सल्फेट, एमोनियम सल्फेट नाइट्रेट तथा यूरिया हमारे देश की मिट्टी तथा जलवायु में अधिक लाभदायक सिद्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे उर्वरक या तो लाभदायक नहीं हैं या वे निश्चित रूप से हानिकारक होते हैं।

1. एमोनियम सल्फेट

एमोनियम सल्फेट एक शुद्ध रसायनिक यौगिक है तथा हमारे देश में इसका खाद के रूप मे बहुत अधिक उपयोग किया जाता है। यह एक सफेद रवेदार चूर्ण होता है तथा इसमें 20, 21 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है। इसे सरलता से प्रयोग में लाया जा सकता है तथा इसे शुष्क दशाओं में भली प्रकार संग्रहित (Store) किया जा सकता है।

बनाने की विधि--लगभग 1920 तक एमोनियम सल्फेट केवल कोयले से बनाया जाता था। परन्तु अब एमोनियम सल्फेट संश्लेषण विधि से एक बड़ी मात्रा में तैयार किया जाता है। संश्लेषण विधि के लिए नाइट्रोजन वायुमण्डल से, हाइड्रोजन जल से तथा सल्फेट या तो जिप्सम से या गन्धक के अम्ल से प्राप्त की जाती है। इस विधि से एमोनियम सल्फेट बनाने में बड़ी चतुरता से काम लिया जाता है। एमोनियम सल्फेट की संश्लेषण विधि हैबर विधि (Haber's process) है जो सिंदरी फैक्टरी में लागू की गई है। भारतवर्ष में संश्लेपित उर्वरक बनाने का यह सबसे बड़ा कारखाना है। इस कारखाने में एमोनियम सल्फेट बनाने के लिए प्रतिदिन 600 टन कोक (Coke), 1000 टन कोयला (Coal) तथा 1800 टन जिप्सम की आवश्यकता होती है। इन पदार्थों से 1000 टन एमोनियम सल्फेट बनता है। जिप्सम बीकानेर, जोधपुर, मद्रास, सौराष्ट्र, कच्छ तथा हिमाचल प्रदेश में पाया जाता है। इन स्थानों पर इतना जिप्सम मिलने की सम्भावना है कि हमारी आवश्यकता के लिए 60 वर्ष तक काफी होगा।

हैबर विधि में पहले वायु गर्म कोक पर गुजारी जाती है। इससे प्रोड्यूसर (Producer) गैस बनती है जो कार्बन मोनोक्साइड तथा नाइट्रोजन गैसों का मिश्रण होती है।



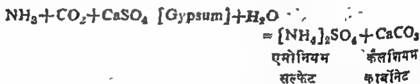
वायु (N_2+O_2) + गर्म कोक $(C) = CO + N_2$

प्रोड्यूसर गैस

प्रोड्यूसर गैस की कार्बन मोनोक्साइड को फिर ऑक्सीकृत कर दिया जाता है। गैसों के अन्तिम मिश्रण को दबाया (Compress) जाता है और फिर CO_2 को पानी में घोल कर अलग कर लिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त हुई नाइट्रोजन एमोनिया बनाने के काम आती है। एक दूसरी विधि से हाइड्रोजन गैस बना ली जाती है।

इस प्रकार प्राप्त हुई हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन गैसों को 1 और 3 के अनुपात में लोहे के चूर्ण तथा मोलिबडीनम उत्प्रेरक पर 500°C तथा 200 वायुमण्डल [Atmospheres] दबाव पर प्रवाहित करते हैं। इन दशाओं में नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन गैसों में संयोग हो जाता है जिससे एमोनिया गैस बनती है। यह संयोजन लगभग 15 प्रतिशत होता है। शेष बची गैसें फिर संयोजन के लिए उत्प्रेरक पर ले जाई जाती हैं।

यह एमोनिया तथा पहले प्राप्त हुई $[CO_2]$ कार्बन डाईआक्साइड, गैसों को जिप्सम के घोल या निलम्बन [Suspension] में प्रवाहित करते हैं। इस क्रिया में एमोनियम सल्फेट तथा कैलशियम कार्बोनेट बनते हैं।



$NH_3 + CO_2 + CaSO_4$ [Gypsum] $+ H_2O$

$= [NH_4]_2SO_4 + CaCO_3$

एमोनियम सल्फेट   कैलशियम कार्बोनेट

कैलशियम कार्बोनेट को छान कर अलग कर देते हैं। यह कृषि के काम आ जाता है चूंकि इसमें चूना तथा थोड़ी-सी एमोनियम सल्फेट होते हैं। एमोनियम सल्फेट जो घोल में पाया जाता है केलासन विधि [Crystallization] से प्राप्त किया जाता है।

व्यापारिक एमोनियम सल्फेट में लगभग 20.6 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है जो 25 प्रतिशत एमोनिया के सम तुल्य होती है। कभी-कभी नाइट्रोजन की प्रतिशत 21.1 प्रतिशत तक भी होती है। जो 25.6 प्रतिशत एमोनिया के समतुल्य होती है। इसमें अशुद्धि लगभग नहीं होती, चूंकि शुद्ध रसायनिक एमोनियम सल्फेट में 21.2 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है। साधारण उपयोग में आने वाले नाइट्रोजन उर्वरकों में इसमें सबसे अधिक नाइट्रोजन होती है।

यह उर्वरक सभी फसलों के लिए विभिन्न मृदाओं में लाभदायक सिद्ध हुआ है। यह विषुवत रेखीय देशों में विशेष रूप से अच्छा सिद्ध हुआ है। वेस्ट इंडीज तथा भारतवर्ष में गन्ने के लिए तथा भारतवर्ष और लंका में चाय के लिए इसका विशेष रूप से प्रयोग होता है। नम मृदाओं में इसका लगातार प्रयोग अच्छा सिद्ध नहीं हुआ है।

एमोनियम सल्फेट बोने के समय भी दिया जाता है और फसल पर भी छिड़का जाता है। इसे फसल बोने से पहले भी दिया जा सकता है। मृदा में देने के बाद मृदा कण इसका शोषण कर लेते है तथा रख लेते है और इस प्रकार इस उर्वरक के निकास जल में नष्ट होने का डर नही रहता। अत. यह गीली भूमि मे उगाई जाने वाले फसलों जैसा कि धान तथा जूट के लिए बड़ा उपयुक्त है।

मृदा के अन्दर एमोनियम सल्फेट में होने वाले परिवर्तन

[1] मृदा में यह मृतिका तथा धरण जटिल [*Clay and humus* Complex] के साथ क्रिया करता है, जिससे कैलशियम सल्फेट तथा एक एमोनियम जटिल बनता है।



$$Ca\text{-}Clay + [NH_4]_2SO_4 = [NH_4]_2\ Clay + CaSO_4$$

कैलशियम सल्फेट पानी मे घुल जाने के कारण निकास जल [Drainage water] में नष्ट हो जाता है, परन्तु एमोनियम जटिल पानी मे न घुलने के कारण मृदा मे ही रहता है।

[2] एमोनियम जटिल के एमोनियम का शाकाणवः [Bacteria] द्वारा भूयन [Nitrification] हो जाता है और अन्त मे वह कैलशियम कार्बोनेट के साथ क्रिया करके कैलशियम नाइट्रेट मे बदल जाता है। इस प्रकार एमोनियम सल्फेट के प्रयोग से मृदा का कैलशियम कार्बोनेट भी नष्ट होता है।

कैलशियम नाइट्रेट के नाइट्रेट आयनस को पौधे शीघ्र ही ले लेते है तथा कैलशियम मृदा घोल में रह जाता है। यदि इसे पौधे नही लेते तो यह निकास जल में नष्ट हो जाता है। मृदा मे चूना कम होने से वह अम्लीय हो जाती है तथा चूना पौधों की खुराक भी होता है। मृदा अम्लीयता बढने से लोहा तथा एलुमिनियम के यौगिक अधिक घुलनशील होने के कारण वैषिक हो सकते है। दूसरी बात यह है कि अधिक H^+ पैदा होने से वे मृदा जटिल से बहुत से पोषकों का विनिमय करते है और यदि इन्हें पौधे नही ले पाते तो ये नष्ट भी हो सकते है।

2. यूरिया (Urea)

यूरिया एक कार्बनिक यौगिक है तथा आजकल एक बड़ी मात्रा में खाद के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। यह एमोनिया तथा कार्बन डाइआक्साइड

गैसों के मिश्रण को 200 वातावरण दवाव पर संपीडन (Compre s) करके तैयार किया जाता है। ऐसा करने से दोनों गैस द्रव बन जाती हैं तथा एक दूसरे से क्रिया करके एमोनियम कार्बोनेट बनाती हैं। यह पदार्थ गर्म करने पर यूरिया तथा जल में टूट जाता है।



$$2NH_3 + CO_2 = NH_2COONH_4 = CO(NH_2)_2 + H_2O$$

एमोनियम कार्बोनेट



$$NH_2COONH_4 = CO(NH_2)_2 + H_2O$$

यूरिया

यूरिया एक रवेदार सफेद चूर्ण होता है। यह शीघ्र ही नमी ले लेता है तथा पानी में बहुत अधिक घुलनशील होता है। वायु की नमी का शोषण करने के कारण यूरिया के संग्रहण में बड़ी कठिनाई आती है। यह कठिनाई विशेष रूप से नम क्षेत्रों में अधिक आती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये यूरिया के रवों पर किसी अक्रियाशील पदार्थ की एक तह (Coat) चढा देते हैं। इसमे 46% नाइट्रोजन होता है।

खाद के रूप में प्रयोग :— यूरिया नाइट्रोजन का सबसे अधिक सान्द्र (Concentrated) यौगिक है और यह सम्पूर्ण रूप से उर्वरक के रूप मे प्राप्त होता है। मिट्टी मे मिलाने के कुछ दिन बाद ही यह पौधो को प्राप्त हो जाता है। यदि मृदा गीली है या उसमें स्वतन्त्र पानी भरा हुआ है तो वह घुल सकता है। अतः इसे उस दशा में मृदा मे नहीं मिलाना चाहिए जब मृदा मे स्वतन्त्र रूप से पानी भरा हुआ हो।

यह मृदा मे अम्लीयता पैदा करता है परन्तु यह प्रभाव एमोनियम सल्फेट का एक-तिहाई होता है। अतः इसके प्रयोग में चूने की कम आवश्यकता होती है।

यूरिया को फसल पर छिड़का जाता है या बोने के समय दिया जाता है। जब बोने के समय दिया जाता है तो यह बीज के सम्पर्क मे नही आना चाहिए। इसका प्रयोग सभी फसलों के लिए सभी मृदाओं मे किया जा सकता है। अधिक सान्द्र होने के कारण इसको मृदा मे मिलाने से पहले इसमें थोड़ी सी मिट्टी या रेत मिला लेना चाहिये।

3. कैलसियम अमोनियम नाइट्रेट—इसका संक्षिप्त नाम सी. ए. एन. (C.A.N.) है, इसको किसान अथवा सोना खाद भी कहते है। भारत मे नंगल और राउरकेला के कारखानों मे बनता है। यह छोटी-छोटी गोलियों के शक्ल मे मिलता है, यह एक आधुनिक उर्वरक है। फसल पर इसका जल्दी प्रभाव होता है। अम्लीय तथा भारी मिट्टी के लिए उपयुक्त खाद है। कैलसियम होने के कारण मिट्टी की भौतिक दशा ठीक रखता है। इसमें 25% नाइट्रोजन होता है।

निर्माण विधि – पानी के विद्युत विश्लेषण से हाइड्रोजन तथा आक्सीजन प्राप्त करते हैं और वायु को द्रव भूत करके आक्सीजन और नाइट्रोजन प्राप्त करते हैं। हाइड्रोजन और नाइट्रोजन के क्रमशः 3:1 मिश्रण को उच्च ताप व दाब पर अमोनिया बनाते है, और इसी अमोनिया के कुछ भाग को नाइट्रिक अम्ल संयंत्र में आक्सीजन द्वारा आक्सीकृत करके नाइट्रोजन अम्ल बनाते है। बची हुई अमोनिया को नाइट्रिक अम्ल में प्रवाहित करके अमोनियम नाइट्रेट प्राप्त किया जाता है। अंत मे चूने के पत्थर को महीन करके अमोनियम नाइट्रेट के सान्द्र घोल में मिला देते हैं जिससे कैलसियम अमोनियम नाइट्रेट प्राप्त होता है।

यह नमी चूषक पदार्थ है, इसलिए इसे वायुरोधक बैगों मे इसका संग्रह करते हैं। किसान बिना किसी भय के खड़ी फसल में इसको बुरकते हैं। यह उर्वरक उदासीन प्रकृति का होता है तथा इसमें लगभग 8% कैलसियम होता है। इसके उर्वरक का रंग बादामी अथवा हल्का भूरा होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अकार्बनिक या रसायनिक खाद (उर्वरक) से क्या समझते हो ? पौधे पर नाइट्रोजन का क्या प्रभाव पड़ता है ? संक्षेप में लिखिए।
2. निम्न पर टिप्पणी लिखिये ?
   (1) अमोनियम सल्फेट
   (2) कैलसियम अमोनियम नाइट्रेट
3. यूरिया का वर्णन करो तथा इसके प्रयोग करने की विधि लिखिए।
4. कैलसियम अमोनियम नाइट्रेट कैसे बनाई जाती है ? लिखें।

अध्याय-8

फास्फोरस के उर्वरक

फास्फोरस का महत्व

फास्फोरस पौधे की खुराक का दूसरा आवश्यक तत्व है। नाइट्रोजन के बाद फास्फोरस ही पौधे की वृद्धि पर सबसे अधिक प्रभाव डालता है। यह तत्व या इसके यौगिक प्रक्षेत्र खाद (F. Y. M.) में भी कम पाये जाते है और न इसका नाइट्रोजन की तरह जो वायु तथा वर्षा आदि से भी प्राप्त हो जाती है कोई दूसरा साधन है। पौधे के लिए इतने आवश्यक होने के कारण मृदा में इसकी कमी होने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इसकी कमी एक दूसरी प्रकार भी बड़ी गम्भीर हो जाती है। इसकी कमी में दूसरे पोषक भी आसानी से प्राप्त नहीं होते। उदाहरणतः उर्वरकों के मिलाने से मृदा नाइट्रोजन अप्रत्यक्ष रूप से फास्फोरस प्रदाय (Supply) पर ही निर्भर होती है। यह फास्फोरस का फलीदार फसलों की वृद्धि पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ने के कारण है।

पौधे की वृद्धि पर (फास्फोरस का प्रभाव)

फास्फोरस प्रत्येक जीवित कोशा (Cell) में पाया जाता है तथा पौधों और पशुओं दोनों की खुराक का आवश्यक अंग है। पौधों में यह सबसे अधिक बीज में होता है जबकि पशुओं के शरीर के ढाँचे को बनाने वाला मुख्य तत्व फास्फोरस है। पौधे के लिए फास्फोरस के सभी कार्यों का वर्णन किया जाना बड़ा कठिन है फिर भी पौधे की वृद्धि पर फास्फोरस के निम्नलिखित साधारण प्रभाव पड़ते हैं—

(1) इसकी कमी से न तो पौधे में कोशा विभाजन (Cell division) होता है और न ठीक प्रकार वसा (Fat) तथा एल्बुमिन (Albumen) ही बनते हैं।

(2) इसकी कमी से पौधे स्टार्च बना सकते हैं परन्तु वह सरलता से शुगर (Sugar) में नहीं बदल सकता।

(3) इसकी कमी से पौधे बीज नहीं बनाते तथा यह (Nucles-proteids) बनाने के लिए आवश्यक होता है।

(4) फलों तथा फूलों के पौधे फास्फोरस पर पूर्ण रूप से निर्भर होते हैं।

(5) यह फलों को शीघ्र पकाता है तथा इस प्रकार यह अधिक प्रयोग की गई नाइट्रोजन के प्रभाव को नष्ट करता है।

(6) फास्फोरस मूल विकास (Root development), विशेष रूप में पार्श्व तथा तन्तुमयी मूलकों (Lateral and fibrous rootlets) के विकास को भी बढ़ाता है। यह उन मृदाओं के लिए बड़ा मूल्यवान होता है जो जड़ों के फैलाव को नहीं बढ़ाती। अतः इसकी कमी से फसल का मूल विकास (Root development) सीमित हो जाता है।

(7) फास्फोरस धान्यों (Cereals) की पैदावार बढ़ाता है तथा उनमें अनाज तथा भूसे के अनुपात को भी अधिक करता है।

(8) यह भूसे को मजबूत बनाता है जिससे फसल के गिरने में बाधा होती है। यह नाइट्रोजन की अधिकता से सम्भव है।

(9) फास्फोरस की कमी से पत्तियों का रंग जामुनी (Purple) हो जाता है।

(10) फास्फोरस की कमी से पौधों को पर्याप्त पोटेशियम बड़ी कठिनता से मिल पाता है। यही बात दूसरे पोषकों के विषय में भी कही जा सकती है।

(11) यह कुछ फसलों की प्रकार (Quality) भी सुधारता है।

(12) सब्जियों में इसकी उपस्थिति में स्वाद आ जाता है।

(13) अच्छी फास्फोरस मिली हुई घास के खाने वाले पशुओं में हड्डियों का अच्छा विकास होता है।

(14) फास्फोरस के मिलने से पौधों में एक सामान्य कोशा विकास होने के कारण वे बीमारी का सामना करने लायक हो जाते हैं।

फास्फोरस के मृदा में पाये जाने वाले यौगिक

मृदा में फास्फोरस के अकार्बनिक तथा कार्बनिक दोनों प्रकार के यौगिक पाये जाते हैं तथा दोनों प्रकार के यौगिकों का पौधे के पोषण के लिये बड़ा महत्व है।

अकार्बनिक यौगिक

मृदा में पाये गये अकार्बनिक यौगिक मुख्य रूप से दो वर्गों में रखे जा सकते हैं—

Ca Mg

(1) फास्फोरस के कैलशियम तथा मैगनीशियम के संयोग में पाये जाने वाले यौगिक।

Fe Al

(2) फास्फोरस के वे यौगिक जिनमें लोहा तथा एलुमिनियम पाये जाते हैं।

पहले वर्ग के यौगिकों में सबसे अधिक अघुलनशील यौगिक फ्लोरएपेटाइट (Fluorapatite) है। यह भली प्रकार ऋतुक्षरित (Weathered) मृदा के नीचे के संस्तरों (Horizons) में भी पाया जाता है। कैलशियम के मोनो तथा डाई-फास्फेट जैसे यौगिक पौधे को अपनी वृद्धि करने के लिये शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं परन्तु ये यौगिक मृदा मे बहुत कम मात्रा में पाये जाते हैं।

मृदा मे पाये गये लोहा तथा एलुमिनियम के फास्फेट्स के विषय में कम जानकारी है। ये यौगिक अम्ल मृदाओं में बहुत स्थिर (Stable) होते हैं तथा बहुत अधिक अघुलनशील होते है। कुछ सिलिकेट खनिज जैसा कि मृदिज (Kaolinite) से भी फास्फोरस स्थिर (Fix) कर दिया जाता है। इन खनिजों मे पाया गया फास्फोरस भी अप्राप्य रूप मे होता है।

कार्बनिक यौगिक

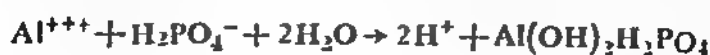
फास्फोरस के कार्बनिक यौगिक प्रायः मृदा कार्बनिक पदार्थ मे पाये जाते हैं, अतः तलीय मृदा मे होते हैं। जटिल होने के कारण इनके विषय में कम जानकारी है। इनके जटिल होने हुए भी इनकी प्राप्यता का पौधों के लिये बड़ा महत्व है।

मृदा में फास्फोरस का स्थिरकरण (Fixation)

जब मृदा मे मिलाये गये फास्फोरस उर्वरक की प्राप्त होने वाली फास्फोरस कम प्राप्य रूप मे या अप्राप्य रूप मे बदल जाती है तब वह फास्फोरस स्थिरकरण कहलाता है।

फास्फोरस स्थिरकरण निम्न प्रकार हो जाता है—

(1) लोहा, एलुमिनियम तथा मैंगनीज द्वारा अवलेपन—साधारण खनिज मृदा मे अम्लीयता अधिक होने से लोहा, मैंगनीज तथा एलुमिनियम घुलनशील अवस्था में आ जाते हैं। इनके घोल फास्फेट आयन्स के साथ क्रिया करके अपने अघुलनशील फास्फेट्स बनाते है। घुलनशील लोहा तथा एलुमिनियम की $H_2PO_4^-$ के साथ क्रिया होने से हाइड्रोक्सी फास्फेट्स बनते है। अम्लीय दशा में मृदा में फास्फोरस के $H_2PO_4^-$ ही अधिक मात्रा मे होते है। एलुमिनियम की $H_2PO_4^-$ के साथ होने वाली क्रिया को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है—

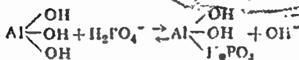


$$Al^{+++} + H_2PO_4^- + 2H_2O \rightarrow 2H^+ + Al(OH)_2H_2PO_4$$

अघुलनशील हाइड्रोक्सी-फास्फेट

(2) सजल आक्साइड द्वारा फास्फोरस स्थिरकरण—अघुलनशील हाइड्रस आक्साइड्स जैसे लिमोनाइट और गोइथाइट (Goethite) भी $H_2PO_4^-$ के

साथ क्रिया करके जटिल यौगिक बनाती है। लोहा तथा एलुमिनियम आक्साइड्स द्वारा बनाये गये फास्फोरस यौगिकों की प्रकृति के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। अभी हाल की खोजों से कुछ पता चलता है कि ये भी ऊपर की तरह हाइड्राक्सी-फास्फेट्स ही बनाते हैं। इनकी क्रिया इस प्रकार लिखी जा सकती है—

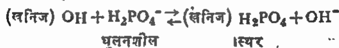


$$Al\begin{cases}OH\\OH\\OH\end{cases} + H_2PO_4^- \rightleftharpoons Al\begin{cases}OH\\OH\\H_2PO_4\end{cases} + OH^-$$

इसी प्रकार का संयोजन लोहे के साथ भी दिखाया जा सकता है। चूँकि इस क्रिया से फास्फोरस के बहुत से यौगिक बनने सम्भव हैं अतः यह क्रिया पीएच की विस्तीर्ण सीमाओं में होती हुई मालूम पड़ती है। इसके अतिरिक्त लोहे तथा एलुमिनियम की सजल आक्साइड काफी मात्रा में पाये जाने के कारण ये काफी अधिक फास्फोरस का स्थिरकरण करती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चाहे मृदा की क्रिया अम्लीय हो अथवा क्षारिय हो लोहा तथा एलुमीनियम फास्फोरस के सबसे शीघ्र प्राप्त होने वाले आयन $H_2PO_4^-$ के साथ जटिल यौगिक बनाते हैं।

(3) सिलिकेट मृत्तिकाओं द्वारा फास्फोरस स्थिरकरण—माध्यमिक अम्लीय दशाओं में मृदा में पाई गई सिलिकेट मृत्तिकायें भी फास्फोरस का स्थिरकरण करती हैं। यह स्थिरकरण किस प्रकार होता है ठीक प्रकार से मालूम नहीं है। यहाँ पर भी पहले दोनों प्रकार की तरह ही फास्फोरस का स्थिरकरण हुआ मालूम पड़ता है। यहाँ पर कई बार $H_2PO_4^-$ के OH^- का विस्थापन करने से फास्फोरस का स्थिरकरण का समीकरण निम्न प्रकार लिखा जा सकता है—



$$(\text{खनिज})\ OH + H_2PO_4^- \rightleftharpoons (\text{खनिज})\ H_2PO_4 + OH^-$$

घुलनशील स्थिर

यह क्रिया दोनों ओर को होती है। अतः एक विशेष ओर को होने वाली क्रिया विशेष दशाओं पर निर्भर है। यदि OH^- की मात्रा अधिक हो जायेगी तो क्रिया दायें से बायें ओर को होगी जिससे $H_2PO_4^-$ स्वतंत्र होंगे। यह क्रिया ऋणायन विनिमय (Anion exchange) कहलाती है चूँकि इस क्रिया में एक ऋणायन दूसरे ऋणायन का विस्थापन करता है।

फास्फोरस उर्वरक

फास्फोरस उर्वरकों में फास्फोरिक अम्ल दो प्रकार से पाया जाता है—(1) घुलनशील या शीघ्र प्राप्त होने वाला फास्फोरिक अम्ल, और (2) अघुलनशील या अप्राप्य फास्फोरिक अम्ल। कुछ उर्वरकों में घुलनशील तथा कुछ में

अघुलनशील फास्फोरिक अम्ल पाया जाता है जबकि कुछ ऐसे भी उर्वरक होते हैं जिनमें फास्फोरिक अम्ल दोनों रूप में पाया जाता है।

प्रायः साधारण प्रयोग में आने वाले फास्फोरस उर्वरक पाँच हैं— (1) हड्डियाँ, (2) शैल (Rock) फास्फेट, (3) बेसिक स्लैग (Basic slag) (4) एमोनियम फास्फेट, तथा (5) सुपर फास्फेट।

सुपर-फास्फेट (Superphosphate)

बनाने की विधि—इसे ट्राई कैलशियम फास्फेट पर गन्धक के अम्ल की क्रिया करके बनाया जाता है। यदि सुपर-फास्फेट के लिए शैल फास्फेट का प्रयोग किया जाता है तो यह खनिज सुपर-फास्फेट कहलाता है जबकि हड्डियों से बनाये गये सुपर-फास्फेट को Bone superphosphate कहते है। दोनों में केवल कुछ अशुद्धियों की उपस्थिति का अन्तर होता है। हड्डियों से बनाये गये सुपर-फास्फेट में कुछ नाइट्रोजन पदार्थ भी पाये जाते हैं।

प्रायः सुपर-फास्फेट दो विधियों से बनाया जाता है—

(1) आधुनिक विधि जिसमें निपीडतापक (Pressurised autoclave) का प्रयोग किया जाता है। इसमें तापयिकासी (Exothermic) क्रिया होने के कारण न धुँआ निकलता है और न पानी उड़ता है।

(2) पुरानी विधि जिसमें गड्डों (Pits) या डैन्स (Dens) में क्रिया होती है।

दोनों विधियों में होने वाली क्रियाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है। आधुनिक विधि का कार्यानुपात (Efficiency) अधिक होता है तथा यह कम समय में पूरा हो जाता है।

आधुनिक विधि (Modern Process)

शीशा लगा तापक (Leadlined Autoclave) में बारीक खनिज फास्फेट तथा गन्धक के अम्ल का मिश्रण (5, 6 टन) भर देते हैं। तापक (Autoclave) वाष्पचालित (Steam jacketted) होती है जिसका दवाव 75 पौंड प्रति वर्ग इंच होता है। ये तापक लगभग 5, 6 बार प्रति मिनट घुमाये जाते हैं। क्रिया में बनी गैसें चूषोदञ्च (Suction pump) से बाहर ले जाई जाती है। इस विधि में क्रिया आधा घण्टे में पूरी हो जाती है जिसके बाद बना सुपरफास्फेट तापक से बाहर निकाल लिया जाता है। इसे सुखाकर संग्रहण कर लिया जाता है।

पुरानी विधि (Older Method)

इस विधि में खनिज फास्फेट तथा गन्धक के अम्ल का मिश्रण, मिश्रण करने वाले बर्तन में डाला जाता है। गन्धक के अम्ल की मिलाई गई मात्रा खनिज

फास्फेट की प्रकार तथा मात्रा पर निर्भर होती है। अतः गन्धक का अम्ल गणना करके मिलाया जाता है। 5 मिनट तक सम मिश्रण बनाने के बाद इसे डेन या पिट में ले जाते है जहाँ लगभग एक दिन में क्रिया पूरी हो जाती है।

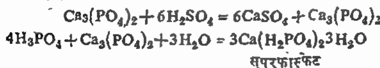
डेन मे तापक्रम 100°C तक चला जाता है। क्रिया में HF (हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल गैस) तथा CO_2 गैसें निकलती हैं। कार्बन-डाइ-आक्साइड के निकलने से पदार्थ छिद्रमय (Porous) हो जाता है। पानी उड़ने से मिश्रण धीरे-धीरे कठोर हो जाता है तथा जब डेन भर जाता है तो सुपरफास्फेट खोद कर निकाला जाता है। इसमें निकली हुई विभिन्न गैसें काम करने मे बड़ी बाधक होती हैं तथा काम करने वाले को हानि पहुँचाती हैं।

इस विधि में होने वाली रसायनिक क्रियायें–

खनिज फास्फेट गन्धक के अम्ल से क्रिया करके पहले फास्फोरिक अम्ल तथा कैल्शियम सल्फेट बनाता है। कैलशियम सल्फेट नीचे बैठ जाता है। अब फास्फोरिक अम्ल की खनिज फास्फेट पर क्रिया होने से सुपरफास्फेट बनता है।

सुपरफास्फेट बनाते समय यह प्रयत्न किया जाता है कि घुलनशील सुपरफास्फेट अधिक से अधिक बने तथा अघुलनशील कैलशियम सल्फेट कम से कम बने। पानी की मात्रा पर नियन्त्रण रखना चाहिए क्योंकि पानी की अधिक मात्रा से गीला अवपंक (Wet sludge) बनाता है जिसे दूर करना कठिन होता है। दूसरी ओर पानी की कमी से स्वतन्त्र फास्फोरिक अम्ल की हानि होती है। इस प्रकार दो प्रकार की क्रियायें होती हैं—

(1) पानी की थोड़ी मात्रा की उपस्थिति में,



$$Ca_3(PO_4)_2 + 6H_2SO_4 = 6CaSO_4 + Ca_3(PO_4)_2$$

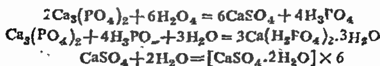
$$4H_3PO_4 + Ca_3(PO_4)_2 + 3H_2O = 3Ca(H_2PO_4)_2 3H_2O$$

सुपरफास्फेट



$$2Ca_3(PO_4)_2 + 6H_2SO_4 + 3H_2O = 6CaSO_4 + 3Ca(H_2PO_4)_2 3H_2O$$

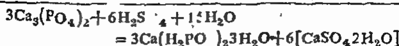
(2) पानी की काफी मात्रा की उपस्थिति में,



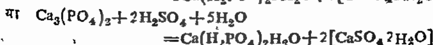
$$2Ca_3(PO_4)_2 + 6H_2O_4 = 6CaSO_4 + 4H_3PO_4$$

$$Ca_3(PO_4)_2 + 4H_3PO_4 + 3H_2O = 3Ca(H_2PO_4)_2 . 3H_2O$$

$$CaSO_4 + 2H_2O = [CaSO_4 . 2H_2O] \times 6$$



$$3Ca_3(PO_4)_2 + 6H_2S\ _4 + 15H_2O$$
$$= 3Ca(H_2PO\ )_2 3H_2O + 6[CaSO_4 2H_2O]$$



या $$Ca_3(PO_4)_2 + 2H_2SO_4 + 5H_2O$$
$$= Ca(H_2PO_4)_2 H_2O + 2[CaSO_4 2H_2O]$$

साथ ही साथ खनिजों में पाई जाने, वाली विभिन्न अशुद्धियां भी अपने-अपने सल्फेट्स बनाती हैं। रॉक फास्फेट में मुख्य रूप से $CaCO_3$, $CaCl_2$, CaF_2, Al_2O_3 तथा Fe_2O_3 पाई जाती हैं। ये अशुद्धियां गन्धक अम्ल के साथ क्रिया करके निम्नलिखित यौगिक बनाती हैं—



$$CaCO_3 + H_2SO_4 = CaSO_4 + H_2O + CO_2$$



$$CaCl_2 + H_2SO_4 = CaSO_4 + 2HCl$$



$$CaF_2 + H_2SO_4 = CaSO_4 + 2HF$$



$$Al_2O_3 + 3H_2SO_4 = Al_2(SO_4)_3 + 3H_2O$$



$$Fe_2O_3 + 3H_2SO_4 = Fe_2(SO_4)_3 + 3H_2O$$

इस प्रकार क्रिया पूरी होने के लिये कुछ अधिक मात्रा में गन्धक के अम्ल की आवश्यकता होती है।

सुपरफास्फेट के गुण तथा रचना

यह एक बादामी से भूरे (Grey) रंग का चूर्ण होता है। इसकी तीन श्रेणियाँ बनाई जाती है। Single superphosphate में 16 से 20 प्रतिशत फास्फोरिक अम्ल होता है, Double superphosphate में 30 से 35 प्रतिशत तथा Triple superphosphate से 45 से 50 प्रतिशत फास्फोरिक अम्ल होता है। Double तथा Triple फास्फेट सान्द्र होते हैं। प्रमाप विशिष्ट (Standard specification) के आधार पर साधारण सुपरफास्फेट में 16 प्रतिशत से कम फास्फोरिक अम्ल नहीं होना चाहिए। साथ ही साथ 15 प्रतिशत से अधिक जल तथा 5 प्रतिशत से अधिक स्वतन्त्र अम्लीयता या समस्त नमी तथा स्वतन्त्र अम्ल की मात्रा 18 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। स्वतन्त्र अम्ल की अधिक उपस्थिति में बोरे कट जाते हैं तथा खाद के ढेले से बन जाते हैं।

सुपरफास्फेट, कैलशियम सल्फेट, मोनो कैलशियम फास्फेट, डाई-कैलशियम फास्फेट, ट्राई-कैलशियम फास्फेट, स्वतन्त्र फास्फोरिक अम्ल तथा दूसरी अशुद्धियों का मिश्रण होता है। सुपरफास्फेट के एक औसत नमूने की रचना निम्नलिखित होती है—

कैलशियम सल्फेट	$CaSO_4 \cdot 2H_2O$	50.00 प्रतिशत
मोनो कैलशियम फास्फेट	$Ca(H_2PO_4)_2H_2O$	26.60 प्रतिशत
डाई-कैलशियम फास्फेट	$Ca_2(HPO_4)_2H_2O$	2.40 प्रतिशत
ट्राई-कैलशियम फास्फेट	$Ca_3(PO_4)_2$	2.20 प्रतिशत
सिलिका	SiO_2	7.00 प्रतिशत

लोहा तथा एलुमिनियम सल्फेट	$Fe_2(SO_4)_3$ and $Al_2(SO_4)_3$	4.00 प्रतिशत
कैलसियम फ्लोराइड	CaF_2	1.50 प्रतिशत
जल	H_2O	6.00 प्रतिशत

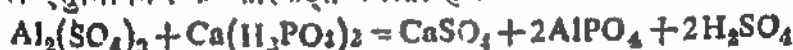
चूँकि सुपरफास्फेट बहुत अधिक अम्लीय क्रिया की परीक्षा देता है, अत: प्राय: यह विचार किया गया की मृदा मे मिलाने पर सुपरफास्फेट मृदा अम्लीयता बढ़ाता है। वास्तव में पी-एच की साधारण सीमाओं मे इसका लगभग कोई प्रभाव नही होता। कम पी-एच पर यह सुपरफास्फेट अम्लीयता कम करता है, जबकि 7.5 से 8.5 पी-एच की बीच इसका प्रभाव दूसरी ओर को होता है। मृदा क्रिया पर इसका थोड़ा प्रभाव सम्भवतः मृदा के सम्पर्क में आने पर इसके शीघ्र प्रत्यावर्तन (Reversion) होने के कारण होता है। इसका प्रत्यावर्तन दो प्रकार से सम्भव है—

(1) सुपरफास्फेट की ट्राई-कैलशियम फास्फेट के साथ क्रिया होने से डाई-कैलशियम फास्फेट बनाता है जो कम घुलनशील होता है—



$$Ca(H_2PO_4)_2+Ca_3(PO_4)_2=2Ca_2(HPO_4)_2$$

(2) सुपरफास्फेट, तथा लोहा एलुमिनियम के सल्फेट के साथ क्रिया करके लोहे तथा एलुमिनियम के फास्फेट्स बनाता है।



$$Al_2(SO_4)_3+Ca(H_2PO_4)_2=CaSO_4+2AlPO_4+2H_2SO_4$$



$$Fe_2(SO_4)_3+Ca(H_2PO_4)_2=2FePO_4+CaSO_4+2H_2SO_4$$

चूँकि लोहा तथा एलुमिनियम सुपरफास्फेट को अघुलनशील दशा में बदलते हैं अतः उस पदार्थ में जिससे सुपर फास्फेट बनाया जाता है इन तत्वों की कम से कम मात्रा पाई जानी चाहिये। वह फास्फेट जो घुलनशील दशा से अघुलनशील दशा में चला जाता है Retrograded या Reverted फास्फेट कहलाता है।

सुपर फास्फेट का खाद के रूप में प्रयोग–

यह सभी फसलों के लिए उपयुक्त है। यह अम्ल मृदाओं के अतिरिक्त सभी मृदाओं मे दिया जा सकता है। सुपरफास्फेट को बोने या पौधा लगाने के समय या उससे पहले ही दिया जाना चाहिए। इसे प्रयोग में लाने का सबसे अच्छा ढंग इसे वपित्र (Drill) से मिट्टी मे 4 से 6 इंच की गहराई पर देना है। इसे बीज की पंक्ति के दोनो ओर कम से कम 2 इंच की दूरी पर दिया जाना चाहिए। यद्यपि सुपरफास्फेट शीघ्र ही पानी में नही घुलता फिर भी यह मृदा से नष्ट नही होता।

फास्फोरस उर्वरकों का वर्गीकरण

विभिन्न फास्फोरस यौगिकों के मूल्यांकन तथा बिक्री के लिए वर्तमान फास्फोरस उर्वरकों का एक निम्नलिखित वर्गीकरण किया गया—

(1) पानी में घुलने वाले (Water Soluble)—सुपरफास्फेट, एमोनियम फास्फेट, पोटेशियम फास्फेट।

(2) साइट्रिक अम्ल में घुलने वाले (Citrate Soluble)—15 प्रतिशत के एमोनियम साइट्रेट के उदासीन घोल में घुलने वाला—$CaHPO_4$ 2 प्रतिशत साइट्रिक अम्ल में घुलने वाला बेसिक स्लैग के फास्फेट्स।

इन दोनों प्रकार के फास्फोरस उर्वरकों में प्राप्य फास्फोरिक अम्ल पाया जाता है।

(3) अघुलनशील—हड्डियों का फास्फेट तथा कच्चा रॉक फास्फेट इसमें फास्फोरिक अम्ल अप्राप्य रूप में होता है।

यह बात भली प्रकार ध्यान देने की है कि यह वर्गीकरण कुछ सीमा तक बनावटी तथा स्वेच्छ (Arbitrary) है। उदाहरणतः प्राप्य फास्फेट मृदा के सम्पर्क में आने में प्रत्यावर्तन (Reversion) होने से अप्राप्य रूप में बदल जाते हैं। प्राप्य शब्द का प्रयोग केवल उन फास्फेट के लिए किया गया जो, पौधे की वृद्धि शीघ्र करते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फास्फोरस का पौधे पर क्या प्रभाव पड़ता है ? संक्षेप में लिखें।
2. फास्फोरस के स्थिरीकरण पर एक लेख लिखो।
3. सुपरफास्फेट बनाने की विधि लिखो।
4. फास्फोरस उर्वरकों का वर्गीकरण करो।

पोटेशियम के उर्वरक

पोटेशियम बहुत विस्तीर्ण रूप से वितरित तत्व है तथा इसकी कमी बहुत कम मृदाओं में पाई जाती है। यही कारण है कि पोटेशियम के उर्वरक प्रायः कम प्रयोग में लाये जाते हैं। यद्यपि इस तत्व की पौधे की खुराक के लिए महत्ता का पता बहुत पहले लग चुका है, परन्तु पोटेशियम उर्वरकों की महत्ता का अनुभव अभी हाल ही में किया गया है।

पौधे की वृद्धि पर पोटेशियम के प्रभाव

पौधे की वृद्धि पर पोटेशियम के महत्त्वपूर्ण प्रभाव निम्नलिखित पड़ते हैं:—

(1) यह पौधे के स्वास्थ्य तथा ओजस् (Vigours) में सुधार करता है, ताकि वह मृदा की बुरी दशाओं, जलवायु या बीमारी का सामना कर सकें।

(2) यह नाइट्रोजन के बुरे प्रभाव को उदासीन करता है।

(3) यह फास्फोरस के इस प्रभाव को जिसमें बीज शीघ्र पक जाता है समाप्त करता है। इस प्रकार पोटेशियम, नाइट्रोजन तथा फास्फोरस के प्रभावों में सन्तुलन रखता है। फलतः यह मिश्रित उर्वरकों में बड़ा महत्व रखता है।

(4) पोटेशियम पौधों की पत्तियों को अधिक समय तक हरी रखता है तथा अधिक समय तक कार्य करने में सहायक होता है। इसका यह प्रभाव विशेष रूप से हल्की मृदाओं के लिये अहितकर हो सकता है।

(5) पोटेशियम फलीदार फसलों के लिए भी बड़ा महत्व रखता है क्योंकि यह उनके वायुमंडल की नाइट्रोजन स्थिरकरण में सहायता करता है।

(6) पोटेशियम पौधे में स्टार्च बनाने के लिए आवश्यक है तथा यह सुगर्स के स्थानान्तरण में भी आवश्यक माना गया है।

(7) यद्यपि पोटेशियम, मैगनीशियम की प्रकार क्लोरोफिल (Chlorophyl) के अणु का भाग नहीं होता परन्तु यह उसके विकास के लिए आवश्यक है।

(8) धान्यों के लिए इसका बड़ा महत्व है। यह इनमें दाना भरा हुआ बनाता है।

(9) आकन्द (Tuber) विकास के लिए प्राप्य पोटेशियम की काफी मात्रा में आवश्यकता पड़ती है।

(10) पोटैशियम धान्य सस्यों (Cereal crops) के भूसे तथा घासों को मजबूत बनाता है।

(11) यह फलों की प्रकार (Quality) का सुधार करता है तथा भालू को स्वादिष्ट बनाता है।

पोटैशियम समस्या

(1) **पोटैशियम की प्राप्यता**—रेतीली मृदाओं के अतिरिक्त पोटैशियम सभी मृदाओं में काफी मात्रा में पाया जाता है। वास्तव में इस तत्व की मात्रा दूसरे आवश्यक तत्वों की अपेक्षा काफी अधिक होती है। पोटैशियम की इतनी अधिक मात्रा होते हुए भी मृदा में विनिमय पोटैशियम की मात्रा बहुत थोड़ी होती है। इसका एक बड़ा भाग मृदा में इस रूप में पाया जाता है जिसे पौधे आसानी से नहीं ले सकते। कुछ पोटैशियम को जीव-अणु भी ले लेते हैं। अतः यह भी पोटैशियम की अपर्याप्तता का एक कारण हो सकता है।

(2) **उद्विलयन द्वारा हानि (Losses by Leaching)**—उद्विलयन द्वारा भी पोटैशियम की काफी हानि होती है। ऐसी मृदा जिसमें उर्वरक काफी मात्रा में मिलाये गये हों, के निकास-जल का परीक्षण करने से पता चला है कि उद्विलयन से पोटैशियम काफी मात्रा में नष्ट हो जाता है। यह हानि कभी-कभी इसकी फसल द्वारा ली जाने वाली मात्रा के बराबर हो जाती है।

(3) **फसलों द्वारा ली गई मात्रा**—फसलें भी मृदा से काफी मात्रा में पोटैशियम लेती है। साधारण दशाओं में फसलें नाइट्रोजन के बराबर या फास्फोरस से 3, 4 गुनी पोटैशियम की मात्रा ले लेती हैं। कभी-कभी जब मृदा में पोटैशियम काफी अधिक मात्रा में पाया जाता है तो पौधे इसे आवश्यकता से अधिक भी ले लेते है। पोटैशियम की यह अधिक ली गई मात्रा फसल की बहुत अधिक वृद्धि नहीं करती।

पोटैशियम की प्राप्यता

पोटैशियम मृदा में प्राप्य तथा अप्राप्य दोनों रूपों में पाई जाती है। प्राप्य पोटैशियम की मात्रा बहुत कम होती है, जबकि अप्राप्य पोटैशियम की मात्रा लगभग 90-98 प्रतिशत होती है। खनिज मृदा प्राप्त न होने वाली पोटैशियम, फैलस्पार और माईकाज जैसे खनिजों में पाई जाती है। प्राप्य पोटैशियम में शीघ्र प्राप्त होने वाली पोटैशियम की मात्रा केवल 1, 2 प्रतिशत होती है। प्राप्य पोटैशियम मृदा घोल में तथा कलिलों के तल पर विनिमय (Exchangeable) रूप में पाई जाती है। प्राप्त पोटैशियम का अधिक भाग विनिमय रूप में होता है। मृदा घोल की पोटैशियम को या तो शीघ्र ही पौधे ले लेते हैं या फिर यह निकास जल में नष्ट हो जाती है। प्राप्य पोटैशियम के इन दोनों रूपों में एक गतिशील समतोल रहता है अर्थात् यदि मृदा घोल की प्राप्य पोटैशियम नष्ट हो

जाती है तो विनिमय पोटेशियम की कुछ मात्रा मृदा घोल में चली जाती है तथा नष्ट हुई पोटास की कमी पूरी कर देती है। दूसरी ओर यदि मृदा घोल में किसी प्रकार पोटेशियम की अधिक मात्रा हो जाती है जैसा की किसी उर्वरक देने पर हो सकती है तो मृदा घोल की कुछ पोटेशियम विनिमय रूप में भी जा सकती है। मृदा में कुछ ऐसी भी पोटेशियम होती है जो पौधों को धीरे-धीरे प्राप्त होती है। यह पोटेशियम ऐसे रूप में होती है जिसका मृदा खनिजों द्वारा स्थिरकरण (Fixation) कर लिया जाता है। इस पोटेशियम का आसानी से विनिमय नहीं होता।

पोटेशियम का स्थिरकरण (Fixation of Potassium)

पोटेशियम लवणों में जो मृदा को उर्वरकों के रूप में दिये जाते है। मृदा में पहुँचकर बहुत से परिवर्तन होते हैं। पोटेशियम लवणों के वियवन (Dissociation) से जो पोटेशियम आयनस स्वतन्त्र होते है वे मृदा श्लेपाभीय जटिल (Soil colloidal complex) से शोषित या स्थिर कर लिए जाते हैं। अब इस प्रकार शोषित या स्थिर हुए पोटेशियम की शीघ्रता से हानि नहीं होती। पोटेशियम का स्थिरकरण इतना मजबूत नहीं होता जितना फास्फोरस का, फिर भी पोटेशियम की एक सीमित मात्रा में अप्राप्य रूप में भी स्थिरकरण हो जाता है।

मृदा में पोटेशियम स्थिरकरण पर प्रभाव डालने वाली बातें

(1) आर्द्रता, ताप तथा कलिलों (Colloids) का प्रभाव—विभिन्न मृदा कलिलों की पोटेशियम स्थिर करने की शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरणतः उस मृदा में जिसमें, प्रमृद्धिज मृत्तिका (Kaolinite clay) अधिक मात्रा में पाई जाती है। पोटेशियम का बहुत कम स्थिरकरण होता है। दूसरी ओर मृद्धिज मृत्तिका (Montmorillonite clay) में या ईलाइट मृत्तिका वाली मृदा में पोटेशियम शीघ्र ही तथा एक बड़ी मात्रा में स्थिर हो जाती है।

सभी खनिजों में पोटेशियम स्थिरकरण एकसा नहीं होता। मृद्धिज (Montmorillonite) या इसी प्रकार की खनिजों मे इस तत्व का स्थिरकरण सूखने पर होता है। यह इस प्रकार समझाया जाता है कि मृदा सूखने पर जो सुकड़न (Contraction) होती है उसमें पोटेशियम रचनात्मक इकाइयों के बीच मे घुस जाती है। इस प्रकार रखे हुए पोटेशियम आयनस गीला होने पर धीरे-धीरे स्वतन्त्र हो जाते हैं।

नम दशाओं में पोटेशियम स्थिरकरण अभ्रक खनिजों (Micas) में होता है। इसमें यह सम्भव है कि पोटेशियम कलिल के अन्दर चला जाता है तथा प्रजाल रचना (Lattice structure) का अभिन्न अंग बन जाता है।

कुछ दशाओं मे ठंडा करने तथा गर्म करने से भी स्थिर पोटेशियम स्वतन्त्र हो जाता है। यह किस प्रकार हो जाता है ठीक प्रकार से नही कहा जा सकता।

(2) चूने का प्रभाव—चूना देने से प्रायः मृदा में पोटेशियम का स्थिरकरण अधिक होता है। चूना देने की साधारण दशाओं मे यह अधिक लाभदायक होता है क्योंकि इसमें पोटेशियम का संरक्षण होता है। इस प्रकार अम्ल मृदाओं की प्रकार भली प्रकार चूना दी गई मृदा मे पोटेशियम का भयानक उद्विलयन (Drastic leaching) नहीं होता।

ऐसी भी दशायें हो सकती हैं जब पोटेशियम की प्राप्यता पर चूने का प्रभाव इतना अधिक होता है जो वाञ्छनीय नहीं है। उदाहरणतः कुछ मृदाओं में स्पष्टतः पोटेशियम की कमी मृदा में बहुत अधिक चूने के पत्थर की उपस्थिति के कारण होती है। इस प्रकार की मृदाओं में पोटेशियम की अप्राप्यता चूने के कारण पैदा हो जाती है।

पोटेशियम उर्वरक

पोटेशियम खनिज रूप में सबसे अधिक मात्रा मे जर्मनी में पाई जाती है। यहाँ पर इसकी तह 50 फीट से 150 फीट गहराई तक पाई जाती है। यह Strassfurt Deposits के नाम से प्रसिद्ध है। यह हार्ज पहाड़ से एल्बे नदी तक फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त अपरिष्कृत (Crude) पोटेशियम लवण जर्मनी के दूसरे भागों, फ्रांस, अमरीका तथा दूसरे देशों मे भी पाये जाते है। आजकल पोटेशियम लवणो की प्राप्ति फ्रांस, जर्मनी तथा अमरीका से ही की जाती है।

इन निक्षेपों (Deposits) मे पाये जाने वाले मुख्य पोटेशियम यौगिक ये हैं—

(1) Sylvine, KCl

(2) Sylvinite, जो Sylvine, शैल लवण तथा Kainit का मिश्रण होता है।

(3) Carnallite, $MgCl_2KCl.6H_2O$

(4) Schonite, $MgSO_4\ K_2SO_4.6H_2O$

(5) Kieserite, $MgSO_4.H_2O$ (इसके साथ Carnallite भी पाया जाता है।)

(6) Kainit $MgSO_4.KCl3H_2O$

या $MgSO_4.K_2SO_4.MgCl_2.6H_2O$

(7) Polyhalite, $K_2SO_4.2CaSO_4.MgSO_4.H_2O$

ये यौगिक एक दूसरे से तथा विशेष रूप से शैल लवण के साथ मिले हुए पाये गये हैं। इन सब यौगिकों मे Carnallite की अधिक मात्रा होती है।

पोटेशियम के साधारण प्रयोग मे आने वाले उर्वरक तीन है : (1) सल्फेट आफ पोटाश (K_2SO_4), (2) म्यूरिएट आफ पोटाश (KCl,) (3) पोटाश लवण।

पोटेशियम सल्फेट—इसमें 45–50 प्रतिशत पोटाश होता है। आलू, तम्बाकू, चुकन्दर, प्याज, टमाटर व जड वाली फसलें और फलों के लिए इसे प्रयोग में लाना हितकर है क्योंकि क्लोराइड से इन फसलों को हानि होती है। यह एक सबसे अधिक सुरक्षित उर्वरक है। बीज बोने से पहले यह फसल की आवश्यकतानुसार 100 से 200 कि. ग्रा. प्रति हेक्टर के हिसाब से छिडक कर मिट्टी मे मिला देना चाहिए।

यह पानी मे घुल जाता है तथा पौधे को लगभग तुरन्त ही मिल जाता है। यह बोने के समय तक कभी भी दिया जा सकता है। इसे दूसरे उर्वरको के साथ मिलाया जा सकता है।

निर्माण विधि—पोटेशियम क्लोराइड को सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ गर्म करने से पोटेशियम सल्फेट बनता है।



$$2KCl + H_2SO_4 \rightarrow K_2SO_4 + 2HCl$$

इसके अलावा पोटेशियम क्लोराइड तथा सोडियम सल्फेट के घोल की प्रतिक्रिया से भी यह तैयार किया जा सकता है।



$$2KCl + Na_2SO_4 \rightarrow K_2SO_4 + 2NaCl$$

यह सफेद रवेदार तथा जल में घुलनशील लवण है। इसमे भूमि मे अम्लता पैदा हो जाती है। इसे बुआई के समय अथवा खाद के साथ मिलाकर प्रयोग करने में ठीक रहता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पोटेशियम का पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
2. पोटेशियम समस्या को संक्षेप मे लिखो।
3. पोटेशियम सल्फेट का वर्णन करो तथा इसके निर्माण विधि पर प्रकाश डालो।

उर्वरकों का संगठन उपयोग एवं प्रयोग विधि

तालिका नं० 4

नाईट्रोजन युक्त उर्वरकों का संगठन और उनका मिट्टी पर प्रभाव

क्र.सं.	उर्वरक का नाम	नाइट्रोजन प्रतिशत	नाइट्रोजन का रासायनिक रूप	मिट्टी पर प्रभाव
1.	सोडियम नाइट्रेट	16.0	नाइट्रेट	क्षारीय
2.	अमोनियम सल्फेट	20.00	अमोनियम	अम्लीय
3.	अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट	26.60	अमोनियम + नाइट्रेट	"
4.	कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट	5	½ अमोनियम ½ नाइट्रेट +	उदासीन
5.	यूरिया	46.0	एमाइड	अम्लीय
6.	पोटेशियम नाइट्रेट	13.0	नाइट्रेट	क्षारीय
7.	कैल्शियम सायनामाइड	21.0	एमाइड	"
8.	मोनो अमोनियम फास्फेट (प्रथम दर्जा)	[illegible]	अमो[illegible]	अम्लीय
9.	डाइ-अमोनियम फास्फेट			"

फास्फोरस युक्त उर्वरकों का संगठन और उनका मिट्टी पर प्रभाव

वर्ग	उर्वरक का नाम	फास्फोरस P.-O	पानी मे घुलनशील (प्रतिशोध)	मिट्टी का प्रभाव	अन्य पोषक तत्व
पानी म	1. सिंगल सुपर फास्फेट	16.00	85	उदासीन	गंधक 12
घुलनशील	2. ट्रिपल सुपर फास्फेट	46 0	87	"	—
	3. ग्रोमोर	28	100	ग्रम्लीय	नाइट्रोजन 28
	4. सुफला (धूसर)	20	30		" 20
	5. सुफलता (पीला)	18	30		नाइट्रोजन 28 पोटाश 9
	6. सुफला (गुलाबी)	15	30		नाइट्रोजन 15 पोटाश 15
	7. मोनो ग्रमोनियम फास्फेट	20	100		नाइट्रोजन 1
	8. डाइ ग्रमोनियम फास्फेट	46	96		नाइट्रोजन 18
	9. ट्राइ ग्रमोनियम फास्फेट	54	100	"	" 21
मिट्टी ट	1. हड्डी का चूरा (कच्चा) " " (भाप लगा हुआ)	20–25 25–30	1 से कम	क्षारीय	नाइट्रोजन 3
घुलनशील	2. वेसिक स्लैग	6 –15	2 से कम	"	—
	3. डाइ कैलसियम फास्फेट	32	3–4	"	

तालिका नं. 6

पोटाश युक्त उर्वरकों का संघटन एवं भूमि में उनका प्रभाव

क्र. नं.	उर्वरक का नाम	पोटाश (K_2O) (प्रतिशत में)	मिट्टी पर प्रभाव	अन्य तत्व (प्रतिशत)
1.	म्यूरेट आफ पोटाश	60	अम्लीय	—
2.	पोटेशियम सल्फेट	48–50	अम्लीय गन्धक	17
3.	पोटेशियम नाइट्रेट	44	क्षारीय नाइट्रोजन	13
4.	पोटेशियम कार्बोनेट	65	क्षारीय	—
5.	पोटेशियम केनाइट	12		—

उर्वरकों का उचित प्रयोग

फसलों को उचित वृद्धि के लिए मिट्टी प्रायः पोषक तत्वों का संतुलित मात्रा में होना आवश्यक है। परन्तु फसलों को लगातार उगाते रहने से भूमि में इन पोषक तत्वों की कमी होती जाती है। पोषक तत्वों की इस कमी को पूरा करने एवं फसल से अधिकतम उपज लेने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिये ताकि भूमि में आवश्यक मात्रा में पोषक तत्व बने रहे और उनसे अधिकतम लाभ मिले।

पोषक तत्व की कीमत—

उर्वरक का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उर्वरक में उपस्थित पोषक तत्व की प्रति किलोग्राम कीमतें कम हो अर्थात् वही उर्वरक छाटन चाहिये जिसमे पोषक तत्व की प्रतिशत मात्रा दूसरे उर्वरकों की तुलना में अधिक हो। उदाहरणार्थ, सोडियम नाइट्रेड में नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है, अतः इसका प्रयोग नही करना चाहिये। इस दृष्टि से यूरिया अधिक लाभकारी होगा क्योंकि प्रति किलो नाइट्रोजन इससे सस्ती मिलेगी।

पोषक तत्वों का निक्षालन—

कुछ उर्वरकों में पोषक तत्व इस रूप में होते है कि उनके प्रयोग करने से मिट्टी से पोषक तत्व निक्षालन विधि(लीचिंग)द्वारा रिस कर भूमि मे नीचे की ओर चले जाते हैं जिससे वे पौधों को प्राप्त नही हो पाते। प्रायः ऐसे उर्वरकों का प्रयोग मट्टी के गुणो को ध्यान में रखकर हो करना चाहिये। उदाहरणार्थ नाइट्रेटयुक्त उर्वरको का प्रयोग, विशेषतः रेतीली मिट्टी एव जलमग्न क्षेत्रो की मिट्टियों मे नहीं करना चाहिये, क्योंकि नाइट्रोजन अंश नाइट्रेट के रूप में होने से रिस कर नीचे चला जाता है।

मिट्टी की प्रतिक्रिया—

इसका तात्पर्य मिट्टी की अम्लीय, क्षारीय एवं सामान्य मिट्टियों से होता है। उर्वरक भी अपने गुणों के अनुसार मिट्टी की अम्लीयता और क्षारीयता पर प्रभाव डालते हैं। अम्लीय मिट्टियों में विशेषकर यदि वह रेतीली है तो अमोनिया क्लोराइड या अमोनिया सल्फेट जैसे अम्लीयता उत्पन्न करने वाले उर्वरकों को इस्तेमाल नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार चूने वाली मिट्टियों में सोडियम युक्त उर्वरकों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

पोषक तत्वों का गैस रूप में हानि—

भूमि की विशेष परिस्थितियों के कारणवश उनमें उर्वरक प्रयोग करने से पोषक तत्व गैस रूप में बदलकर उड़ जाते हैं तथा पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाते, जिसके पोषक तत्वों की हानि होती है। उदाहरण के लिए नाइट्रेटयुक्त उर्वरकों को जलमग्न खेतों जैसे धान के खेत में प्रयोग करने से पोषक तत्व नाइट्रस आक्साइड व नाइट्रोजन आदि गैस के रूप में उड़ जाते हैं। अतः ऐसी परिस्थिति में नाइट्रेटयुक्त उर्वरक प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। चूने वाली अथवा क्षारीय मिट्टियों में यूरिया अथवा अमोनियम युक्त उर्वरकों को भूमि की सतह पर प्रयोग करने से भी नाइट्रोजन पोषक तत्व का अमोनिया गैस के रूप में उड़कर नुकसान होता है। अतः ऐसी परिस्थितियों में उर्वरकों को मिट्टी में अच्छी तरह मिला देना उचित रहता है।

मिट्टी में स्थिरीकरण—

उर्वरकों में उपस्थित पोषक तत्व या तो मिट्टी के रासायनिक घटकों से संयोग करने तथा मृदा पी. एच. के कम या अधिक होने या कार्बोनेट की मात्रा अधिक होने की स्थिति में प्राप्य अवस्था से अप्राप्य अवस्था में बदले जाते हैं। अतः उर्वरक के प्रयोग करने से पहले मिट्टी के कण एवं उनके घटकों के बारे में जान लेना चाहिये। इन परिस्थितियों में पोटाश एवं फास्फोरस के घुलनशील उर्वरकों को सतह पर बिखेरना नहीं चाहिये बल्कि कुण्ड में डालना चाहिये। सामान्य मिट्टियों के लिए उर्वरक में फास्फोरस की कुल मात्रा का 70% से अधिक भाग पानी में घुलनशील होना चाहिये। अगर पानी में फास्फोरस की घुलनशीलता किसी उर्वरक से कम है तो उसे केवल अम्लीय मिट्टियों में लाभकारी ढंग से प्रयोग किया जा सकता है, जैसे—राकफास्फेट।

पोषक तत्व की गतिशीलता—

नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों में पोषक तत्व गतिशील नहीं होते हैं जबकि फास्फोरस एवं पोटाश युक्त उर्वरकों में पोषक तत्व गतिशील नहीं होते हैं। इसलिए फास्फोरस एवं पोटाश युक्त उर्वरकों को फसल की बोआई करने से पहले अथवा बोते समय मिट्टी में मिला देना चाहिये जिससे पौधों की जड़ें आसानी से इन पोषक तत्वों का अवशोषण कर सकें।

उर्वरक की मात्रा—

फसल की आवश्यकता के अनुसार उर्वरक की उचित मात्रा संतुलित रूप से डालनी चाहिये। कम मात्रा मे उर्वरक डालने से उपज अच्छी नहीं मिल पाती है एवं अधिक मात्रा में डालने से आर्थिक लाभ कम होता है। कभी-कभी तो फसलों के गिर जाने से भी उपज कम मिल पाती है।

उर्वरक की उचित मात्रा डालने के लिए मिट्टी की जांच करना आवश्यक होता है, जिससे यह पता लग जाता है कि मिट्टी मे उपस्थित प्राप्त पोषक तत्वों की मात्रा कितनी है तथा फसल को आवश्यकतानुसार अधिकतम उपज के लिए किन पोषक तत्वों को कितनी मात्रा मे डाला जाये? अतः मिट्टी के परीक्षण द्वारा निर्धारित दरों से ही पोषक तत्वों की मात्रा का प्रयोग अधिक लाभकारी एवं उचित होगा।

पोषक तत्वों का पत्तियों पर छिड़काव—

सूखे इलाकों मे जहा वर्षा बहुत कम होती है, पौधे पोषक तत्वों को जड़ों द्वारा घोल के रूप में कम मात्रा मे ले पाते हैं। ऐसे क्षेत्रों में उर्वरकों से अधिक उपज हेतु पत्तियों का घोल बनाकर छिड़कना चाहिये, विशेषतः नाइट्रोजन वाले उर्वरक जैसे यूरिया के कुछ भाग का पत्तियों पर छिड़काव, भूमि मे डालने की अपेक्षाकृत अधिक लाभ रहता है।

इसके अलावा पहाडी क्षेत्रो (जहाँ जमीन अधिक ढलावनी हो अथवा ऐसी भूमि जहा बहुधा पानी भरा रहता हो) मे नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों की कुछ मात्रा छिड़काव द्वारा देना अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। पत्तियों पर यूरिया के घोल को आयतन के अनुसार दो प्रकार से छिड़का जा सकता है।

(क) अधिक आयतन का घोल छिड़कना—इसमे लगभग 800 से 1000 लीटर घोल प्रति हेक्टर छिड़का जाता है तथा घोल की मात्रा लगभग 2 से 6% रखी जाती है। यह साधारण छिड़काव यन्त्र (स्प्रेयर) द्वारा छिड़का जा सकता है।

(ख) कम आयतन का घोल छिड़कना—इसमें लगभग 15 लीटर यूरिया का घोल प्रति हेक्टर छिड़का जाता है तथा यूरिया की मात्रा लगभग 25 से 30% रखी जाती है इसके लिए विशेष प्रकार के छिड़काव यन्त्र, जिसे कम आयतन वाला छिड़काव यन्त्र कहते हैं, प्रयोग किया जाता है जिसे इतने कम घोल में ही एक हेक्टर क्षेत्र मे समान रूप से छिड़काव किया जा सके।

इसके साथ ही छिड़कने के लिए प्रयोग किये जाने वाले उर्वरक में वाइयूरेट पदार्थ की मात्रा 1% से कम होनी चाहिये। इसकी अधिक मात्रा का फसल पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग—

फसलों की उचित वृद्धि के लिए पोषक तत्व जैसे—जस्ता, तांबा, लोहा मैंगनीज, बोरान एवं मालिबिडेनम बहुत ही आवश्यक होते हैं क्योंकि ये पौधों की एन्जायम क्रियाओं में सहायक होते हैं। अतः जिन खेतों की मिट्टियों में इन सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी हो गई हो अथवा जिन फसल के लिए सूक्ष्म पोषक तत्व के साथ-साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों वाले उर्वरकों का प्रयोग अत्यधिक लाभदायक होता है।

जैविक खादों का प्रयोग—

मिट्टी के सूक्ष्म जीवाणुओं की उचित जैविक क्रियाओं के लिए एवं भूमि को उचित भौतिक दशा में रखने के लिये जीवांश पदार्थ उचित मात्रा में होना आवश्यक है। इसके साथ ही इसमें पोषक तत्व भी कुछ न कुछ मात्रा में अवश्य होते हैं। अगर मिट्टी को समतल करने अथवा अन्य कारणों जैसे ईंट के भट्टे के लिए प्रयोग की गई मिट्टी वाले खेतों में भूमि की निचली सतह खुल गई हो अथवा मिट्टी अत्यन्त हल्की किस्म की हो तो जैविक खादों का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी होता है।

अतः उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर खादों का उचित प्रयोग करके फसलों से अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही भूमि की उर्वरक शक्ति को भी कायम रखा जा सकता है।

उर्वरकों का उचित रख-रखाव

कृषि क्षेत्र में देश निरन्तर प्रगति कर रहा है। इस स्थिति में किसानों के लिये आवश्यक है कि वे देश में स्थापित सीमित उर्वरक कारखानों द्वारा बनाये गये उर्वरकों का अच्छी प्रकार से संग्रह एवं उपयोग करें, जिससे उर्वरकों की क्षमता अधिकतम रहे, साथ ही विदेशों से आयात किये गये उर्वरक के लिए खर्च की जाने वाली देश की विदेशी मुद्रा की बचत हो सके।

उर्वरकों का संग्रह

उर्वरकों का संग्रह करते समय अग्रलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए-

1. फसल की आवश्यकता के अनुसार उर्वरकों की आवश्यक मात्रा को फसल बोने के 1–2 महीने पहले ही खरीद कर रख देना चाहिये क्योंकि कभी-कभी फसल की बोआई करते समय उर्वरक नहीं मिल पाते तथा बुआई के बाद कुछ उर्वरक जैसे–फास्फोरस एवं पोटाशयुक्त उर्वरकों को फसल में इस्तेमाल करने पर फसल इन उर्वरकों का प्रयोग अच्छी तरह नहीं कर पाती।

2. उर्वरकों को सूखे संग्रह एवं हवादार कमरे में करना चाहिए।

3. उर्वरकों की फटी या खुली बोरियों को ठीक बोरियों के चट्ट में नहीं रखना चाहिये, नहीं तो उर्वरकों के खराब हो जाने की सम्भावना रहती है।

4. अलग-अलग उर्वरक के चट्टे अलग-अलग लगाने चाहिये।

5. उर्वरक की बोरियों को सीधा रखना चाहिये तथा एक बोरी का मुंह दूसरी के सामने रखना चाहिये।

6. फर्श पर बिछावन के रूप में धान की सूखी भूसी या गन्ने की सूखी पत्तियां या ऐसी कोई वस्तु बिछाकर उस पर उर्वरक की बोरियों के चट्टे लगाने चाहिये। इससे बोरियों पर फर्श की नमी का कम असर होगा और उर्वरकों में सीलन नहीं पहुंचेगी।

7. बोरियों को दीवार का सहारा नहीं देना चाहिये और चट्टों को गोदाम की दीवारों से दूर बनाना चाहिये। हर चट्टे के चारों ओर थोड़ी-थोड़ी जगह छोड़ देनी चाहिये जिससे हवा आती रहे और उर्वरक हमेशा ठीक हालत में रहें।

8. कभी भी आवश्यकता से अधिक उर्वरक नहीं खरीदना चहिये क्योंकि अधिक समय तक उर्वरक रखने पर उनके गुणों में परिवर्तन आ जाता है।

9. नमी सोखने वाले उर्वरकों के लिए फर्श पर पोलिथिन बिछा देनी चाहिये तथा उन्हें लकड़ी के तख्तों आदि पर रखना चाहिये जिससे उर्वरक वातावरण व फर्श की नमी को न सोख पायें।

उर्वरकों को अधिक उपयोगी बनाना

उर्वरकों की उपयोगिता बढ़ाने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिये–

1. फास्फोरस एवं पोटाश युक्त उर्वरकों को फसल की बुआई से पहले या बोते समय खेत में डाल देना चाहिये। ये दोनों ही पोषक तत्व गतिशील नहीं होते हैं। इसलिए यदि इन्हें खड़ी फसल में प्रयोग किया जाता है तो ये पौधों की जड़ों तक पहुंचते हैं।

2. उर्वरकों को खेत में बिखेरने के बजाय कूंड़ों में डालना अच्छा रहता है।

3. धान की फसल के लिए नाइट्रोजन के अमोनियम युक्त उर्वरक अधिक उपयोगी रहते हैं, क्योंकि खेत में पानी भरा रहने के कारण नाइट्रेट युक्त उर्वरक क

इस्तेमाल करने से नाइट्रेट के रूप में नाइट्रोजन पोषक तत्व रिसकर भूमि में नीचे चला जाता है फिर नाइट्रेट ग्राक्साइड या नाइट्रोजन गैस के रूप में उड जाता है।

4. आलू की फसल में अमोनिया क्लोराइड व पोटेशियम क्लोराइड उर्वरक का इस्तेमाल नहीं करना चाहिये, क्योंकि इनमे उपस्थित क्लोराइड आलू गुणो पर हानिकारक प्रभाव डालते है।

5. ऊपर भूमि में सोडियम नाइट्रेट उर्वरक का इस्तेमाल नही करना चाहिये क्योंकि वह भूमि को अधिक ऊसर बनाता है। ऐसे खेतों मे अम्लीय प्रकृति के उर्वरक जैसे अमोनियम सल्फेट, अमोनियम क्लोराइड व यूरिया आदि उर्वरको का प्रयोग लाभकारी होता है।

6. अम्लीय मिट्टियों मे अम्लीय प्रकृति के उर्वरकों का प्रयोग नही करना चाहिये। इस प्रकार मिट्टियों में नाइट्रोजन के कैल्शियम नाइट्रेट, कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट एवं फास्फोरस के अम्लीय घुलनशील उर्वरकों जैसे राकफास्फेट बेसिक स्लैग आदि उर्वरकों का प्रयोग लाभप्रद रहता है।

खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करने की विधि

कार्बनिक खाद कम्पोस्ट तथा गोबर की खाद की खेती मे फसलें बोने से 1 या 2 महिने पूर्व बिखेर कर प्रयोग किया जाता है और इतने समय मे यह पौधों के द्वारा प्राप्त करने योग्य हो जाता है। अधिक ताप और तेज धूप होने पर खाद के पोषक तत्वों में कुछ कमी आ जाती है। अतः इसे तुरन्त मिट्टी में मिला देना चाहिये।

उर्वरकों को प्रयोग करने की विधियाँ

इन खादों को प्रयोग करने से पूर्व निम्नलिखित सिद्धांतों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है—

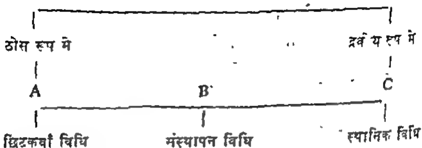
1. N_2 वाले उर्वरक पानी मे विलेय तथा गतिशील होते है अतः इन्हें भूमि की ऊपरी सतह पर बुवाई मे पहले, बुआई के समय तथा बुआई के बाद भी छिटक कर प्रयोग किया जाना चाहिये।

2. कुछ N_2 लीचिंग द्वारा नष्ट हो जाती है इसलिए इन उर्वरकों का प्रयोग थोडा-थोडा करके कई बार मे किया जाना चाहिये तथा तुरन्त पानी देना चाहिये।

3. P_4 का संचालन बहुत धीरे-धीरे होता है। अतः पौधों की जडों के पास दिया जाना चाहिए क्योंकि जडो की पहुंच से दूर होने पर यह पौधों को प्राप्त नही होने पाता।

4. K वाले उर्वरकों को भी पौधों की जड़ों के पास ही प्रयोग किया जाना चाहिये ।

उर्वरकों प्रयोग करने की विधियां
(Application of Fertilizers)



(1) ठोस रूप में—

(A) छिटकवाँ विधि—
- (i) बुआई के समय छिटकवाँ विधि
- (ii) टाप-ड्रेसिंग विधि (Top dressing)

(B) संस्थापन विधि (Placement)

- (i) हल दुस्तर संस्थापन (Plough Soil Placement)
- (ii) गहन संस्थापन विधि (Deep Placement)
- (iii) अपमृदा संस्थापन विधि (Sub soil placement)

(C) स्थानिक विधि (Localizer placement)

- (i) स्पर्श संस्थापन (Contact placement)
- (ii) पट्टी संस्थापन (Band placement)
- (iii) गोली का प्रयोग (Pallet Application)
- (iv) पौधों के आसपास (Side dressing)

(2) द्रवीय रूप में—

1. प्रारम्भिक उर्वरक विलयन (Starter fertilizer solution)
2. पूर्ण अनुप्रयोग (Faliar application)
3. प्रत्यक्ष उर्वरक विलयन (Direct fertilizer solution)
4. सिंचाई के समय (Application Irrigation)

(A) छिटकावाँ विधि

1. बुवाई के समय छिड़क कर :

इस विधि का मुख्य उद्देश्य सारी फसल में समान रूप मे उर्वरक छिड़कना है। निम्न अवस्थाओं से बुआई के समय उर्वरक को छिड़कना आवश्यक होता है। जब, N_2 उर्वरकों का प्रयोग ऐसे खेत मे करना होता है जिसमें N_2 की बहुत कमी पायी जाती है।

जब फास्फोरस युक्त उर्वरक जैसे—डाई-कैल्शियम-सल्फेट हड्डी का चुरा या राक-सल्फेट मृदाओ का प्रयोग की गई हो।

2. टाप-ड्रेसिंग —

जब खड़ी फसल में N_2 वाले उर्वरकों को जिनमे N_3 NO_3 के रूप मे होती है छिड़का जाता है तो इस विधि को 'Top dressing' के रूप मे NH_4 NO_3 Na NO_4 NH_4 तथा Ca NO_3 का प्रयोग किया जाता है। इस विधि मे यह सावधानी रखी जानी चाहिये कि फसल वाले पौधों की पत्तियां गीली न हो अथवा उर्वरक के गिरने से पत्तियां जल जायेंगी।

(B) संस्थापन विधि

इस विधि में उर्वरको का प्रयोग बीज खाने के स्थान या पौधों की स्थिति को देखकर किया जाता है। इस विधि में उर्वरक का प्रयोग फसल वाले पौधों के पास किया जता है।

(1) हल कुरतर संस्थापन—

इस विधि मे उर्वरको का प्रयोग धान की फसल में अधिक किया जाता है। इस विधि का प्रयोग उस समय करते हैं जबकि मिट्टी की ऊपरी सतह कुछ इंच तक सख्त होती है।

(2) गहन संस्थापन विधि—

इस विधि का प्रयोग धान की फसल मे अधिक किया जाता है। NH_4 SO_4 अथवा यूरिया को काफी गहराई पर प्रयोग किया जाता है। इसके बाद बीजो की बुवाई की जाती है। P_4 युक्त उर्वरकों का प्रयोग भी इसी विधि से किया जाता है।

(3) अपमृदा संस्थापन विधि—

इस विधि में उर्वरकों का प्रयोग को मिट्टी की ऊपरी परत में किया जाता है। उन स्थानों पर जब मिट्टी मे आर्द्रता अधिक होती है। विशेष कर P_4 एवं पोटाश युक्त उर्वरकों का प्रयोग इस विधि में किया जाता है।

(C) स्थानिक विधि

इस विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है, जबकि उर्वरकों का प्रयोग निश्चित मात्रा मे बहुत कम करना होता है। उर्वरक पौधो के आस-पास प्रयोग किये जाते हैं। अतः पौधों की जड़ें उन्हें आसानी से प्राप्त कर लेती हैं।

अधिकतर इस विधि में उर्वरको का प्रयोग फसलों की बुवाई के साथ किया जाता है।

(1) स्पर्श संस्थापन विधि—

इस विधि मे बीज तथा उर्वरकों को साथ-साथ सीड ड्रिल से बोया जाता है। धान, ज्वार, मक्का आदि फसलो में P_4 और K युक्त उर्वरकों का प्रयोग साथ-साथ किया जाता है। उर्वरको को बीज के साथ प्रयोग करने से कभी-कभी अंकुरण

पुरी तरह से प्रभावित होते हैं। फलीदार फसलों में इस विधि का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिये।

(2) पट्टी संस्थापन—

इस विधि मे उर्वरकों का प्रयोग फसल की लाइनों के साथ पट्टियों में किया जाता है। साधारणतया अधिकांश फसलों में पौधों की एक तरफ या दोनों तरफ 7 सेमी. लम्बी, 15 सेमी. चौड़ी तथा 2½ से 1 सेमी. गहरी पट्टियों का प्रयोग किया जाता है। खड़ी फसल मे उर्वरक हाथ से डाला जाता है जिसे (Hill palcement) भी कहते हैं।

फसलों मे आपस की दूरी जब कम होती है उस समय फसल की पंक्ति के साथ-साथ भी दोनो ओर पंक्तियों में उर्वरक का प्रयोग किया जाता है। इस विधि को पंक्ति सस्थापन भी कहते है।

(3) गोली का अनुप्रयोग—

इस विधि मे N_2 वाले उर्वरकों की 1–10 अनुपात में उर्वरक एवं मिट्टी को आपस में मिलाकर गोलियाँ बना ली जाती हैं और इन गोलियों का प्रयोग पंक्ति के बीच मे किया जाता है।

(4) पौधों की जड़ों के उर्वरक का प्रयोग—

जब पंक्तियों की दूरी बहुत अधिक होती है उस समय पौधों के चारो ओर उर्वरकों का हाथ से प्रयोग किया जाता है। मुख्यतः इस विधि का प्रयोग फल वाले पौधों मे किया जाता है।

घोल रूप में उर्वरकों का प्रयोग

किसी भी उर्वरक को जब घोल के रूप मे प्रयोग किया जाता है तो वह पौधों को तुरन्त प्राप्त हो जाता है लेकिन इस विधि में घोल की प्रतिशत मात्रा का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये।

क्योंकि प्रतिशत मात्रा के अधिक होने पर लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है।

1. प्रारम्भिक उर्वरक विलयन (*Starter fertilizer solution*)—

इस प्रकार के घोल का प्रयोग अधिकतर उन पौधों के लिए किया जाता है जो नर्सरी से निकालकर अन्यत्र स्थान पर रोपे जाते है क्योंकि पौधों की जड़ प्रणाली अस्त-व्यस्त होती है। अत- उन्हे घुला हुआ उर्वरक उपलब्ध कराया जाता है ताकि पौधों की जड़ें इसे आसानी से प्राप्त कर सकें।

2. पूर्ण अनुप्रयोग विधि (Foilar application)—

इस विधि मे निश्चित प्रतिशत मात्रा का उर्वरक का घोल खड़ी फसलों पर छिड़का जाता है। इसमे पौधो की पत्तियां इस घोल को सीधा प्राप्त कर लेती हैं।

3. प्रत्यक्ष उर्वरक विलयन (Direct fertilizer solution)--

मृदा में उर्वरक के विलियन का प्रत्यक्ष प्रयोग इस विधि में मशीनो की सहायता N, P तथा K का विलयन मिट्टी की 10 सेमी. गहराई पर प्रयोग किया जाता है।

सिंचाई के समय (Application Irrigation)—

अधिकांश N वाले उर्वरक तथा घुलनशील P एवं K युक्त खादें सिंचाई के साथ सिंचाई के समय प्रयोग की जाती है। बहते हुए पानी में उर्वरक डाल दिये जाते हैं जिससे वह घुलकर सभी पौधों को प्राप्त हो जाती है।

खाद एवं उर्वरक में अन्तर

	साधारण खाद		विशेष खाद या उर्वरक
1.	साधारण खाद में अनेकों आवश्यक तत्व पाये जाते हैं लेकिन प्रतिशत मात्रा अधिक नहीं पायी जाती है।	1.	इन खादों में एक दो या तीन तत्व ही पाये जाते हैं। जो अधिक मात्रा में होते हैं।
2.	ये खादें मिट्टी में जल धारण की शक्ति को बढ़ाती हैं।	2.	खादें जल सोखने की शक्ति नहीं बढ़ाती हैं।
3.	इसमें पौधों की खुराक धीरे-धीरे प्राप्त होती है। इसलिए इनका खेत में प्रभाव कई वर्षों तक बना रहता है। गोबर की खाद का प्रभाव [illegible] से 3 साल तक भूमि में रहता है।	3.	इनसे पोषक तत्व बहुत जल्दी उपलब्ध होते हैं तथा इनका प्रभाव भूमि में अधिक दिनों तक नहीं रहता।
4.	ये भूमि की भौतिक दशा को सुधारते हैं। इनके प्रयोग से चिकनी मिट्टी भुर-भुरी तथा बलुई भूमि सघन हो जाती है। क्योकि ह्यूमस कणों को बांधता है। इस प्रकार रेतीली भूमियों मे जल धारण शक्ति बढ़ाती है और चिकनी मिट्टियों की जल निकासी अच्छी हो जाती है।	4.	रासायनिक खाद का अधिक लम्बे समय तथा प्रयोग करने से भूमि की भौतिक दशा बिगड़ने का भय रहता है। जैसे– अमोनियम सल्फेट के लगातार प्रयोग से भूमि मे अम्लीयता बढ़ने लगती है। इसी प्रकार सोडियम नाइट्रेट के लगातार

		प्रयोग से भूमि मे क्षारीयपन बढ़ जाता है। इन दोनों ही अवस्थाओं मे भूमि की भौतिक अवस्था खराब होने के साथ-साथ भूमि की रासायनिक अवस्था भी खराब हो जाती है।
5.	जैविक पदार्थों के सड़ने से कार्बनिक अम्ल निकलता है। जो भूमि के बहुत अघुलनशील मूल्यवान पोषक तत्वों को अघुलनशील अवस्था में परिवर्तित करने मे सहायक होता है।	5. इनके प्रयोग से ऐसे लाभ की आशा नही होती। कभी-कभी तो हानि की ही अधिक सम्भावना हो जाती है। सल्फेट के लगातार प्रयोग से भूमि में अम्लीयता बढ़ जाती है। ऐसी दशा मे फास्फोरस लोहे तथा एल्यूमिनियम के साथ मिलकर अघुलनशील रूप मे परिवर्तित हो जाता है।
6.	रेतीली भूमियों में जीवांश की प्रचुर मात्रा होने पर वायु द्वारा मृदा कटाव की कम आशंका रहती है।	6. ऐसा कोई प्रभाव नही रखते।
7.	जीवांश की उपस्थिति मे भूमि के अनेक लाभदायक जीवाणुओ की संख्या मे वृद्धि होती है।	7. इनके लगातार प्रयोग से भूमि के जीवाणुओं पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है।
8.	जैविक खादें भूमि मे उचित वायु संचार की व्यवस्था करती है जो पौधे के जीवाणुओ तथा अनेक भू-गर्भ के जीवो के लिए अति आवश्यक है।	8. इनके प्रयोग से ऐसी आशा नही होती।
9.	पौधों की वृद्धि के लिए सहायक पदार्थ आक्सी-मोक्स इन खादो में मौजूद होते है।	9. इनमें आक्सी-मोक्स नही होते।

10. इन खादों के पोषक तत्व खेत में डालने के काफी समय बाद पौधों को प्राप्त होते हैं। इसी कारण से इनको बुवाई से काफी समय पूर्व खेत में मिलाया जाता है।	10. इन खादो में मौजूदा पोषक तत्व खेत मे डालने के बहुत थोड़े समय बाद ही पौधों को प्राप्त होने लगते हैं।
11. इनके प्रयोग से पौधों की सन्तुलित वृद्धि होती है।	11. इनके प्रयोग से पौधों की वृद्धि में सन्तुलन नहीं रहता है। जैसे नत्रजनित खादों मे अधिक प्रयोग से पौधों की वानस्पतिक वृद्धि होती है और वह देर से पकता है। इसके विपरीत फास्फोरस इस दोष को काफी सीमा तक कम करते हैं। इसके प्रयोग से पौधों को शक्ति मिलती है। इनकी जड़ें अधिक वृद्धि करती हैं और पौधे अधिक फल-फूल पैदा करते हैं।
12. मृदा ताप पर इन खादों का अच्छा प्रभाव पड़ता है।	12. ऐसा कोई लाभ इनसे नहीं होता।
13. इनके प्रयोग से शस्यों की जल माँग घटती है।	13. इनके प्रयोग से शस्यों की जल माँग बढ़ती है।
14. इनके अधिक प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती चली जाती है।	14. इसके अधिक प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति घटती चली जाती है। कभी-कभी तो उर्वरा शक्ति इस परिणाम तक घट जाती है कि वह फसल के उत्पादन के योग्य नहीं रहती।
15. इनके प्रयोग से भूमि मे कार्बन, नत्रजन का अनुपात सन्तुलित रहता है।	15. इनके प्रयोग से ऐसा प्रभाव नहीं होता।

अभ्यासार्थ-प्रश्न

1. नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश युक्त उर्वरकों के संगठन बताओ तथा उनका मिट्टी पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?
2. उर्वरकों का उपयोग, उचित रख-रखाव एवं प्रयोग करने की विधि का सविस्तार वर्णन करें।
3. निम्न पर टिप्पणी लिखें—
   (i) खाद प्रयोग करने की संस्थापन विधि
   (ii) पूर्ण अनुप्रयोग विधि
4. देशी व रासायनिक खाद में क्या अन्तर है ? संक्षेप में लिखो।

अध्याय-11

गेहूँ (Wheat)

वानस्पतिक नाम (Triticum Vulgare)

परिचय—भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां की 80% जनसंख्या खेती का काम करती है। हमारे देश की मुख्य फसलें भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होने पर भी गेहूं का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि गेहूं ही ऐसा खाद्य है जो पूरे वर्ष प्रयोग में लाया जाता है। इसलिए गेहूं की खेती की उन्नतशील कृषि क्रियायें अपनायी जाये, जिसमें पूरे वर्ष के लिए गेहूं पर्याप्त मात्रा में हो सके, तथा जनसाधारण की आवश्यकताओं को पूरी कर सके। गेहूं का खाद्यान्नों में प्रथम स्थान है।

जलवायु—गेहूं जाड़े की ऋतु में ठण्डे भागों में उगाया जाता है तथा समुद्र तल से 2000 से 3000 फीट की ऊँचाई वाले भागों में भी उगाया जा सकता है। वृद्धि के समय गेहूं को ठण्डक तथा पकने के लिए अपेक्षाकृत गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। जिन प्रदेशों में वार्षिक वर्षा 20" से 40" तक होती है तथा जाड़ा पड़ता है वहां गेहूं सुगमता से उग सकता है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में समय-समय पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। अंकुरण के लिये 80 से 90 फा. तापक्रम उपयुक्त है।

भूमि का चुनाव—गेहूं के लिए दोमट अथवा मटियार भूमि जो कुछ भारी व उपजाऊ हो, अच्छी रहती है। जल निकास की सुविधा होनी चाहिये।

खेत की तैयारी—यदि खेत में खरीफ की फसल बोई गई है तो उसे कचरे को अलग कर देना चाहिये या 25 किलो प्रति हेक्टेयर अमोनियम सल्फेट डालकर खेत में ही गलाकर खाद बना देनी चाहिये। फिर मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई कर देनी चाहिये। इसके बाद देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई करके भूमि को खूब भुर-भुरा बना देना चाहिये। कीड़े मारने के लिए अन्तिम जुताई से पहले आल्ड्रीन पाउडर 35 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बुरक कर जुताई कर देनी चाहिये।

बीज का चुनाव—गेहूं के लिए जहां तक हो स्वस्थ, बीमारी रहित एवं शुद्ध बीज को ही चुनना चाहिये। इसके साथ ही उपज को ध्यान में रखते हुये बीज चुना जाय।

उपयुक्त किस्में—आधुनिक युग में गेहूं की बहुत सी किस्में निकाली गई हैं। पहले तो देशी गेहूं ही उगाया जाता था। मगर बढ़ती हुई जनसंख्या को देखकर वैज्ञानिकों ने अनेक अधिक उपज देने वाली किस्मों को विकसित किया है। इन किस्मों में से उनके गुणों के आधार पर उन्नत तथा उस क्षेत्र के लिए उपयुक्त किस्मों को चुनना चाहिये।

अभ्यासार्थ-प्रश्न

1. नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश युक्त उर्वरकों के संगठन बताओ तथा उनका मिट्टी पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?
2. उर्वरकों का उपयोग, उचित रख-रखाव एवं प्रयोग करने की विधि का सविस्तार वर्णन करें।
3. निम्न पर टिप्पणी लिखें—
   (i) खाद प्रयोग करने की संस्थापन विधि
   (ii) पूर्ण अनुप्रयोग विधि
4. देशी व रासायनिक खाद में क्या अन्तर है ? संक्षेप में लिखो।

कृषि विभाग राजस्थान द्वारा अनुमोदित गेहूं की किस्में

किस्म	किस्म विशेषताएं	क्षेत्र
आर. एस. 3–1	सामान्य ऊंचाई सफेद, चिकने तुषनिपत्र (ग्लूम), जल्दी पकने वाली 25 से 60 क्विटल प्रति हेक्टर. उपज।	अजमेर, जोधपुर⋯खण्ड (राजस्थान के उत्तरी-पूर्वी तथा उत्तरी-पश्चिमी भाग।) श्रीगंगानगर (उत्तरी भाग)
सी .591	ऊंचा कद, काले रोयेदार तुषनिपत्र, विलम्ब से पकने वाली, 25 व 30 क्विटल प्रति हेक्टर उपज।	कोटा-उदयपुर खण्ड (दक्षिण-पूर्वी भाग में)
एन. पी. 718	सामान्य ऊंचाई, थोड़े मुड़े हुए चोंच वाले तुषनिपत्र, सामान्य अवधि में पकने वाला, 25–30 प्रति हेक्टर उपज।	सम्पूर्ण राजस्थान
सी. 281	ऊंची लम्बी झुकी हुई वालियां, रोयेदार तुषनिपत्र, शीघ्र पकने वाली, 12–18 क्विटल प्रति हेक्टर।	कोटा उदयपुर खण्ड (दक्षिणी-पूर्वी भाग।)
मालवी इक-दानिया	कम ऊंची, लम्बे चिकने तुषनिपत्र, सामान्य शीघ्र पकने वाली बारानी फसल के लिये उपयुक्त।	जोधपुर खण्ड या अन्य भाग जहां भूमि क्षारीय है।
खारचिया 65	सामान्य ऊंची, लाल रंग का दाना, सफेद रंग की अच्छी भरी वालियां, सामान्य देर से पकने वाली. 12–20 क्विटल/हेक्टर उपज।	जोधपुर कोटा (दक्षिणी-पूर्वी भाग)।
डी. 134	सामान्य कम ऊंची सफेद रंग की वालियां शीघ्र पकने वाली 25–30 क्विटल/हेक्टर उपज. बारानी खेत के लिए उपयुक्त।	

तालिका—7
गेहूँ की उन्नत किस्मों का विवरण

किस्म	पौधे की ऊँचाई	पकने की अवधि	बालियों का स्वरूप	दानों का आकार व रंग	औसत उपज क्विंटल/हेक्टर
कल्याण सोना, 1593,	बौना 3 फीट	मध्यम पछेती 125 दिन	आयताकार व लम्बी	छोटा गेरुआ व कड़ा	45 से 50
सोना 227 सोनालिका, एस. 308, 1553	अंशतः बौनी 3½ फीट या 4 फीट	अगेती 110 दिन	आयताकार व लम्बी	"	" "
आर. आर. 21 सफेद लरमा एस. 307	" "	मध्यम पछेती 125 दिन	आयात, तक्वाकार व मध्यम	मध्यम, लम्बा, सफेद व नर्म	" "
सरबती सोनेरा	बौनी 2½ फीट	मध्यम पछेती	तक्वाकार व मध्यम	मध्यम गेरुआ कड़ा	" "
लाल बहादुर ई. ए. 222–1	2½ फीट से 3 फीट	मध्यम पछेती 130 दिन	लम्बी आयताकार	मध्यम कड़ा	50 से 63
हीरा एच. डी. 1941	" "	अगेती 115 दिन	आयताकार लम्बी	बड़ा दाना अम्बर	62 से 75
यू. पी. 301	" "	मध्यम पछेती 30 दिन	आयताकार मध्यम व कूंचदार	मध्यम कड़ा अम्बर	75 से 87

उपरोक्त गेहूँ की उन्नत किस्मों के अतिरिक्त निम्नलिखित उन्नत किस्में भी निकाली जा चुकी हैं यू. पी. 310, 215, 302, 219 खचिया 65, डी, 34, मोती डब्ल्यू. जी. 357 एच. डी. (अर्जुन), 1999, 1982 (जनक), सी 306, डब्ल्यू. एच. 147, पंजाबी।

कृषि विभाग राजस्थान द्वारा अनुमोदित गेहूं की किस्में

किस्म	किस्म विशेषताएं	क्षेत्र
आर. एस. 3–1	सामान्य ऊंचाई सफेद, चिकने तुषनिपत्र (ग्लूम), जल्दी पकने वाली 25 से 60 क्विंटल प्रति हेक्टर. उपज ।	अजमेर, जोधपुर⋯खण्ड (राजस्थान के उत्तरी-पूर्वी तथा उत्तरी-पश्चिमी भाग ।)
सी .591	ऊंचा कद, काले रोयेदार तुषनिपत्र, विलम्ब से पकने वाली, 25 व 30 क्विंटल प्रति हेक्टर उपज ।	श्रीगंगानगर (उत्तरी भाग)
एन. पी. 718	सामान्य ऊंचाई, थोड़े मुड़े हुए चोंच वाले तुषनिपत्र, सामान्य अवधि में पकने वाला, 25–30 प्रति हेक्टर उपज ।	कोटा-उदयपुर खण्ड (दक्षिण-पूर्वी भाग में)
सी. 281	ऊंची नम्बी झुकी हुई वालियां, रोयेदार तुषनिपत्र, शीघ्र पकने वाली, 12–18 क्विंटल प्रति हेक्टर ।	सम्पूर्ण राजस्थान
मालवी इक-दानिया	कम ऊंची, लम्बे चिकने तुषनिपत्र, सामान्य शीघ्र पकने वाली बारानी फसल के लिये उपयुक्त ।	कोटा उदयपुर खण्ड (दक्षिणी-पूर्वी भाग ।)
खारचिया 65	सामान्य ऊंची, लाल रंग का दाना, सफेद रंग की अच्छी भरी वालियां, सामान्य देर से पकने वाली, 12–20 क्विंटल/हेक्टर उपज ।	जोधपुर खण्ड या अन्य भाग जहां भूमि क्षारीय है । जोधपुर कोटा
डी. 134	सामान्य कम ऊंची सफेद रंग की, वालियां । शीघ्र पकने वाली 25–30 क्विंटल/हेक्टर उपज. बारानी खेत के लिए उपयुक्त ।	(दक्षिणी-पूर्वी भाग) ।

किस्म	किस्म विशेषताएं	क्षेत्र
दुर्गापुर 65	सामान्य ऊंचाई, सफेद चिकन तुषनिपत्र, जल्दी पकने वाली, 25--30 क्विंटल प्रति हेक्टर उपज।	अजमेर, जोधपुर (राजस्थान के उत्तरी-पूर्वी और उत्तरी-पश्चिमी भाग)।
सोनालिका एस. 308	सामान्य अधिक ऊंचाई, शरबती, मोटा दाना, जल्दी पकने वाली देर से बोने के लिए सबसे उपयुक्त, 40-45 क्विंटल प्रति हेक्टर उपज।	सम्पूर्ण राजस्थान।
कल्याण सोना	कम ऊंचाई अधिक मोटी बाली अम्बर दाना, समय व देरी से बोने के लिए सबसे उपयुक्त, औसत उपज 40-55 क्विंटल प्रति हेक्टर।	" "
शरबती सोनारा	कम ऊंचा, देरी से बोने के लिए उपयुक्त, जल्दी पकने वाली, औसत उपज 40-50 क्विंटल प्रति हेक्टर।	" "
लरमारोहो	सामान्य अधिक ऊंची, जल्दी पकने वाली, भारी मिट्टी में होने वाली, औसत उपज 40-45 क्विंटल प्रति हेक्टर।	" "
लाल बहादुर	विश्व की सबसे पहली तीन जीनी बोनी किस्म, अवधि फुटान के लिए, विशेष प्रसिद्ध, मोटी एवं अधिक वजन वाला दाना सामान्य देरी (20 दिन में पकने वाली), औसत उपज 60-65 क्विंटल प्रति हेक्टर।	" "
राजस्थान 911	काठा गेहूं द्विजीनी बौनी किस्म रोग रोधक एकसी फुटान करती हुई बालियां।	जोधपुर कोटा व उदयपुर खण्ड।

बुआई—

(1) बुआई का तरीका प्रायः हमारे यहाँ गेहूँ की बुआई के निम्न तरीके हैं—(अ) छिटकवां विधि (ब) नाई द्वारा (स) डिबलिंग विधि (द) सीड ड्रील द्वारा छिटकवां विधि कम अपनाई जाती है।

(2) बीज की गहराई—कुछ किये गए प्रयोगों के आधार पर उन्नत किस्मों के बीज को 5 सेमी. गहरे बोने पर अच्छे परिणाम मिलते हैं।

(3) बीज की मात्रा—गेहूँ का बीज 100 किग्रा. से 120 किलो प्रति हे. उचित रहता है। बुआई का समय और गेहूँ की किस्म पर बीज की मात्रा निर्भर करती है। डिबलर से बुआई करने पर 20 से 25 कि. हे. बीज पर्याप्त होता है।

(4) बोने का समय—गेहूँ मध्य नवम्बर से दिसम्बर के मध्य तक बोये, ताकि उन्हें मार्च-अप्रेल में काटा जा सके। कुछ प्रयोगों के आधार पर 5 से 19 नवम्बर तक बोने से अधिकतम उपज मिली, बाद में बोने से उपज कम हो जाती है। यू. पी. 301 को 10 नवम्बर तक बोने से अधिकतम उपज मिलती है। वैसे दाने के जमने के लिए तापमान 20^0 से 25^0 से अधिक उपयुक्त है। इस तापमान से कम या अधिक होने पर बीज का जमाव कम होता जाता है। पौधे की बढ़वार के लिए 25^0 से. तथा पकने के लिए 30^0 से. तापमान अधिक उपयुक्त हैं। 62·5 सेमी. से 87 सेमी. वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त हैं तथा जमाव के लिए 50% से 60% तक आर्द्रता विशेष रूप से उपयुक्त है। राजस्थान के उत्तरी भाग में गेहूँ जनवरी के प्रथम सप्ताह तक बोया जाता है।

खाद उर्वरक पहली फसल मे देशी खाद न दिया हो तो बुआई के 4 या 6 सप्ताह पूर्व 160 से 200 कि. हेक्टर देशी खाद अच्छी तरह मिला देनी चाहिये। इसके अलावा बौने गेहूँ के लिए प्रति हेक्टर 100 किलो नाइट्रोजन, 48 किलो फास्फोरस तथा 30 किलो पोटाश चाहिये। पूरा पोटाश व फास्फोरस तथा ½ भाग नाइट्रोजन के लिए उर्वरक बुआई से पहले 7.5 सेमी. दूर बीज बोने वाली कतारों मे 7·5 सेमी. गहरा बो दें या निम्न मिश्रण बनाया जाय—
(1) 100 किलो डी. ए. पी. 70 किलो अमोनिया सल्फेट या 33 किलो यूरिया।
(2) 321 किलो सुपरफास्फेट, 163 किलो अमोनिया सल्फेट या 70 किलो यूरिया का मिश्रण बना लें। इन मिश्रणों में 50 किलो म्यूरेट आफ पोटाश और मिला लें। खड़ी फसल मे 30, 33 किलो नाइट्रोजन दो बार मे दें। पहली सिंचाई के साथ 165 किलो अमोनिया सल्फेट या 60 किलो यूरिया छिड़क दें। शेष इतना ही उर्वरक तीसरी सिंचाई पर दें। दानों मे दूध भर रहा हो तब 25 किलो यूरिया प्रति एकड़ घोलकर छिड़काव करने से लगभग 6.8 क्वि./हे. अधिक उपज मिली जो प्रयोगों द्वारा देखा गया है।

सिंचाई—मिट्टी की किस्म के अनुसार बुआई के 20 से 25 दिन बाद पहली सिंचाई करें। बाद मे हर तीसरे सप्ताह पानी देते रहें, पकने तक भारी मिट्टी

मे 5 से 6 सिंचाई लग जायेगी तथा हल्की मिट्टी में 8 से 10 सिंचाई लगेगी। क्योंकि कुछ जातियां ऐसी हैं जिनको तराई, क्षेत्रों में या पानी-की अधिकता में उगाया जा सकता है। सिंचाई की सुविधा होने पर ही दी गई खाद की मात्रा का प्रयोग करना चाहिये। यदि सिंचाई की सुविधा नही है तो उर्वरक पर खर्च कम करना चाहिये। एस 308 मे पहली सिंचाई का बहुत असर पड़ता है, इसलिए बुआई के 22 दिन बाद पानी लगा देना चाहिये ताकि उस समय पौधों की क्राउन जड़ें बनती तथा टिलर का विकास होता है, पौधो की बढ़वार से खरपतवारों की रोक होती है।

बुआई के बाद 6 सिंचाई निम्नलिखित समय पर देनी चाहिये—

1. प्रथम सिंचाई फसल बोने के 20–30 दिन बाद (जड़ जमने पर)
2. दूसरी सिंचाई प्रथम सिंचाई के 30–35 दिन बाद (फुटान के समय)
3. तीसरी सिंचाई दूसरी सिंचाई के 25–30 दिन बाद (गांठें बनते समय)
4. चौथी सिंचाई तीसरी के 15–20 दिन बाद (बाली आने पर)
5. पांचवी सिंचाई चौथी सिंचाई के 25–30 दिन बाद (दूधिया अवस्था में)
6. छठी सिंचाई पांचवी सिंचाई के 15–20 दिन बाद (लेट डफ स्टेज पर

पानी की कमी हो तो 5 सिंचाई इस प्रकार करें—

1. प्रथम सिंचाई फसल बोने के 20–30 दिन बाद (जड़ जमने के समय)
2. दूसरी सिंचाई प्रथम सिंचाई के 30–35 दिन बाद (फुटान के समय)
3. तीसरी सिंचाई दूसरी सिंचाई के 25–30 दिन बाद (गांठ बनते समय)
4. चौथी सिंचाई तीसरी सिंचाई के 20–25 दिन बाद (बाली आने पर)
5. पांचवी सिंचाई के 20–25 दिन बाद (दूधिया अवस्था में)

निकाई-गुड़ाई—बुआई के बाद हल्की वर्षा हो जाने से एवं सिंचाई से मिट्टी जम जाती है। ऐसी दशा मे फसलो की वृद्धि नहीं हो पाती। इसलिए निकाई-गुड़ाई कर देनी चाहिये। जिससे खरपतवारों को भी नष्ट किया जा सके व नमी की ह्रास को रोकने के लिए तथा वायु संचार के बढ़ाने मे सहायक हो। इससे फसलों की वृद्धि तेजी से होती है। गेहूं में कुल 2 सिंचाई-गुड़ाई क्रमशः पहली व दूसरी सिंचाई के बाद ओट आने पर करनी चाहिये।

खरपतवारों को नष्ट करना—वैसे खरपतवारों को निकाई-गुड़ाई के द्वारा ही नष्ट कर दिया जाता है। इसके अलावा रासायनिक विधि से भी खरपतवारो को नष्ट करने के लिए 2, 4–डी तथा सी. पी. ए. का प्रयोग किया जाता है। 2, 4-डी चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे खरतुआ, बथुआ आदि को नियन्त्रित करता है। इसके कई रूप है—(1) सोडियम साल्ट—यह चूर्ण होता है। टैपसाइड

या फारनोक्सीन के नाम से जाना जाता है, 8% शुद्ध होता है। 1 किलो/हे. काफी है। (2) मसाइन रूप-यह द्रव के रूप में मिलती है। ब्लेडेक्स-जी के नाम से जाना जाता है। 76% शुद्ध होता है। 1.04 लीटर/हे. काफी है। (3) चस्टर रूप-यह भी तरल रूप मे होता है। ब्लेडेक्सी के नाम से बाजार में मिलती है। 3 % शुद्ध होता है। 1·40 लीटर काफी है। 600 से 800 लीटर पानी में मिलाकर 30 दिन बाद छिड़कें। मगर पावर स्प्रेयर मे 400- 00 लीटर पानी ठीक है। इन खरपतवारों के अलावा एक गेहूं का नया खरपतवार (कवकी) फलेरिस माइनर है जो गेहूं के समान होता है। केवल कुछ ही लक्षणों के आधार पर पहचाना जा सकता है। (1) पत्तियों का रंग हल्का हरा होता है। (2) गांठ का रंग लाल होता है। (3) कल्ले गुच्छों में तथा शाखाएँ भी निकलती हैं। (4) बीज काले रंग के अण्डाकार होते हैं तथा गेहूं से काफी छोटे होते हैं। इस तरह पहचानने के बाद या तो उखाड़ देना चाहिए या कम ऊंचाई वाली फसल जैसे चना उगाया जाय। शाक नाशी को भी प्रयोग किया जा सकता है। जैसे एलावलोक, डेकथाल, डायुरान, लोरोक्स तथा ग्रेफराम प्रभावशाली सिद्ध हुये।

कीट तथा उनकी रोकथाम—दीमक को नष्ट करने के लिए मिट्टी में 15-20 किलो 10% बी एच. सी 5% एल्ड्रीन प्रति हैक्टर आखिरी जुताई से पहले भूमि में मिला देनी चाहिये। तना छेदक और तने की मक्खी के नाश के लिए एल्ड्रीन या फास्फीमिडान 1 मिली. दवा प्रति दो लीटर पानी मे घोलकर बहुमाय-तन फव्वारे से छिड़कें। इसके अलावा, दीमक, गुं झिया, बीविल वायर वर्म आर्मी वर्म बालदार गिडार आक्रमण करते हैं। तब 2% फोलीडॉ धूलि को 20 किलो/हे. बिखेरने से, बालदार गिडार सब नष्ट हो जाते है। एल्ड्रीन या हेप्टाक्लोर 5% 20 किलो/हे. देने से दीमक वायर वर्म नष्ट हो जाता है। चूहों को मारने के लिए फास्फाइड जिंक फास्फाइड का चूर्ण प्रयोग करना चाहिए जिसमे जिंक फास्फाइड एक भाग, आटा या दाल या चोकोर 25 भाग, मीठा तेल, थोड़ा सा आटा चिपकाने एवं गुड़ चार भाग होना चाहिए।

बीमारी और उनकी रोकथाम—मोल्या रोग भी एक गेहूं का शत्रु है जो जड़ों से प्रारम्भ होता है। यह अपना सूत्रकृमि बनाता है। इसको मारने के लिए धूम्रकों जैसे डी. डी. टी. ई डी. बी. निमागोन; निमागोन का प्रयोग 40 से 100 गेलन हैक्टेयर के हिसाब से बोने के तीन सप्ताह पहले करना चाहिये। ई. डी. बी. 50 गेलन हैक्टेयर बोने के 3 या 4 सप्ताह पहले देना चाहिये। इनका प्रयोग धूनी देने वाले यन्त्रों से जो 15 से 20 सेमी गहरे पहुंचा दे। स्मट तथा अन्य जो भूमि में होने वाली बीमारी है 250 ग्राम एग्रोसन जो एन अथवा सेरेसन को 100 किलो बीज में मिला देना चाहिये तथा रस्ट अथवा अल्टरनेरिया होती एक या दो स्ट्रेडोइप्थेम जेड 8 अथवा डाइथेन एम-45 को तीन किलो 1000 लीटर पानी

में मिलाकर एक हैक्टेयर फसल के ऊपर छिड़कें। फसल में जिंक की कमी हो तो 50% घोल जिंक सल्फेट तथा 25% चूना का प्रयोग या 25 किलो जिंक सल्फेट/हे. देने से लाभ होता है। जिंक की कमी से पत्तियों में क्लोरोफिल नष्ट हो जाता है तथा पत्ती अधिक लम्बी हो जाती है। कण्डुओं को रोकने के लिए एक भाग थायराम और 500 भाग बीज या 25% की दर से वीटा वैक्स मिलाना चाहिये गेहूं रोग को रोकने के लिए बीज को नमक के घोल में डालें जो बीज तैरे उन्हें निकाल देना चाहिये। इसके अलावा कुग्गी, फफून्दक, बन्द आदि बीमारी है। फफून्द को दूर करने के लिए 20 से 30 किलो प्रति हैक्टर गन्धक बिखेरनी चाहिये करनाल को एग्रोसेन (जी एन.) से उपचारित होना चाहिये। 1 भाग एग्रोसन जी. एन. तथा 500 भाग बीज बोने के 1–2 माह पश्चात् जीनेब का 2% घोल छिड़का जाय। चिड़ियों से बचाने के लिए 6% थाइराम (IMTD) दवा का छिड़काव दूधिया दाने पर करने से चिड़िया गेहूं की फसल को हानि नहीं पहुंचा सकती।

कटाई—फसल के सूखने से 4–5 दिन पूर्व ही काट लेना चाहिये। जब बालियों के अन्दर दाना भर जाय तथा बालियां टेढी पड़ने लगें तभी समझना चाहिये कि फसल पक गई और काट लेना चाहिये। फसल की कटाई मार्च-अप्रेल में की जाती है।

उपज—सारणी संख्या 6 से ज्ञात होता है कि भिन्न-भिन्न किस्में भिन्न-भिन्न उपज देती हैं। किस्मों के आधार पर 60 से 70 क्विंटल प्रति हैक्टेयर अधिकतम प्राप्त होती है। हीरा किस्म पर किये गये प्रयोगों के अनुसार 1/2 एकड़ में प्राप्त उपज 10 क्विटल के लगभग थी। उचित मात्रा में उर्वरक देने पर हीरा से 120 क्विटल प्रति हेक्टर उपज प्राप्त की जा सकती है। गेहूं की औसत उपज 25 से 30 क्विटल हेक्टर प्राप्त होती है।

अच्छे बीजों का उपचार अच्छे बीजों को चुनकर अच्छी तरह उपचारित करना चाहिये। बीमारी से बचने के लिए सिरसेन या थिरसेन को 3 ग्राम दवा प्रति किलो बीज को उपचारित कर देगी तथा वर्मं सीमेंट वाली छत पर बीज को उपचारित किया जा सकता है।

सुरक्षित भण्डार—प्रायः ऐसा देखने में आया है कि गेहूं की अधिकतम मात्रा खराब हो जाती है। इसको बचाने के लिए उपाय करना चाहिये इस तरह काफी गेहूं नष्ट हो जाता है, गेहूं को भण्डार करने के बाद दवाओं का धूमना करना चाहिये। इसके लिये थाइड्रल डाई क्लोराइड और कार्बन टेट्राक्लोराइड को 3 : 1 के अनुपात में मिलाकर भण्डार में डालना चाहिये। डी. डी. टी. लिटेन एवं कार्बनडाई सल्फाइड भी प्रयोग किये जा सकते है 28 टन अनाज के लिये दो किलो

कार्बनडाइ सल्फाइड पर्याप्त है । चूहों इत्यादि से बचने के लिये बेरियम कार्बोनेट, आर्सनिक आक्साइड, जिंक फास्फेट इत्यादि दवाओं का प्रयोग किया जाता है । इसके अलावा अन्य दवायें भी हैं तथा अन्य प्रयोग भी है। जैसे-"पूसाबिन" भारतीय कृषि अनुसंधान के कीट विभाग ने खोज की है कि यदि फुटलोंव पत्तियों को दीवारों में अल्केथीन पर्त लगा दिया जाए तो दो लाभ होते है ।

(1) सील अन्दर नही जायेगी ।

कार्बनडाई आक्साइड बाहर नहीं निकलेगी और कीड़ों को मार देगी । इसी को ही "पूसाबिन" कहते हैं ।

गेहूं को भण्डार मे सावधानी से नही रखा जावे तो लगभग 25% तक गेहूं भण्डार में नष्ट हो जाता है । गेहूं को भण्डार में सुरक्षित रखने के लिए आप इस प्रकार उपाय कर सकते हैं—

1. गेहूं गोदाम में रखने से पूर्व अच्छी प्रकार सुखाकर रखना चाहिये ।
2. जहां तक हो सके गेहूं का भण्डार पक्के गोदाम में जिसमें चूहे आदि हानि नही पहुंचा सकें रखना चाहिए ।
3. यदि गेहूं का भण्डारण कच्चे गोदाम मे किया जाना हो तो—
   (क) भण्डार को एल्यूमीनियम फास्फाइड से धूमित कर लेवे ।
   (ख) यदि पुरानी बोरियों मे गेहूं रखना हो तो उन बोरियों को धूमित कर प्रयोग में लेवें ।
   (ग) गोदाम को साफ कर लीप दिया जावे जिसमें, बी. एच. सी पाउडर का प्रयोग भी करें ।
   (घ) गेहूं की भरी बोरियों गोदाम में नीचे पट्टों पर दीवार से कुछ दूर रखें
   (ङ) इन बोरियों पर मैलाथियोन 2% डस्ट का हल्का भुरकाव कर देवें ।
   (च) जिस गोदाम मे गेहूं रखा जावे वह हवादार हो और नमी आने की सम्भावना न हो ।
   (छ) भण्डार करने के आधुनिक सीड 'बीन' का प्रयोग करें । यदि भण्डार किये गये गेहूं के कीड़ो का प्रकोप हो जाये, तो निम्न उपचार करें—

कीट ग्रस्त गेहूं को हवा में उड़ाकर साफ करने तथा धूप में अच्छी प्रकार सुखा लेवें । यदि गेहूं अधिक मात्रा में हो और उडाना व सुखाना सम्भव न हो तो जिस अवस्था में गेहूं हो उसे धूमित कर देवें । धूमित करने के लिए एल्यूमीनियम फास्फाइड 3 से 4 गोलियां प्रति टन या 3 × 3 × 3 मीटर के लिए तीन गोलियां प्रयोग में लेवें एवं गोदाम को 72 घण्टे तक धूमित अवस्था मे रखें ।

फसल चक्र

(1) पड़ती गेहूं (2) ग्वार—गेहूं, (3) धान—गेहूं, (4) कपास (बीकानेर नरमा) गेहूं, (5) चना—पड़ती गेहूं, (6) सनई—गेहू, पड़ती-गन्ना ।

गेहूं पैदा करने का उत्तर प्रदेशीय ढंग

उत्तर प्रदेश के कृषि विभाग ने गेहूं पैदा करने का आदर्श ढंग निकाला है। इस ढंग में जुताई, खाद उन्नत, बीज, सिंचाई कीड़ों तथा बीमारियों से रक्षा इत्यादि का समुचित समन्वय रखा गया है। इस प्रकार गेहूं की उत्तम उपज ली जा सकती है।

भूमि की तैयारी—खेत तैयार करने के लिए लगभग 10–25 आडी तथा टेढ़ी जुताइयां करनी चाहियें। जुताई सायकाल करके प्रातः सूर्य निकलने से पूर्व ही पाटा चला देना चाहिए। 15 सितम्बर के बाद प्रथम जुताई विक्टरी अथवा पंजाब हल से करके फिर देशी हल से जुताई करनी चाहियें। देशी हल के स्थान पर कल्टीवेटर के प्रयोग से तैयारी आसानी से हो जाती है। घास तथा पिछली फसल के ठूंठ निकालने के लिए हैरो तथा सिद्ध पटेला का प्रयोग करना चाहियें। यदि खेत में नमी की कमी दीख पड़े तो खेत में पलेवा करके बुवाई करना चाहियें।

जिन खेतों में हरी खाद का प्रयोग किया गया हो उनमें किसी मिट्टी पलटने वाले हल का प्रयोग करके 3–4 बार कल्टीवेटर चलाना चाहियें।

बुआई का समय—बुआई 20 अक्टूबर के बाद जितनी शीघ्र हो सके प्रारम्भ करके अक्टूबर के अन्त तक समाप्त कर देनी चाहियें।

बीज व बीज की मात्रा—स्वस्थ व उन्नत बीजों को ही बुआई के कार्य में लाया जाय। बीज की मात्रा भूमि के उपजाऊपन और बुवाई के ढंग के अनुसार घट बढ सकती है। खेत की अच्छी तैयारी और खाद की पर्याप्त मात्रा दिये जाने पर 65-75 किग्रा. बीज प्रति हेक्टर बीज काफी होता है। बीज को सीडड्रिल द्वारा अथवा हल के पीछे कूड़ों में होना चाहिये।

डिबलर से बुआई करने पर लगभग 26 कि. ग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। लेकिन डिबलर के प्रयोग के लिए खेत में पर्याप्त नमी व खाद दिया जाना चाहियें। एक-एक छेद में दो बीज डालें जाने चाहियें।

भूमि—(1) सन, ढैंचा, लोबिया, ग्वार, मूंग नं. 1 इत्यादि की हरी खादों से 40 से 60 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर मिल जाता है। अतः हरी खाद की दशा के अनुसार खेत में 25 किग्रा. तक नाइट्रोजन और 55 किग्रा. फास्फोरस एसिड की आवश्यकता होती है जो नीचे लिखे अनुसार उपलब्ध की जानी चाहियें।

200 किग्रा. अण्डी की खली + 50 किग्रा. अमोनियम सल्फेट + 300 किग्रा सुपरफास्फेट।

अण्डी की खली अमोनियम सल्फेट को मिलाकर अन्तिम जुताई के बाद छिड़का जावे। बाद में पाटा लगाया जावे। सुपर फास्फेट को बीज के साथ कूंडों में बुआई के समय डाला जावें।

(2) यदि हरी खाद का प्रयोग न हुआ हो तो लगभग 40 क्विंटल गोबर की खड़ी खाद गेहूं बोने के लगभग एक मास पूर्व खेत मे मिला देनी चाहिये। इसके बाद निम्नलिखित उर्वरकों का मिश्रण प्रति हैक्टर देना चाहिये ।

200 किग्रा अण्डी की खली + 50 किग्रा अमोनियम सल्फेट + 25 किग्रा यूरिया + 100 किग्रा. हड्डी का चूरा अथवा सुपर फास्फेट ।

(3) खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिये। अधिक वर्षा वाले वर्ष में या हल्की भूमि मे जहां फसल निर्बल दिखाई पड़े 50 से 75 किग्रा. प्रति हैक्टर की दर से अमोनियम सल्फेट छिड़क देना लाभदायक रहता है। इसका प्रयोग पहली सिंचाई के समय करना चाहिये ।

सिंचाई—गेहूं की पहली सिंचाई बुआई के ठीक 20-22 दिन बाद देनी चाहिये। दिसम्बर में महावट न होने पर दूसरी सिंचाई जनवरी के पहले अथवा दूसरे सप्ताह मे कर देनी चाहिये। जनवरी के अन्त में वर्षा न होने पर तीसरी सिंचाई फरवरी के प्रथम अथवा दूसरे सप्ताह में कर देनी चाहिये।

आन्तरिक क्रिया (Inteeculture)—पहली सिंचाई के बाद खेत में हो अथवा हैरो की सहायता लेकर खरपतवार निकाल देना चाहिये।

रोगिंग (Rognig)-फसल मे से जौ, जई आदि के पौधे, कडुआ लगी वाले पौधे अथवा गेहूं की जो जाति बोयी गई उस जाति से अन्य किसी गेहूं की जाति के पौधों, उनकी बालों की पहिचान करके उखाड़ कर अलग कर देनी चाहिये।

मड़ाई (Thresnig)—लाक की मड़ाई के लिए आल पवेड़ थ्रेसर का प्रयोग करना चाहिये। मड़ाई के इस यन्त्र के प्रयोग से मड़ाई के व्यय मे 40% की बचत होती है तथा मड़ाई कम समय और परिश्रम मे समाप्त होती है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. गेहूं की खेती निम्न शीर्षकों के आधार पर लिखें—

   (अ) भूमि की तैयारी (ब) खाद व उर्वरक की मात्रा
   (स) सिंचाई (द) उपज
   (य) रोग एवं कीट ।

2. गेहूं की खेती उत्तर प्रदेशीय ढंग से कैसे करोगे ?

3. निम्न पर टिप्पणी लिखो—

   (अ) भूमि उपचार (ब) बीज उपचार
   (स) दीमक का प्रकोप (द) उन्नतशील जातियाँ ।

4. गेहूं की फसल में निम्न परिस्थितियों में खाद एवं उर्वरकों की कितनी मात्रा कब और कैसे करेंगे—

   (अ) सिंचाई की सुविधा होने पर ।
   (ब) सिंचाई की सुविधा न होने पर ।

धान (PADDY)

वानस्पतिक नाम (Oarza Sativa)

परिचय—धान हमारे देश की महत्वपूर्ण फसल है फिर भी पैदावार की दृष्टि से हम बहुत पीछे हैं। भारत में इसकी औसत उपज लगभग एक टन प्रति हेक्टर है। हमारे देश से चावल की पैदावार कम होने के तीन कारण हैं—

(1) धान की लम्बी कमजोर तनों वाली, पुरानी किस्में-जो अधिक खाद पानी को सहन नही कर पाती और जल्दी गिर जाती हैं।

(2) खेत की उन्नत विधियों और अच्छे प्रबन्ध का सर्वथा अभाव है।

(3) देश की गर्म-आर्द्र जलवायु जो धान के लिये कम और धान के हानिकारक कीड़ों व रोगो के लिए अधिक उपयुक्त है।

जलवायु—उत्तर प्रदेश के मैदान में धान की मुख्य फसल खरीफ (जून से नवम्बर) के मौसम में ली जाती है, जबकि वर्षा, आर्द्रता और तापमान लगभग 25–30° से. ग्रे. तीनों ही प्रचुर मात्रा मे होते हैं। दक्षिणी भारत में इसकी दो फसलें ली जाती है।

भूमि—धान की खेती नीची और ऊंची, दोनों ही प्रकार की भूमि में की जाती है अर्थात् धान के लिए दोमट भूमि चाहिए, जिसमें पानी रोकने की शक्ति अधिक हो। बलुई भूमि धान के लिए सर्वोत्तम नहीं मानी जाती। नीची भूमि में चावल के पूरे वृद्धि काल मे पानी भरा रहता है। नीची भूमि में रेहयुक्त और रेह रहित दोनों ही मृदाओं में की जाती हैं। ऊंची भूमियों में धान की खेती करने पर खेत में पानी भरा रखने की कोई व्यवस्था नहीं रहती है इसलिए उत्तम नहीं रहती है।

खेती की तैयारी—जिस खेत में धान की फसल लेनी हो उसे गर्मी में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरा जोत देना चाहिए ताकि पानी रोकने की शक्ति बढ़ जाये। इसके साथ पौध तैयारी भी करते रहना चाहिए। यदि धान को रोपाई से लगाना है।

खाद—धान की फसल के लिए तैयारी के समय 200–250 क्विंटल प्रति हेक्टर गोबर की सड़ी खाद देना उपयुक्त होती है।

उर्वरकों का प्रयोग निम्न प्रकार—

120 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टर जिसका 2/3 भाग खेत की तैयारी के समय तथा 1/2 भाग टोप ड्रेसिंग के रूप मे दिया जाये। यह नाइट्रोजन की मात्रा

200 किलोग्राम अमोनियम सल्फेट या 90 किलोग्राम यूरिया प्रति हैक्टर से पूरा कराना चाहिये। बुआई के समय 20 से 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट भी डालें।

60 किलोग्राम सुपर फास्फेट जो कि सिंगल सुपर फास्फेट के रूप में देना है तथा 60 किलोग्राम पोटाश के रूप में देना है तथा एक किलोग्राम यूरिया का 250 लीटर पानी में घोल बनाकर हाई वोल्यूम स्प्रेयर से खड़ी फसल में छिड़काव कर देना उत्तम रहता है।

बीज की मात्रा—बीज धान की किस्म तथा भूमि और जलवायु के आधार पर अलग-अलग मात्रा में हो सकता है लेकिन 60–75 किलोग्राम प्रति हैक्टर बीज काफी रहता है। वैसे छिटकवां विधि से 100-120 किलोग्राम बीज की आवश्यकता पड़ती है। रोपण विधि से बीज की कम मात्रा लगती है। 20 से 25 कि. ग्रा.।

बीज बोने के ढंग—

1. छिटकवां।
2. हल के पीछे।
3. रोपण विधि।

धान को वैसे तो इन तीन विधियों से बोया जाता है लेकिन उन्नत विधि से धान रोपण ढंग ही सर्वोत्तम माना जाता है।

पौध तैयार करने की विधि—इस विधि से पहले बीज शैय्या में पौध तैयार की जाती है, उसके बाद पौध को रेह मुक्त मिट्टी में रोपा जाता है।

बीज शैया में पौध तैयार करना—

8 मीटर लम्बी
1·25 मीटर चौड़ी
0·20 मीटर ऊँची

इस प्रकार की 80 बीज-शैय्याएं एक हैक्टेयर क्षेत्रफल में रोपने लायक पौध उगाने के लिए पर्याप्त होती है। प्रत्येक बीज शैय्या में 500 ग्राम अमोनियम सल्फेट तथा इतना सिंगल सुपर फास्फेट की मात्रा मिलाकर मिट्टी में मिला देना चाहिये तथा 2·0 ग्राम शैय्या बोते है। बीज शैय्या की बुआई वर्षा के 15-20 दिन पूर्व कर देनी चाहिये। जहां तक सम्भव हो प्रमाणित बीज ही बोया जाये। बीज शैय्या में, सिचाई, खरपतवार, नियन्त्रण, रोग व कीटों के बचाव का उचित प्रबन्ध करना आवश्यक है।

पौध लगाने की एक विधि जो फिलिपाइन जैसे देश में बहुत प्रचलित है 'डेपोग विधि' कहलाती है। पौधों को बगैर मिट्टी के उगाया जाता है। इसमें अंकुरित बीजों की लगभग ½ से मी. मोटी परत को केले के पत्ते, पोलिथिन की चादर अथवा सीमेंट के पक्के फर्श पर बिछा देनी चाहिये तथा उस पर प्रतिदिन पानी

देना चाहिये। 11-13 दिन में पौधे तैयार हो जाते हैं। पौध तैयार करने में किसी भी उर्वरक खाद की आवश्यकता नहीं होती है। समय, मेहनत पैसा तथा रोगों के लगने के भय से बच सकते हैं। पौध-बीज में जमा खाद-पदार्थ को ही प्रयोग मे लिया जाता है। पौध तैयार होने पर उनको रोपने के लिए अलग-अलग कर लिया जाता है।

रोपाई के लिए खेत की तैयारी—रोपाई के पूर्व जोते गये खेत में 10 दिन तक पानी भरा रहना वांछित है। एक जुताई हैरो से कर देनी चाहिये।

रोपाई—मिट्टी मुलायम करने के लिए बीज शैय्या को तर कर लिया जाता है ताकि पौधों को उखाड़ते समय उनकी कम से कम हानि हो। रोपाई के पहले पौधों की जड़ों को धो लेना चाहिये। अच्छी तरह से लेव लगाकर जुताई किये गये खेत में 20×20 सेमी. की दूरी पर दो या तीन पौधे हर एक स्थान पर रोपने चाहिये तथा पौध को 3 सेमी. गहरी ही रोपने से कल्ले अधिक निकलते हैं।

उन्नतशील जातियां—

स्थानीय अनुकूलन को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित जातियां विभिन्न क्षेत्रों के लिये उपयुक्त हैं—

(अ) बारानी क्षेत्रों के लिए जहां वर्षा 30" या सिंचाई के साधन उपयुक्त हो। जैसे कावेरी, बाला साकेत–I, नगीना-22

(ब) सिंचाई वाले क्षेत्रों के लिए-आई. आई. 24 जया, आई. आर. 8 साकेत-3।

(स) ऊसर भूमि के लिए-आई आर. 8, टा 9, टा 23, टा 361

(द) बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लिए-चकिया 9, मधुकर।

(य) पर्वतीय क्षेत्रों के लिए-पद्मा, नैना, कोशांग।

कुछ धान की प्रमुख जातियों का वर्णन उनकी विशेषताओं के आधार पर निम्नलिखित है—.

(1) **आई. आर. 8**—यह धान की जाति डी. जी. डब्ल्यु. तथा पेटा का आपस में सकरण क्रासिंग, से तैयार की गई।

सन् 1966 मे अन्तर्राष्ट्रीय अनुसंधान फिलिपाईन से मंगाई गई थी। इसकी निम्नलिखित विशेषताए हैं—

(अ) पौधों की ऊंचाई 80 सेमी. होती है।

(ब) दाना लम्बा तथा मोटा होता है।

(स) 136-140 दिन मे फसल पक कर तैयार हो जाती है।

(द) इसकी पैदावार 50-52 कु. प्रति हैक्टेर तक हो जाती है।

(य) ब्लास्ट और ब्लाइट अवरोधी हैं।

पंजाब, उत्तरप्रदेश व दिल्ली क्षेत्रों में इसकी खेती उपयुक्त है।

(2) जया—इसका क्रास टाइच्यूंग नेटिव-1 तथा टाइप-151 से किया गया। इसकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

(अ) पौधे की ऊंचाई 70-75 सेमी. होती है।

(ब) 125-130 दिन पकने की अवधि है।

(स) पैदावार 55 कु. प्रति हेक्टर है।

(द) ब्लास्ट तथा ब्लाइट अवरोध है।

पंजाब, उत्तरप्रदेश व दिल्ली क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

(3) पद्मा—इसको 1968 में टाईच्यूंग-1 तथा टाइप-141 के संकरण (क्रासिंग) से तैयार किया गया। इसकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

(अ) शीघ्र पकने वाली किस्म है।

(ब) इसका दाना मोटा तथा छोटा होता है।

(स) इसकी पैदावार 43 कु. प्रति हेक्टेयर तक होती है।

(द) खैरा तथा कीड़ों का कम प्रकोप होता है।

उत्तर प्रदेश तथा असम क्षेत्रों के लिये उत्तम सिद्ध हुई है।

4. आई. आर. 20—यह जाति 1970 में खेती के लिए अनुमोदन की गई जो अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान केन्द्र, फिलीपाइन्स से मंगवाई गयी थी। इसकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं -

(अ) पौधों की ऊंचाई 95 सेमी. होती है।

(ब) धान के पकने की अवधि 160 दिन (उत्तर प्रदेश) तथा 140 दिन (दक्षिण भारत में) है।

(स) दाना पतला तथा मध्यम आकार का होता है।

(द) इसकी पैदावार 45 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक हो जाती है।

इसकी खेती सम्पूर्ण दक्षिणी-पूर्वी भारत में की जाती है।

(5) रत्ना—यह किस्म 1970 में निकाली गई थी। यह किस्म टी. के. एन. 7 और आई. आर. 8 के संकरण (क्रासिंग) से तैयार की गई। इसकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

(अ) पौधों की ऊंचाई 90 सेमी. होती है।

(ब) पानी विशेषकर पतला होता है।

(स) 120 दिन में पक कर तैयार होता है।

(द) इसकी पैदावार 41 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक हो जाती है।

उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में इसकी पैदावार की जाती है।

(6) टाईच्यूंग नेटिव 1—धान की बौनी किस्म के लिये प्रसिद्ध है। सन्

1959 में अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थापन, फिलीपाइन से मंगाई गई थी इसकी निम्नलिखित विशेषताएं है—

(अ) पौधे की ऊचाई 80-82 सेमी. होती है।

(ब) अधिक पानी चाहने वाली किस्म है।

(स) रबी के समय मे 135 दिन मे पक जाती है तथा गर्मी में अर्थात खरीफ में 115-120 दिन में पक जाती है।

(द) इस किस्म मे ब्लाइट बीमारी का प्रकोप होता है।

(य) पैदावार 47 कु. प्रति हेक्टेयर हो जाती है।

कोटा, उदयपुर, श्रीगंगानगर आदि राजस्थानी क्षेत्रों के लिये अधिक उपयुक्त किस्म है तथा दिल्ली, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि प्रदेशों के लिये भी सर्वोपरि है।

(7) आई. आर. 24—पिछले दिनों आई. आर. 24 नामक धान की एक किस्म खेत के लिये जारी की गयी है। किस्म प्रचलित होने से पहले तक इसका प्रायोगिक नाम आई. आर. 66-1-140-3 था। जिसे आई. आर. 8 तथा आई. आर. 12-2-2 के संकरण से चुना गया था। आई. आर. 127-2-2 स्वयं सैन्चुरी पटना 231 और एस. एल. ओ. 17 तथा सिगाडिस के संकरण से प्राप्त किया गया था। आई. आर 66-1-140-3 को अन्तर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान संस्थान (आई. आर. आई.) फिलीपाइन में तैयार किया गया तथा वहां से सर्वप्रथम 1961 में इसे भारत मंगाया गया। पिछले तीन वर्षों के दौरान ये गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं औद्योगिक विश्वविद्यालय, पन्तनगर द्वारा इस पर विस्तृत रूप से परीक्षण किये गये। यहां से ही फरवरी, 1972 मे आई. आर. 24 को खेती के लिये प्रचलन किया गया। इनकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

(अ) यह बौनी, न गिरने वाली, अधिक उपज देने वाली किस्म है।

(ब) इसका दाना लम्बा, पतला व चमकीला होता है।

(स) प्रति क्विटल धान में चावल की मात्रा अधिक निकलती है।

(द यह जया से 7 दिन तथा आई. आर. 8 से 15 दिन पूर्व पककर तैयार हो जाती है।

(क) इसकी पत्तिया गहरे रंग की होती है।

(ख) धान प्रमुख रोग जैसे झोका, मारी, रोग, भूरा, धब्बा, ब्लास्ट, खेरा रोग इस किस्म पर आक्रमण नहीं करते हैं।

(ग) टुंगरों रोग नही लगता है तथा मध्यम रूप से लीफ होपर का प्रतिरोधी है।

(घ) झुलसा रोग कुछ सीमा तक प्रभावित करता है।

(ङ) पकने की अवधि 123 दिन है।

(च) औसत उपज 51 क्वि. हैक्टर होती है।

(8) साकेत 4—लम्बा और पतला चावल होता है। पकने की अवधि 115 दिन है। रोपाई के लिए यह एक अच्छी किस्म है।

(9) कावेरी—चावल मध्यम आकार का मोटा होता है। पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। पकने की विधि 110 दिन है।

(10) पूसा 2-31—मोटी चावल की किस्म है। यह भी 110 दिन से पक जाती है। रोपाई के लिए अच्छी किस्म है।

(11) बाला—यह चावल छोटा व मोटा होता है। धब्बा रोग के लिये प्रतिरोधी है। वर्षा हीन, नवारानी तथा पर्वतीय क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त है। पकने की अवधि 105 दिन है।

(12) कल्लर 8954—यह नाटे कद वाला है। इसकी उपज जया और आई. आर. 8 से अधिक होती है। पकने की अवधि 130-140 दिन है। कोटा और बून्दी क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त है।

(13) एन. पी. 130—कोटा व उदयपुर के लिए यह अच्छी मानी जाती है। सफेद दाने होते हैं। पकने की अवधि 80 दिन है।

(14) सोना—बौने कद की 130-135 दिन में पकने वाली, 60-90 क्वि/हैक्टर उपज है।

(15) मधुकर—बाढ़ क्षेत्रों के लिए।

बीज बोने का समय—जलवायु, वर्षा, ताप तथा आर्द्रता के अनुसार समय आगे घटाया-बढ़ाया जा सकता है लेकिन जून के प्रथम सप्ताह में पलेवा करके बोये जाने वाले धान तथा वर्षा के ऊपर निर्भर होने पर जुलाई का प्रथम सप्ताह है।

सिंचाई—धान अधिक पानी चाहने वाली फसल है जब भूमि थोड़ी नम रहे तब ही सिंचाई की जाये तथा इसकी फसल में पानी भरा रहना चाहिए। कुल 5-7 सिंचाई काफी होती है।

निकाई-गुड़ाई—धान की फसल में निकाई-गुड़ाई का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि अधिक कल्ले फटने से पैदावार अधिक होती है। निकाई-गुड़ाई पैडी वीडर नामक यन्त्र से रोपाई के दो हफ्ते बाद करें।

इसके अलावा स्टेम एफ-34 खरपतवार नाशक दवा का प्रयोग किया जाये। प्रति हैक्टेयर 3 प्रतिशत यूरिया के घोल में स्टेम एफ-34 एक लीटर मिलाकर छिड़कें यदि खेत में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार हो तो उन्हें नष्ट करने के लिए

3-4 हफ्ते पश्चात् स्टेम एफ-34 और पी. पी. ए. (पोटेशियम साल्ट को) आधा-आधा लीटर एक साथ मिलाकर छिड़कें।

हानिकारक कीट व रोकथाम—

(1) धान का तना बेधक कीट—छोटी अवस्था में पौधों पर आक्रमण करता है। तने के दाज के भाग पर हानि पहुंचाता है। इसके नियन्त्रण के लिये एण्ड्रिन—20 ई. सी. का 125 लीटर प्रति हेक्टर की दर से प्रयोग किया जाय। डाईजिनोन तथा गामा बी. एच. सी. 2-3 कि. ग्राम प्रति हेक्टेयर छिड़का जावे।

(2) लीफ होपर—यदि कीट पौधों की पत्तियों को खाता है तथा इस प्रकार का कीट प्लान्ट होपर भी होता है। पौधों को तो हानि पहुंचाता ही है लेकिन विषाणु रोगों के वाहक भी होते हैं। इनके नियन्त्रण के लिए डाइजिनोन तथा गामा बी. एच. सी. 2-3 कि. ग्राम प्रति हेक्टेयर का छिड़काव करें।

(3) धान का माकुण (राइस बग)—यह कीट पौधों के विभिन्न भागों से चूसकर उनको हानि पहुंचाता है। इनके नियन्त्रण के लिए 20-25 कि ग्रा. 5 प्रतिशत बी एच. सी. चूर्ण प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकने की सिफारिश की गई है।

(4) चूहों का नियन्त्रण—चूहों का नियन्त्रण एक सामूहिक कार्य है और किसी एक किसान का एकाकी प्रयत्न चूहों का प्रभावकारी नियन्त्रण से असफल रहता है। पहले दिन विषरहित खाद देना चाहिए। फिर 19 भाग में (मक्का, गेहूं, चावल) एक भाग (भार के अनुपात में) रेटीफिन या रोडफिन के तेल और जीमी के साथ मिलाकर देना चाहिए।

रोग व उनकी रोकथाम—

1. ब्लास्ट के लक्षण—

धान के पौधे के लगभग सभी भाग ब्लास्ट द्वारा ग्रसित होते हैं। शाकीय अवस्था में यह रोग पत्तियों पर तकु के आधार के धब्बों के रूप में परिलक्षित होता है। अभी का किनारा कत्थई रंग तथा तथ्य वाला भाग राख के रंग का हो जाता है।

नियन्त्रण—

इसके नियन्त्रण के लिए बीज का उपचार का तरीका उत्तम है। (1) 1 किलो उत्तम बीज से 2-3 ग्राम एग्रोसन जी. एन. मिलाकर बोया जाये। (2) जिन स्थलों पर ब्लास्ट रोग लगता हो वहाँ हिनोसन 50 ई. सी. के 0·1 प्रतिशत घोल के छिड़काव से इस रोग पर अच्छा नियन्त्रण हो जाता है। (3) अधिक उपज देने वाली किस्में जैसे आई. आर. 8, जगा पद्मा आई. आर. 20 तथा आई. आर. 24 इसकी प्रतिरोधी किस्में हैं।

2. भूरा धब्बा--

लक्षण--धान में यह रोग पौध अवस्था तथा उसके बाद के वृद्धिकाल में होता है। पत्तियों पर वृत्ताकार से अण्डाकार गहरे भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं।

नियन्त्रण--

(1) पोटाश की कमी वाली मृदा में पोटाश के पर्याप्त प्रयोग से फसल में यह रोग कम लगता है।
(2) रोग रोधी जातियां आई. आर. 8, 20, 25 तथा आदि बोई जायें।
(3) रासायनिक रोग नाशियों में सेरेसान एम को (22 कि. ग्रा. बीज में 14 ग्राम) मिलाने से इस रोग पर नियन्त्रण पाया जा सकता है।
(4) जिनेब के 0·25 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने से भी भूरे धब्बे रोग का नियन्त्रण होता है।

3. तना विगलन (स्टेम रोट)—

लक्षण—इस रोग में पौधे के तने की निचली गांठ और पत्ति के खोल पर काले भूरे धब्बे पड़ जाते है। रोगी पौधों के तने अधिकतर हरे रंग के हो जाते हैं।

नियन्त्रण—

(1) 35 लीटर पानी में 45 ग्राम सेरेसान वैट या 37-50 ग्राम एगलोस या 15 ग्राम एराटोन 6·/. को घोलकर 25 कि.ग्रा. बीज को 12 घण्टे तक डुबोयें। सतह पर तैरने वाले बीजों को निकालकर नष्ट करेंगे।
(2) रोपाई करते समय धान की पौध की जड़ों को 18 ग्राम सेरेसेन वेट को एक कनस्तर पानी में घोलकर उसे डुबो देना चाहिये।
(3) रोग जिन फसलों में कम लगता हो उन्हें बोयें।

4. जीवाणु पर्ण रेखा रोग--

लक्षण--पत्तियों मे धारियां पड़ जाती है तथा पत्तियां गीली, भूरी रंग की हो जाती है?

नियन्त्रण--

(1) विश्वसनीय स्थानो से बीज लेना चाहिये।
(2) एग्रोमाइसीन 100 का छिड़काव 7·5 ग्राम प्रति 2·6 गैलन पानी मे घोल बनाकर प्रति हेक्टर छिडका जाये।
(3) रोग रोधी तथा रोग सहिष्णु किस्में जैसे-आई. आर. 20 तथा पन्ना रत्ना उगाई जाये।

5 सेरा रोग—

लक्षण—यह रोग जस्ते की कमी म होता है। प्रारम्भ में यह रोग नैनीताल के तराई क्षेत्रो मे पाया जाता था। परन्तु अब उत्तरप्रदेश, बिहार, पंजाब, आंध्रप्रदेश सभी धान पैदा करने वाले स्थानों मे पाया जाता है। इसकी मुख्य पहचान पत्तियों की शिराओं के मध्य मे जो हरा रंग होता है वह गायब होने लगता है।

नियन्त्रण—

(1) 5 कि. ग्रा. जिंक सल्फेट तथा 1·5 कि. ग्रा. चूना आवश्यकतानुसार पानी मे मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से रोग के पहले लक्षण प्रकट होते ही या रोपाई के 10 दिन बाद छिड़क देना चाहिए।

(2) उत्तरप्रदेश कृषि विश्वविद्यालय पन्तनगर के अनुसंधान केन्द्र पर अभी हाल ही मे हुये प्रयोगों के प्रमाणों के आधार पर 25 कि. ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर मिलाया जावे। (सिंह तथा सिंह 1970)

6. टुग्गारी विषाणु —

लक्षण—यह रोग विषाणु द्वारा होता है पौधे छोटे आकार के हो जाते हैं। पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। दानों पर भूरे धब्बे आ जाते है।

नियन्त्रण—

(1) रोग फुदका के द्वारा फैलता है। इसीलिए कीटनाशक दवा का प्रयोग किया जावे। डाईजेनान का 1·5 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर के हिसाब से नर्सरी में 10 दिन बाद तथा खेत में रोपाई के 15-30-43 तथा 60 दिनों के बाद छिड़का जावे।

कटाई—बाले निकलने के एक माह बाद धान की अधिकांश किस्मों की कटाई की जाती है। धान की बालियों का झुकाव जब नीचे को हो जाय बाली पीली पड़ जाय तथा दाना कड़ा हो जाये तब काटना चाहिये। कटाई से पहले खेत से पानी निकाल देना चाहिये।

उपज—उत्पादक मूल्य का एक बड़ा भाग मानव श्रम तथा उर्वरकों पर व्यय किया जाता है। श्रम पर किये गये व्यय का अधिकांश भाग रोपण की क्रिया पर लगती है। सीधे खेत में बोये गये धान में व्यय खरपतवार नाश मे लगता है। अच्छे जल निकास द्वारा इसका नियन्त्रण हो जाता है। धान की औसत उपज 30 से 55 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

फसल चक्र—

(1) धान-मटर (एक वर्ष)

(2) धान-मटर, ज्वार अरहर, गेहूं (2 वर्ष)

(3) पड़ती गन्ना, चना-धान मटर (3 वर्ष)

जापानी ढंग से धान की खेती

पौध तैयार करना—जितने क्षेत्रफल में धान रोपना, हो उसका बीसवां भाग पौध तैयार करने के लिए छांट लेना चाहिये। यह भूमि ऐसे स्थान पर छांटनी चाहिए जहां सिंचाई के लिये उपयुक्त साधन उपलब्ध हों, क्योंकि पौधों की सिंचाई में यदि एक-दो दिन की देरी हो गई तो हानि हो सकती है।

बीज की मात्रा—बीज की मात्रा उसकी जाति तथा भूमि की उर्वरा शक्ति पर अवलम्बित रहती है यदि किसी बंलिष्ट खेत में रोपे जाने की है तो 15 से 20 कि. ग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होगा। मध्यम श्रेणी के खेत के लिये 25 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होगी। बीज की हर मात्रा मुख्य खेत के लिये है जिसमें कि फसल पक कर तैयार होगी। पौधे के लिये बनाई हुई क्यारियों में 500 ग्राम बीज प्रति क्यारी छिड़कना होगा। ऊपर से छना हुआ खाद और बारीक मिट्टी की तह डालकर ढक देना चाहिये।

बीज की तैयारी—बीज को एक बाल्टी पानी में जिसमें कि दो मुट्ठी नमक घुला होता है, डाल देते हैं, भारी बीज नीचे बैठ जाते हैं तथा हल्के ऊपर तैरने लगते हैं। नीचे बैठे हुए भारी (वजनी) बीजों को ही बोने के काम में लाते हैं। बीमारियों से बचाने के लिए इन बीजों को सुखाकर एग्रोसेन जी. एन. से शोधित कर दिया जाता है।

भूमि की तैयारी—अप्रेल में मिट्टी पलटने वाले हल से जोतकर उसमें 120 क्विंटल गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर की दर से डालना चाहिये और बाद में देशी हल से जुताई करके मृदा को भुर-भुरी बना देना चाहिये। खेत में पटेला की सहायता से खेत को समतल बना देना चाहिये। इसके बाद रोपाई के लिये क्यारियां बना लेनी चाहिए-बेड (पौध) के लिए क्यारियां 7·5 से. मी. उठी हुई, 1·2 मीटर चौडी तथा 1·5 मी. लम्बी होती है। क्यारियों के बीच 30 से. मी. चौड़ी तथा 10 से.मी. गहरी नालियां छोड़ दी जाती है। क्यारियों के तैयार हो जाने पर उनके ऊपर खूब बारीक कम्पोस्ट की 31 मि.मी. पतली तह बिछा दी जाती है। फिर प्रत्येक क्यारी में 250 ग्राम सुपर फास्फेट तथा 250 ग्राम अमोनियम सल्फेट का मिश्रण छिड़क दिया जाना है। उसके ऊपर राख की पतली तह बिछा दी जाती है जिसके ऊपर बीज छिड़क कर बारीक मिट्टी से ढक दिया जाता है। ऐसी 50 क्यारियां एक हेक्टर में पौध लगाने के लिए काफी समझी जाती है।

बीज बोने के समय—मई के अन्तिम सप्ताह अथवा जून के प्रारम्भ में इन क्यारियों में बीज छिड़क देना चाहिये। बीज के ऊपर एक तह गोबर की बढ़ी हुई खाद छानकर डाल दी जाती है। बाद में हल्की सिंचाई की जाती है।

रोप लगाने का समय--शीघ्र बोई जाने वाली जातियां मध्य-जून और देर मे बोई जाने वाली जातियां मध्य जुलाई के शीघ्र बाद हो रोप देना चाहिये।

बयारी के अन्दर घास-फूस को बराबर साफ करते रहना चाहिये। 3-4 सप्ताह मे जब पौध 20-22 से.मी. की हो जाय और 6-10 पत्तियां निकल आवे तो सावधानी से उखाड़ कर रोपाई कर देनी चाहिये।

रोपाई—पौधे को बयारी से सावधानी से निकालना चाहिये जिससे पौध की जड़ या तने को कोई हानि न पहुंचे। रोपाई सीधी कतार में करनी चाहिये। पौधे से पौध की तथा लाइन की दूरी 22·5 से मी होनी चाहिए। 22·5-22·5 से.मी. पर निशान लगी हुई रस्सी के सहारे रोपाई शीघ्र और सुगमता से हो जाती है। एक सुराख मे 2-4 पौध से अधिक नही लगाना चाहिए और पौध को अंगुली के सहारे मिट्टी मे सीधा गाडना चाहिये। एक हेक्टर मे 1 आदमी पौध लगाने के लिए और 8 औरतें पौध उखाड़ने के लिए आवश्यक होते है।

सिंचाई—रोप लगाये गये पौधों के लिए भी सिंचाई का प्रयोग छिटकवां बोये धान के समान होता है जब तक पौधे काफी बड़े न होवें। हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि धान के खेत में अधिक समय तक पानी न भरा रहे, अन्यथा यह पानी धूप की गर्मी से प्रभावित हो धान के कोमल पौधे को झुलस देगा।

धान के पौधों मे फूल आने के समय से 15 दिन पूर्व यदि सम्भव हो तो खेत को खाली करके सुखा लेना चाहिये। यह ध्यान रहे कि पगड़ी न उलटने पावे। इससे भूमि को वायु मिलने पर पौधे बलिष्ठ होंगे। परन्तु फूल आने के पश्चात् भूमि को कदापि न सूखने देना चाहिये।

फसल की देखभाल—रोपाई करने के 15-20 दिन बाद खेत की निराई तथा गुडाई करनी चाहिये। यह काम पैडी वीडर द्वारा बहुत कम समय और थोड़े खर्च में हो जाता है। फसल मे फूल आने के पहले ही निराई व गुड़ाई बन्द कर देनी चाहिये।

कटाई का ढंग—धान की कटाई दरांती से गेहूं के समान की जाती है। कटाई ठीक समय पर की जानी चाहिए। देरी करने पर दाना झड़ने लगता है। दाना कड़ा होने पर ही फसल को काट लेनी चाहिये। भले ही उस धान की बाली हरी बनी हो। धान की शीघ्र बोई जाने वाली जातियां सितम्बर, अक्टूबर में और देर में बोई जाने वाली जातियां नवम्बर, दिसम्बर में कटाई के योग्य होती हैं।

मड़ाई—धान को काटकर खलियान में सुखाया जाता है। इसके बाद बैलों को दांय चलाकर अथवा किसी कठोर चीज पर बालियों को पीट कर दानों को

अलग कर लिया जाता है। पैडीथ्रेसर द्वारा भी धान की मड़ाई की जाती है।

उपज—शीघ्र बोये गये धान की उन्नत जातियों की औसत उपज 30 क्वि. प्रति हेक्टर होती है। देर में बोये जाने वाले धान की देशी जातियों की उपज छिड़कवां बोये गये धान में 10-12 क्विटल प्रति हेक्टर और पौध लगाकर बोये गये धान में 25-40 क्विटल प्रति हेक्टर होती है।

बीज रखने के ढंग—धान के बीज को खूब सुखाकर बोरी में बन्द करके रखना चाहिये। इसे गोदाम में बन्द करके रखने की आवश्यकता नहीं होती। गर्मी प्रारम्भ होने के पूर्व फरवरी अथवा मार्च में धूप में खूब सुखा देना चाहिये बीज में नमी रह जाने से गर्मियों में यह शीघ्र ही खराब होने लगता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(1) धान की खेती का वर्णन निम्न शीर्षकों में करें—
  (अ) भूमि एवं भूमि की तैयारी।
  (ब) खाद एवं उर्वरकों की मात्रा।
  (स) जातियां।
  (द) उपज।
  (य) कीट एवं रोग।

(2) जापानी ढंग से धान की खेती कैसे करोगे ?

(3) निम्न पर टिप्पणी लिखो—
  (अ) बीज की तैयारी।
  (ब) क्यारी की तैयारी।
  (स) बीज रखने का ढंग।
  (द) धान के लिए उपयुक्त फसल-चक्र।

अध्याय-13

गन्ना

(SUGARCANE)

वानस्पतिक नाम (*Saccharum officinarum*)

जलवायु – गन्ना उष्ण कटिबन्धीय पौधा है, 125-250 सेमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बिना सिंचाई के तथा 50–90 सेमी. वार्षिक वाले क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध होने पर गन्ने की खेती सुगमतापूर्वक की जा सकती है। 250 सेन्टीग्रेड से 28⁰ सेन्टीग्रेड तापक्रम वाले क्षेत्रों में इसकी बढ़वार अच्छी होती है।

भूमि —गन्ने के लिए जीवांश युक्त मटियार दोमट भूमि अच्छी समझी जाती है। भूमि में जल निकास का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिये।

खेत की तैयारी - खेत की तैयारी गन्ना बोने की विधि पर निर्भर करती है। यदि गन्ने की बुवाई नालियों मे करनी हो तो दो गहरी जुताइयां पर्याप्त रहती हैं। किन्तु यदि गन्ना समतल खेती मे बोना हो तो जुताइयां मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 6-8 जुताइयां देशी हल से करनी चाहिये। प्रत्येक जुताई के पश्चात् पाटा लगा देना चाहिये। खेत में गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद .00-125 क्वि. प्रति हेक्टर की दर से डाल दें।

खाद की मात्रा—अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये 190 कि. ग्रा. नाइट्रोजन 85-90 कि. ग्रा. पोटाश तथा 50 कि. ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टर की दर से देनी चाहिये। ये मात्रायें निम्नलिखित उर्वरकों द्वारा दी जा सकती है—

1. यूरिया	410 कि. ग्राम प्रति हेक्टर	
2. म्यूरेट ऑफ पोटाश	150	,, ,,
3. सुपर फास्फेट (सिंगल)	300	,, ,,

बीज की मात्रा—लगभग 60 क्विंटल बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है कुल 35,000 से 40,000 हजार टुकड़े (तीन आंख वाले) पर्याप्त होते है। यदि एक आंख के टुकड़े लगायें व पौधे तैयार करके रोपें तो केवल 20 हजार टुकड़े प्रति हेक्टर पर्याप्त होते है तथा उपज भी अधिक मिलती है।

बोने का समय—गन्ने की बुआई वर्ष में दो बार की जाती है।

1. बसन्त कालीन बुआई-15 फरवरी 15 मार्च तक (अगेती)

15 मार्च से 15 अप्रैल तक (पछेती)

2. शरदकालीन बुआई- 20 सितम्बर से 30 अक्टूबर तक है।

बोने से पूर्व बीज का उपचार—(क) इच्छित किस्म के स्वस्थ व निरोग बीज का चुनाव करें। यदि सम्भव हो तो फरवरी की बुवाई में गन्ने के ऊपरी आधे भाग को बोयें और अक्टूबर की बुआई में नीचे के भाग को बोयें।

(ख) गर्म जल उपचार— बीज के टुकड़ों 50^0 से. ग्रे. पर दो घण्टों के लिये गर्म जल से उपचारित करें। इसमें फफूंदी व विषाणु, रोगों, कण्डुआ उल्टा (विल्ट) और एलबीनों (विवर्ण) आदि से गन्ना तीन वर्ष के लिए मुक्त हो जाता है। उत्तर प्रदेश की कुछ चीनी मिलो मे राज्य सरकार के अनुदान से 'गन्ना बीज उपचार यन्त्र' लगाये गये हैं। बुवाई के समय इन मिलों से सहायता प्राप्त करनी चाहिये। किन्तु यदि मिल क्षेत्र से दूर हो तो 77×43×36 सेमी. के सीमेंट के टैंक बनाकर बीज का उपचार कर लेना चाहिये। इस प्रकार के एक टैंक में लगभग 150-160 टुकड़े उपचारित किये जा सकते है।

दवाई—गर्म जल उपचार के पश्चात् बीज को निम्नलिखित जमाव वर्धक दवाइयों मे से किसी एक के घोल में थोड़े समय के लिए डुबोयें—

सारणी सं. 8

क्र. सं.	दवा का नाम	मात्रा/हे. बीज के लिये (कि. ग्रा.)	जल की मात्रा (लीटरों में)
1.	एगलो 3%	1.250	150
2.	एरीटान 3%	0.625	150
3.	टेफासान 6%	0.625	150
4.	गन्ना बीज घोल 6%	0.625	150

बुवाई का ढंग—विभिन्न क्षेत्रों में गन्ना बोने की प्रायः निम्नलिखित विधियाँ प्रचलित हैं—

(क) **समस्त खेत की बुवाई**—इस विधि में तैयार खेत मे देशी हल या रिजर की सहायता से 75 सेमी. की दूरी पर 20 से. मी. गहरे कूंड बनाते हैं। इनमें गन्ने के टुकडे के ड्योढा चढ़ा कर बोते हैं। बुआई के पश्चात् पाटा लगा दिया जाता है। इस विधि में पौधों पर मिट्टी नहीं चढाई जाती। सिंचाई के लिये खेत को क्यारियों मे विभक्त कर दिया जाता है। किन्तु यह विधि अच्छी नही है। क्योंकि इसमे फसल के गिरने का भय रहता है तथा सिंचाई में जल अधिक खर्च होता है।

(ख) समतल खेत में बोकर मिट्टी चढ़ाना—यह विधि ऊपर लिखी विधि के समान है। किन्तु मानसून आने से पूर्व मिट्टी चढ़ान का कार्य किया जाता है। इस विधि के प्रयोग से निम्नलिखित लाभ है—

1. फसल गिरने से बच जाती हैं।
2. सिचाई के पानी की बचत होती है।
3. फसल की बन्धाई मे कम व्यय लगता है।
4. उपर्युक्त विधि की अपेक्षा पैदावार अधिक मिलती है।

(ग) नालियों में बोना—यह विधि हल्की भूमियो के लिए उपयुक्त है क्योंकि ऐसी भूमियों मे गन्ना बोने से अपेक्षाकृत अधिक जल की आवश्यकता होती है। अतः नालियों मे बोकर जल के व्यय को घटाया जा सकता है।

इस विधि में नालियाँ बनाने का कार्य लगभग एक माह पूर्व कर लेना चाहिये। समतल खेत मे रस्सी द्वारा 90 सेमी. के अन्तर पर लाइनें लगा देते हैं। बेलचे की सहायता से 55 सेमी. चौड़ी तथा 22.5 सेमी. गहरी नालियाँ बनाते है। इस प्रकार 45 सेमी. चौड़ी मेड़ बन जाती है। नालियो से निकली मिट्टी मेड़ो पर डाल देते है। इससे मेड़ो की ऊंचाई 2.5 सेमी. हो जाती है। नालियाँ पूर्व पश्चिम दिशा मे बनानी चाहिये जिससे फसल तेज हवाओं से सुरक्षित हो जाय। नालियों में टुकड़ों को ज्यादा करके बोयें। ऊपर से एक बारीक तह मिट्टी की चढा दें। इस विधि द्वारा गन्ना बोने से पैदावार अधिक प्राप्त होती है। इस विधि पर किये गए प्रयोग के आंकड़े निम्न प्रकार हैं—

सारणी सं. 9

क्र. सं.	विधि का नाम	अनुसंधान केन्द्र (उपज मीट्रिक टन प्रति हेक्टर)		
		गोरखपुर	शाहजहांपुर	मुजफ्फरनगर
1.	साधारण	4[illegible].60	57.50	53.07
2.	नालियाँ	53.60	[illegible]8.75	56.00

निष्कर्ष—उपर्युक्त आंकड़ों से ज्ञात होता है कि सभी स्थानों पर नालियों में गन्ना बोने से अपेक्षाकृत अधिक उपज प्राप्त हुई है अतः यह विधि उपयुक्त है।

बुवाई के समय नाइट्रोजन की 2/2 मात्रा तथा पोटाश और फास्फोरस की पूरी मात्रा दे देनी चाहिये। बी. एच. सी. गामा 20% ई. सी. की 6.125 ली.

मात्रा 1,800 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के समय, टुकड़ों पर हजारे की सहायता से छिड़क देते है।

(घ) आई. एस. आर. 8626 विधि द्वारा गन्ना बोना—इस विधि का आविष्कार गन्ना अनुसंधान केन्द्र लखनऊ में किया गया। इस विधि में 100–150 कि. ग्रा./हे. नाइट्रोजन व 4-8 सिंचाइयां करके 150-160 टन हे. पैदावार प्राप्त कर सकते हैं।

इस विधि में 90 सेमी. के अन्तर में 35 सेमी. गहरी तथा 20 सेमी. चौड़ी नालियां बना ली जाती है। बुवाई से दो माह पूर्व जिस खेत में बीज लेना हो छोटे पौधे की पत्तियां काट देते हैं। जब इनसे तीन-चार पत्तियां निकल आयें, इन्हें काट कर बोना चाहिये। बोने से पूर्व टुकड़ों को ऐरीटान के 0.2% घोल में डुबो लेते हैं। टुकड़ों को नालियों में 50–70 सेमी. के अन्तर पर खड़ा रखकर दोनों ओर से मिट्टी डाल दी जाती है। इन टुकड़ों को रैगन कहा जाता है। 20,000 रैगन प्रति हैक्टर पर्याप्त होते हैं।

सिंचाई—गन्ने की सिंचाई, खाद की मात्रा और निराई-गुड़ाई पर निर्भर करती है। गोरखपुर, मुजफ्फरनगर व शाहजहांपुर अनुसंधान केन्द्रों के आंकड़े निम्न प्रकार हैं—

सारणी सं. 10

क्र. सं.	नाइट्रोजन किग्रा. प्रति हैक्टर	सिंचाइयों की संख्या (उपज मीट्रिक टन प्रति हैक्टर)		
		2	6	9
1.	30	43.10	48.10	52.50
2.	100	41.25	51.90	64.05
3.	200	48.08	55.54	65.33

निष्कर्ष—उपर्युक्त आंकड़ों को देखते हुए 9 सिंचाइयां प्राप्त होती हैं।

निकाई-गुड़ाई—यदि बुवाई समतल खेत में की गई है तो बुवाई के लगभग एक सप्ताह पश्चात् एक अन्धी गुड़ाई कर देनी चाहिए। कुल चार पांच गुड़ाइयां पर्याप्त होती हैं। गुड़ाई का मुख्य उद्देश्य नमी को सुरक्षित रखना व खरपतवारों की रोकथाम करना है। खरपतवारों से बचाव के लिए निम्नलिखित खरपतवार नाशक दवाइयों का प्रयोग किया जा सकता है—

सारणी सं० 11

खरपतवार नाशक और उनका उपयोग

क.सं.	खरपतवार	किन-किन खरपतवारों पर प्रभावकारी हैं।	मात्रा कि. ग्रा.	समय	विधि
1.	सिमेजीन	एक व दो दालीय खरपतवार	4.48 कि./हेक्टर	एक बार बुवाई से पूर्व	छिड़काव
2.	सिमैलीन+ 2-4-डी.	सावांकुल, खरमकरा, कनकी, लोनिया, मोथा	2.34+ 2.24/हे	बुवाई के पूर्व	छिड़काव
3.	एट्राजोन	फुलवा, नार, पत्थर चटा तथा ऊपर लिखे खरपतवारों पर	1.12 हे.	बुवाई के बाद	छिड़काव
4.	एमोटीन	केसिवा, तोरा, बड़ी दुधी, लहसुआ	2.24 हे.	बुवाई के बाद	छिड़काव

मिट्टी चढ़ाना -(क) समतल खेत में की गई बुवाई वाले खेतों मे मानसून आने से पूर्व मिट्टी चढ़ाने का कार्य किया जाता है।

(ख) नालियों मे बुवाई की गई है तो लगभग 15 जून तक खेत को समतल कर देना चाहिये और जून के अन्त में प्रथम बार 15 से. मी. मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए और वर्षा ऋतु का मध्य ही अर्थात् जुलाई के अन्त मे दूसरी बार 30 से. मी. मिट्टी चढ़ानी चाहिए।

बन्धाई—मानसून के प्रारम्भ मे गन्ने की बन्धाई करनी चाहिये। इसमें आवश्यकतानुसार वर्षा ऋतु तक बन्धाई करते है। बन्धाई से गन्ने के गिरने का भय नही रहता।

उपज—650-700 क्विन्टल प्रति हेक्टर।

जातियां—पकने के समयानुसार कुछ उन्नतशील नई जातियां निम्नलिखित है :—

(क) शीघ्र पकने वाली—को 335, 395, 416, 559, 6613, बी. ओ. 47, को, 620, 403।

सारणी सं० 12

गन्ने के कीड़े व उनसे बचाव

क्रम सं.	कीड़े का नाम	हानि पहुंचाने की अवस्था	समय	लक्षण	रोकथाम
1.	दीमक	वर्कर व निम्फ	वर्ष भर	गन्ने की जड़ें खाने के कारण गन्ने सूखकर गिर जाते हैं।	बुआई के समय बी. एच. सी. 10% का भूरकाव 20 कि. ग्रा./हे.
2.	पाईरिला	निम्फ व प्रौढ	अगस्त नवम्बर	पत्तियां पीली पड जाती है उन पर काले धब्बे पड़ जाते है और फफूंदी लग जाती है।	20-25 कि. ग्रा. हे. बी.एच.सी. वर्षा से पूर्व, 20 से 17 कि./हे. वर्षा के बाद भुरका करें।
3.	जड़वेधक	लारवा	अप्रेल से मई	पौधो से बीच की पत्ती सूख जाती है।	बी.एच. गामा ई.सी. 6·12 ली. 10'00 ली. पानी में मिलाकर बुआई के समय प्रयोग करें।
4.	ब्लेक बग काला चिटका	प्रौढ तथा अव	अप्रेल से वर्षा ऋतु तक	पत्तियों का रस चूसने के कारण पत्तियां पीली पड जाती है।	50 % एल्ड्रीन का छिड़काव करें।
5.	तना वेधक	लारवा	मई-जून	तने मे छिद्र कर देता है।	आक्रमण से प्रभावित पौधे को काटकर जला दें।
6.	गुरदासपुर कीट या देहरादून कीट	कैटरपिलर	जुलाई मध्य से अक्टूबर तक	एक गांठ के अन्दर प्रवेश करके घूमता हुआ दूसरी गांठ से निकल जाता है।	6.25 लीटर एल्ड्रीन प्रति/हे. छिड़कें।
7.	सफेद मक्खी	प्रौढ़ तथा अव	जुलाई से सितम्बर	फसल पीली पड़ जाती है।	बी. एच. सी. 10 का भुरकाव करें। मात्रा-20 से 25 कि. ग्रा./हे.

सारणी सं० 13

गन्ने के रोग व उनके बचाव

क्र.सं.	रोग	समय	लक्षण	रोकथाम
1.	मालसड़न रेडरोट	वर्षा ऋतु का प्रारम्भ	पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। गन्ना अन्दर से लाल हो जाता है और झुरियां पड़ जाती है।	रोगरोधी किस्में बोयें को. 3·6, 370 393, 395, 259 158
2.	कंडुआ (स्मट)	मई-जून	गन्ने के ऊपर काली बाल स्पोर निकल आती है। बढ़वार रुक जाती है।	1 को 527, 1111 1148 को शां 561, 574, को. 1316, 6806, 6613 3 एगलोल से बीज को उपचारित करें।
3.	घासी शूट	वर्षा ऋतु का प्रारम्भ	प्ररोही जड़ें निकल जाती है, बढ़वार रुक जाती है। चीनी की मात्रा घट जाती है।	बोने से पूर्व बीज का गर्म जल से उपचार करें।
4.	मोजेक	"	पत्तियों पर अण्डकार पीले धब्बे पड़ जाते है।	1% फार्मलीन या 5.% एगलोल के घोल में बीज उपचार करें।
5.	विवर्ण (एलबीनो)		पत्तियां मध्य शिरा के दोनों ओर पीली पड़ जाती है।	बीज का गर्म जल से उपचार करें।

(ख) मध्य व देर से पकने वाली—को. 1148, 975, 6832 को 6806, 1158, 109, 583, 1323, सी. ओ. जे. 29 बी. ओ. 17, 32, 54

कुछ मुख्य जातियों का विवरण—

1 को. 6613 जल्दी पकने वाली, अच्छा चीनी का परता तथा औसत पैदावार देती है। देहरादून, मेरठ व मुजफ्फरनगर के लिए स्वीकृत है।

2. को. 1336—देहरादून, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, बुलन्दशहर, मेरठ के लिए स्वीकृत है। अधिक चीनी की परत तथा औसत पैदावार देती है।

3. को. 1148—अच्छी पैदावार देने वाली है तथा इसकी पेड़ी रख सकते है। गन्ना मुलायम तथा उत्तर प्रदेश के सभी भागों के लिए स्वीकृत है।

4. को. 1158—पैदावार अच्छी देती है। चीनी में 1148 से अच्छा गन्ना कठोर उत्तरप्रदेश के सभी भागों के लिए स्वीकृत है।

5. को. 6425—चीनी में मध्यम, देर से पकने वाली, उत्तरप्रदेश के पश्चिम जिलों के लिए स्वीकृत है।

6. को. 2503—पैदावार व चीनी में उत्तम, जल्दी पकने वाली तथा उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों के लिए अनुमोदित है।

7 बी. ओ. 54—पैदावार में मध्यम, चीनी में उत्तम, गन्ना कठोर है। उत्तरप्रदेश के रामपुरा, मुरादाबाद, बिजनौर जिलों के लिए अनुमोदित हैं।

8 बी. ओ. 17—पैदावार मे मध्यम, चीनी मे उत्तम, पहले तथा कठोर गन्ने वाली जाति है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों के अतिरिक्त सभी जिलों के लिए अनुमोदित है।

9. को. 6812—औसत पैदावार देती है। मेरठ कमिश्नरी के लिए अनुमोदित है।

10. को. 975—मध्यम से पकने वाली औसत पैदावार देती है। गुड़ के लिए अच्छी है। उसका रोग लगता है। अच्छी नही रहती है।

11. को. 312—अजमेर और बीकानेर खण्ड के लिए अधिक उपयुक्त है। तना सीधा व अन्तर का भाग अण्डाकार होता है। इसके ऊपरी भाग को पंक्तियों का अंकुरित स्थान कोनाकार होता है। 14 से 60% शक्कर की मात्रा होती है। सूखा तथा पाले को सहन कर सकता है। उपज 50–60 हजार कि. ग्रा. (गन्ना) प्रति हेक्टर प्राप्त होता है। साधारणतया यह प्रत्येक भूमि में उगाया जा सकता है।

12. को. 519—उदयपुर कोटा खण्ड के लिए अधिक उपयुक्त है। पत्तियां हरे रंग की करवई धारी लिये हुये तिकोनी व सघन होती है। देर से पकता है। शक्कर की मात्रा 15–18 % तक होती है। उपज 60–75 टन (गन्ना) प्रति हैक्टर प्राप्त होता है।

फसल चक्र—

1. मक्का–आलू–गन्ना
2. हरी खाद–गेहूं, गन्ना–पेड़ी
3. ग्वार–आलू–गन्ना
4. मक्का–आलू–गन्ना–पेड़ी
5. मूंगफली + अरहर–गन्ना–पेड़ी पड़त–गेहूं

शरद्कालीन गन्ना

राजस्थान में गन्ने की खेती अधिकतर बसन्तकालीन बुआई विधि से की जाती है। विभिन्न स्थानों पर किये गये परीक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि गन्ने की शरद्कालीन बुआई, बसन्तकालीन की अपेक्षा बहुत अच्छी रहती है।

शरद्कालीन बुआई के लाभ—

1. शरद् रोपित गन्ने की उपज बसन्त रोपित गन्ने की अपेक्षा सवा गुणा से डेढ़ गुणा होती है। शरद् रोपित गन्ने में फुटान अधिक होती है और हर फुटान मुख्य गन्ने की तरह ऊंचाई तथा मोटाई में पूरी तरह बढ़ जाती है जिससे पेरने योग्य गन्ने की मात्रा अधिक होती है।

2. शरद् रोपित गन्ने की फसल के साथ गेहूं, सरसों, मटर, चुकन्दर आदि मिश्रित फसलें ली जा सकती हैं क्योंकि शरद् रोपित गन्ना शीतकाल में अधिक नहीं बढ़ता है।

3. बसन्त ऋतु में वायुमण्डल में नमी की कारण गन्ने की कलिकायें शुष्क होने लगती हैं, अतः उस समय बुवाई करने पर, अंकुरण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता। शरद् रोपित गन्ना अधिक नमी एवं उच्च तापक्रम के कारण बहुत अच्छा अंकुरित होता है।

4. शरद् रोपित गन्ने की फसल अक्टूबर तक पूर्ण विकसित होकर दिसम्बर तक पक जाती है, अतः पाले से भी बची रहती है।

5. शरद रोपित गन्ना जल्दी काटने से फेक्ट्रियों को पेराई का काफी लम्बा समय मिल जाता है।

भूमि की तैयारी—गन्ना ऐसे खेत में बोयें जहां मिट्टी उपजाऊ, गहरी-दोमट अच्छे जल निकास वाली, न क्षारीय और न अम्लीय हो। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें तथा बीच में देशी हल से 6-8 जुताइयां कर मिट्टी भुर-भुरी कर लें। हर जुताई के बाद पाटा लगायें। प्रति हेक्टेयर 25 गाडी (250 क्विन्टल गोबर की खाद 21 दिन पूर्व भूमि पर फैला कर मिट्टी में मिला दें। यदि गोबर की खाद उपलब्ध न हो तो खरीफ की फसल की कटाई के बाद 10कि. नत्रजन प्रति हेक्टेयर

देकर फसल के अवशेषों को मिट्टी में जोत कर सिंचाई कर दें। हर तीन साल में एक बार 500 कि. ग्रा. गंधक का चूर्ण फसल बुआई के 21 दिन पूर्व अवश्य दें। यदि गंधक का चूर्ण न मिले तो 500 कि. ग्राम फेरस सल्फेट बुआई के साथ डालें। इससे गन्ने में पीलिया रोग नहीं होगा और उपज में वृद्धि होगी। दीमक तथा भूमिगत कीड़ों की रोकथाम हेतु खेत की अन्तिम जुताई के पूर्व 25 कि. ग्राम 5 प्रतिशत एल्ड्रिन चूर्ण अवश्य मिला दें।

रोपण का समय—अक्टूबर का प्रथम पखवाड़ा बुआई के लिए सबसे उचित समय है। यदि खरीफ की फसल समय से न पके और गन्ना लगाने में देरी की आशंका हो तो पहले गन्ने की नर्सरी (रोपण) तैयार कर लेनी चाहिये। इसके लिए गन्ने के अच्छे खेत से आवश्यक मात्रा में स्वस्थ गन्ना लेकर उनकी पेरियाँ काट लिया जाय। इन पेरियों को एरेटन या एगलॉल से उपचारित कर अच्छी प्रकार से तैयार महीन मिट्टी पर आड़े-फैला दिया जाय। यह कार्य सितम्बर के अन्त में या अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक किया जा सकता है। इसके बाद सिंचाई कर दी जाय। यदि इस रोपणी को पोलीथिन की चादर से ढक दिया जाय तो बहुत अच्छा रहेगा, किन्तु यदि यह न हो तो इसके बिना भी काम चल जायेगा। यदि इस बीच वर्षा न हो तो एक से तीन सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ेगी। अक्टूबर के अन्त में या कुछ जल्दी या कुछ देर से जैसे ही बुआई योग्य खेत उपलब्ध हो। रोपणी से अंकुरित गन्ने की पेरियो निकालकर खेत में बो देनी चाहिए।

बीज की मात्रा व उपचार—एक हेक्टेयर खेत में बुआई के लिये तीन-तीन आँखों वाले 25 हजार गन्ने के टुकड़ों की आवश्यकता होगी। इन्हें बोने से पूर्व ऐरेटान नामक फफूंद नाशक दवा के 0.25 प्रतिशत घोल में 10 मिनट तक डुबो कर उपचारित कर लेना चाहिए।

बुआई—हल की सहायता से 75–100 से. मी. दूर बनाई गई कूंडों में जिनमें पहले ही उर्वरक एवं कीटनाशी दवा दी हुई होती है। उपचारित गन्ने के टुकड़ों को 7 सेन्टीमीटर गहरा रोपें। कूंड में पेरियों के सीरे से सिरा मिलाकर जमाना चाहिये और उनके बीच में जगह बिलकुल नहीं छोड़ी जानी चाहिये। बुवाई के बाद पाटा लगाकर पेरियों को मिट्टी से ढक दें और सिंचाई कर दें।

उर्वरक प्रयोग—देशी खाद के अलावा गन्ने को 150 किलोग्राम नत्रजन, 75 किलोग्राम फास्फोरस और 75 किलोग्राम पोटाश चाहिए। 163 किलोग्राम डी. ए. पी. व 156 किलोग्राम पोटेशियम सल्फेट मिलाकर बुआई के पहले कूंडों में 10 से. मी. गहराई पर दें। 30 किलोग्राम नत्रजन अप्रैल में और इतनी ही मात्रा प्रति माह जून, जुलाई व अगस्त में देनी चाहिए। अगस्त के बाद नत्रजन नहीं दी जानी चाहिए। वरना इससे रस के गुणों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

मीलवा फसल—ऐसा हो सकता है कि कार्तिक की बुआई के कारण उस खेत में सर्दी की फसल लेना असम्भव हो किन्तु गन्ना बोये जाने वाले खेत में शायद

ही कोई सर्दी की फसल ली जाती है, क्योंकि जब फरवरी-मार्च में गन्ने की बुआई के लिए खेत की तैयारी करनी होती है, उस समय तक सर्दी की कोई भी फसल खेत खाली नहीं करती। अतः सर्दी की फसल लेने वाले खेत में गन्ना भी समय पर नहीं बोया जा सकता। इसके विपरीत शरद्कालीन बुआई वाले गन्ने में गेहूं, सरसों, मटर, चुकन्दर आदि फसलें सफलतापूर्वक ली जा सकती हैं। इस प्रकार किसानों को दोहरा लाभ मिलेगा।

कूंडों में गन्ने की बुआई के 15 दिन बाद खेत में दूसरी सिंचाई देकर मिश्रित फसल के लिए खेत तैयार करना चाहिये। सरसों, गेहूं आदि मिश्रित फसलों के लिये 60 किलोग्राम नत्रजन एवं 30 किलोग्राम फासफोरस गन्ने को दी जाने वाली ज्यादा मात्रा के अतिरिक्त देना चाहिए। इसमें से 30 किलोग्राम शेष नत्रजन अर्थात् आधी बुआई के समय व 35 किलोग्राम शेष नत्रजन सरसों में फूल आने की पूर्वावस्था में तथा गेहूं में दूसरी सिंचाई के साथ देवें। गन्ने की दो कतारों के बीच सरसों की तीन, गेहूं की चार, चुकन्दर की दो कतारें आयेगी। मिश्रित फसल की बुआई कल्टीवेटर से करें। और यह ध्यान रखें कि बीज के ऊपर दो तीन से मी. से अधिक मिट्टी नहीं आने पावे। सरसों की छंटाई के बाद 10 से. मी. कर दें, वरना फसल भाड़ी पड़ने का डर रहता है। सरसों की बुआई अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में कर दी जानी चाहिए वरना विलम्ब से बोने पर सल्फेट रस्ट नामक बीमारी से ग्रसित होने की सम्भावना रहती है। गेहूं की बुआई नवम्बर के प्रथम पखवाड़े में करदी जानी चाहिए।

सिंचाई—अक्टूबर से फरवरी तक 21 के अन्तर पर सिंचाई करें। फिर जून तक 15 दिन के अन्तर पर कटाई से पूर्व अक्टूबर तक आवश्यकतानुसार 21 दिन पर सिंचाई करें। कटाई से 1 माह पूर्व सिंचाई बन्द करदें।

निराई, गुड़ाई, गन्ने बांधना एवं मिट्टी चढ़ाना—जून के बाद अन्त तक हर पर सिंचाई के बाद गुड़ाई करें। जून व जुलाई के अन्त में पौधों के आधार पर मिट्टी चढ़ावें और सितम्बर में गन्नों को बांध दें जिससे फसल आड़ी नहीं पड़े।

पौध संरक्षण—गन्ने की फसल पर दीमक, जड़, तना एवं शीर्षक छेदक, सफेद मक्खी, पायरिला, शल्क कीट, काली बग, लाल माइट व अन्य मंदा कदा लगने वाले कीट जैसे फोजील्ट का आक्रमण होता है।

दीमक व जड़ छेदन के लिए बी. एच. सी. 10 प्रतिशत, एल्ड्रिन 5 प्रतिशत या हैप्टाक्लोर 5 प्रतिशत चूर्ण 25 से 30 कि. ग्राम प्रति हेक्टर, की दर से बुआई से पहले भूमि में मिलायें, जहां तक हो पूर्ण पकी हुई खाद ही जमीन में मिलावें। गन्ने के बचे ठूंठ बीन कर जलावें। गन्ने की खार खार (पेड़ी) न लें। भूमि उपचार नहीं कर सकने पर बीज गन्ने के टुकड़ों को लिन्डेन 20 ई. सी. हैप्टाक्लोर 20

ई. सी. के 5 मि. ली. प्रति लीटर जल के घोल में डुबोकर बोयें या इन्हीं के घोल से कूंडों मे छिड़कावें। टुकड़ों को छिड़क दें। और फिर मिट्टी से ढक दें।

गन्ना की प्रारम्भिक अवस्था में लगने वाले तना एवं शीर्ष छेदक का नियन्त्रण फोरेट 30 कि.ग्राम प्रति हेक्टर की दर से बुवाई के प्रथम सप्ताह मे पौधों की कतारों के बीच मे जड़ों के पास डालने एवं उसे मिट्टी में मिलाने मे किया जा सकता है। इसके प्रयोग के तुरन्त पश्चात अगर मिट्टी में नमी न हो हल्की सिंचाई करना आवश्यक है। इससे गन्ने की फसल सफेद लट में भी बच सकेगी। अगर उपर्युक्त उपचार नहीं किया जा सके तो निम्नलिखित कीट नाशकों में से किसी का प्रयोग करें। छिड़काव 15–20 दिन के अन्तर पर कीट प्रकोप को देखते हुए दोहरावें। यह उपचार पायरिया, शल्क कीट, रेडमाइट, सफेद मक्खी आदि के लिए भी प्रभावशाली रहेगा।

मोनोक्रोटोफास 40 ई. सी.	100 मि. लि. या
फासफोमिडोन 100 ई. सी.	50 मि. ली. या
डायमिथोएट 30 ई. सी.	100 मि. ली. या
एण्डोसल्फान 35 ई. सी.	150 मि. ली. या
क्यूनालफास 25 ई. सी.	100 मि. ली.

को प्रति 100 लीटर जल मे घोल बनाकर प्रयोग में लें। फसल की अवस्था के अनुसार 500 से 1000 लीटर घोल की प्रति हैक्टर आवश्यकता होगी।

इन कीड़ों के अलावा लाल सड़न (काना रोग), कंडुआ (कन्या) आदि रोग भी गन्ने को लगते हैं। लाल सड़न से पौधों में ऊपर की पत्तियां व तने सूखने लगते हैं। चीरने पर गन्ने के अन्दर लाल धब्बे दिखाई देते है। इस रोग से बचने के लिए रोग ग्रसित बीज काम मे न लीजिए। फफूंद नाशक दवा से बीज का उपचार करके ही बोइये और जैसे ही खेत मे सूखे हुये रोग पोधे दिखाई दें, उन्हें समूल उखाड़ कर जला दीजिए। जिस खेत मे यह रोग लग गया हो, उसमे गन्ने की पेड़ी फसल न करें।

कडुआ (कण्या) रोग वर्षा के पूर्व या बाद मे गन्नों पर आक्रमण करता है। रोगी गन्ने के शीर्ष पर सफेद झिल्ली से ढका हुआ, चाबुक जैसा एक काला भाग उत्पन्न होता है। इसी मे रोग के लाखों बीजाणु बन्द होते हैं। जो बिखर कर रोग फैलाते हैं। अतः ऐसी पौधो रोगो को जीवाणुओ की झिल्ली फटने से पहले ही उखाड़ कर जला दीजिये, परन्तु जानवरों को न खिलाइये। रोगी फसल पेड़ी न लीजिये तथा फसल चक्र अपनायें।

कटाई एवं उपज—अक्टूबर मे बोई गये की फसल अगले दिसम्बर तक अर्थात् 14 महिने में कटाई योग्य हो जाती है। गन्ने को जमीन की सतह के पास

से काटना चाहिये। इस फसल से 123 से 150 टन गन्ना मिलेगा। इसके अतिरिक्त 25 क्विंटल सरसों या 35 क्विंटल गेहूं भी प्रति हेक्टर आपको प्राप्त हो सकेगा।

गन्ने की किस्म—देर से व मध्य समय में पकने वाली किस्में बसन्त रोपण के मुकाबले शरदकालीन रोपाई अधिक लाभदायक नहीं रहती। कोटा व उदयपुर खण्ड के लिए उपयुक्त गन्ने की किस्में कोयम्बटूर 419, का. कोयम्बटूर 1007 तथा श्रीगंगानगर क्षेत्र के लिए कोयम्बटूर 1253।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. गन्ना बोने के ढंग का वर्णन करें एवं दो उपयुक्त फसल चक्र बनायें।
2. गन्ना की खेती का वर्णन निम्न शीर्षकों में लिखें—

(अ) बीज की मात्रा	(ब) बोने का समय
(स) उन्नत जातियाँ	(द) उपज/हैक्टर
(य) गन्ने के कीट एवं रोग	(र) अन्तरा कृषि
(ल) सिंचाई	(हा. सै. 1977,79,80)

3. शरदकालीन गन्ने की खेती का वर्णन अपने शब्दों में लिखें।
4. आलू में सुप्तावस्था कैसे दूर की जाती है? (हा. सै. 1981)

अध्याय–14

कपास
(Cotton)

वानस्पतिक नाम (Gossypium S P)

परिचय — मानव जीवन में "वस्त्र" एक आवश्यक आवश्यकता है। इसका निर्माण कपास के रेशों से किया जाता है। हमारे देश में उत्पादन कम होने के कारण पूर्ति नहीं हो पाती है। परिणामस्वरूप कपड़े का मूल्य अधिक रहता है। यदि आवश्यक मात्रा में कपास देश में ही पैदा होने लगे तो विदेशी पूंजी की बचत हो और कपड़े की समस्या सरल बन जाय।

भारत में कपास का उत्पादन अधिक क्षेत्र पर होता है। क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से भारत प्रथम स्थान रखता है। परन्तु उत्पादन में विश्व का तीसरा स्थान रखता है। कपास अमेरिका, रूस, मैक्सिको, ब्राजील एवं अरब गणराज्य में उगाई जाती है।

भारत के कपास उत्पादक क्षेत्र—महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, मैसूर, मद्रास (तमिलनाडु), राजस्थान, हरियाणा पंजाब एवं उत्तर प्रदेश, (आगरा और मेरठ मण्डल) आदि प्रान्तों में कपास उगाई जाती है।

जलवायु—कपास की उत्तम फसल के लिए तापक्रम 21 से 32 से. ग्रे. तथा वार्षिक वर्षा 75 से 100 से.मी. उपयुक्त है।

(i) अंकुरण के समय शीतोष्ण जलवायु होना चाहिये।

(ii) मृदा में नमी की अधिकता से बीज नष्ट हो जाते है। अतः 90 प्र. श. अंकुरण के लिए 7% नमी होनी चाहिए।

(iii) अधिक वर्षा या शुष्क मौसम मे कपास समय पर नही बोई जा सकती है।

(iv) फूल लगते समय मौसम–पाला, तेज हवा पूर्ण अधिक वर्षा नही होनी चाहिये। पाले से पौधे मर जाते है। अधिक वर्षा से निम्न श्रेणी की कपास मिलती है।

(v) गोले पकाते समय उपयुक्त शुष्क मौसम होना चाहिए।

भूमि—कपास के लिए निम्न किस्म और गुणों वाली भूमि चाहिये—

(i) अच्छे जलनिकासयुक्त जलोढ़, काली लाल, चिकनी दोमट भूमि जिसमें जैविक पदार्थ काफी मात्रा में उपयुक्त है।

(ii) कपास के लिए हल्की अम्लीय तथा क्षारीय (खारी) भूमि हो, अर्थात् 6·5 से 8·6 पी. एच वाली भूमि उपयुक्त है।

(iii) सिंचित दशाओं के लिए साधारण दोमट भूमि उपयुक्त है।

(iv) जहाँ तक सम्भव हो चिकनी (भारी मिट्टी) में देशी कपास तथा रेतीली (हल्की) दोमट में अमेरिकन कपास बोनी चाहिए। क्योंकि अमेरिकन कपास की अपेक्षा देशी कपास अधिक नमी चाहने वाली होती है।

(v) दलदली व अधिक अम्लीय भूमि कपास के लिये ठीक नहीं रहती है।

भूमि की तैयारी—खेत में यदि नमी की मात्रा कम हो तो पलेवा कर लेना चाहिये। पलेवा मई माह में करें, फिर एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें।

इसके बाद 2–3 जुताई देशी हल से करें। भूमि को भुरा-भुरा खरपतवार व ढेले रहित करने के लिये पाटा भी हरेक जुताई के बाद दें। नमी संचय हेतु भी पाटा लगाना चाहिये। खरपतवार अधिक होने पर खुरपी या सिंह पटेला की सहायता से खरपतवार रहित बना लेना चाहिए।

बीज का चुनाव—अच्छी पैदावार के लिए प्रमाणित श्रेष्ठ बीज को ही प्रयोग में लाना आवश्यक है। अतः अच्छे गुणों वाले बीज का ही चुनाव करके बोयें

(i) बीज ठोस और स्वस्थ हों।
(ii) बीज चोटिल नहीं हों।
(iii) कीट से क्षतिग्रस्त न हों।
(iv) बीज प्रमाणित न होना चाहिये।
(v) बीज उन्नत जाति का और स्थान विशेष के लिए अनुमोदित हो।
(vi) उपचारित बीज का प्रयोग करना चाहिये।

बीज का उपचार—बीज बोने से पूर्व परीक्षित कर लेना चाहिए।

(i) हल्के बीजों को निकालने के लिये 20 लीटर पानी में 1·4 कि. ग्रा. नमक घोल लेना चाहिए फिर इसमें बीज डालकर हिला लेना चाहिये। परिणामस्वरूप हल्के बीज पानी में ऊपर तैरने लगेंगे और भारी ठोस बीज पानी के भीतर बैठ जायेंगे। तैरने वाले बीजों को निकाल कर अलग कर लेना चाहिये, जो पशुओं के चारे में प्रयोग कर लेना चाहिये। तले में बैठे बीज को बोने के लिए प्रयोग करना चाहिये।

(2) इन बीजों को छाया में नमक द्वारा उपचार करके सुखाकर रखें फिर बोते समय हल्के सल्फ्यूरिक अम्ल(गन्धक का अम्ल)मे दो मिनट तक या जिंक क्लोराइड मे 15 दिन तक, बीजावरण मुलायम हो जायेगा।

(3) इन बीजों को पारायुक्त दवा से उपचारित करें फिर बीजों को राख या गोबर अथवा मिट्टी में मलें जिससे बीज अलग-अलग हो जायें।

उन्नतशील जातियाँ—कपास की उन्नतशील जातियाँ निम्नलिखित हैं—

तालिका सं. 14

	राज्य का नाम	जातियाँ	विवरण
1.	राजस्थान	सी. 520. गंगानगर–1 आर एल. 79 हाइब्रिड–4, तथा एम. सी. यू 5 एफ. 320, जे. 34	(1) असिंचित क्षेत्रों के लिए अधिक लम्बे रेशे व पैदावार वाली जातियां एम. सी. यू. 5 हाइब्रिड-4 सुजाता व भारती खड़वा 2 है।
2.	उत्तरप्रदेश	216 एफ. 35/1 तथा प्रमुख	(2) गंगानगर–1 का बीज तना हरा पत्ते कम चौड़े फूल सफेद, रेशा 7 इंच लम्बा, लगभग 1250 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर उपज मिलती है।
3.	पंजाब	एच. 14, 231 आर. जी 27 जे. 34	(3) एम. सी. यू-5 अमेरिकन जाति है। यह 165 दिन में पकती है। पौधे की शाखायें फैली हुई होती हैं प्रति हैक्टर 20-25 क्वि. पैदावार होती है।
4.	मध्यप्रदेश	इन्दौर–2, मालवी-9 तथा वदनवार–1	(4) यहां पर दी गई प्रत्येक जाति राज्य के अनुसार अनुमोदित उन्नत किस्मे हैं।
5.	गुजरात	देवी राज, एम. सी यू. 5 गुजरात 67, बुरी 1007 बदनवार-1 सुजाता आदि	(5) सुजाता कवकरोधी है इसके साथ ही यह मार्च से अगस्त तक गर्मी में तथा

		सितम्बर से फरवरी तक सर्दी ऋतु में बो सकते हैं। इसका पकने का समय 75 दिन है। पैदावार 18 से 25 क्विटल प्रति हैक्टर है। इस पर पत्तियां कम आती है। भारत मे सभी प्रान्तों के लिए उपयुक्त है।
6. आन्ध्र प्रदेश	कृष्णा तथा महालक्ष्मी	
7. मैसूर	जालन्धर	
8. मद्रास (तमिलनाडु)	भारती (M.C.U.-6) लक्ष्मी एवं हाइब्रिड 4	

तालिका संख्या 15

कृषि विभाग राजस्थान द्वारा अनुमोदित कपास की किस्में

किस्में	किस्म की विशेषताएँ	क्षेत्र
(i) संकर-4	मोटाई प्रतिशत 30% कताई क्षमता 40–50 (सूत्रांक), कपास रेशमी-सी नरम सफेदी होती है।	बांसवाड़ा, डूंगरपुर, बूंदी तथा मेवाड़ व सिरोही का कुछ भाग
(ii) सी. इन्दौर	तना और शाखायें ललाई लिए हुए पत्ते हल्के हरे: शाखायें तने से सटी हुई फूल और ललाई लिये हुए, बीज बड़े और नुकेले, सामान्य समय में पकने वाली कपास, उपज 990 किलोग्राम प्रति हैक्टर।	उदयपुर, चित्तौड़गढ भीलवाड़ा तथा पाली व अजमेर जिले का भाग
(iii) 320 एफ-	तना लाल पत्तियाँ हरी, फूल बड़े व पीले, बीज नुकीले, शाखायें 3–3 एक साथ सटी हुई, उपज 1538 कि.ग्राम प्रति हैक्टर, रंग हल्का सफेद।	श्रीगंगानगर जिला।
(iv) जी–1	हरा तना, पत्ते हरे व कम चौड़े, फूल सफेद, दाना मोटा। कपास की उपज 975 किलो प्रति हैक्टर।	श्रीगंगानगर।

(v)	बिरलार	हरा तना पत्ते हरे, सीधे कुछ पतले, फूल सफेद, दाना छोटा। कपास को उपज 685 किलो प्रति हैक्टर।	झालावाड़ और भीलवाड़ा जिले
(vi)	134 सी. ग्रा. 2 एम.	हरा तना, हरी पत्तियां, फूल बड़े व सफेद बीज पतले व नुकीले, उपज 500-900 किलो प्रति हैक्टर।	डूंगरपुर और बांसवाड़ा जिले में
(vii)	दिग्विजय (देय)	हरा तना, पत्ते चौड़े व कुछ पतले फूल, छोटे व पीले, बीज छोटे, उपज 793 किलो प्रति हैक्टर।	बांसवाड़ा जिला।

बुआई—कपास की बुआई में निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये-

(क) बोने का समय—मध्य अप्रेल से मई तक का समय उत्तम है। सिंचाई वाले क्षेत्रों में कपास मई के अन्त में बोये। अमेरिकन जाति की बुवाई देशी जाति से पहले करनी चाहिए। वर्षा पर आधारित कपास की बुवाई जून-जुलाई में करते है।

सम्भवतः कपास की अगेती करनी चाहिए। ऐसा करने से लाभ यह रहता है कि वर्षा शुरू होने से पहले ही पौधे बड़े हो जाते है। जिससे पौधे अधिक वर्षा के प्रभाव को सहने योग्य हो जाते हैं। फसल को सर्दी पड़ने तक चुनाई हो जाती है।

देर से बुवाई करने में वर्षा से हानि होती है। इसके अतिरिक्त जाड़ा शुरू हो जाता है। जाड़े के प्रभाव से फूल अच्छी तरह नहीं खिलते और पौधों का विकास रुक जाता है। फलस्वरूप फसल से कपास कम मिलती है।

(ख) बीज की मात्रा—बीज की मात्रा बोने के ढंग पर निर्भर करती है। औसतन 15-20 कि. ग्राम बीज की प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है।

बोने का ढंग—कपास बोने के कई ढंग प्रचलित है। जिनका विवरण निम्न प्रकार है-

(1) छिटक कर बोना—खेत की तैयारी करके बीज को छिटककर पुनः एक बार हल चलाकर भूमि में मिला दिया जाता है।

(2) मेंड़ बनाकर बोना—खेत को तैयार करके उसमें 75 से.मी. की दूरी पर 30 से. मी. चौड़ी मेड़े बना लेते हैं। इसके बाद 30 से. मी. की दूरी रखकर एक स्थान पर 3-4 बोते हैं। अनावश्यक पौधों को निकाल देते हैं जो कि रोग ग्रसित कमजोर हैं, शेष की छंटाई करते हैं।

(3) हल के पीछे कूंड में बोना—तैयार खेत में हल चलाकर उसके पीछे बीज डालते जाते हैं, बीज की दूरी 75 सेमी. रखते हैं। कूंड से कूंड की दूरी 30 सेमी. रखते है।

(4) आयताकार (एक स्थान पर कई बीज) विधि—इस विधि में खेत की लम्बाई व चौड़ाई दोनों ओर से पत्तियां या कूंड बनाते हैं। एक तरफ से कूंड

45 सेमी. तथा दूसरी तरफ से 90 सेमी. की दूरी पर कूंड बनाते हैं। जहां ये कूंड एक दूसरे को काटते हैं। उस स्थान पर 3-5 बीज बो देते हैं। इस विधि से 15 कि. ग्रा. बीज प्रति हैक्टर तथा 60,000 से 70,000 पौधे प्रति हैक्टर होते हैं। 3-4 सप्ताह के बाद प्रत्येक स्थान पर स्वस्थ दो पौधों को छोड़ देते हैं। इस विधि में 51 % पैदावार बढ़ जाती है।"

५. डिबलर द्वारा बुवाई—खूंटियों की सहायता से 45×90 सेमी. की दूरी रखकर बीज बोते हैं। यह विधि जहां भूमि ऊंची-नीची होती है, प्रयोग की जाती है।

6. कॉटन ड्रिल द्वारा—कपास की बुवाई की सबसे अच्छी विधि है।

खाद एवं उर्वरक

(i) भूमि में जीवांश की मात्रा होना कपास के लिए आवश्यक है। अतः 15 से 50 टन गोबर की खाद (50 गाड़ी) प्रति हैक्टर डालनी चाहिए। इसके साथ ही 30 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 10 कि.ग्रा. पोटाश दें।

(ii) कपास के लिए कुल 40 किग्रा. नाइट्रोजन 50 किग्रा. फास्फोरस एवं 35 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर तत्वों की आवश्यकता होती है।

(iii) यदि खेत में हरी खाद दी गई है तो नाइट्रोजन की आधी मात्रा दें।

उर्वरक कैसे दें—(क) कुल नाइट्रोजन का ⅓ भाग, फास्फोरस तथा पोटाश का पूरा भाग खेत की तैयारी में दे देना चाहिए।

(ख) शेष नाइट्रोजन का आधा अर्थात् ⅓ पुनः प्रथम सिंचाई पर दें।

(ग) शेष तीसरा भाग—(1/3 भाग) फूल आने से पूर्व देना चाहिए।

अर्थात् कपास के लिए 40 किग्रा. नाइट्रोजन 50 किग्रा. फास्फोरस व 35 किग्रा. पोटाश में से 13.3 किग्रा. नाइट्रोजन, 20 किग्रा. फास्फोरस व 35 किग्रा. पोटाश खेत की तैयारी में दे देनी चाहिए।

शेष नाइट्रोजन के भाग (⅔) (26.6 किग्रा.) में से 1/3 भाग अर्थात् 14.3 किग्रा. नाइट्रोजन प्रथम सिंचाई करते समय डालनी चाहिए।

अन्तिम नाइट्रोजन 13.3 किग्रा. फसल आने से पूर्व देनी चाहिए।

उर्वरक कैसे—उर्वरक फसल में कई विधि से दिये जाते हैं। कपास की फसल के लिए भी उर्वरक निम्न विधि से देना चाहिए।

(1) बेसल ड्रेसिंग—कपास की फसल में नाइट्रोजनित उर्वरक की कुल मात्रा का 1/3 भाग, फास्फोरस एवं पोटाश की कुल मात्रा अन्तिम जुताई के समय कूंड 6 सेमी. गहराई पर डालनी चाहिए।

(2) टोप ड्रेसिंग—इस विधि में उर्वरक सदैव खड़ी फसल में दिया जाता है। शेष नाइट्रोजन का 2/3 भाग की आधी मात्रा प्रथम सिंचाई करते समय दें और शेष आधी मात्रा फूल आने से पूर्व दें।

(3) घोल बनाकर—नाइट्रोजन की कुल मात्रा घोल के रूप में भी फसल को दे सकते हैं। कपास के लिए यूरिया का घोल तैयार करके छिड़कना चाहिए। घोल को पौधे शीघ्र और आसानी से ले सकते हैं। उर्वरक रिस कर जमीन से भी नहीं जा पाता है।

इसके लिए 3 किग्रा. यूरिया प्रति 100 लीटर पानी से घोल बनाना चाहिए। कपास के लिए 32 किग्रा. यूरिया का घोल कुल नाइट्रोजन की पूर्ति के लिए प्रति हैक्टेयर पर्याप्त है। घोल बनाते समय घोल को पत्तियों पर चिपकने हेतु 150 सीटीपाल या 10 से 13 ग्राम नहाने का साबुन प्रति हैक्टर मिलाकर घोल को छिड़कना चाहिए। यथानुसार इस घोल में कीटनाशक दवा भी मिला देनी चाहिए जो कि छिड़काव कर दी जाती है। इस प्रकार बने घोल को किसी भी छिड़कने वाली मशीन (स्प्रेयर) से छिड़कना चाहिए।

इस घोल का छिड़काव सुबह के समय करना चाहिये, क्योंकि इस समय पत्तियां भोजन बनाने में सक्रिय होती हैं। इस विधि से उर्वरक शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। क्योंकि इससे पौधों को घोल के रूप में पानी मिल जाता है और साथ ही उर्वरक सीधे ही मिल जाते हैं। उर्वरक घोल के रूप में प्रयोग करने से नमी की उपस्थिति आदि की कोई समस्या नहीं रहती।

यूरिया के घोल बनाते समय फसलों आवश्यकतानुसार यूरिया की मात्रा ले। इसके साथ ही टीपाल अथवा नहाने का साबुन घोल में अवश्य मिलावें। कृषि सुरक्षा केन्द्र से ये कीटनाशक व उपहार के लिए दवायें तथा स्प्रेयर भी मिलने की सुविधा रहती है।

यूरिया के घोल को छिड़कने से पूर्व ही अर्थात् खेत पर ताजे रूप से बनायें। अधिक देर से बने घोल में माइयूरेट बन जाता है जो पत्तियों को जला देता है। इससे फसल में हानि की सम्भावना रहती है।

घोल बनाने मे शुष्क यूरिया का प्रयोग करना चाहिए। नमी से प्रभावित यूरिया का प्रयोग उचित नहीं रहता है।

सिंचाई—कपास की फसल में प्रथम सिंचाई बोने के एक माह बाद करनी चाहिए। प्रथम सिंचाई के बाद अन्य सिंचाई वर्षा के ऊपर निर्भर है। यदि वर्षा नहीं होती है तो 20 दिन के अन्दर सिंचाई करें।

जब कपास के पौधों पर डोडियां (गुले) अर्थात् फल बनें, इसके पूर्व सिंचाई आवश्यकतानुसार अवश्य करनी चाहिये। पानी की कमी से पौधे भोजन नहीं ले पाते और पौधे विकास नहीं कर पाते है। कभी-कभी फूल और गोरे भी झड़ने लगते हैं।

गोलों (डोडियो) के पूर्णरूपेण विकास के बाद सिंचाई नहीं करनी चाहिए। अक्टूबर मास तक कपास के गुले (डोडियां) पूर्ण रूप से विकसित होकर फटने लगते हैं।

निराई गुड़ाई—प्रत्येक सिंचाई के बाद नमी संचय हेतु निराई करनी चाहिए।

मुख्यतया प्रथम दो सिंचाई के बाद निराई करना आवश्यक है। भूमि में उर्वरक मिलाने, खरपतवार नष्ट करने एवं नमी संचय हेतु मल्चिंग की क्रिया करने के लिए निराई करना अति आवश्यक है।

कपास की फसल से खरपतवार नष्ट करने के लिए पेन्टा क्लोरीफोनोल (पी.सी.पी.) फसल बोने के 45 दिन बाद 50 किग्रा. प्रति हैक्टर की दर से उपयुक्त है।

चुनाव—कपास के बोने के 2½ माह बाद फूल आना शुरू हो जाते है, और इसके एक माह बाद चुनाई शुरू हो जाती है। देशी किस्म में कुल 3 से 5 चुनाई की जाती है।

कपास के कीट व रोग—कपास में कई रोग व कीट प्रभाव डालते हैं। इनकी रोकथाम अति आवश्यक है। अधिक उत्पादन फसल व सुरक्षा पर आधारित हैं। अतः रोग व कीटों की रोकथाम अवश्य प्रारम्भिक समय से ही करना चाहिए।

कपास के हानिकारक कीट व रोग—कपास के हानिकारक कीटों का विवरण निम्न प्रकार है—

तालिका संख्या 16

कीट का नाम	फसल में लक्षण	रोकथाम के उपाय
(1) गुलाबी कीड़ा	खेत से ही कपास के साथ आ जाता है। इसकी सूंड़ियां विकास कर बीज में रहती हैं और बिनौले को खाकर उनमें छेद कर देती हैं। इसका प्रकोप सितम्बर में प्रायः होता है।	(1) मई-जून की कड़ी धूप में पक्के फर्श पर कपास को सुखाना चाहिये।
		(2) कपास को साइमन-काटन सीड हीटर से 140°F तक गर्म करनी चाहिए।
		(3) प्रति एक हजार (1000 घन फुट) घन फुट के हिसाब से 1 पौण्ड मिथाइल ब्रोमाइड का धुंआ करें। इसके लिए फास्टाक्सिन की टिक्कियों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

कीट का नाम	फसल में लक्षण	रोकथाम के उपाय
(2) भूरी सूंडी (ग्रे वीविल)	भूरे रंग की होती है। पौधे की विकास अवस्था में पत्तियों पर प्रभाव डालती है पत्तियां काटती है। यह अगस्त माह में अधिकतर लगती है।	(1) 10% बी. एच. सी. 25 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टर भुरकें।
(3) कपास का चित्तीदार कीड़ा	गोले के अन्दर घुस कर उसे खोखला बना देती है। अतः गोले (डोडियां) सूखकर गिरने लगते है।	(1) 5% बी एच. सी. या 5% डी. डी. टी. को 30 किलोग्राम प्रति हेक्टर भुरकें। (2) 0·03% एन्ड्रिन का अथवा 6·15 मेलाथियान इमल्शन का 1000 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
(4) कपास की पत्ती लपेट कीड़ा	पत्तियों को लपेट कर गोल बना देती हैं और अन्दर ही अन्दर उन्हें खाती है। जुलाई के माह में लगता है।	(1) 0·5% डी. डी. टी. या बी. एच. सी. के घोल का 1000 लीटर प्रति हैक्टर के हिसाब से छिड़काव करें। (2) नवम्बर से फरवरी के बीच-बीच कभी भी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से कर देनी चाहिए ताकि शीत निष्क्रियता में पड़ी सुंडियां भी नष्ट हो जावें।
(5) कपास फुदका	कपास के पौधों के विकास के समय हरे रंग के फुदकने वाले कीड़े पत्तियों के नीचे छिपकर रस चूसने लगते हैं। इससे पतियां पीली पड़ कर सूख	(1) 0·1% बी.एच.सी. तथा 5.1% डी. डी. टी. का मिश्रण अथवा 0.6% डी. डी. टी. इमल्शन अथवा 0.02 प्रतिशत

कीट का नाम	फसल में लक्षण	रोकथाम के उपाय
	जाती है। इसके साथ ही रोग भी उत्पन्न हो जाते है। जून व जुलाई मे यह लगता है।	एल्ड्रिन इमलसन 100 ली. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
कपास के रोग—कपास की फसल में प्रमुख निम्न रोग प्रभाव डालते है–		
(1) मूल विगलन	(1) जहा भूमि का ताप अधिक होता है यह रोग लगता है।	(1) फसल को अप्रैल के प्रारम्भ मे और जून के अन्त में बोना चाहिए।
	(2) जड़ें सड़ जाती हैं।	(2) ग्वार की हरी खाद बोयें।
	(3) छाल के नीचे पीला पदार्थ जमा हो जाता है।	(3) मोठ मिलाकर कपास बोयें।
	(4) पौधा मुरझा जाता है।	(4) हेरफेर से तथा देर से बुवाई करे।
	(5) मई माह में बोई गई फसल मे प्रायः यह लगता है।	
(2) एन्थ्रक्नोज	(1) पौधे की पत्तियां, तना, गोले पर लाल या हल्के रंग के धब्बे बन जाते है।	(1) पौधों पर छोटी अवस्था पर ही बोर्डोमिक्सचर छिड़कना चाहिए। 600-900 ली. हैक्टर छिड़कना चाहिए।
	(2) पौधों में तने की छाल फट जाती है।	(2) बीज बोने से पूर्व सेरेसान जिंक ड्राइक्लोरोफिनेट और गंधक से बीज को रोगाणु नाशक करना चाहिए।
	(3) रूई का रंग पीला या बदामी हो जाता है।	(3) फसल चक्र व मिश्रित फसल उत्पादन अपनाना चाहिए।
	(4) बीमारी के प्रभाव से गोले सूख जाते हैं।	
(3) ब्लेक आर्म	(1) यह बीमारी जैन्थोमोनास मालवेसिएरम नामक	(1) स्ट्रेप्टोमाइसिन से बीज उपचार कर बोना चाहिए।

कीट का नाम	फसल में लक्षण	रोकथाम के उपाय
	जीवाणु के कारण होती है।	ग्राम दवा को 2-3 लीटर पानी में घोलना चाहिए।
	(2) रोग ग्रसित पत्तियों पर छोटे छोटे पनीले दाग दिखाई देते हैं। बाद में काले रंग के हो जाते हैं।	(2) बीमारी के हल्के लक्षण दिखाई देने पर ही तुरन्त 0·015% एग्रीमाइसीन दवा का घोल 10 लीटर प्रति हैक्टर छिड़कने से रोका जा सकता है।
	(3) पत्तियों, आदि पर रोग का प्रभाव हो जाता है।	
	(4) पत्तियां गिर जाती हैं।	
(4) विल्ट (म्लानि)	(1) उत्तरी भारत में इसका प्रभाव होता है जहां ताप अधिक रहता है।	(1) रोगरोधी जातियों को बोना चाहिए।
	(2) छोटी अवस्था में ही पौधे रोग से पीले पड़ जाते हैं।	(2) फफूंद नाशक दवा छिड़कें।
	(3) पत्ती का रंग किनारे की ओर से बीच की ओर उड़ता है।	
	(4) निपत्रों का रंग खाकी हो जाता है।	
	(5) पत्तियां गिर जाती हैं।	
	(6) तने के वेसकुलर बंडल काले पड़ जाते हैं।	

फसल चक्र—(1) कपास-गेहूं (2) कपास-गेहूं-तोरिया (3) कपास-चना (4) कपास-तिल (5) कपास-मटर।

मिश्रित फसलें—उड़द, मूंग, मूंगफली, तिल, सोयाबीन, बरसीम, सेंजी, पटसन, रोगी आदि फसलें कपास के साथ ली जा सकती हैं।

उपज—औसतन 12-15 क्विंटल प्रति हैक्टर कपास पैदा होती है।

अमेरिकन कपास (नरमा)

किस्में—

(1) 320-एफ (2) बीकानेरी नरमा-(जे-34)

फसल चक्र—(1) पड़त नरमा (2) ग्वार-नरमा (3) चुकन्दर-नरमा
(4) चना-नरमा (5) गेहूं-नरमा

खेत का चुनाव—नरमा की फसल की खेती के लिए मध्यम किस्म की भूमि अधिक उपयुक्त है। बिल्कुल रेतीली भूमि इसके लिए अच्छी नहीं रहती है। जिन खेतों में पानी भरे रहने और क्षारीय समस्यायें हैं उनमे नरमा नही लगानई चाहिए।

खेत की तैयारी—जो खेत नरमे के लिए बहुत रखे गए है, उनकी तैयारी गत फसल कटते ही शुरू करनी चाहिए। ऐसे खेतों मे समय-समय पर 2-3 जुता देकर खेत तैयार करलें। गेहूं के बाद नरमा लेन के लिए गेहूं कटते ही खेत की तैयारी करना आवश्यक है। इसके लिये 2-3 जुताई कर दें और सुहागा लगाकरा खेत तैयार करें। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करना (गहरी करना) अधिक लाभदायक होती है।

पलेवा या रोणी एवं बीजाई—नरमे के लिए जहां तक सम्भव हो दो पलेवा या गहरी सिंचाई करनी चाहिए। परन्तु जिन खेतों मे गेहूं या चुकन्दर के बाद नरमा लेना हो उनके दो पलेवा देने के स्थान पर एक सिंचाई की जा सकती है। पलेवा के बाद जुताई करने के पहले दीमक प्रभावित खेती में 24 किलो एल्ड्रिन 5 प्रतिशत या बी एच सी. 10 प्रतिशत चूर्ण या हेप्टाक्लोर 5 प्रतिशत चूर्ण प्रति हेक्टर डाल देना चाहिए। पलेवा के बाद खेत को यथाशीघ्र तैयार करके तरवतर मे बीजाई कर देनी चाहिए। बीजाई दिन के ठण्डे समय में करनी चाहिए जिससे खेत की नमी कम से कम उड़े और बीज का जमाव अच्छा हो सके।

जिन खेतों मे बालू उड़ने से पौधों के मरने की समस्या है। उनमें रबी की फसलों की कटाई के बाद खेत को बिना जुताई किये डण्ठल छोड़कर व पलेवा करके सीधे बीजाई कर देने से फसल का बचाव किया जा सकता है।

बीजाई का समय—नरमा बीजने का सबसे उपयुक्त समय 20 अप्रेल से 20 मई तक है। इसके बाद बीजने से पैदावार मे कमी पाई गई है। बीजाई का किस्म बार उपयुक्त समय निम्नलिखित है—

(1) 320 एफ —20 अप्रेल से 10 मई
(2) बीकानेरी नरमा —25 अप्रेल से 2(मई

बीज की मात्रा एवं बीजाई की विधि—नरमे के लिए16-16 किलो बीज प्रति हैक्टर डालना चाहिए। बीज लगभग 9 सेमी. की गहराई पर डालें। बीजाई कपास ड्रिल से 75 सेमी. (ढाई फुट) की दूरी पर करें। पहली सिंचाई के बाद आवश्यकतानुसार छंटाई करें, पौधे की दूरी 30 सेमी. रखें।

बीज उपचार—

(1) गुलाबी लट की रोकथाम के लिए आवश्यकतानुसार 14 से 40 किलो बीज को एल्युमिनियम फास्फाइड की एक टिकिया से धूमित अवस्था में रखें। यदि धूमित करना सम्भव नहीं हो तो दो तीन दिन तक तेज धूप में रखें।

(2) प्रति हैक्टर बोये जाने वाले बीज को 4-6 ग्राम एग्रोमाइसीन-100 प्रति 40 लीटर पानी में 8-10 घण्टे भिगो लें, बाद में 3 ग्राम एग्रोसेन जी.एन. तथा प्रति किलो बीज के साथ राख व गोबर बीज पर मल कर शीघ्र बो दें।

(3) जिन खेतो में जड गलन की बीमारी हैं, वहां ब्रेसीकोल 6 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करें।

खाद व उर्वरक—किसान के पास उपलब्ध गोबर की खाद को फसल चक्र में अधिक डालना चाहिए। 15 से 20 टन गोबर की खाद प्रति हैक्टर डालें।

(क) भाखड़ा नहर क्षेत्र के लिए—नरमे की फसल के लिए 100 किलो नत्रजन तथा 40 किलो फास्फोरस प्रति हैक्टर निम्न प्रकार से देनी चाहिए। 50 किलो नत्रजन एवं 40 किलो फास्फोरस प्रति हैक्टर बुवाई से पहले ड्रिल करदें अर्थात् 112 किलो यूरिया अथवा 200 किलो किसान खाद तथा 250 किलो सिंगल सुपरफास्फेट डालें। अगर नत्रजन की मात्रा बुवाई के समय नहीं दी जा सके तो इसे प्रथम सिंचाई के बाद अवश्य दे देवें। शेष 50 किलो नत्रजन यानि 112 किलो यूरिया अथवा 200 किलो किसान खाद कलिया बनते समय सिंचाई के साथ देवें।

(ख) गंग नहर क्षेत्र के लिए—नरमे की फसल के लिये 80 किलो नत्रजन तथा 41 किलो फास्फोरस प्रति हैक्टर निम्न प्रकार से देना चाहिए। 40 किलो नत्रजन एवं 40 किलो फास्फोरस प्रति हैक्टर बुवाई से पहले ड्रिल दें अर्थात् 88 किलो यूरिया अथवा 200 किलो किसान खाद कलियाँ बनते समय सिंचाई के साथ देवें।

नोट—मिट्टी परीक्षण के आधार पर अगर आवश्यकता हो तो पोटाश का प्रयोग भी आवश्यक रूप से करें।

निराई-गुडाई—नरमे के खेत में खरपतवार व कचरा न पनपने देवें। इसके लिए आवश्यकतानुसार 2 से 3 बार त्रिफाली व कलिये से निराई-गुडाई करते रहें।

सिंचाई—नरमे के लिये किस्म के अनुसार 6 से 7 सिंचाई पर्याप्त है।

किस्म—320 एफ में पहली सिंचाई-जुताई के 30-35 दिन बाद, दूसरी सिंचाई जून के दूसरे पखवाड़े, तीसरी जुलाई के प्रथम पखवाड़े, चौथी अगस्त माह में, पांचवीं सितम्बर के प्रथम पखवाड़े, छठी सितम्बर के दूसरे पखवाड़े एवं सातवीं अक्टूबर के मध्य में करें। बीकानेरी नरमे के लिए छः सिंचाईयों की आवश्यकता है। प्रथम सिंचाई के बाद अन्य सिंचाई 20-25 दिन बाद करें और अन्तिम सिंचाई अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में करें। अगर पानी की कमी हो तो पांच सिंचाइयों में भी काम चल सकता है। इसके लिये पहली व दूसरी सिंचाई ऊपर बताये समय पर ही करें, जुलाई में सिंचाई करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि इन दिनों वर्षा हो ही जाती है। इसके बाद तीसरी सिंचाई अगस्त के तीसरे पखवाड़े में, चौथी सिंचाई सितम्बर के दूसरे पखवाड़े में तथा पांचवी सिंचाई अक्टूबर के प्रथम पखवाड़े में करें।

पौध संरक्षण—

(क) मिश्र कीड़ों की रोकथाम—

1. सफेद मक्खी व हरा तेला का प्रकोप दिखायी देने का प्रथम छिड़काव जून के अन्तिम सप्ताह से जुलाई के मध्यम तक निम्नलिखित रसायनों में से किसी एक रसायन का 240 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

(क) रोगर 900 मि. ली. प्रति हैक्टर, अथवा
(ख) मेटासिस्टोक्स 800 मि. ली. प्रति हैक्टर, अथवा
(ग) फोलीडोल डस्ट 2 प्रतिशत 24 किलो प्रति हैक्टर, अथवा
(घ) मैलाथियोन 1,200 मि. ली. प्रति हैक्टर, अथवा
(ङ) 2 किलो बी. एच. सी. 50 प्रतिशत और 2 किलो डी डी. टी 50 प्रतिशत घुलनशील प्रति हैक्टर, अथवा
(च) डाइमेक्रोन 200 मि. ली. प्रति हैक्टर।

2. दूसरा छिड़काव जुलाई के आखिरी सप्ताह में निम्नलिखित रसायनों में से किसी एक रसायन का घोल बनाकर छिड़काव करें।

(क) सेविन 50 प्रतिशत डब्ल्यू पी 2·4 किलोग्राम प्रति हैक्टर, अथवा
(ख) सेवीमोल 4 प्रतिशत 2·8 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर, अथवा
(ग) सेविन एस्ट 5 प्रतिशत 25 किलो प्रति हैक्टर, अथवा
(घ) नुवाक्रोन 1,000 मि. ली. प्रति हैक्टर, अथवा
(च) एन्डोसल्फान 1,200 मि. ली. प्रति हैक्टर।

3. तीसरा छिड़काव दूसरे छिड़काव की रसायन तालिका अनुसार सितम्बर के प्रथम सप्ताह में करें।

4. चौथा छिड़काव तीसरे छिड़काव की तरह ही सितम्बर के तीसरे या अन्तिम सप्ताह मे करें।

(ख) बिमारी की रोकथाम—ब्लेक आर्म की रोकथाम के लिये दूसरे व चौथे छिड़काव में 8 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन, 24 ग्राम एग्रोमाइसीन-100 मिलायें तथा तीसरे पांचवें छिड़काव मे 2 किग्रा. कोपर आक्सीक्लोराइड मिलावें।

नोट—जहां जड़ गलन की बीमारी हो वहां बोने से पूर्व 5 ग्राम ब्रेसीकोल प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचार करें।

नरमे की चुनाई—बीकानेरी नरमी की पहली चुनाई अक्टूबर में आरम्भ हो जाती है। 320-एफ की पहली चुनाई नवम्बर म जब नरमा अच्छा खिले तभी करना चाहिये। पहली चुनाई मे औसतन 50-60 प्रतिशत तक उपज आ जाती है बाकी की दो चुनाइयां 20-25 दिन के अन्तर से और करनी चाहिये। कपास की चुनाई सफाई से करनी चाहिये और उसे नमी से बचाना चाहिये।

उपज—उन्नत कृषि विधियों द्वारा औसत उपज 15-20 क्विंटल प्रति हेक्टर ली जा सकती है।

अमेरिकन कपास की खेती के लिये ठोस सुझाव

गहरी जुताई—पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी करें।

ठीक धूम्रित करना—गुलाबी लट की रोकथाम के लिये 15-16 किलो बीज को एल्यूमिनियम फास्फेट की एक टिकिया से धूमित करें तथा बीज को 24 घण्टे तक धूम्रित अवस्था में रखें।

बीज की मात्रा नरमे के बीज 15-16 किलो प्रति हेक्टर के हिसाब से।

बुवाई का समय—नरमा बीज बोने का उपयुक्त समय 20 अप्रेल से 20 मई तक है।

उर्वरक नरमे की फसल के लिये भाखरा नहरी क्षेत्र मे 100 किलो नत्रजन एवं 40 किलो फास्फोरस तथा गन्डा नहर क्षेत्र मे 90 किलो नत्रजन एवं 40 किलो फास्फोरस प्रति हेक्टर के हिसाब मे डालें। नत्रजन की आधी तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय प्रारम्भिक खुराक के रूप में डालें। नत्रजन की शेष आधी मात्रा कली बनते समय देनी चाहिये।

पौध संरक्षण—विभिन्न कीड़ो व बीमारियों की रोकथाम हेतु वर्णित तालिका के अनुसार दो छिड़काव-सफेद माखी व हरा तेला के लिये एवं तीन छिड़काव टिण्डा छेदक की रोकथाम हेतु सही समय पर आवश्यक रूप से करें।

बीमारियों की रोकथाम—ब्लेक आर्म की रोकथाम के लिये दूसरे व चौथे छिड़काव मे 8 ग्राम स्ट्रेप्टोमाइक्लिन या 24 ग्राम एग्रोमाईसीन-100 मिलावें तथा तीसरे एवं पाचवें छिड़काव से 1.6 किग्रा. कोपर ऑक्सीक्लोराइड मिलावें।

नोट–जहां जड़ गलन की बीमारी हो वहां बोने से पूर्व पांच ग्राम ब्रेसीकोल प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचार करें।

अभ्यास के लिये प्रश्न

1. कपास की खेती का वर्णन निम्न शीर्षकों में लिखें—
   (अ) जलवायु (ब) भूमि की तैयारी (स) बीज की मात्रा
   (द) खाद व उर्वरक (य) उप/हैक्टर (र) उन्नतशील जातियां
   (हा. सै. 1979, 81)
2. कपास बोने के लिए बीज का चुनाव कैसे किया जाता है? बीज के उपचार पर संक्षिप्त लेख लिखो।
3. कपास में लगने वाले कीट एवं रोग पर एक लेख लिखो।
4. अमेरिकन कपास [नरमा] की खेती अपने शब्दों में लिखो।

अध्याय-15

मूंगफली

(Groundnuts)

वानस्पतिक नाम (Arachis hypagea)

(1) परिचय - मूंगफली की खली से खाद बनायी जाती है जिसमे 80% नाइट्रोजन, 1.6% फास्फोरस, 1.3% पोटाश पायी जाती है।

(2) भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में सहायक है।

(3) हरी पत्तियों से साइलेज बनाया जाता है।

(4) मूंगफली में राइबोफ्लेविन और तेकोटिनिक अम्ल पाये जाते है।

(5) मूंगफली के अन्दर प्रोटीन अण्डे से 2.5 गुनी अधिक पायी जाती

(6) मूंगफली के दोनो भागो मे लगभग 40% तेल पाया जाता है।

जलवायु—(1) मूंगफली उष्ण कटिबन्धीय पौधे होने के कारण इसे मौसम की आवश्यकता पड़ती है।

(2) अंकुरण एवं वृद्धि के लिये 21 से 33°से. ग्रे. तापमान की आवश्यकता पड़ती है।

(3) औसत वार्षिक वर्षा 50–60 से. मी. होनी चाहिये।

(4) फसलो के पकने तथा कटाई के समय मौसम का स्वच्छ तथा सूर्य पर्याप्त प्रकाश का होना अत्यन्त आवश्यक है।

भूमि —(1) बलुई दोमट मिट्टी सर्वोत्तम होती है।

(2) हल्की भूमियों में भी इसकी खेती अच्छी प्रकार की जा सकती है।

(3) भूमि मे जल निकास का प्रबन्ध होना चाहिए।

(4) मिट्टी बारीक तथा भुर-भुरी होनी चाहिये।

(5) उदासीन भूमि अच्छी समझी जाती है।

भूमि की तैयारी—(1) मूंगफली खेत मे एक जुताई पलटने वाले हल से करनी चाहिये।

(2) पहली वर्षा होने पर 2-3 बार हैरो चलाकर मिट्टी को भुर-भुरी बना लेते हैं।

(3) गहरी जुताई नही करनी चाहिये, क्योंकि मूंगफली का निर्माण निचली सतहों मे कम होता है।

(4) मूंगफली के लिए मिट्टी बारीक भुर-भुरी होनी चाहिए।

बीज की तैयारी —

बीज का चुनाव—बीज के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली मूंगफलियां पूर्णरूप से विकसित, पकी हुई, स्वस्थ तथा बिना फटी-फटी होनी चाहिये। बोने के 2-3 दिन पूर्व ही बीज को फलों से पृथक करना चाहिये क्योंकि फफूंदी से फैलने वाले रोगों का भय रहता है।

बीज का उपचार—बीज को बोने से पूर्व आर गनो-मरकुरियल रसायनों से उपचारित कर लेना चाहिये।

बीज की मात्रा—मूंगफली के बीज की मात्रा जातियों पर निर्भर करती है। फैलने वाली तथा गुच्छेदार जातियों के बीच की मात्रा दूरी पर निर्भर करती है।

गुच्छे वाली जातियों के बीज की मात्रा—85 से 100 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर डाली जाती है जिसमें पंक्ति की दूरी 30 से. मी. रखी जाती है।

फैलने वाली जातियों की बीज की मात्रा—60 से 80 कि. ग्राम प्रति हैक्टर डाली जाती है, जिसमें से पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50 से. मी. रखी जाती है।

बुवाई का समय—मूंगफली की बुवाई निम्नलिखित विधियों से की जाती है—

(1) **हल के पीछे**–इस विधि में देशी हल के पीछे 4-8 से. मी. गहरी कूण्ड में बीज की बुवाई की जाती है।

(2) **डिबलर विधि**–यह विधि कम क्षेत्रफल में अपनाई जाती है। बीज की बुवाई खुरपो या खूंटियों की सहायता से की जाती है।

(3) **सीड प्लान्टर विधि**—अधिक क्षेत्रफल पर कम समय में बुवाई के लिए यह विधि उपयोगी है। इसमें बीज की गहराई 5-8 से. मी. रखी जाती है।

खाद एवं उर्वरक—मूंगफली ऐसी फसल है जिसकी उपज 12-13 क्विंटल प्रति हैक्टर हो जाती है। भूमि से लगभग 110 कि. ग्रा. नाइट्रोजन 24 कि. ग्राम फास्फेट तथा 80 कि. ग्राम पोटाश से लेती है।

मूंगफली दाल वाली फसल होने के कारण नाइट्रोजन की कम आवश्यकता पड़ती है। वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों में 10 कि. ग्राम सिंचाई वाले क्षेत्रों में 20 कि.ग्रा. गंधक प्रति हैक्टर डाली जाती है। मूंगफली फसल में गन्धक का प्रयोग करने से तेल, जीवाणु ग्रन्थिकायें तथा नाइट्रोजन की प्राप्ति अधिक होती है। इसलिए नाइट्रोजन देते समय अमोनियम सल्फेट प्रयोग करना चाहिए जिसमें गन्धक पाया जाता है। कैल्सियम का प्रयोग करने से कलियाँ भर जाती हैं। इसलिए कैल्सियम का प्रयोग आवश्यक है। मूंगफली की फसल में 20 कि. ग्रा. नाइट्रोजन, 50 से 75 कि. ग्राम फास्फोरस तथा 25 से 30 कि. ग्राम पोटाश देना चाहिए।

सिंचाई एवं जल निकास—जून के प्रथम सप्ताह में बोने वाली फसल में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। अन्यथा सम्पूर्ण फसल वर्षा पर निर्भर रहती है। जल निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। वर्षा के अभाव में 2-3 सिंचाई करते हैं।

निकाई एवं खरपतवार नियन्त्रण—मूंगफली की फसल में दो बार निकाई-गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। पहली बार निकाई फूल आते समय और दूसरी 4 सप्ताह बाद फलियां बनाते समय कृषि क्रियायें नहीं करनी चाहिए क्योंकि फलियाँ जो भूमि में बनती हैं, उनको नुकसान पहुँच सकता है।

फसल की कटाई एवं सुखाना—अधिक उपज तथा अधिक तेल की प्राप्ति के लिए फसल की कटाई उचित समय पर करना आवश्यक है। कच्ची फसल काटने पर तेल की प्रतिशत मात्रा कम हो जाती है। जब फसल के पौधे पीले पड़ जायें तथा पत्तियां गिरने लगें उसी समय मूंगफली को खोदना चाहिये। फसल की खुदाई देशी हल तथा ब्लेड-हैरो द्वारा की जाती है।

फलियों को एक सप्ताह तक अच्छी प्रकार सुखा लेना चाहिए। फलियों को तब तक सुखाना चाहिये जब तक कि नमी 9% रह जाय।

उन्नतशील जातियाँ—

(1) **टी. 28**- यह जाति एग्रीकल्चर ट्रेनिंग कालेज, चौलाना, मेरठ (उ. प्र.) से निकाली गई है। इसमें फफूंद की बीमारियाँ लग जाती हैं। उत्तर प्रदेश में यह जाति उगाई जाती है। उपज 15-20 क्वि/हेक्टर है।

(2) **टी एम वी 1**—यह जाति मद्रास में अधिकतर उगाई जाती है। इसकी उपज टी. 28 से ज्यादा होती है।

(3) **कोपरगांव 3**—यह जाति मद्रास तथा महाराष्ट्र प्रदेशों में उगाई जाती है। बीमारियो का असर कम होता है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उगाई जा सकती है। उपज 10-15 क्वि/हेक्टर है।

(4) **टी. एम. वी. 2**—यह जाति मैसूर तथा राजस्थान के लिए उपयुक्त है। इसमें तेल की मात्रा अधिक पायी जाती है। उपज 15-20 क्वि./हेक्टर प्राप्त होती है।

(5) **आर एस 1**—यह अजमेर खण्ड के लिये अधिक उपयुक्त है। यह बड़े दाने वाली जालवत छिलका वाली है। 150 दिन में पकने वाली है। 44% तक तेल की मात्रा अधिक होती है।-15-20 क्वि/हेक्टर उपज प्राप्त होती है।

(6) **आर एस बी 87**—कोटा खण्ड में अधिक उपयुक्त है। कुछ उठी हुये बड़े दाने वाली किस्म है। सामान्यतः तीन दाने होते हैं। सामान्य समय में पकने वाली किस्म है। 55% तक तेल होता है। 20-25 क्वि/हेक्टर उपज प्राप्त होती है।

(7) समराला—अजमेर खण्ड के लिये उपयुक्त है। यह फैलने वाली किस्म में दाने बड़े होते हैं। 48% तेल होता है। 145–150 दिन में पक जाती है। उपज 20–25 क्वि/हेक्टर प्राप्त होती है।

(8) ए के 12–24 —उदयपुर और कोटा संभागो के लिए अधिक उपयुक्त है। तेल 45% होता है। पकने का समय 110–120 दिन है। उपज 25 क्वि/हेक्टर है।

(9) टी 27—यह देर से पकती है। दाने मध्य आकार के होते हैं।

(10) टी 200—यह फैलने वाली जाति है जिसकी उपज अत्यधिक होती है। तेल 48% तक पाया जाता है। उपज 25–30 क्वि/हेक्टर होती है। अन्य किस्में–कादिरी–1 कैजडुरी C–50।

हानिकारक कीट एवं उनके नियन्त्रण—

(1) लाल रोमिल सुन्डी—इस कीडे का प्रकोप वर्षा प्रारम्भ होने के बाद होता है। यह पौधों की पत्तियों को खाकर पूर्ण विहिन बना देता है।

रोकथाम—इसके नियन्त्रण के लिए 0.15 प्रतिशत एण्डोसल्फान का छिड़काव तथा इसके 3 प्रतिशत पैराथियान को 20 कि. ग्रा. प्रति हेक्टर के हिसाब से भुरकते हैं।

(2) मूंगफली का एफिड—यह एफिड पौधों मे रस चूसती है। मूंगफली की प्रमुख विषाणु जनित बीमारियो को भी फैलाते हैं। यह कीड़ा रोजेट को फैलाने मे भी सहायक है।

(3) बिहार की रोमिल सूंडी –इसका प्रभाव मूंगफली पर समूह मे होता है।

रोकथाम–इसके नियन्त्रण के लिए 0.15 प्रतिशत थायोडान (35 ई. सी) ऐके घोल का छिड़काव 200 लीटर प्रति हेक्टर की दर से करते है। इसके अतिरिक्त लिन्डेन के 0.02 प्रतिशत का घोल छिड़कना भी लाभदायक है।

मूंगफली के रोग तथा उनकी रोकथाम—

(1) मूंगफली का टिक्का रोग—इस रोग के प्रभाव से पत्तियों पर गहरे धब्बे पड़ जाते हैं।

रोकथाम—इस रोग को रोकने के लिए फफूंदी नाशक चूर्णों एवं घोलों का प्रयोग करना लाभदायक है। गन्धक और ताम्र चूर्ण का मिश्रण (9.10, पूरे फसल काल मे 3–4 बार छिड़कना उपयोगी है।)

(2) रोजेट–यह रोग वीजाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग के प्रभाव से पौधे बौने रह जाते है। इसके साथ-साथ उनकों का रंग पीला पड़ जाता है।

रोकथाम – इस बीमारी की रोकथाम के लिए अभी कोई उपाय नही

निकल पाया है। रोगरोधी किस्मों को उगा कर अथवा रोगग्रस्त पौधों को फसल से अलग करके कुछ हद तक रोका जा सकता है।

(3) ऐस्पर्जिलस अगमारी—इस रोग के प्रभाव के कारण बीज पर्णों एवं तनों पर गोल हल्के भूरे धब्बे पड़ जाते हैं। बाद में ये धब्बे मुलायम पड़ जाते हैं तथा सड़ने लगते हैं।

रोकथाम—इस रोग की रोकथाम के लिए बुवाई से पूर्व बीजों को एग्रोसियन जी. एन. या सेरेसान द्वारा उपचारित कर लेना चाहिये।

उपज—मूंगफली की उपज जातियों के अनुसार निम्न प्रकार है—

(1) फैलने वाली जातियों की उपज 2000-3000 कि. ग्रा./हेक्टर।

(2) गुच्छेदार जातियों की उपज 1500-2000 कि. ग्रा./हेक्टर।

जिन स्थानों पर सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं। उन स्थानों में 1500 कि. ग्रा. उपज प्रति हेक्टर ली जा सकती है।

फसल चक्र—(1) मूंगफली+गेहूं (2) मूंगफली+अरहर—गन्ना (3) मूंगफली+अरहर—मेड़ी—पड़त गेहूं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. मूंगफली की खेती निम्न शीर्षकों में लिखें—

(अ) बीज की मात्रा	(ब) बोने का ढंग
(स) जातियां	(द) खाद व उर्वरक
(य) उपज हेक्टर	(र) फसल चक्र.

2. किन्हीं 5 उन्नतशील जातियों के नाम लिखकर प्रत्येक की विशेषताएँ लिखो।

3. मूंगफली में मिट्टी कब और क्यों चढ़ाई जाती है। (हा. सं. 1981)

बरसीम
(BERSSEEM)

वानस्पतिक नाम (Trifolium alexandrinum)

परिचय—बरसीम मिश्र देश से 1904 में भारत लाई गई थी। बरसीम सभी पशुओं के लिए एक उत्तम पौष्टिक हरा चारा है। इसके साथ-साथ दूध देने वाले पशुओं के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। भारत में बोयी जाने वाली सभी दलहनी चारों में इसका प्रमुख स्थान है। यह फसल अधिक मात्रा में पौष्टिक चारा प्रदान करने के अतिरिक्त भूमि की उर्वरा शक्ति भी बढ़ाती है। इसका पौधा 60 सेमी. लम्बा बढ़ने वाला एक वर्षीय शाकीय पौधा है। आजकल हम पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और हिमाचल प्रदेश के पाला-रहित नम भागों में उगाई जाती है।

जलवायु—बरसीम के लिए अर्द्ध शुष्क जलवायु वाले क्षेत्र उपयुक्त रहते हैं। इसकी बुआई का अधिकतम तापमान 32° से.ग्रे. तथा न्यूनतम 12·5 से.ग्रे. होना चाहिए। 15° से.ग्रे. 30° से.ग्रे. तापक्रम में इसकी बढ़ोतरी सर्वोत्तम होती है। यह फसल अन्य तिपतिया फसलों की अपेक्षा ठण्ड को कम सहन कर पाती है। तापमान 40° से ग्रे. से अधिक होने पर इसके पौधे कटाई के बाद दुबारा नहीं बढ पाते।

भूमि का चुनाव—बरसीम के लिए न अधिक क्षारीय तथा न अधिक अम्लीय मिट्टी अच्छी रहती है। इसकी अच्छी बढवार के लिए अच्छी जल निकास और वायु संचार वाली तथा अधिक जल धारण करने वाली; दोमट व भारी मटियार भूमि सर्वोत्तम रहती है। कुछ क्षारीय क्षेत्रों में भी इसकी खेती की जा सकती है। परन्तु अम्लीय भूमि बरसीम के लिये उपयुक्त नहीं होती। जिस भूमि में धान की फसल उगाई जाती है, उसमें बरसीम की अच्छी फसल उत्पन्न होती है।

खेत की तैयारी—खरीफ की फसल काटने के बाद खेती की एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से या ट्रैक्टर हल से करके 2–3 जुताइयां देशी हल या हैरो से करनी चाहिये और ढेले तोड़ने के लिये पाटा लगा दिया जाता है। बुआई के 3-4 सप्ताह पूर्व प्रति हैक्टर 260 क्विंटल गोबर की अच्छी खाद डाल देनी चाहिये।

फसल को भूमिगत कीड़ों से बचाने के लिए आखिरी जुताई से पहले 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर 5% एल्ड्रिन का चूर्ण समान रूप से छिड़क देना चाहिये तत्पश्चात् उचित आकार की क्यारियां बना लेनी चाहिये। खेत समतल होने पर लम्बी तथा बड़ी क्यारियां बनाई जा सकती है। क्यारियों को बनाते समय सिंचाई की नालिया भी बना लेनी चाहिये।

बीज की मात्रा—साधारणतया 20 से 25 किलोग्राम स्वस्थ तथा पीले रंग का बीज प्रति हैक्टर उपयुक्त रहता है। यदि बीज खराब व भूरे रंग का है तो बीज की मात्रा और बढ़ा ली जाती है। शीघ्र तथा देर से बोयी जाने वाली फसल में बीज दर 30 किलोग्राम प्रति हैक्टर तक रखनी चाहिये। क्योंकि प्रारम्भिक कटानों मे देशी बरसीम की उपज कम होती है और बाद की कटानों में उन्नतशील बरसीम की उपज कम होती है। इसलिये चारे की उपयुक्त फसल लेने के लिए बरसीम के बीज 1 : 3 अथवा 1 : 1 के अनुपात में देशी तथा उन्नतशील बीजों को मिलाकर बोना चाहिये। यदि केवल चारा ही प्राप्त करना है और बरसीम का उन्नत बीज उपलब्ध नहीं है तो बरसीम (देशी) के 25 किलोग्राम बीज मे 5 किग्रा. सरसो या लाही का बीज मिलाकर प्रति हैक्टर बोना चाहिये। ऐसा करने से भी पहली कटाव में चारा मिल सकता है।

बीज की तैयारी—अच्छे जमाव और बढ़ोतरी के लिए बरसीम का बीज स्वस्थ, मोटे, पीले रंग वाला और खरपतवार रहित होना चाहिये। साधारणतया बरसीम के बीज में कासनी का बीज मिला रहता है। इसलिए ईजी को 5% नमक के घोल में डालकर कासनी के बीज को अलग किया जा सकता है। इसी के साथ-साथ बरसीम के हल्के बीज भी ऊपर तैयार आयेंगे और उन्हें आसानी से अलग किया जा सकता है। इसके तुरन्त बाद ही बरसीम के बीज को घोल से निकाल कर साफ पानी मे धोकर सुखा देना चाहिये। क्योंकि अधिक समय तक बीज नमक के घोल में पड़ा रहा तो नमक से बरसीम के बीज को हानि पहुंच सकती है।

बीज उपचारित करना—यदि बरसीम खेत मे पहली बार बोई जा रही है तो बीज को बरसीम कल्चर से उपचारित करना आवश्यक होता है। उपचार के लिए बरसीम कल्चर के तीन डिब्बे (प्रत्येक डिब्बे में 250 ग्राम) 25 से 30 किग्रा. बीज के लिये काफी होते हैं। इस कल्चर को 15 लीटर 10% के चीनी या गुड़ के घोल में मिलाकर बीज मे अच्छी तरह मिला देते हैं। इसके बाद बीज को छाया में सुखाना चाहिये। कल्चर मिले हुए बीज को 24 घण्टे के अन्दर बो देना चाहिये। यदि बीज उपचारित नहीं किया जाता है तो पौधे बहुत कमजोर रहते हैं और वायुमण्डल से बहुत कम नाइट्रोजन ग्रहण कर पाते हैं।

बरसीम कल्चर—यह एक प्रकार की मिट्टी होती है जिसके अन्दर राइजोबियम ट्राई फोलाई नमक जीवाणु होते है जो वायुमण्डल में नाइट्रोजन खींचकर बरसीम के पौधों की जड़ों में जो गाठें होती है, उनमें जमा करते है और पौधा इस नाइट्रोजन को अपनी बढवार के काम में लाता है और साथ-साथ खेत की भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है।

बरसीम कल्चर निम्न स्थानों में मिलता है—

(1) अध्यक्ष, माइक्रोबाइलोजी डिवीजन, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली–12,

(2) इकॅनॉमिक बाटनिस्ट, उत्तर प्रदेश सरकार, कानपुर।

(3) निदेशक फील्ड रिसर्च स्टेशन, अमरहिल, माको बिहार मार्ग, बम्बई-72

यदि बरसीम कल्चर उपलब्ध न हो तो ऐसे खेत से जहाँ पिछले वर्षों में बरसीम बोई गयी हो। 15 सेमी. ऊपरी सतह की मिट्टी को बीज के साथ मिला कर छिड़क देना चाहिये।

बुआई का समय—उत्तरी भारत मे बरसीम की बुआई अक्टूबर से लेकर दिसम्बर तक की जाती है। अच्छी उपज के लिए बुआई मध्य अक्टूबर तक हो जानी चाहिये। यदि बरसीम को अधिक जल्दी बो दिया जाय तो उसे वर्षा से हानि पहुँच सकती है, और यदि देर से बोई जाती है तो तापक्रम कम होने की वजह से पौधों की बढ़वार नहीं हो पाती है।

बुआई की विधि—बरसीम की क्यारियाँ बनाकर उनमें समान रूप से बीज छिड़क देना चाहिये और बाद मे पानी दे देना चाहिये। इसके बाद क्यारियों में पानी भरकर बीज को छिड़क देना चाहिये। बीज छिड़कने के बाद किसी वृक्ष की शाखा को क्यारियों में घुमा दीजिये ताकि पानी गदला हो जाय और मिट्टी की बारीक तह से ढक दिया जाये।

उर्वरक—बरसीम के लिए प्रति हेक्टर 50 से 60 किलोग्राम फास्फोरस तथा 20 से 25 किलोग्राम नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है जिसके लिये 1 क्वि. अमोनियम सल्फेट या कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट प्रति हेक्टर देनी चाहिये। इसके अलावा 3.75 क्विटल सिंगल सुपर फास्फेट प्रति हेक्टर देनी चाहिये। बरसीम के लिये पूरी खाद की मात्रा बुवाई से पूर्व अन्तिम हैरो अथवा हल चलाते समय छिड़क कर मिला देनी चाहिये। इसके अलावा यदि अमोनियम सल्फेट न हो तो 50 किलो ग्राम यूरिया भी दिया जा सकता है। नाइट्रोजन की ½ मात्रा पहले तथा ½ मात्रा यदि पहली कटाई के बाद दी जाये तो उत्तम रहता है। एन. पी. की पूर्ति के लिये डी. ए. पी. का प्रयोग भी कर सकते हैं।

सिंचाई—बरसीम की पहली सिंचाई बुआई के तुरन्त बाद कर देनी चाहिये, जिससे कि सभी बीज ठीक प्रकार जम सके। इसके बाद सिंचाई हर एक सप्ताह के बाद करते रहना चाहिये। तत्पश्चात् शरद ऋतु में सिंचाई 15–20 दिन के अन्तर पर की जाती है। पानी आवश्यकता से अधिक नहीं देना चाहिये, क्योंकि जल क्षति बरसीम के जमाव और बढ़ोत्तरी के लिये हानिकारक होती है।

कीट तथा रोकथाम—

1 सेमी लूपर--सेमी लूपर बरसीम को हानि पहुंचाने वाला प्रमुख कीड़ा है। इसका आक्रमण फरवरी-मार्च मे होता है। इसकी रोकथाम के लिए पत्तियों पर उसके अण्डे दिखाई दें तो इण्डोल्फन का छिड़काव कर देना चाहिए।

2. लूसन विविल–इस को कीट रोकने के लिये एण्ड्रोसल्फान अथवा 0.12% एल्ड्रिन (' मि. ली. 20 ई. सी. का एक लीटर पानी में बना घोल) को 800 ली. मात्रा प्रति हेक्टर की दर से छिड़कनी चाहियें।

3. ग्राम केटरपिलर---इसका आक्रमण अधिक होने पर 0.2% सीविन के घोल का 900 ली. प्रति हेक्टर की दर से छिड़क देनां चाहिये या 0.5 एण्ड्रोसल्फान (15.2 मि. ली. थायोडान 25 ई. सी. का 10 लीटर पानी में बना घोल) का 900 ली. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

4 थ्रिप्स---इसका आक्रमण रोकने के लिए 2.05% डायजिनान के घोल अथवा 0.02% मैटामिस्टाक्स, (मि.ली. मैटासिस्टाक्स 20 ई.सी. का 2 लीटर पानी मे बना घोल) के घोल को 700 लीटर मात्रा प्रति हैक्टर की दर से छिड़कनी चाहिये।

5. एफिड—एफिड का आक्रमण रोकने के लिये 0.05% मैलाथियान के घोल को 900 लीटर मात्रा प्रति हैक्टर से छिड़कनी चाहियें।

6. रेड पम्पकिन बीटिल–इसकी रोकथाम के लिये 5% मैथाल्थियान अथवा डिप्टेक्स की धूली 20 कि ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से डालनी चाहिये।

7. ग्राम होपर---इस कीट पर नियन्त्रण पाने के लिये सिंचाई की नालियों और मेड़ों पर जो इस कीट के प्रजनन के प्रमुख स्थान हैं। 5% बी. एच. सी. धूलि डालनी चाहिए। इससे नवजात होपर मर जाते है। इसके अलावा 10% बी.एच. सी. 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से डालने अथवा 0.2% बी. एच. सी. (डब्ल्यू. पी.) का घोल 600 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़कने से भी होपर पर नियन्त्रण पाया जाता है।

8. ग्रीन प्लांट बग—इस कीट पर नियन्त्रण पाने के लिये 5./' डिप्ट्रेक्स धूली अथवा 5./' बी. एच. सी. धूली को 24 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से छिड़कना चाहिए।

कीट नाशक कोई भी दवा छिड़कने के 2 सप्ताह बाद तक चारा पशुओं को नहीं खिलाना चाहिये।

रोग तथा रोकथाम—बरसीम में अधिकतर एक रोग लगता है जिसमें पत्तियों का रंग काँसे की तरह का होता है जो कि बरसीम की बढ़वार की प्रारम्भिक अवस्था में पाया जाता है। फसल में फास्फोरस डालने से तथा जलक्रान्ति को रोकने से इस रोग की रोकथाम हो जाती है।

खरपतवार—प्रारम्भ में बरसीम की वृद्धि धीमी गति से होती है। अतः रबी की फसल के सभी खरपतवार जैसे—बथुवा, दूध, कृष्णनील, गजरी, सेंजी, कासनी आदि अधिक संख्या में उग आते हैं।

नियन्त्रण—जहाँ तक सम्भव हो, फसल को बोने से पूर्व अथवा जमाव के पश्चात निकाई द्वारा निकाल देना चाहिये। एक वर्षीय खरपतवारों का नियन्त्रण फसल की प्रारम्भिक एक-दो कटाईयां जल्दी करके भी किया जा सकता है। यदि फसल में अमर बेल का प्रकोप हो रहा है तो प्रभावित पौधों को अमर बेल सहित काट कर जला देना चाहिये।

कटाई—बरसीम की पहली कटाई बोने के 45 से 60 दिन बाद करनी चाहिये। पश्चात मध्य मार्च तक 30–35 दिन के अन्तर पर तथा इसके बाद 25–30 दिन के अन्तर पर अगली कटाइयां की जाती हैं क्योंकि उस समय बरसीम की वृद्धि बड़ी तेजी से होती है।

बीज तैयार करना—बरसीम का बीज तैयार करने के लिये यह आवश्यक है कि बीज शुद्ध हो, उसके अन्दर कासनी का बीज न मिला हो, तभी शुद्ध बीज प्राप्त हो सकेगा। इसके लिए, बरसीम की 1 या 2 कटाई मध्य फरवरी या शुरू मार्च तक करने के बाद फसल की कटाई नहीं करनी चाहिये। देर तक कटाई करते रहने पर बीज की उपज कम होती है तथा उन्नत बीजों का जमाव प्रतिशत कम होता है तथा शीघ्र होने वाली वर्षा बीज की हानि का डर रहता है। फूल आने के बाद फसल में सिंचाई नहीं करनी चाहिए। उससे पहले बराबर समय पर सिंचाई करते रहना चाहिये।

उपज—(1) चारा—यदि बीज न लिया जाये, तो प्रति हैक्टर 900 से 1000 क्विण्टल हरा चारा प्राप्त होता है।

(2) बीज—यदि फरवरी में फसलों को बीज के लिए छोड़ दिया जावे तो 5–6 क्विंटल बीज तथा 400–500 क्विंटल हरा चारा प्रति हैक्टर प्राप्त होता है।

उन्नतशील जातियां

(1) देशी जातियां—

(1) खदरावी, (2) फाहली, (3) सैंडी, (4) मिसकावी, (5) मेरठी।

(2) उन्नतशील जातियां—

(1) टी. 780 (2) टी. 526 (3) टी. 678 तथा टी. 724 (4) टी. 878 (5) पूसा जायन्ट।

फसल चक्र—

(1) चारे की मक्का-बरसीम। (1 वर्ष)

(2) मक्का-बरसीम कपास-बरसीम। (2 वर्ष)

(3) धान-बरसीम। (1 वर्ष)

(4) मक्का-बरसीम कपास-गेहूं। (2 वर्ष)

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. बरसीम की खेती का वर्णन अपने शब्दों में लिखें—
2. निम्न पर टिप्पणी लिखो—
(अ) बरसीम कल्चर (ब) उन्नत जातियां
(स) बरसीम के कीट तथा रोग (द) बीज तथा उपचारित करना
3. बरसीम का क्या महत्व है? बरसीम कल्चर के प्रयोग किस प्रकार किया जाता है?

से या फसल अच्छी तरह से न सूखने पर दाना काला पड़ जाता है इसलिये फसल को सूखने में सावधानी बरतनी चाहिये।

उपज—उन्नत विधियों से खेती करने पर ग्वार की उपज 12 से 16 क्विंटल प्रति हैक्टर ली जा सकती है और करीब इतना ही चारा हो जाता है।

फसल चक्र—(1) ग्वार–गेहूं (2) ज्वार+ग्वार–गेहूं
(3) ग्वार-मूली-गेहूं-लोनिया

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. ग्वार की खेती का वर्णन निम्न शीर्षकों में लिखें—

(अ) भूमि (ब) बीज की मात्रा (स) उर्वरक
(द) उपज हैक्टर (य) रोग एवं कीट

2. ग्वार की खेती के लिये आप क्या ठोस सुझाव देंगे ?

———

(2) बोनी-छोटी फलियों वाली ।

उन्नत किस्में—ग्वार नं. 2 (सूखा अवरोधी) नं. 237 अगेता ग्वार-111 पूसा मारवनी व पूसा नोवहार ।

बुवाई की विधि—ग्वार की बीजाई ड्रील से या दो पौरे से करनी चाहिये और कतार से कतार की दूरी 30 सेमी. रखनी चाहिये ।

खाद एवं उर्वरक—60 किलो डी ए. पी. प्रति हैक्टर बीजाई से पहले ड्रील करना चाहिये । यदि डी. ए. पी. उपलब्ध न हो तो 176 किलो सुपर फास्फेट एवं 24 किलो यूरिया प्रति हैक्टर से ड्रिल करना चाहिये ।

निराई-गुड़ाई—यदि खेत मे खरपतवार हो तो निराई-गुड़ाई करना लाभदायक होता है ।

सिंचाई—बीजने के 3 या 4 सप्ताह बाद यदि अच्छी वर्षा न हो तो सिंचाई करनी चाहिये । दूसरी सिंचाई वर्षा खत्म होने पर माह अगस्त या सितम्बर मे देना लाभदायक होता है । यदि ग्वार के बाद रबी की फसल लेनी हो तो 15 सितम्बर के बाद सिंचाई न करें क्योंकि सितम्बर के बाद सिंचाई करने से फसल पकने में विलम्ब होता है ।

पौध संरक्षण—(क) ग्वार की फसल मे प्रायः एफिड, जैसिड नामक कीड़े नुकसान पहुंचाते है । इनकी रोकथाम हेतु अंकुरण के 30 दिन बाद निम्नलिखित रसायनों में से किसी एक का छिड़काव (प्रति हैक्टर) किया जावे—

1. 140 मि. ली. डईमेक्रिय, अथवा
2. 809 मि. ली. रोगर अथवा
3. 890 मि. ली. मैटासिस्टोक्स 2% या बी. एच. सी. 10% डस्ट को 24 प्रति हेक्टर भुरकें । इसको 30 दिन बाद दोहरावें ।

(ख) बीमारी की रोकथाम के लिये नीचे लिखे अनुसार पौध संरक्षण कार्य करें ।

पत्तो पर काले भूरे धब्बे (बेक्टीरिकल ब्लाइट) बीमारी के प्रकोप होने पर स्ट्रेप्टो-इक्लीन 8 ग्राम प्रति हैक्टर के हिसाब से छिड़कें । झुलसा रोक की रोकथाम हेतु 2·5 कि. ग्रा. जाइनेब या 1·6 कि.ग्रा. कापर आक्सी क्लोराइड प्रति हैक्टर छिड़काव जुताई के अन्त मे करना चाहिये ।

कटाई व मड़ाई-फसल पूरी पकने पर कटाई करके फसल को सूखने के लिये खेत मे छोड़ दें या कटी हुई फसल खलियान मे ले जाकर सुखा लें । वर्षा हो जाने

से या फसल अच्छी तरह से न सूखने पर दाना काला पड़ जाता है इसलिये फसल को सूखने में सावधानी बरतनी चाहिये।

उपज—उन्नत विधियों से खेती करने पर ग्वार की उपज 12 से 16 क्विंटल प्रति हैक्टर ली जा सकती है और करीब इतना ही चारा हो जाता है।

फसल चक्र—(1) ग्वार–गेहूं (2) ज्वार + ग्वार–गेहूं
(3) ग्वार-मूली-गेहूं-लोनिया

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. ग्वार की खेती का वर्णन निम्न शीर्षकों में लिखें—

(अ) भूमि (ब) बीज की मात्रा (स) उर्वरक
(द) उपज हैक्टर (य) रोग-एवं कीट

2. ग्वार की खेती के लिये आप क्या ठोस सुझाव देंगे?

अध्याय–18

मक्का

(MAIZE)

वानस्पतिक नाम (Zea Mays)

परिचय—मक्का की उत्पत्ति मध्य अमेरिका तथा मैक्सिको से मानी जाती है। हमारे देश में खाद्यान्नों की फसलों में इसका प्रमुख स्थान है।

जलवायु—मक्का एक ग्रीष्मकालीन फसल है। यह समुद्र तल से लेकर 12,000 फीट की ऊंचाई तक पैदा की जाती है। बुवाई के समय वायुमण्डल का तापमान 32 से 36 से. ग्रेड होना चाहिये तथा नमी भी काफी होनी चाहिये पकते समय गर्म तथा शुष्क वातावरण ठीक होता है।

भूमि—मक्का भी अच्छी पैदावार के लिए अच्छे जल निकास, तथा वायु सचार वाली गहरी उपजाऊ दोमट मिट्टी उत्तम रहती है। यह भी ध्यान रखें कि वह भूमि खारी और ऊसर न हो।

खेती की तैयारी- बुवाई की तैयारी के लिए खेत में पलटने वाले हल से 12 से 16 से. मी. गहरी जुताई कर देनी चाहिये जिससे मिट्टी पलट जाती है। खरपतवार भूमि में दब जाते हैं। इसी समय 100-50 क्विण्टल गोबर की खाद डाल देना चाहिये। जिससे वह मिट्टी से अच्छी प्रकार मिल सके। फिर दो या तीन बार हैरों चलाकर मिट्टी को भुरभुरी बना लीजिए। नमी को सुरक्षित रखने और भूमि को समतल करने के लिए पाटा चला देना चाहिये।

जातियां—मक्का की जातियों को चार भागों में बांट सकते है–

(1) देशी किस्में
(2) संकुलन किस्में
(3) संकर किस्मे
(4) प्रोटीन बाहुल्य किस्में।

देशी किस्में–

(1) **बक्सी (सेलेक्टेड)**—सामान्य ऊंचाई प्रति पौधे पर दो सिट्टे बड़े चमकीले पीले दाने 90-116 दिन में पकने वाली 30-36 क्वि./हैक्टर उपज वाली यह किस्म पूरे राजस्थान के लिए अनुमोदित है।

मालन—पौधे ऊंचे, बड़े, सफेद दाने, 116-120 दिन में पकने वाली,

28-30 क्वि./हैक्टेयर उपज वाली यह किस्म उदयपुर के लिए एवं पहाड़ी क्षेत्रों के लिए अनुमोदित की गई है।

तालिका सं. 17

संकर किस्में—

किस्म	वर्ष	पैदावार कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर	गुण
1. गंगा-10,	फरवरी 1961	4,000-5,000	(1) उत्तरी मैदानों के लिए स्वीकृत की गई है। (2) 100-110 दिन में पककर तैयार हो जाती है। (3) टाउनी मिल्ड्यू रस्ट के लिए अवरोधी है।
2. रणजीत	फरवरी, 1961	4,500-5,600	(1) राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र के लिए स्वीकृत। (2) 100-110 दिन में पक कर तैयार हो जाती है।
3. गंगा सफेद-2	अप्रेल 1963	4,500-5,000	(1) उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल के लिए स्वीकृत की गई है। (2) 95 से 110 दिन में पककर तैयार हो जाती है। (3) टाउनी मिल्ड्यूलिफ ब्लाइट के लिए अवरोधी है।
4. हाई स्टार्च,	अप्रेल 1963	5,500-6,00	(1) मक्का उगाने वाले देश के सभी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। (2) इसकी आवश्यकता स्टार्च उद्योग में अधिक होती है। (3) 95 से 100 दिन में पककर तैयार होती है।
5. गंगा-5 पीली	1968	5,500-6,000	(1) मैदानी क्षेत्र एवं राजस्थान के लिए स्वीकृत। (2) 90 से 95 दिन में पककर तैयार होती है।

किस्म	वर्ष	पैदावार कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर	गुण
			(3) रस्ट एवं लीफ ब्लाइट के लिए अवरोधी है।
6. गंगा सफेद-4	1967	5,000-6,000	(1) सम्पूर्ण राजस्थान के लिये अनुमोदित है। (2) पकने की अवधि 110-115 दिन है। (3) सख्त सफेद दाने होते हैं।
7. गंगा-3	मार्च 1964	4,500-6,500	(1) मैदानी भागों के लिए (2) 90-95 दिन में पककर तैयार हो जाती है। (3) लीफ ब्लाइट एवं रस्ट के लिए अवरोधी है।
8. हिमालय 123	मार्च, 1967	5,5000-6,500	(1) हिमालय की पहाड़ियों पर 6,000 फीट की ऊंचाई तक के लिए स्वीकृत। (2) 125-126 दिन में पककर तैयार हो जाती है।

संकुल किस्में—

किस्म	पैदावार कि. ग्रा. प्रतिहैक्टेयर	गुण
1. अम्बर	6,500-5,800	(1) महाराष्ट्र, मैसूर, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और हिमालय पर्वत पर 5000 की ऊंचाई तक के लिए स्वीकृत की गई है। (2) 100-115 दिन में पककर तैयार हो जाती है। (3) सभी बिमारियों एवं हानिकारक कीटों के लिए अवरोधी है।
2. जवाहर	5,6000-6,000	(1) महाराष्ट्र, मैसूर, तमिलनाडु एवं आंध्र प्रदेश के लिए स्वीकृत की गई है।

किस्म	पैदावार किं. ग्रा. प्रति हैक्टेयर	गुण
		(2) 100-110 दिन में पककर तैयार हो जाती है।
		(3) दाने गुलाबी पीले रंग के होते हैं।
3. किसान	5,600-6,500	(1) उत्तरी मैदानों के लिये स्वीकृत की गई है।
		(2) 105-110 दिन में पककर तैयार हो जाती है।
		(3) दाने नारंगी रंग के होते हैं।
4. विक्रम	6,000-5,000	(1) उत्तरी मैदानों के लिए स्वीकृत।
		(2) 90-120 दिन में पककर तैयार हो जाती है।
		(3) गहरे नारंगी के दाने होते हैं।
5. सोना	5,000-6,000	(1) उत्तरी मैदानों के लिए स्वीकृत की गई है।
		(2) 90-100 दिन में पककर तैयार हो जाती है।
		(3) पौधे लम्बे विकसित तथा पत्तियाँ चौड़ी एवं हल्के रंग की होती हैं।
		(4) प्रत्येक पौधे में दो भुट्टे आते हैं।
6. विजय	5,600-6,300	(1) उत्तरी मैदानों के लिए स्वीकृत की गई है।
		(2) प्रत्येक पौधे पर दो भुट्टे आते हैं।
		(3) दाने पीले रंग के होते हैं।
		(4) लीफ ब्लाइट, रस्ट के लिए अवरोधी।

प्रोटीन बाहुल्य किस्में—

अनुसंधान द्वारा मक्का की एक नई किस्म 'शक्ति (ओपक-2) निकाली गई जिसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है पकने की अवधि 110 दिन, उपज 30-35

क्वि प्रति हैक्टेयर है। इसके साथ रतना तथा प्रोटीन बाहुल्य किस्में है। दोनों की पकने की अवधि 100-110 दिन है। रतना की उपज 50-60 क्वि. प्रति हैक्टर है जबकि प्रोटीना की उपज 35–50 क्वि. हैक्टेयर ही है।

संकर मक्का बोने से लाभ—संकर मक्का बोने से निम्नलिखित लाभ होते हैं —

(1) इसकी पैदावार 40-50 क्वि. प्रति हैक्टेयर है, जबकि देशी मक्का की उपज 20-25 क्विण्टल होती है।

(2) शीघ्र पकती है और 100 से 110 दिन में तैयार हो जाती है।

(3) साधारणतः यह गिरती नहीं है।

(4) स्वाद अच्छा होता है। रोटी के अतिरिक्त अन्य व्यंजन भी स्वादिष्ट बनते हैं।

बीज की मात्रा—

दाने की फसल के लिए 14 से 16 कि. ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। चारे के लिए 40 कि. ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर काफी होता है।

बीज उपचारित करना—

अच्छे अंकुरण और बीमारी से बचाव के लिए बोने से पहले बीज को एग्रोसीन जी. एन. से उपचारित कर लेना चाहिए।

बुआई का समय—

हमारे देश में मक्का की फसल मुख्यतः खरीफ में ली जाती है। इसकी बुवाई देश के विभिन्न भागो मे 15 जून से 15 जुलाई तक की जाती है। परन्तु अगेती बुआई करने से पैदावार अधिक होती है। भुट्टे के लिए फसल को मई के अन्तिम सप्ताह मे बोनी चाहिये तथा चारे के लिए मई के अन्त में या जून के प्रथम सप्ताह में बोना चाहिये।

कम्पोजिट मक्का (विक्रय व किसान) की शीतकाल में अर्थात् जनवरी में भी उगा सकते है। यह फसल अप्रेल में तैयार हो जाती है। यह एक अनुसंधान के परीक्षणों से स्पष्ट हुआ है।

बुवाई की विधि—

बीज की बुवाई मक्का बोने के यन्त्र से (मेजप्लान्टर) या हल के पीछे कूंज में बीज गिरा कर की जाती है। बीज 5-8 से.मी. गहराई तक बोना चाहिये। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 75 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 25 से.मी. रखनी चाहिये। इस प्रकार से बोने पर पौधे की संख्या प्रति हैक्टेयर 53, 338 रहती है।

उर्वरकों का प्रयोग—

मक्का की औसत अच्छी फसल के प्रति हैक्टेयर लगभग 120 से 150 कि ग्रा नाइट्रोजन, 50 से 60 कि.ग्रा. फास्फोरस 40 से 50 कि.ग्रा. पोटाश 10 से 25

कि.ग्राम जिंक फास्फेट की आवश्यकता होती है। इनकी सही मात्रा का पता मृदा परीक्षण से चल जाता है।

उर्वरक देने की विधि—

(1) जस्ता फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा बोते समय दे देनी चाहिए।

(2) नाइट्रोजन 3 बार देनी चाहिए। पूरी मात्रा का 1/3 भाग बुआई के समय 1/3 भाग बोने के 30–35 दिन बाद और बाकी बची हुई 1/3 मात्रा नरमजरी निकालने के समय देनी चाहिए—

खरपतवार नियन्त्रण—

खरपतवार नियन्त्रण के दो तरीके हैं—

(1) निराई-गुड़ाई द्वारा।

(2) रासायनिकों द्वारा।

मक्का में आजकल दूसरा तरीका ही प्रयोग मे लाया जाता है। इस विधि में अबतक कई खरपतवार नाशक रासायनों का प्रयोग होता रहा है। लेकिन आजकल टैफाजिन या एट्राफान का ही प्रयोग अधिक होता है। 125-2 कि. ग्राम टैफाजिन (50 डब्ल्यू. पी.) या एट्राफान (50 डब्ल्यू. पी.) को 100 लीटर पानी मे घोलकर प्रतिहैक्टेयर क्षेत्र मे बुआई के फौरन बाद छिड़कने से घास और चौड़ी पत्ति वाले खरपतवारों की रोकथाम की जाती है। टैफाजिन का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखे कि पूरे खेत में समान रूप से छिड़की जाय और किसी भी क्षेत्र मे दुबारा न छिड़की जाय।

सिंचाई—

अगर मानसूनी वर्षा सामान्य रहती है तो सिंचाई की आवश्यकता नही होती आवश्यकता पड़ने पर 3 सिंचाई खरीफ ऋतु की मक्का में तथा 5 सिंचाई रबी मक्का मे पर्याप्त होती है। खेत में 6 से 8 घण्टे से ज्यादा पानी नही रहने देना चाहिए।

कीड़ों की रोकथाम—

(1) तना बेधक (2) तने की मक्खी (3) फुटका (4) आमी वर्म (5) बालदार गिड़ार (6) एफिड़ (7) खरीफ का टिड्डा।

रोकथाम—

फसलों पर कीड़ों के आक्रमण का पता लगते ही 0·1 प्रतिशत थायोडान या 0·2% सोविल का छिड़काव कर देना चाहिए। सामान्यतया जब फसल दो सप्ताह की होती है तब पहले छिड़काव की आवश्यकता पड़ती है। कीटों के आक्रमण का नियन्त्रण होने पर 16 दिन के अन्तर पर पुनः छिड़काव करना चाहिए। 40 दिन के बाद भी अगर कीट नुकसान पहुंचा रहे है तो पौधों की पत्तियो के गोफ मे 4%

थायोडान या सेविन की कणिकाएं 15 कि. ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से डालें। तना बेधक, शूट फ्लाई और आर्मी वर्म की रोकथाम कीजिए। तना बेधक की रोकथाम के लिए पत्तियों की गोफ में एल्ड्रिन कणिकाएं डालनी चाहिएं।

रोग तथा उसकी रोकथाम—

(1) रोमिल फफूंदी (2) पत्तियों का झुलसना (3) कंडुवा
(4) किट्ट (5) मोजेक।

रोकथाम—

बुआई से पहले थाईराम (2 ग्रा. प्रति कि. बीज) नामक दवा बीज में मिलाना जरूरी है। रोमिल फफूंदी रोग से फसल को बचाने के लिए बुआई मई के अन्त तक कर देनी चाहिए। इस रोग से बचाव के लिए फसल में डाईथेन एम-15 की 3 कि. ग्राम मात्रा 1100 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। पहला छिड़काव रोग का आक्रमण होते ही और फिर फूल आने तक 3 छिड़काव 10 दिन के अन्तर पर किये जा सकते हैं।

झुलसा रोग के लक्षण दिखाई देने पर डाईथेन जेड-78 का छिड़काव प्रारम्भ करना चाहिए।

कटाई—

मक्का की प्रचलित उन्नत किस्में 80 से 100 दिन में पक जाती है। मक्का की कटाई तब करनी चाहिए जब दोनों में नमी की मात्रा 24 से कम हो जाय तथा भुट्टों के ऊपर की पत्तियां (हस्क) सूख कर ढीली पड़ जाय।

पैदावार—

संकर मक्का से 60 से 65 क्विण्टल प्रति हैक्टेयर तथा संकुल मक्का से 54 से 60 क्विण्टल प्रति हैक्टेयर पैदावार मिल जाती है। 55 से 600 हजार तक भुट्टे प्रति हैक्टेयर प्राप्त हो जाते हैं।

फसल चक्र—

(1) मक्का-आलू-गेहूं (एक वर्षीय)
(2) मक्का-गेहूं (")
(3) मक्का-आलू-तम्बाकू (")
(4) मक्का-आलू-मक्का (बसंत ऋतु) (")

अभ्यास के लिए प्रश्न

(1) मक्के की जातियों को कितने वर्गों में बांटा जा सकता है? उदाहरण समझाओ।

(2) मक्के की खेती का वर्णन अपने शब्दों में करें।

———

ज्वार

(GREAT MILLET)

वानस्पतिक नाम (Sorghum Vuglar)

परिचय—भारत में अनाज की फसलों के उत्पादन में ज्वार का प्रमुख स्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से इसका स्थान दूसरा तथा उत्पादन की दृष्टि से तीसरा है। ज्वार की खेती चारे तथा दाने के लिए की जाती है। उत्तरी भारत में ज्वार खरीफ की फसल के रूप में उगाई जाती है।

जलवायु—ज्वार उष्ण जलवायु में पकने वाली फसल है। ज्वार के लिए सामान्य वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त रहते हैं। इसको अधिक वर्षा व नमी हानिकारक होती है। ज्वार के बीज को अंकुरण के समय 85°–90° का तापक्रम होना चाहिये तथा पौधों की बढ़वार के लिए 70°-90° का तापक्रम उपयुक्त रहता है।

मिट्टी—ज्वार अच्छे जल निकास वाली भूमि में उगायी जाती है। इसके लिए दोमट भूमि सर्वोत्तम रहती है।

खेत की तैयारी—पिछली फसल काटने के बाद एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए जिससे कि खरपतवार दब जाए तथा 2–3 बार देशी हल या हैरो से जुताई करके मिट्टी भुर-भुरी कर लेना चाहिये तथा पाटा जमा कर खेत को समतल कर देना चाहिये जिससे कि खेत की नमी बनी रहे।

बीज की मात्रा—ज्वार का बीज दाने के लिए 12 किलोग्राम हैक्टर तथा चारे के लिए 25-30 किलोग्राम हैक्टेयर पर्याप्त होता है।

बुवाई का समय—ज्वार की फसल को जहां वर्षा पहले आरम्भ होती है, जून के अन्तिम सप्ताह में बोना चाहिए तथा सी-एच–1 अगेती जाति बोनी हो तो जुलाई के सप्ताह में भी बो सकते है। जहां वर्षा देर से आरम्भ हो वहा पर पलेवा करके जून मे बोना चाहिये।

इस प्रकार बोने के समय का भी विभिन्न जातियों की पैदावार मे अन्तर आता है। यह प्रयोग पन्तनगर विश्वविद्यालय में किया गया जिसमें कि विभिन्न समय पर बोने से पैदावार में अन्तर पाया गया जो अग्रांकित तालिका से स्पष्ट होता है—

तालिका नं० 18

विभिन्न तिथियों पर बोने पर ज्वार की दो जातियों की पैदावार क्वि/हेक्टर
(पन्तनगर 1970)

जातियां	बोने की विभिन्न विधियां				
	जून, 20	जून, 27	जुलाई, 4	जुलाई, 11	जुलाई, 18
सी. एस. एच.	29.63	32.41	37.50	37.27	34.72
स्वर्ण	24.03	32.64	35.65	31.25	21.30

निष्कर्ष—इस प्रकार उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अगर सी एस. एच. 1 ज्वार की जाति को उपर्युक्त समय जुलाई के पहले सप्ताह मे बोते है तो पैदावार अधिक होती है तथा आगे या पीछे बोने पर पैदावार कम होती है। इसी प्रकार स्वर्ण जाति का उपयुक्त समय भी जुलाई का प्रथम सप्ताह है।

ज्वार की पेड़ी—ज्वार की पेड़ी फसल की पैदावार बोई गई (मुख्य) फसल से अधिक होती है। इसकी तालिका नं. 8 से स्पष्ट किया गया है जो कि आई.ए. आर. आई. नई दिल्ली द्वारा 1968 प्रयोग किया गया।

तालिका नं० 19

उत्तर भारत मे ज्वार की दो जातियों की मुख्य फसल तथा पेड़ी की फसल का तुलनात्मक विवरण (आई. ए. आर. आई. नई दिल्ली 1968)

विशेषताएं	सी. एस. एच-1		स्वर्ण	
	मुख्य फसल	पेड़ी फसल	मुख्य फसल	पेड़ी फसल
बुवाई की तारीख	30-7-89	17-7-89	17-7-89	28-7-89
चारे के लिए कटाई की तारीख	——	30-7-89	——	17-7-89
चारे की उपज क्वि/हेक्टर	——	500	——	500
तैयार होने का समय (दिन)	100	80	110	85
दाने की उपज क्वि/हेक्टर	4325	61.00	22.22	60.00
चारे की उपज क्वि/हेक्टर	240 00	355.09	250.00	350.00

नोट—पेड़ी फसल की दाने तथा चारे की पैदावार भी अधिक होती है तथा पेड़ी फसल साधारण (मुख्य) फसल से 39 दिन पहले तक पक जाती है और यह फसल खरपतवार तथा कीट व्याधि से मुक्त रहती है।

बुवाई की विधि ज्वार को पंक्तियों में बोना चाहिये। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 से. मी. तथा पौधा से पौधा 15 सेमी दूर होना चाहिये। इस प्रकार एक हेक्टर में 150 हजार पौधे होते हैं। पंक्तियों में बुवाई देशी हल से कूड़ों में नाइ द्वारा की जाती है। ज्वार का बीज 3 4 से. मी. गहरा बोना चाहिए। क्योंकि अगर बोने के बाद तथा अंकुरण के पहले वर्षा हो जाए तो अंकुरण अच्छा नहीं होगा क्योंकि ऊपर मिट्टी कड़ी हो जाती है। इसलिए नमी होने पर खेत में उथली बुवाई करनी चाहिए।

अंकुरण के पश्चात पंक्ति में जो जगह खाली रह जाय तो शीघ्र बीज डाल देना चाहिए तथा 3-4 सप्ताह बाद जहाँ पौधे घने हों उनको निकाल देना चाहिए।

बुवाई के समय अगर खेत में सफेद चींटी व सफेद सूंडी हो तो 5% एल्ड्रीन पंक्तियों में 15 किग्रा. हेक्टेयर की दर प्रयोग करना चाहिए।

बीज का उपचार—प्रमाणित बीज को उपचारित नहीं करते है। बीमारी से बचाव के लिए निम्न रसायनो से बीच उपचारित करते हैं—

(अ) एग्रोसन जी. एन. 2 ग्राम/किलोग्राम बीज।
(ब) सेरेसन (सूखा) 2 ग्राम/कि. ग्रा. बीज।
(स) आरगैनोमरक्यूरियल 250 ग्रा./कि. ग्राम बीज।

बीज लिप्त रोगों को उपचारित करना—

(अ) केप्टान 180 ग्राम/100 किलो ग्राम बीज।
(ब) थिराम 300 ग्राम/100 किलो ग्राम बीज।

नोट—पहले इन रसायनो को थोड़े पानी मे मिलाकर लेप जैसा बना लेते है। फिर एक लीटर पानी में घोल कर बीज पर अच्छी प्रकार छिड़क देते है।

खाद की मात्रा—(1) अगर उपलब्ध हो तो 100 क्विटल गोबर की खाद ज्वार के लिए प्रति हेक्टर देनी चाहिए।

(2) ज्वार के लिए प्रति हेक्टर देनी चाहिए।

(3) फास्फोरस तथा पोटाश की मात्रा भूमि को उर्वरा शक्ति तथा भूमि की जांच कराने के बाद देनी चाहिए। अगर ये तत्व भूमि में कम हो तो अग्रलिखित प्रकार देना चाहिए—

(घ) 50 कि. ग्रा फास्फोरस/हेक्टर
(च) 50 कि. ग्राम पोटाश/हेक्टर।

नोट—अगर गोबर की खाद का प्रयोग किया गया हो तो उसके अनुसार नाइट्रोजन की मात्रा कम करके लगभग 80 कि. ग्राम प्रति हेक्टर देनी चाहिए।

खाद देने का समय तथा विधि—यदि जैविक खाद देनी हो तो जुताई के समय खेत में फैलाकर जुताई करके अच्छी प्रकार मिला देनी चाहिए।

(1) नाइट्रोजन वाले उर्वरक की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश वाले उर्वरक की पूरी मात्रा मिलाकर बुवाई के समय हल के पीछे बोते हैं। यह मिश्रण पंक्तियों में मशीन के द्वारा भी बोया जाता है। यह बीज से 5·6 सेन्टीमीटर दूर तथा बीज की सतह से 5 सेंटीमीटर गहराई पर डालना चाहिए।

(2) नाइट्रोजन वाले उर्वरक की शेष आधी मात्रा बुवाई के 25·30 दिन बाद पंक्तियों के बीच टापड्रेसिंग द्वारा डाली जाती है। ये उर्वरक पंक्तियों में कल्टीवेटर द्वारा मिलाना चाहिए।

(3) असिंचित क्षेत्रों में नाइट्रोजन की कुछ मात्रा फसल को पत्तियों द्वारा भी दी जाती है। पत्तियों पर 3% यूरिया का घोल 100 लीटर प्रति हेक्टर की दर से छिड़कते है। इस छिड़काव से 13.5 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टर मिल जाती है।

सिंचाई तथा जल निकास—ज्वार की अच्छी पैदावार लेने के लिए सिंचाई की सुविधा होनी चाहिए। बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए तथा पौधों की बढ़वार व फूल आते समय ज्वार की फसल को पानी की अधिक जरूरत होती है। ज्वार को अच्छे जल निकास वाली भूमि आवश्यक है। फसल में अधिक पानी होने पर पैदावार पर असर पड़ता है। इसलिए खेत समतल कर देना चाहिए तथा जल निकास के लिए खेत में 40–50 मीटर की दूरी पर पानी निकालने की नाली बना देनी चाहिए।

निराई-गुड़ाई तथा खरपतवार नियन्त्रण—ज्वार में अधिकतर बरसात के खरपतवार पाये जाते है जो कि पौधों के साथ उगाकर उनको दिया गया पानी व उर्वरक का उपयोग करते है। इसलिए इनकी रोकथाम अवश्य करनी चाहिए।

(1) ज्वार की पंक्तियों में हल्का कल्टीवेटर चलाकर खरपतवार नष्ट कर देनी चाहिये। यह गुड़ाई 4–5 से मी. गहरी होनी चाहिये, नही तो पौधों की जड़ों को हानि हो सकती है। इसके लिए खुर्पी का भी प्रयोग कर सकते हैं।

(2) ज्वार के खरपतवारों को रोकने के लिए खरपतवार नाशकों का भी प्रयोग करते है। इसमें एट्राजीन 1·00 कि. ग्रा./हैक्टर के हिसाब से 700 लीटर पानी में मिलाकर बुवाई के 3-4 दिन बाद छिड़कते हैं।

कीट–नियन्त्रण

तना छेदक—(1) 20 ई. सी. एल्ड्रीन का 0·03% घोल 500-700 लीटर प्रति हेक्टर छिड़कना चाहिये तथा दूसरी बार इसका छिड़काव 15 दिन बाद करना चाहिये।

(2) 2% एल्ड्रीन कणिकाएं 20 कि. ग्रा हेक्टर डालनी चाहिए।

तना मक्खी—10 थिमेट या फौराट कण बुवाई से पहले या उसी समय कूडों में 15 कि. ग्रा. हेक्टर डालनी चाहिए।

बीमारी नियन्त्रण—(1) संजरी बिमारी तथा ज्वार का अरगट रोग, तथा कण्डुआ रोग को रोकने के लिए 0·15% जीरम 1 कि. ग्रा हेक्टर बूटलीफ अवस्था में तथा दूसरी बार 6 या 7 दिन बाद छिड़कना चाहिए।

(2) बालियों पर डस्ट, मिश्रण बी. एच. सी. + डी. डी. टी. 10% (1 : 1) 15 कि. ग्रा. हेक्टर भुरकनी चाहिए।

तालिका नं. 20 ज्वार की विभिन्न उन्नतशील जातियां

किस्म तथा वर्ष	संकरण	पकने का समय (दिन)	पौध की ऊँचाई सेमी	दाने का रंग	उपज/क्वि./हेक्टर	विशेष
सी. एस. एच. 1	एम. एस. सी. के 60 ×	95–105 दिन	140–160 से. मी.	मोतिया रंग	क्वि/हेक्टर 40–50	भारत के अधिकतम भागों में उगाई जा सकती है और सूखा सहन कर सकती है।
सी. एस. एच. 2'	आई. एस. 84 के 60 × आई. एस. 3691	120–125 दिन	180–200		40–50	कम वर्षा वाले क्षेत्रों को उपयुक्त। तना छेदक का प्रकोप होता है।
सी. एस. एच. 3	एम. एस. 2219 ⁄. आई. एस. 3691	115–120 दिन	180–200	सफेद मटमैला	50–00	वर्षा वाले क्षेत्रों को उपयुक्त तने की मक्खी का प्रकोप नहीं होता है।
स्वर्ण सलेक्सन 413	—	110–115 दिन	160–170	पीलापन देते हुए सफेद	30–00	यह संकर किस्म नहीं है। प्रतिवर्ष नया बीज नहीं लेना पड़ता है।

अन्य उन्नत किस्में—

N-13-यह 110 से 114 दिन में पकती है।

विदिशा--69-1, स्वर्ण J.S. 20, J.S. 263, J.S. 29/इत्यादि।

कटाई तथा मढ़ाई—फसल जब तक पक जाती है तो दाने पीले रंग के हो जाते हैं तना भुट्टों में जब नमी 25./° रह जाये तो अक्टूबर-नवम्बर में ज्वार की फसल को काट लिया जाता है। खलियान मे एक सप्ताह बाद सुखाकर बैलों या मशीनों द्वारा मढ़ाई की जाती है।

पैदावार—(1) दाने की पैदावार लगभग 20 से 30 क्वि/हैक्टर होती है।
(2) सूखा चारा लगभग 150-160 क्वि/हैक्टर होता है।
(3) हरा चारा लगभग 250-300 क्वि/हैक्टर होता है।

फसल चक्र –	(1) ज्वार-चना	(एक वर्ष)
	(2) ज्वार-मटर	"
	(3) ज्वार-(हरा चारा)—बरसीम	"
	(4) ज्वार-गेहूं-मूंग बसन्त	"
	(5) ज्वार–लाही—मूंग बसन्त	"

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. ज्वार की खेती का वर्णन निम्नांकित शीर्षकों मे लिखें—
   (अ) उन्नतशील जातियां
   (ब) भूमि एवं भूमि की तैयारी।
   (स) बीज उपचार।
   (द) खाद एवं उर्वरक।
2. ज्वार की खेतों का वर्णन अपने शब्दों में करें।
3. ज्वार में लगने वाले कीट एवं बीमारियों के नाम, लिखकर, उनको दूर करने का उपाय लिखो।

बाजरा (BAJRA)

(PORAL MILLET)

वानास्पतिक नाम (Pennisetum tdyho ium)

परिचय—बाजरे का मूल स्थान भारत माना जाता है। कुछ विद्वान इसका जन्म स्थान अफ्रीका मानते हैं। राजस्थान भारत के प्रमुख बाजरा उत्पादक प्रान्तों में से एक है।

भूमि—बाजरे के लिए बलुई दुमट मिट्टियां सर्वोत्तम रहती हैं। जल-निकास युक्त एवं कंकड पत्थर रहित भूमियों मे यह सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। दक्षिणी भारत में इसे कपास की काली मिट्टी मैसूर की लाल मिट्टी मे उगाया जाता है।

जलवायु – उत्तरी भारत मे इस खरीफ के मौसम में उगाते है। 50 से.मी. वार्षिक वर्षा इनके लिए काफी होता है। यह कम पानी चाहने वाली फसल है। 100 से.मी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्र इसकी अच्छी उपज के लिए उपयुक्त नही है।

उन्नतशील जातियां—

(i) आर. एस. के.—यह जयपुर, भरतपुर और सवाई माधोपुर जिले में सफलतापूर्वक उगाई जाती है। सिट्टे लम्बे (30-37 से. मी.) होते है तथा दाने मध्यम आकार के होते हैं। 100 से 115 दिन में पक जाती है। 6-8 क्विटल प्रति हेक्टर पैदावार होती है।

(ii) आर. एस. जे.—यह अलवर, सीकर और झुन्झुनू जिले में अधिकता से बोयी जाती है। लम्बे पतले गोलाई लिये हुए सिरे वाले सिट्टे जिनकी लम्बाई 35-45 से. मी. होती है। दाने मोटे होते है। 80 से 90 दिन मे पक जाते हैं। उपज 6-8 क्विटल/हेक्टर होती है।

(iii) संकर बाजरा—सम्पूर्ण राजस्थान में इसकी खेती होती है। अधिक फुटान वाले पतली व छोटी पत्तियां होती हैं। तना पकने पर भी हरा व नरम रहता है। शीघ्र पकने वाला है। उपज 30-35 क्विटल/हेक्टर होती है।

(iv) एच. बी. 3.—यह जाति भी सम्पूर्ण राजस्थान के लिए है। अधिक फुटान, कम लम्बे व मोटे सिट्टे तथा चमकीले दाने होते हैं। 80 से 85 दिन

में पक जाता है। सूखा सहन करने वाला है। उपज 25-30 क्विंटल प्रति हेक्टर होती है।

(v) एच. बी. 4.—राजस्थान के अधिक वर्षा वाले भागों में बोया जाता है। अधिक फुटान होता है। तना व पत्तियां पकने पर भी हरा व नरम रहती हैं। सिट्टे, लम्बे व दाने भरे हुए तथा दाने, चमकार होते हैं। 85-90 दिन में पक कर तैयार हो जाता है। इसको अधिक पानी की आवश्यकता होती है। उपज 30-35 क्विंटल हेक्टर होती है।

(vi) पी. एच. बी.—10 (4–) फुटाने, तना मजबूत चौड़ी पत्ति जोगिया रोग रोधक गुणों से युक्त, 90-95 दिन में पकने वाला तथा उपज 25 क्विंटल/हेक्टर है। श्रीगंगानगर, अलवर, भरतपुर के लिए उपयुक्त है।

(vii) पी. एच. बी.—14 रहित बाल रोग रोधक, 4,6 फुटाने, 85-90 दिन में पकने वाला श्री गगानगर, अलवर व भरतपुर के लिए उपयुक्त है। अन्य-पूसा मोती, शबंती, एस-530।

खेत की तैयारी—गर्मी की दो जुताइयां मिट्टी पलटने, वाले हल से करके मानसून में दो तीन जुताई देशी हल से की जाती है। देशी हल की अपेक्षा स्प्रिग ट्थ हैरों से जुताई करने से अच्छे परिणाम मिले हैं। जुताई के बाद पाटा लगाकर खेत भुरभुरा और समतल बनाया जाता है।

बोने की विधि एवं दूरी—

(1) **छटकवां विधि**—यह विधि प्रायः चारे के लिए उगाई गई फसलों के लिए प्रयोग की जाती है।

(2) **पत्तियों में बुआई**—मिश्रण के रूप में बोये जाने पर बाजरे का दो पंक्तियों के लिए 90-100 से. मी. फासला रखते हैं। चारे के लिए ली गई फसल भी पंक्तियों में बोई जाती है, तब दो पंक्तियों की दूरी 30 से 45 से. मी. तक रखते हैं।

बोने का समय—खरीफ की फसल मध्य जून से मध्य जुलाई तक बोई जाती है। शायद की फसलें मार्च से मध्य मार्च, अप्रैल तक बोई जाती है। (चारे के लिए)

बीज की दर—मिश्रण के रूप में बोई गई फसल के लिए 4·5 से 2 किग्रा. बीज काफी होता है। दाने के लिये बोई गई शुद्ध फसल के लिए 3 से 5 कि. ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। चारे के लिए उगाई गई फसल में 8–10 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर प्राप्त होता है।

खाद—प्रायः बाजरे में कोई खाद नहीं दिया जाता। अधिक दुर्बल भूमियों में 150 क्वि. सड़ी गली गोबर की खाद मिलानी चाहिये अच्छी उपज के लिये 60 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट और 120 कि. ग्रा. हड्डी का चूरा बोने के लगभग तीन-चार सप्ताह पूर्व खेत में मिला देना चाहिये। उपज पर गोबर की खाद तथा खलियों

का भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। भूमि में चूने की कमी हो तो सुपर फास्फेट के साथ चूना भी मिला देना चाहिये।

सिंचाई—प्रायः खरीफ की फसल के लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु अगेती बोई गई फसल के लिए 15-20 दिन के अन्तर पर एक या दो सिंचाई की आवश्यकता है।

निराई-गुड़ाई—पौधों की दूरी निश्चित करने एवं खरपतवार नष्ट करने के लिए निकाई-गुड़ाई आवश्यक है। निकाई-गुड़ाई खुरपी अथवा बैलों से चलाये जाने वाले यन्त्रों से की जाती है। निकाई-गुड़ाई करने से फसल में फूट (Tillering) अधिक होती है।

कटाई फसल—बोने के तीन चार माह बाद पक जाती है। खरीफ की फसलों की कटाई सितम्बर अक्टूबर में की जाती है। बालों को तीन चार दिन सूखने के बाद बैलों को दायें चलाकर अथवा डन्डों से मंडाई कर ली जाती है।

उपज—देशी जाति से 6-10 क्विंटल दाना तथा 150 क्विंटल हरा चना प्रति एकड़ प्राप्त हो जाता है। बोने के लिए ली गई फसल से 25-20 क्विंटल सूखा चारा भी प्राप्त हो जाता है। उन्नत जातियों में दाने की उपज 40 क्विंटल हैक्टर तक होती है।

रूसी पद्धति से बाजरे की खेती

भारत में सौराष्ट्र में बाजरे की खेती नई विधि से की जाती है, इसे रूसी पद्धति कहते हैं। श्री चवन ने 1985 में इस खेती के बारे में निम्न विशेषताएं बताई हैं—

1. जून के प्रथम सप्ताह में सिंचाई एवं जुताई करके खेत की भौतिक दशा सुधार लेते हैं।

2. प्रति हैक्टर 50 गाड़ी गोबर की सड़ी खाद × 200 किलो ग्राम सुपर फास्फेट मिलाकर खेत को अच्छी तरह जोत देना चाहिये।

3. 45 से.मी. की दूरी वर्गाकार चिन्ह बनाकर मृतक कटे हुए स्थान पर 5.6 बीज एक साथ बो देना चाहिये।

4. गतवर्ष की फसल की चुनी हुई बालियां जो स्वस्थ एवं निरोग हो, उनसे बीज प्राप्त करना चाहिये।

5. बीज उगने के एक सप्ताह बाद आवश्यकतानुसार निकाई-गुड़ाई करनी चाहिये।

6. बुवाई के तीन सप्ताह बाद 200 कि. ग्रा. खाद का मिश्रण (8 भाग मूंगफली की खली × 1 भाग अमोनिया सल्फेट + 2 भाग सुपर फास्फेट) देना चाहिए जो कि प्रत्येक पौधे तक पहुंच जाय।

7. जैसे-जैसे बालें पकती जायें वैसे-वैसे छांटकर काटते जायें ताकि कच्ची बाले न कट सकें।

8. पकी हुई फसल से स्वस्थ बालों को छाटकर अगले वर्ष के लिए रखना चाहिये।

9. जैसे ही नमी की कमी प्रतीत हो, तुरन्त सिंचाई करते रहना चाहिये।

उपर्युक्त विधियां अपनाने से 25-30 क्विंटल : हैक्टर उपज प्राप्त हो जाती है।

पंजाबी विधि से बाजरे की खेती

पंजाब में बाजरे की खेती का यह नवीन ढंग बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस विधि से खेत में पानी लगाकर उसे 3-4 बार जोता जाता है। इसके बाद प्रति हैक्टर 7 कि. ग्रा. बीज की दर से बाजरे को 45 सें.मी. अन्तर पर बोते हैं। बीज 45 सें.मी. के बनाये गये छोटे-छोटे गड्ढों में बोया जाता है। ये गड्ढे अप्रेल तथा मई महिने में तैयार कर लिये जाते हैं। वर्षा के प्रारम्भ तक यह फसल काफी ऊँची हो जाती है। सिंचाई के साथ अथवा पहली वर्षा के बाद 75 कि.ग्रा. अमोनियम सल्फेट नाइट्रोजन के रूप में फसल बोते समय तथा पहली सिंचाई के बाद दिया जाता है। गड्ढों में बुआई के 20-25 दिन पूर्व अच्छी प्रकार सड़ी-गली गोबर की खाद डालना विशेष लाभप्रद सिद्ध हुई है। असिंचित तथा न्यून वर्षा वाले क्षेत्रों में इस विधि से विशेष लाभ प्राप्त होता है।

बाजरे की कीट व्याधियां तथा रोकथाम--बाजरे की फसल को कई प्रकार के कीड़े हानि पहुंचाते हैं। इनमें भिडार सूंडी तथा टिड्डे प्रमुख है जब इन कीड़ों का आक्रमण होता है तो बाजरे के भुट्टे पीले पड़ जाते हैं तथा फसल सूखने लगती है। इन कीड़ों के विनाश के लिये डी. डी. टी. तथा बी.एच.सी. जैसी विषैली दवाइयों को इस्तेमाल करके इनकी रोकथाम की जा सकती है।

बिमारियां—बाजरे की फसल पर अनेकों रोगों का आक्रमण होता है जिनमें ग्रीनइयर सिनिज एवं स्मट आफ बाजरा नामक दो बिमारियां प्रमुख है--

1. **ग्रीनइयर डीजिज** यह रोग स्केलेरोस्पोरा ग्रेमीनीकोला नामक फजाई द्वारा संकमित होता है। इसके संक्रमण से पौधो की बालों में छोटी-मोटी रही पत्तियों जैसे आकार की रचनायें उत्पन्न हो जाती है। ये ऐठे जाते हैं। बाल हरे रंग की हो जाने के कारण ही यह बीमारी ग्रीनइयर डिजीज कहलाती है। इस प्रकार पूरी बाज में दाने उत्पन्न नही होते। पत्तियों पर भी भूरे रंग की धारिया उत्पन्न हो जाती है।

इस रोग के प्रकोप कम करने के लिये इसके प्रतिरोधक जातिया टी 15, टी. 65 तथा 88-2 उगानी चाहिये। एग्रोसिन जी. एन. के प्रयोग से रोग की अच्छी रोकथाम की जा सकती है।

2. **ग्रेन स्मट आफ बाजार**—यह रोग टोलीयोस्पेरियम पेनसिलरिया नामक फजाई द्वारा संक्रामित होता है। इसमे बाल कही-कही कुछ दाने गहरे हरे रग के गोल और साधारण स्वस्थ दानों से आकार में दुगने उत्पन्न हो जाते हैं।

इनमें काला चूर्ण सा भरा होता है। यह एक सोयल बोर्निग डिसिज है, अतः फसल चक्र काम मे लाने से नष्ट हो जाता है। इसे रोकने के लिए एग्रोसेन जी. एन. का प्रयोग अच्छा रहता है।

बाजरे मे प्रायः कीड़ों का अधिकाधिक प्रकोप नहीं होता किन्तु कही पर ज्वार का टिड्डा एवं ग्रीन नामक कीड़े हानि पहुंचा देते हैं जिन पर बी. एच. सी. का प्रयोग करना चाहिये। टिड्डी आदि को पकड़ कर नष्ट कर देना चाहिये। 10 05 प्रतिशत गैमेक्सीन का प्रयोग भी इनके नष्ट करने के हेतु किया जा सकता है।

फसल चक्र

1. बाजरा+अरहर पड़त गेहूं।
2. धान—मटर, बाजरा+अरहर, पड़त-गेहूं।
3. बाजरा—आलू-गन्ना।

अभ्यास के लिये प्रश्न

1. बाजरे की खेती का वर्णन अपने शब्दों में करें।
2. लूसी पद्धति से बाजरे की खेती की जाती है।
3. बाजरे की खेती निम्न शीर्षकों में लिखें—

(अ) उन्नत जातियां | (ब) बीज की मात्रा
(स) खाद व उर्वरक | (द) उपज/हेक्टर

अध्याय-21

चना

(CRAM)

वानस्पतिक नाम (Cicer aritinum)

परिचय--अधिकतर बारानी क्षेत्र में चने की फसल ली जाती है। वर्षा का पानी अधिक से अधिक खेत मे समान रूप से समा सके। इसके लिए हल्की मिट्टी वाले क्षेत्रो मे वर्षा प्रारम्भ होते ही ढोलों की मरम्मत करलें। अच्छी वर्षा के बाद खरीफ मे बाह आते ही जुताई करें। जहा खेत मे खरपतवार अधिक हो वहा दुबारा जुताई करना लाभकारी होगा। जुताई के कारण भूमि मे जल का अधिक प्रवेश हो सकेगा और खरपतवार नष्ट होने में भी सहायता मिलेगी।

जहा सिचाई की व्यवस्था है और खरीफ की फसल के बाद चने की फसल ली जाती है वहा यदि आवश्यक हो तो हल्का पलेवा देकर, खेत की तैयारी की जाय जलवायु, भूमि एवं भूमि की तैयारी-मटर के समान।

उन्नत किस्में –

चने की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उन्नत किस्म के बीज आर. एस. 10. आर. एस. 11. सी 235 जी. 130 एच. 208 का प्रयोग करें।

(i) आर. एस. 10–

यह एक मध्यम कद की किस्म है जो 120 से130 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इसके दाने मध्यम आकार के कत्थई पीले रंग के होते है। यह अजमेर, कोटा और बीकानेर खण्ड के लिए उपयुक्त है। पैदावार 11 से 17 क्विटल प्रति हैक्टेयर तक होती हैं।

(ii) आर. एस. 11 –

यह भी एक मध्यम कद वाली किस्म है जिससे फूल सफेद व दाने कत्थई पीले रंग के होते हैं। यह किस्म 125 से 130 दिन मे पक कर तैयार हो जाती है। उपज 11 से 17 क्विटल प्रति हैक्टर होती है। उदयपुर और कोटा खण्ड के सिंचित क्षेत्रो के लिये अधिक उपयुक्त पाई गई है।

(iii) सी. 235 –

यह एक मध्यम कद वाली किस्म है जिसके दाने कत्थई होते हैं। यह किस्म

125 से 130 दिन में पक कर तैयार होती है। यह जयपुर, अलवर, सवाईमाधोपुर झालावाड, भरतपुर, श्रीगंगानगर व कोटा जिले के सिंचित क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त है।

(iv) जी. 130—

पीले रंग के बीज वाली यह किस्म 140 से 150 दिन में पकती है। इसके फूल बैंगनी रंग के होते हैं। उपज 15 से 20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। सिंचित व भारी मिट्टी वाले क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त है।

(v) राधे—

यह जाति हाइब्रिडाजेसन द्वारा 1968 में विकसित की गयी है। पकने की अवधि 20 दिन है। मध्यम फैलाव, पत्तियां हल्के रंग की, फूल गुलाबी बीज गोल चिकने और आकार में बड़े होते हैं।

(vi) टाइप 1 —

मध्यम फैलाव किस्म, पकने की अवधि 150 दिन है। पौधा छातेनुमा होता है। पत्तियों का रंग नीलापन लिये गहरा होता है। फूल बैंगनी, बीज गोल, चिकने, भूरे तथा कत्थई रंग के होते है।

(vii) टाइप-2—

पौधे छातेनुमा, फूल गुलाबी, बीज पूर्ण रूप से गोल नहीं होते तथा सतह भी समतल नहीं होती। पकने की अवधि 150 दिन है।

(viii) टाइप3—

पौधा ऊँचा, फैलावदार, पत्तियों का रंग हरा, फूल गुलाबी, चिकने और कत्थई रंग के साथ बड़े होते है। पकने की अवधि 165 दिन है।

(ix) एन 208—

यह मध्यम कद की किस्म है जो 110 से 120 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इसके दाने मध्यम आकार के गहरे कत्थई रंग के होते हैं। फलों में 1-2 दाने बनते हैं। फूल बैंगनी रंग के होते हैं। इसकी उपज 10 से 12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। असिंचित बुवाई में इसकी उपज 10 से 15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। यह किस्म जयपुर या कोटा के लिए उपयुक्त है।

अन्य किस्में—J. G. I. हिम (हरा चना), पन्त जी 104 (झुलसा अवरोधी पन्त जी-107,110, 116, अर्ली-53 इत्यादी।

उर्वरक —

मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरक प्रयोग करें। यदि मिट्टी का परीक्षण नहीं किया हो तो सामान्यतया निम्न सिफारिशों के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करें—

(1) असिंचित क्षेत्र में बुवाई से पूर्व 10 किलो नत्रजन व 25 किलो

फास्फोरस प्रति हैक्टेयर दें। उर्वरक 6·5 सेमी की गहराई पर आखिरी जुताई के समय दें।

(2) सिंचित क्षेत्र में बुवाई से पूर्व 20 किलो नत्रजन व 40 किलो फास्फोरस प्रति हैक्टेयर उर्वरक 7.5 सेमी की गहराई पर आखिरी जुताई के समय बुरक कर, जुताई करके भूमि में मिला दें।

बीजोपचार—

बीज रैक्टोयल कल्चर से उपचार करके ही बोयें। कल्चर से उपचार करने के लिए एक पैकेट कल्चर जो एक एकड़ के लिये पर्याप्त होता है को एक लीटर पानी में 250 ग्राम गुड़ के गर्म किये गये घोल मे ठण्डा करने के बाद मिलाये तथा इसके बाद बीजों पर इसे छिड़ककर छाया मे सुखा दें। उपचारित बीज को बुवाई के समय प्रयोग करें।

बीज एवं बुवाई—

प्रति हैक्टेयर 75 से 80 किलो उपचारित बीज बोयें। कतार से कतार की दूरी 30 से मी. रखें। सिंचित क्षेत्र मे 5 से मी. सिंचित मे 7 से. मी. गहरा बीज बोयें। असिंचित क्षेत्रों मे बुवाई अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में अथवा मानसून की समाप्ति के तुरन्त बाद करें। श्री गंगानगर क्षेत्र मे सिंचित चने की बुवाई नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। कोटा में दिसम्बर के मध्य तक बो सकते हैं।

चुटाई—

जब पौधे 12 से 15 से.मी. ऊँचे हो जाये तब पौधों के शीर्ष तोडने से शाखाओं में वृद्धि होती है तथा अधिक फल लगते हैं।

सिंचाई—

चने की खेती अधिकतर बारानी क्षेत्रों मे की जाती है, परन्तु जहाँ पर सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो वहा मिट्टी व वर्षा को ध्यान मे रखते हुये पहली सिंचाई बुवाई के 45 दिन बाद एवं दूसरी सिंचाई फल आने के पहले देनी चाहिये। यदि एक ही सिंचाई उपलब्ध हो तो वह फूल आने के पहले की जानी चाहिये।

फसल को पाले से बचाना —

पाले के प्रभाव से बचाने के लिए सिंचाई अथवा धुआं करना चाहिए।

पौध संरक्षण—

कटवर्म व दीमक की रोकथाम के लिये भूमि उपचार करना बड़ा आवश्यक है। कटवम की लटें गहरे भूरे रग की एक से डेढ़ इंच लम्बी एक चौड़ाई इंच से तिहाई इन्च मोटी होती है जो ढेलों के नीचे छिपी रहती है व रात को बाहर निकल कर पौधों को काट देती है। छूने पर ये लटें गोल कुण्डी बनाकर पड़ जाती हैं।

इनकी रोकथाम के लिये हैप्टाक्लोर 5 प्रतिशत क्लोरडीन 5 प्रतिशत बी. एच. सी. 10 प्रतिशत अथवा एल्ड्रिन (5 प्रतिशत) 25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से आखिरी जुताई से पूर्व भुरकें।

यदि भूमि उपचार न हो पाये तो कटवर्म का प्रभाव दिखाई देते ही तुरन्त शाम के समय 25 किलो प्रति हैक्टेयर डिप्ट्रेक्स (5 प्रतिशत भुरकें)

फल छेदक —

ये लटें गहरे रंग की सवा इन्च लम्बी व चौथाई इन्च मोटी होती है जो बाद में गहरे रंग की हो जाती है आरम्भ में ये चने की पत्तियों को खाती है व फल लगने पर उनमें छेद करके अन्दर का दाना खोखला कर देती है। इनकी रोकथाम के लिए फूल आने के पहले फली लगने के बाद निम्न में से कोई एक उपचार करें—

कारवेरिल (से दिन) 5 प्रतिशत

अथवा

एन्डोसफान 4 प्रतिशत

अथवा

मैलाथियान 5 प्रतिशत

अथवा — 25 किलो हैक्टेयर

क्यूनालफास 1½ प्रतिशत

अथवा

बी. एच. सी. 10 प्रतिशत

अथवा

डी. डी. टी 5 प्रतिशत

जहा पानी की सुविधा उपलब्ध हो वहा दवा भुरकने की अपेक्षा निम्न में से कोई एक छिड़काव करना आवश्यक होगा।

क्यूनालफास 25 प्रतिशत	एक लीटर प्रति हैक्टेयर।
अथवा	
मैलाथियान 50 प्रतिशत	1250 मि. ली. प्रति हैक्टेयर।
अथवा	
डी. डी. टी 25 प्रतिशत एमल्सन	4 लीटर प्रति हैक्टेयर।
45 दिन फसल होने पर	

आवश्यक हो तो उपर्युक्त में से कोई एक दवा का उपचार प्रथम छिड़काव के पन्द्रह दिन बाद दोहरायें।

दवा छिड़कने के पन्द्रह दिन तक फसल खाने के काम में न लें।

उपज—

चने की पैदावार का वर्णन विभिन्न किस्मों के विवरण के साथ दिया जा चुका है। औसतन पैदावार 15-20 क्वि. हैक्टर है।

फसल चक्र—

(1) धान-चना
(2) चरी चना, पड़त–गेहूं
(3) पड़त-गेहूं, मक्का-चना

अभ्यास के लिये प्रश्न

1. चने की एक फसल खेती के लिए आप क्या-क्या उपाय करोगे ?
2. चने की खेती का वर्णन निम्न शीर्षकों में लिखें–
(अ) उन्नत किस्में। (ब) उर्वरकों की मात्रा।
(स) बीज एवं बीजोपचार। (द) पौध-संरक्षण।

अध्याय-22

खरीफ की दालें

परिचय—

राजस्थान में खरीफ की दालों की खेती निश्चित वर्षा वाले सभी क्षेत्रों में बारानी स्थितियों के अन्तर्गत की जाती है। खरीफ में सामान्यतः मूंग, मोठ, उड़द, चौला एवं अरहर आदि उगाई जाती है।

सभी दालों के पौधे अपनी जड़ों में बेक्टिरिया द्वारा आकाशीय नत्रजन का स्थिरीकरण कर भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते है। अतः दालो के बाद उगाई जाने वाली फसल इस नत्रजन का उपयोग करती है। अधिकांश क्षेत्र मे खरीफ की दालें फसल चक्र मे सम्मिलित की जाती है, जिससे भूमि की उत्पादकता एवं उर्वरा शक्ति बनी रहने मे मदद मिलती है। शाकाहारी जनसंख्या के लिए दालें प्रोटीन प्रमुख स्रोत है। हरी खाद की दृष्टि मे भी दालें अच्छी फसलें हैं। जो भूमि मे कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाने के साथ-साथ पौधो के लिए मुख्य पोषक तत्व भी प्रदान करती है।

मूंग की खेती समस्त राजस्थान मे की जाती है, विशेषकर इसका अधिकतम क्षेत्रफल नागौर, जालौर, झुन्झुनू, सीकर, चूरू, जयपुर व श्रीगंगानगर के असिंचित क्षेत्रो मे है। इसकी खेती अधिकाश-बारानी की जाती है। यह अलग से बोई जाती है।

उड़द राजस्थान से कोटा एवं उदयपुर खण्ड तथा अजमेर खण्ड के अलवर तथा भरतपुर जिले के ऐसे असिंचित क्षेत्रों मे होता है जहां वर्षा पर्याप्त मात्रा मे होती है-चौला जयपुर, झुन्झुनू, सीकर, नागौर एवं अलवर जिले के असिंचित क्षेत्रो मे बोया जाता है। खरीफ की फसलों मे मोठ सबसे ज्यादा सूखा सहन करने वाली फसल है जिसे असिंचित फसल के रूप मे अकेली या बाजरे के साथ मिलाकर उगाया जाता है। राज्य मे मुख्यतः इसका क्षेत्रफल बीकानेर, चूरू, श्री गंगानगर, जोधपुर, नागौर, बाड़मेर, सीकर, झुन्झुनू और जयपुर हैं।

किस्में—

खरीफ की दालों की विभिन्न किस्मों की सिफारिश निम्न प्रकार है—

तालिका संख्या 21

1. मूंग (Green Gram)—Phaseolus mungo

किस्में	किस्म की विशेषतायें	क्षेत्र
(i) आर. एस. 4	सामान्य ऊंचाई, फैलने वाली जाति रोयें वाली फली, सामान्य चमकीली हरे, दाने. जल्दी पकने वाले, 80 से 85 दिन, सूखा रोधक, 5 से 8 क्वि. प्रति हैक्टर उपज।	अजमेर खण्ड।
(ii) आर. एस. 5	सामान्य ऊंचाई फैलने वाली जाति पीले हरे रोयें चमकीले दाने सामान्यतः जल्दी पकने वाले, 75 से 80 दिन, सूखा रोधक 5 से 8 क्वि. प्रति हैक्टर उपज।	जोधपुर खण्ड।
(iii) पूसा वैशाखी	कम ऊंचाई, सामान्य आकार वाले भरे हरे दाने, शीघ्र पकने वाली सिंचित क्षेत्रों मे गर्मियों में बोने के लिए विशेष तौर से उपयुक्त बुवाई से 55-60 दिन के बाद फलिया, पहली चुनाई के लिए पक कर तैयार हो जाती हैं व दूसरी चुनाई 10 दिन बाद की जा सकती है, 3-4 क्वि. प्रति हैक्टर उपज होती है।	सम्पूर्ण राजस्थान जहां सिंचाई की।
(iv) दुर्गापुर 06-26	सामान्य ऊंचाई अधिक मोटे चमकीले हरे दाने शीघ्र पकने वाली 60-64 दिन मे तैयार हो जाती हैं। सिंचित क्षेत्र मे गर्मियों में बोने के लिए विशेष तौर से	सम्पूर्ण राजस्थान जहां सिंचाई की व्यवस्था हो।

किस्मे	किस्म की विशेषतायें	क्षेत्र
	उपयुक्त 4-5 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज हो जाती है।	
(v) 228·8	सामान्य ऊंचाई बड़ी जाति सामान्य आकार वाले चमकीले शीघ्र पकने वाली यह किस्म 70-75 दिनो में पक कर तैयार होती है। पैदावार 7-10 क्वि. प्रति हैक्टर तक होती है।	सम्पूर्ण राजस्थान
(vi) जवाहर-45	मध्य कद की सीधी 75 से 80 दिन में पकने वाली, उपज 7-8 क्विंटल हैक्टर देने वाली यह किस्म भारी मिट्टी वाले सिंचित क्षेत्रों में अधिक उपयुक्त है।	राजस्थान

2. उड़द [Balck Gram] Phaseolus radiatus]

(i) कृष्णा—यह किस्म मध्यम कद की होती है। इसका दाना बड़ा तथा लोहे जैसे भूरे काले रंग का होता है। यह किस्म 90 से 100 दिन मे पक कर तैयार हो जाती है। इसकी उपज 10 से 19 क्विटल प्रति हैक्टर होती है। यह कोटा क्षेत्र के लिए उपयुक्त है। इसको अलवर तथा भरतपुर में नही लगाना चाहिए, जहां पर वायरस की बीमारी होती है।

(ii) टी: 9 – यह किस्म मध्यम कद की होती है। इसका दाना बडा तथा काले रंग का होता है। यह किस्म 85-90 दिन मे पक कर तैयार हो जाती है। इसकी उपज 8 से 10 क्विटल प्रति हैक्टर होती है। यह अलवर व भरतपुर क्षेत्र के लिए उपयुक्त है।

3. चौला [Cow Peas] Vigna Cylindrica

(i) जे. सी. 5—इस किस्म के पौधे मध्यम कद के होते है। इसकी फलियां मध्यम लम्बी होती है। यह 75-80 दिन मे पक कर तैयार हो जाती है। इसके दाने हल्के पीले सफेद रंग के होते है। इसकी पैदावार 5 से 6 क्विटल प्रति हैक्टर होती है। यह जोधपुर खण्ड के लिए उपयुक्त है। मरूस्थली क्षेत्रों के लिए यह किस्म उपयुक्त है।

(ii) पूसा—आकार व ऊंचाई मध्यम, ललाई लिये हुये सफेद दाने, शीघ्र पकने वाली 60 दिन में फली होती हैं। 5-6 क्विटल हैक्टर उपज होती हैं। सम्पूर्ण राजस्थान के लिए अनुमोदित की गई हैं।

(iii) जे. सी. 0—इसके पौधे मध्यम कद के और सीधे होते है। इसकी फलियां सामान्य लम्बी और झुकी हुई होती है। फसल 70-75 दिन में पकती है। बीज हल्के पीले सफेद रंग का होता है। पैदावार 5-7 क्विंटल प्रति हेक्टर तक होती हैं। यह किस्म भी जोधपुर खण्ड के लिए उपयुक्त है।

(iv) सी. 152—इसके पौधे मध्यम कद के और सीधे होते हैं। फलिया मध्यम लम्बी और झुकी हुई होती है। 75-70 दिन मे पककर तैयार हो जाती है। इसका बीज कुछ बड़ा किन्तु हल्की भूरी झाई लिए हुए होता है। इसकी उपज 6 से 8 क्विटल प्रति हेक्टर होती है। यह सभी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

(v) आर. एस. 9—इस किस्म के पौधे मध्यम लम्बे सीधे व चौडी हरी हरी पत्तियों वाले होते है। फूल नीले तथा फलिया मध्यम लम्बी होती है। यह 80 से 85 दिन मे पक कर तैयार हो जाती है। इसका बीज लाल झाई लिए हुए भूरे रंग का होता है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि दाने तथा चारे दोनों के लिए उपयुक्त है। यह राजस्थान के लिए उपयुक्त है।

4. मोठ [Dew Bean] Phasaolus Aconlitfolius

राजस्थान मे बुआई के लिए मोठ की किस्म "जड़िया" बहुत उपयुक्त रहती है।

भूमि एवं जलवायु—

मूग के लिए गहरी, जल निकास युक्त दोमट या हल्की मिट्टी अधिक उपयुक्त हैं। भूमि क्षारीय नही होनी चाहिए। उड़द के लिए जल धारण की क्षमता रखने वाली सख्त दोमट अथवा भारी मिट्टी सर्वाधिक उपयुक्त है। कपास मिट्टी और कछारी मिट्टी में भी इसकी खेती अच्छी होती है। चौला के लिए गहरी, जल निकास युक्त दोमट या हल्की मिट्टी अधिक उपयुक्त है। भूमि क्षारीय नही होनी चाहिए। मोठ की खेती अधिकतर शुष्क क्षेत्रों मे बलुई मिट्टी से लेकर दोमट मिट्टी तक मे की जाती है। सामान्य वर्षा होने पर इसकी अच्छी उपज होती है। भारी वर्षा इस फसल के लिए हानिकारक है।

खेत की तैयारी—

मूंग, उड़द एवं चौला के लिए विशेष तैयारी की आवश्यकता नही है वर्षा होने पर विशुद्ध फसल से लिए भूमि को एक या दो वार आवश्यकतानुसार खेत जोत कर तैयार करें। मोठ के लिए वर्षा होने पर भूमि को एक वार जोतकर तैयार करें समय के अभाव मे बिना जुताई किये भी बिजाई की जा सकती है।

भूमि उपचार—

जिस क्षेत्र में सफेद लट का प्रकोप होता है उसमें भृंगो एवं लटों को नष्ट करने हेतु फोरेट 10 प्रतिशत या क्यूनालफास 5 प्रतिशत कण 25 किलो प्रति हेक्टर की दर से बुआई से पूर्व कतारों से ऊर दे अथवा हल के पीछे डालें। इन्ही

कतारों में बीज की बुआई करे। जिन क्षेत्रों में केवल दीमक का प्रकोप होता है वह इसकी रोकथाम हेतु बी.एच.सी. 10 प्रतिशत 25 किलो अथवा एल्ड्रीन 5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलो प्रति हेक्टर की दर से भूमि में मिलाना चाहिए।

बुआई के पहले प्रति किलो बीज मे 3 ग्राम थाईरम या केप्टान दवा मिला कर उपचारित करे।

राइजोबियम कल्चर से उपचार—

दलहनी फसलो के बीज साथ राइजोबियम कल्चर मिलाने से फसल की जडों मे मौजूद बैक्टोरिया अथवा काम अधिक कुशलता से करने लगते है तथा पैदावार अधिक होती हैं।

ढाई लीटर गर्म पानी मे 150 ग्राम गुड़ घोल लें। इसके बाद घोल मे 725 ग्राम राईजोबियम कल्चर प्रति हेक्टर के हिसाब से मिलाकर बीज डालकर उस समय तक मिलायें जब तक सभी चीजों पर घोल की परत एक सार जम जावे। फिर छाया में सुखा कर बो दे। मूंग के बीज में मिलाने हेतु राइजोबियम कल्चर के पैकेट पादप व्याधिकी विज्ञान, कृषि अनुसंधान केन्द्र दुर्गापुरा से प्राप्त किये जा सकते हैं।

कृपया राइजोबियम कल्चर के पैकेट ठण्डी जगह छाया में प्रयोग के पूर्व रखें।

उर्वरक—

मूंग, उड़द एवं चौला के लिये प्रति हैक्टर 25 से 30 किलो फास्फोरस (सिंगल), नत्रजन बुआई से पहले नापले से और कर दें। ऐसा देखा गया है कि इनकी जगह अगर 50 किलो डी ए पी. प्रति हैक्टर और कर दिया जाय तो ज्यादा लाभ होता है। मोठ की खेती अधिकतम ऐसे क्षेत्रो में की जाती है, जहां पर वर्षा का समय पर होना अनिश्चित सा है।

बीज एवं बुवाई—

उन्नत किस्म का नीरोग बीज बोया जाये। बुवाई वर्षा होने के साथ-साथ ही करे। यदि वर्षा देर से हो तो 0 जुलाई तक भी कर सकते है। मोठ 15 अगस्त तक भी बोया जा सकता है। मूंग अकेला बोने पर 15 से 20 किलो बीज प्रति हैक्टर के हिसाब से बोया जावे और मिश्रित फसल के रूप मे बोने पर 8-10 किलो प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होगी। लाइन की दूरी 20 से.मी, और पौधे की दूरी 10 से 15 से. मी. रखें।

उड़द अकेले बोने के लिए 12 से 15 किलो बीज प्रति हैक्टर के हिसाब से ले और मिश्रित फसल के रूप मे बोने पर 5 से 7 किलो प्रति हैक्टर बुआई कतारों मे करें। कतार से कतार की दूरी 30 से. मी. और पौधे से पौधे की दूरी 25-30 से. मी. रखें।

चौला अकेले बोने पर 12 से 15 किलो बीज प्रति हैक्टर के हिसाब से और मिश्रित फसल के रूप में बोने पर 5 से 7 किलो प्रति हैक्टर के हिसाब लें।

मोठ का बीज 8 से 10 किलो प्रति हैक्टर के हिसाब से विशुद्ध फसल के लिए चाहिए। मिश्रित बोने पर 4 से 5 किलो प्रति हैक्टर के हिसाब से विशुद्ध फसल में बोआई की जाये तो अच्छा है। कतार की दूरी 30 से. मी. पौधे से पौधे की दूरी 15-20 से. मी. रखी जाय।

निराई गुड़ाई—

आवश्यकतानुसार खरपतवार निकालते रहें। 40 दिन की फसल होने के बाद निराई गुड़ाई नही करते है फिर भी आवश्यकतानुसार 40 दिन के पहले हल चलाया जा सके तो उपयोगी रहेगा।

पौध संरक्षण—

(अ) कातरा—इसकी बड़ी अवस्था की रोकथाम करना कठिन है। इसलिए छोटी अवस्था में ही रोकथाम के उपाय किये जावें। फसल के अंकुरण के साथ कीड़े का प्रकोप दिखाई देते ही 15 किलो बी. एच. सी. 10 प्रतिशत चूर्ण या मिथाइल पराथियोन 2 प्रतिशत चूर्ण या न्यूनफास 15 प्रतिशत चूर्ण प्रति हैक्टर की दर व सुबह या शाम के समय जब हवा का बहाव कम हो भुरकें तितली की रोकथाम प्रकाश पाश (लाइट ट्रेप) द्वारा करें, प्रकाश पास सामूहिक रूप से किया जाये तभी फसल नियन्त्रण होगा।

(ब) ब्लू बिटल— 25 किलो बी. एच. सी. 10 प्रतिशत चूर्ण या 500 मि. लि. एण्डोसल्फन 35 इ. सी. या 1 किलो कारबोरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करे।

(स) एफिड्स (नोयल)—मेलथियान 50 प्रतिशत ई. सी. एक लीटर या फास्फामिजोन 100 प्रतिशत ई. सी. 250 मि ली. (0·02 प्रतिशत) या डाइमिथोएट 30 प्रतिशत ई सी. एक लीटर, 0 03 प्रतिशत प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

(द फली छेदक—एन्डोसल्फान 35 प्रतिशत ई. सी. 600 मि.ली. (0 04 प्रतिशत) या कारबेरिल 40 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 1 2 किलो (10 प्रतिशत) या मैलाथियोन 50 प्रतिशत ई. सी 600 मि ली. 0·05 प्रतिशत हैक्टर की दर से फूल व फली आते ही छिड़कें। यदि आवश्यकता हो तो प्रति 15 दिन अन्तर पर छिड़काव 2 से 3 बार करें।

(य) चित्ती रोग जीवाणु— खरीफ मे मूंग, मोठ, चौला तथा ग्वार मे रोग जेन्थेमोनाम जीवाणु द्वारा फैलता है। इस रोग मे छोटे गहरे भूरे रंग के धब्बे पत्तों तथा फलियो पर और तने पर गहरे लाल रंग का प्रकोप वापिस होता है तो

पौधे मुरझा जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए बीज बोने से पहले कवकमार से बीजोपचार करना चाहिए। तथा खेत में इस रोग के दिखाई देते ही एग्रीमाइसिन दवा। (0 025) प्रतिशत 10 दिन के अन्तर पर तीन छिड़काव साढ़े सात ग्राम या ताम्रयुक्त कवक छिड़काव प्रति हैक्टर करें।

(र) छाछिया रोग—इसमें पुरानी पत्तियों की ऊपरी सतह पर शुरू मे सफेद गोलाकार पाउडर जैसे धब्बे लग जाते हैं तथा बाद में पाउडर सारे तने तथा पत्तियों पर फैल जाता है तथा पत्तियाँ छोटी रहकर पीली पड़ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए ढाई किलो घुलनशील गंधक अथवा कैरेथन एन. सी. या डाइनोमोर्फ (कैलेक्सिक) का सवा लीटर प्रति हैक्टर के हिसाब से छिड़काव करें अथवा 25 किलो गंधक चूर्ण का भुरकाव करें।

फसल की कटाई—

पंक्तियों के झड़कर गिरने से होने वाली हानि को रोकने के लिए फलियों को पूरी तरह पकने के बाद एवं झड़ने से पहले काट लें। इसके बाद खलिहान में एक सप्ताह या 10 दिन तक सुखाये और फिर धान निकालें। कटाई सितम्बर-अक्टूबर के महीने में की जाती है।

उपज—प्रत्येक किस्मों के उपज सम्बन्धित किस्मों के वर्णन में देखें।

फसल चक्र—
(1) मूंग+मक्का-गेहूं (2) कपास-बरसीम-चौला
(3) मक्का-तोरी-गेहूं-मूंग (4) ज्वार-मूली-गेहूं-चौला
(5) मक्का-आलू-गेहूं-चौला (6) धान-आलू-गेहूं-मूंग
ज्वार-गोभी-गेहूं-चौला

अभ्यास के लिए-प्रश्न

1. मूंग अथवा उड़द की खेती-निम्न शीर्षकों मे करो—
(अ) भूमि की तैयारी (ब) खाद की मात्रा
(स) बीज की मात्रा (द) बीजोपचार
(य) उपज/हैक्टर।
2. चौला अथवा मोठ की खेती का वर्णन अपने शब्दों में करो—
3. निम्न पर टिप्पणी लिखें—
(अ) जवाहर—45 (मूंग) (ब) कृष्ण (उड़द)
(स) पूसा (चौला) (द) पूसा-वैसाखी (मूंग)
(य) आर. एम—9 (चौला)

खरपतवार एवं उनका नियन्त्रण

(Weeds and their Control)

परिभाषा –

बेन्कले के अनुसार –

"खरपतवार एक ऐसा पौधा है, जो इतनी अधिक मात्रा में या प्रचुरता में उगता है कि अधिक महत्वपूर्ण पोषक गुणों वाले दूसरे पौधों की बढ़वार को दबा देता है।"

राबिन्स के अनुसार—

"खरपतवार पौधों की ऐसी जातियां है, जो अवांछित रूप में उगती है या जो उपयोगी नहीं हैं। ये प्रायः प्रचुरता से उगने वाली (Prolific) तथा दीर्घस्थाई (Persistent) होती है। कृषि कार्यों में इनसे बाधा उत्पन्न होती है और यह श्रम की लागत बढ़ाती है तथा फसल की उपज कम करती है।"

"खेत में उगने वाले वे सभी अवांछित पौधे जो फसलों की वृद्धि में बाधक होते हैं, खरपतवार कहलाते हैं।"

खरपतवारों के सम्बन्ध में एक कहावत भी है— खरपतवार फसलों के लिए "मान न मान, मैं तेरा मेहमान" की कहावत को चरितार्थ करते हैं।

खरपतवारों का महत्व

खरपतवार सदैव फसलों की वृद्धि में बाधक होते है। कृषि सेवा विभाग यू. एस. ए. ने 1930 में कहा कि खरपतवार से 16 से 25% तक हानि साधारण होती है। कभी-कभी यह हानि 80 से 90% तक होती है।

खरपतवारों से होने वाली हानियां—निम्नलिखित हैं—

1. खरपतवार भूमि से पौधो के उपयोगी मृदाजल तथा पोषक तत्वों का ह्रास करते हैं।

2. खरपतवारो की जड़ें मिट्टी को जकड़ लेती है, जिससे फसलों की जड़ें विकसित नहीं हो पाती।

3. खरपतवारों की वृद्धि तेजी से होने पर फसलो की वृद्धि रुक जाती है।

4. खेती में खरपतवारों की सघनता होने पर फसलों के पर्याप्त प्रकाश नहीं मिल पाता।

5 खरपतवारों की अधिकता होने पर फसलों पर रोग व कीड़ों का आक्रमण अधिक होता है। क्योंकि खरपतवार पोषक पौधो का कार्य करते हैं।

6. खेत में खरपतवारों की अधिकता होने पर फसलों की जलमाग बढ़ जाती है।

7 खरपतवार फसलों के उत्पादन व्यय को बढ़ाते हैं।

8. खेत में खरपतवारो की अधिकता होने पर भूपरिष्करण क्रियाओं मे कठिनाई होती है।

9. खेत मे खरपतवार के उग आने पर शुद्ध फसल नहीं ली जा सकती।

10. खेत में खरपतवारों की अधिकता होने पर प्राप्त उपज की कीमत बाजार में कम मिलती है।

11. खेत में खरपतवारों की अधिकता होने पर फसलो की गुणवा (Quality) पर बुरा प्रभाव पड़ता है जैसे सरसों के बीजों के साथ सत्यानाशी घास के बीजों के मिल जाने पर सरसों के तेल में तीखापन आ जाता है।

खरपतवारों की विशेषतायें

खरपतवारो मे कुछ ऐसी विशेषतायें पायी जाती हैं, जो सामान्य पौधों में नही होतीं। खरपतवारों की कुछ प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

1. बहुवर्षीय भूमिगत जड़ें जैसे कटीली।

2, अत्यधिक बीजोत्पादन।

3 जीवन क्षमता—जैसे जगली चौलाई, बथुआ व नीलिया (लूनि या घाटी) के बीज भूमि में 10 से 40 वर्ष तक पड़े रहने के बाद भी उगने की क्षमता रखते हैं।

4. वृद्धि अधिकतर खरपतवार 60 से 70 दिन में बीजोत्पादन कर अपना जीवन चक्र पूरा कर लेते हैं।

5. अरूचिकर—जैसे कुकरौंधा।

6. खरपतवारों के बीजों की प्रकीर्णन क्रिया विभिन्न तरीको से तेजी से होती है।

7. प्रतिकूल परिस्थितियों में उगने की क्षमता।

खरपतवारों का वर्गीकरण

(अ) जीवन चक्र के आधार पर—

1. एकवर्षी खरपतवार—एक वर्ष (एक ऋतु) में जीवन चक्र पूरा करने वाले—भुरट, जंगली गोभी, हिरनखुरी, सेंजी इत्यादि। एक वर्षी खरपतवारों को दो वर्गों में बाटा जा सकता है—

(a) वर्षा ऋतु (खरीफ) के खरपतवार—भुरट, भाखड़ी, कुत्ता घास (Xanthium), नोनिया, नामक बड़ी दुद्धी, छोटी दुद्धी, भंगरा या भंगरैला घास, जसमुआ, हजार दाना इत्यादि।

(b) शरद ऋतु (रबी) के खरपतवार—बथुआ, खरबथुआ, सेंजी, हिरनखुरी (बेलड़ी), जंगली गोभी, कृष्णनील, प्याजीघास, अकरी, कनकी, सत्यानाशी इत्यादि।

2. द्विवर्षी खरपतवार—जो वर्षों में अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं। जैसे असगन्ध, दूब, कास मोथा इत्यादि।

(ब) जलवायु के आधार पर वर्गीकरण—

1. जलमग्न क्षेत्रों के खरपतवार-जलकुम्भी, वेलिसिनेरिया, राइझीला इत्यादि।

2. रेगिस्तानी खरपतवार—जवांसा (हिंगुआ) नागफली कैक्टस, झरबेरी, भाखड़ी, भुरट आदि।

3. कृषि क्षेत्रों में खरपतवार-बथुआ, चौलाई, कृष्णानील, सैंजी, जंगली गोभी इत्यादि।

(स) वानस्पतिक वर्गीकरण—

बीज पत्रों के आधार पर खरपतवारों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है—

1. एक बीज पत्री—सांवा (सामक), कनकी, मोथा दूब, जंगली जई इत्यादि।

2. द्विबीज पत्री—सैंजी, झाखड़ी, जंगली, मकोय, बथुआ, खरबथुआ कासनी, जंगली, पालक इत्यादि।

खरपतवार नियन्त्रण

खरपतवारों को नष्ट करने के मुख्य तीन उपाय हैं—

I. निरोध उपाय (Preventive measures)—निम्नलिखित हैं—

1. फसलों के शुद्ध बीज बोकर।
2. पशुओं को खरपतवारों के बीज रहित चारा खिलाकर।
3. खेती के औजारों को काम में लाने से पहले तथा बाद में साफ करके।
4. सिंचाई की नालियों, सड़कों, रास्तों आदि पर उगे हुए खरपतवारों को नष्ट करके।
5. रोप कर तैयार की जाने वाली फसलों में पौध घर में ही पौधों में खरपतवारों को अलग करके।
6. कम्पोस्ट खाद बनाते समय, कम्पोस्ट के गड्ढे में बीजयुक्त खरपतवारों को न डालें।

उन्मूलन (Eradication)

किसी भी क्षेत्र में खरपतवारों को समूल नष्ट करना ताकि वे खरपतवार पुन. उस खेत में न उगे ।

रोकथाम Control Measures के उपाय—खरपतवारों के रोकथाम के विभिन्न उपायों को निम्नलिखित चार भागों में बांटा जा सकता है।

यांत्रिक विधियां (Mechanical Method)—इस विधि में विभिन्न यांत्रिक क्रियाओं द्वारा खरपतवारों की रोकथाम की जाती है। इसके अन्तर्गत भी निम्नलिखित विधियां अपनाई जा सकती है।

1. भूपरिष्करण क्रियाओं द्वारा।
2. अन्तरा कृषि क्रियाओं द्वारा।
3. हाथ खरपतवारों को जड़ सहित उखाड़ कर।
4. मोवर, दरांती या हसिया द्वारा बार-बार फूल लगने से पहले कटाई करके।
5. खरपतवारों को जलाकर।
6. खेत मे 3 से 4 सप्ताह तक 15 से 20 से. मी गहरा पानी भरकर।
7. अवरोध परत द्वारा।

(ब) कृषि विधियां (Culural Method)—

1. उत्तम फसल चक्र अपनाकर।
2. मौसमी खरपतवारों के अंकुरण से पहले फसलों को बोकर (उगाकर)।
3. पंक्तियों की दूरी कम करके तथा बीज की मात्रा बढ़ाकर।
4. प्रतियोगी फसलें (Competitive Crops) उगाकर।
5. बीज बोने की दिशा—बीज ऐसी दिशा में लाइनों में बोये जिससे धरातल पर अधिक से अधिक छाया रहे।
6. अच्छादी फसलें उगाकर।
7. छायादार फसले उगाकर जैसे कपास।

(स) जैविक विधि—

इस विधि का प्रयोग सर्वप्रथम हवाई द्वीप में सन् 1924 मे किया गया वहा वैज्ञानिक परकिन्स, स्येजी तथा कोवले ने केन्टाना कैमरा खरपतवार को नष्ट करने का प्रयास किया। इसके फलस्वरूप थीसिया एचिग्रान तथा थेकिला वे ओकाई के लारवा बहुत ही प्रभावकारी पाये गए। नागफनी को नष्ट करने के लिए सन् 1925 में अर्जेन्टाइना से मोथबोरर केपटोब्लास्टिक केक्टोरय का प्रयोग किया गया। किरमिजी द्वारा भी नागफनी काफी नष्ट हुई है। कपास के खेत में तरुण हंसों का प्रयोग किया। यह जोन्सन घास खाते हैं।

(व) रासायनिक विधि—

कुछ रासायनिक पदार्थ जो खरपतवार नष्ट करने के लिये प्रयोग किये जाते हैं। उन्हें हरबी-साइड, राडीसाइड या वीड किलर कहते है। यह रासायनिक पदार्थ जब-जब खरपतवारों पर छिड़के जाते हैं तो वे पत्तियां, तनों या जड़ों द्वारा शोषित हो जाते हैं और अन्दर प्रवेश करके पौधों के भीतर होने वाले जीवन के लिये आवश्यक अनेक क्रियाओ मे अव्यवस्था उत्पन्न कर देते है। फलस्वरूप पौधो की मृत्यु हो जाती है इस प्रकार हम सब कह सकते है कि खरपतवारो से संघर्ष करने में यह अमोघ अस्त्र है।

खरपतवार-नाशक रासायनिक पदार्थों के आवश्यक गुण—

1. यह सस्ता होना चाहिए।
2. खरपतवारों को नष्ट करने के लिए वृहत क्षेत्रफल पर प्रभावकारी होना चाहिये।
3. फसलों को हानिप्रद न हो।
4. प्रयोग कर्त्ता को क्षति न पहुंचे।

खरपतवार-नाशक रसायनिक पदार्थों का प्रयोग न होने के कारण—

1. कृषको की निर्धनता तथा खरपतवार नाशकों के ऊंचे मूल्य।
2. खरपतवार नाशकों के निर्माण कर्त्ताओं का अभाव।
3. खरपतवार नाशकों के प्रयोग के लिये उपयोगी यन्त्रो का अभाव।
4. किसानों की अशिक्षा।
5. अनुसंधान से प्राप्त परिणामों को कृषकों तक पहुंचाने वाले साधनों का अभाव।
6. प्रशिक्षित तथा अनुभवी कार्यकर्त्ताओं का अभाव।
7. श्रमिक वर्ग बहुलता।
8. छोटे तथा बिखरे क्षेत्र।
9. जलवायु, मिट्टी तथा वनस्पति की असमानता।
10. असावधानी के कारण फसलों पर हानिकारक प्रभाव।
11. मिश्रित फसलों की बुवाग।
12. प्रदर्शन-क्षेत्रों का अभाई।

खरपतवार नाशक रसायनिक पदार्थों का वर्गीकरण—

खरपतवार नाशक रासायनिक पदार्थों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जाता है।

सकते है। इनकी प्रधान विशेषता यह है कि ये पदार्थ केवल सम्पर्क में आने वाले भागों पर ही प्रभाव नही डालते बल्कि वहां से चलकर पौधों की जड़ों तक विषैला प्रभाव डालते हैं, फलस्वरूप सम्पूर्ण पौधों को समूल नष्ट कर देते है। जैसे- सोडियम आर्मिनाइट, 2 4-डी, 2, 4-5 टी' एम. सी. पी. ए. आदि।

(3) स्वायल स्टेरीलट्स—

ऐसे रासायनिक पदार्थ हैं जो मिट्टी में प्रयोग किये जाते है। इनके प्रयोग से मिट्टी में ऐसी दशा उत्पन्न हो जाती है कि पौधे नही उग पाते हैं। इनका प्रयोग भूमि में साल भर से कम या अधिक समय तक भी रह सकता है। अतः इनको दो भागों में बांटा जाता है।

(अ) टेम्परेरी स्वायल स्टेरीलेंट्स—

ये रासायनिक पदार्थ जड़ों के सम्पर्क में आकर खरपतवार को नष्ट कर देते है यह अपना प्रभाव शीघ्र ही दिखाते हैं इसके पश्चात् वाष्पीकरण, डिकम्पोजीशन, लीचिंग या अधिक स्थर हो जाने के कारण भूमि के लिये हानिकारक नहीं रहते है जैसे–टी. सी. ए सोडियम फ्लोरेट, बोरेक्स आदि।

(ब) परमानेन्ट स्वायल स्टेरीलेंट्स—

ये रासायनिक पदार्थ भूमि पर अपना स्थायी प्रभाव डालते है परिणामस्वरूप भूमि पौधो की वृद्धि के लिये अयोग्य हो जाती हैं। अतः कृषि योग्य भूमि में इनका प्रयोग वर्जित है। जैसे–सोडियम आर्सिनाइट, सोडियम क्लोरेट आदि।

(अ) प्रप्लांटिंग—

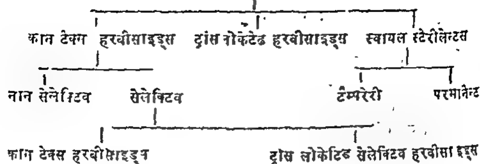
(1) अमीबन
(2) एवेगेक्स वी. डब्ल
(3) ट्राइफ्लोरेटिन
(4) डाइफेनामाईड
(5) वरनीलेट
(6) डाइनोबेम
(7) मेनीनेट
(8) थियुरोन
(9) लोरो
(10) रेडोक्स
(11) वी. बी. 201
(12) मचेटे
(13) लासो

(ब) पोस्ट प्लांटिग—

(अ) टोग इ 25
(ब) आर 19.0
(स) स्टाम एफ 34
(द) रोग्यू
(य) अन्सार 509
(र) पेराक्वट

कुछ तेल भी खरपतवार-नाशक के रूप में प्रयोग किये जाते है—

(1) डीजल तेल
(2) स्टोव तेल
(3) सेल वीडकीलर न. 10
(4) पेनटेक्स वीडकीलर न. 1



(1) कानटेक्स हरवीसाइड्स –

ये ऐसे रासायनिक पदार्थ हैं जो अपने सम्पर्क से पौधों के किसी भी भाग को नष्ट कर देते हैं। यह अधिकतर पौधों की ऊपरी वानस्पतिक वृद्धि को नष्ट करने के लिए प्रयोग किये जाते है। उदाहरणार्थ कैलशियम सायनामाइड, कापर सल्फेट, सल्फ्यूरिक अम्ल आदि।

(अ) नान सलेक्टिव हरवीसाइड्स –

इनके प्रयोग से सभी परिवार के पौधे नष्ट हो जाते हैं। चाहे खरपतवार हो चाहे फसल के पौधे हों यही कारण है कि इनका प्रयोग बंजर भूमि, खेल के मैदान सड़कों, रेलवे लाइनों, नहरों के किनारों के खरपतवारों पर किया जाता है। इनके प्रयोग से भूमि बहुत समय तक निष्क्रिय हो जाती है उदाहरणार्थ सोडियम क्लोराइड, सोडियम वोरेट, सोडियम क्लोरेट व सोडियम आर्सीनेट आदि।

(ब) सेलेक्टिव हरवीसाइड्स –

यह पदार्थ खड़ी फसल मे खरपतवार को नष्ट करने के लिए प्रयोग किये जाते है। यह अपना प्रभाव विशेष जाति के ही खरपतवार पर डालते है-2, 4-डी का प्रभाव चौड़ी पत्ती वाले द्विदलीय पौधों पर पड़ता है जैसे बथुआ।

सेलेक्टिव हरवीसाइड्स दो प्रकार के होते हैं–

1. कान्टेक्स सेलेक्टिव हरवीसाइड्स
   जैसे- डी. एन. सी. के. सी. एन.
2. ट्रास लोकेटिड सेलेक्टिव हरवीसाइड्स
   जैसे–2, 4, डी. 2, 4-5 टी.

(2) ट्रांसलोकेटिड हरवीसाइड्स –

ये ऐसे रासायनिक पदार्थ है जो सेलेक्टिव तथा नान सेलेक्टिव दोनों ही हों

सकते है। इनकी प्रधान विशेषता यह है कि ये पदार्थ केवल सम्पर्क में आने वाले मार्गों पर ही प्रभाव नहीं डालते बल्कि वहां से चलकर पौधों की जड़ों तक विषैला प्रभाव डालते हैं, फलस्वरूप सम्पूर्ण पौधों को समूल नष्ट कर देते है। जैसे–सोडियम आर्सिनाइट, 2 4-डी, 2, 4-5 टी' एम. सी. पी. ए. आदि।

(3) स्वायल स्टेरीलट्स—

ऐसे रासायनिक पदार्थ हैं जो मिट्टी में प्रयोग किये जाते है। इनके प्रयोग से मिट्टी में ऐसी दशा उत्पन्न हो जाती है कि पौधे नही उग पाते हैं। इनका प्रयोग भूमि में साल भर से कम या अधिक समय तक भी रह सकता है। अतः इनको दो भागों में बांटा जाता है।

(अ) टेम्परेरी स्वायल स्टेरीलेंट्स—

ये रासायनिक पदार्थ जड़ों के सम्पर्क मे आकर खरपतवार को नष्ट कर देते हैं यह अपना प्रभाव शीघ्र ही दिखाते हैं इसके पश्चात् वाष्पीकरण, डिकम्पोजीशन, लीचिंग या अधिक स्थर हो जाने के कारण भूमि के लिये हानिकारक नहीं रहते है जैसे–टी. सी. ए सोडियम क्लोरेट, बोरेक्स आदि।

(ब) परमानेन्ट स्वायल स्टेरीलेंट्स—

ये रासायनिक पदार्थ भूमि पर अपना स्थायी प्रभाव डालते हैं परिणामस्वरूप भूमि पौधों की वृद्धि के लिये अयोग्य हो जाती हैं। अतः कृषि योग्य भूमि में इनका प्रयोग वर्जित है। जैसे–सोडियम आर्सिनाइट, सोडियम क्लोरेट आदि।

(अ) प्रप्लांटिंग—

(1) अमीबन (2) एवेगेक्स बी. डब्ल (3) ट्राइफ्लोरेटिन
(4) डाइफेनामाईड (5) वरनीलेट (6) डाइनोबेम
(7) मेल्नीनेट (8) थियुरोन (9) खोरी
(10) रैडोक्स (11) बी. बी. 201 (12) मचेटे
(13) लासो

(ब) पोस्ट प्लांटिंग—

(अ) टोग इ 25 (ब) आर 19.0 (स) स्टाम एफ 34
(द) रोग्यू (य) अन्सार 509 (र) पेराक्वट

कुछ तेल भी खरपतवार-नाशक के रूप मे प्रयोग किये जाते है—

(1) डीजल तेल (2) स्टोव तेल
(3) सेल वीडकीलर न. 10 (4) पेनटेक्स.

वीडीसाईड प्रयोग करते समय सावधानियाँ—

(1) केवल स्वीकृति मात्रा में ही प्रयोग करना चाहिए अधिक मात्रा देने से फसल नष्ट हो सकती है।

(2) स्प्रे तेज हवा में नहीं करना चाहिये।

(3) वीडीसाइड को कीटनाशक, फफूंदी-नाशक से अलग रखना चाहिये ताकि गलत प्रयोग न हो सके।

(4) बर्तन को अच्छी प्रकार साफ कर लेना चाहिए।

(5) साधारणतया स्प्रेयर में हवा का दबाव 20-30 पौ. प्रति वर्ग इन्च होना चाहिए।

तालिका नं० 22

खरपतवार नाशकों की प्रयोग विधि

निम्नलिखित तालिका द्वारा खरपतवार नाशकों की प्रयोग विधि आसानी से ज्ञात की जा सकती है—

खरपतवार नाशक	दर/हैक्टर एक्टिव इनग्रेडियेन्ट	स्प्रे आयतन प्रति हेक्टर	प्रयोग का समय	खरपतवार नियन्त्रण	विशेष
गेहूं, जौ, जई 1-2-4 डी.	1 कि. ग्रा.	750 से 800 ली.	बुवाई के 6 सप्ताह बाद	सभी वार्षिक चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	पहली सिंचाई के बाद 2·4 का स्प्रे करते है, प्रयोग के 10 दिन तक सिंचाई नहीं करते है।
2-सिमेजीन	2½-5 कि. ग्रा.	250 से 500 ली.	फसल जमने से पहले	वार्षिक खरपतवार	मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में प्रयोग
3-डालापान	10-40 कि. ग्रा.	600 से 700 ली.	फसल बोने के पहले	घासों के लिए	जुताई के साथ प्रयोग
4-रेन ऐक्स टी	ग्राम	500 से 750 ली.	फसल बोने के पहले	घास के लिए	हल्की वर्षा वाले क्षेत्रों में प्रयोग
मटर और अलसी एम. सी. पी. बो. या ट्रोपोटोक्स	3-4 कि. ग्राम	750 ली. पानी	बुवाई के 4 सप्ताह बाद मटर मे 6 सप्ताह बाद अलसी मे	सभी वार्षिक चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	अगर खेत मे सिर्फ वार्षिक चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार हैं तो स्प्रे करते है।

खरपतवार नाशक	दर/हैक्टर एक्टिव इनग्रेडियेन्ट	स्प्रे आयतन प्रति हैक्टर	प्रयोग का समय	खरपतवार नियन्त्रण	विशेष
मक्का					
1-सीमाजीन	2 कि. ग्रा.	1000 लीटर पानी	बुवाई के तुरन्त बाद	सभी चौड़ी पत्ती तथा पतली पत्ती वाले वार्षिक खरपतवार नट घास (मोथा)	सिमाजीन फसल निकालने के पहले या बुवाई के तुरन्त बाद स्प्रे करते हैं।
2-2,4 डी.	3-4 किग्रा.	750 लीटर पानी	बुवाई के 5 सप्ताह बाद		2,4-डी का प्रयोग नट घासों के लिए अच्छा होता है। 1-2 कि. ग्रा से ज्यादा नहीं।
ग्राम					
सिमाजीन	1-2 किग्रा.	1000 लीटर पानी	फसल बोने के तुरन्त बाद लेकिन फसल निकालने से पहले	सभी वार्षिक चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार के लिए,	घोल का सामान स्प्रे करना चाहिए।
गन्ना					
1. एट्रोजीन एवं टैफाजीन	3-4 कि.ग्रा.	500-800 लीटर पानी	फसल में	वार्षिक खरपतवार	घोल का सामान स्प्रे करते हैं।
2. सिमाजीन	4 कि.ग्रा.	1000 लीटर पानी	बुवाई के 2-3 सप्ताह बाद	सभी वार्षिक चौड़ी पत्ती वाले तथा पतली पत्ती वाले खरपतवार के लिए (मोथा, घास)	सिमाजीन का प्रयोग पहली सिंचाई के बाद भी कर सकते हैं। इस घास को नष्ट करने के लिए भूमि में रासायनिक पदार्थ मिलकर दो जुताइयाँ कर देना चाहिए।

खरपतवार नाशक	दर/हेक्टर एक्टिव इनग्रेडियेन्ट	स्प्रे आयतन प्रति हेक्टर	प्रयोग का समय	खरपतवार नियन्त्रण	विशेष
3,4-डी.	1½ किग्रा.	750 लीटर पानी	5–9 सप्ताह बाद		
4 पी. सी. पी.	1–3 किग्रा.	600 से 1000 लीटर पानी	खड़ी फसल में	सभी खरपतवार घास सहित	पौधों के आधार पर स्प्रे करते है
धान					
स्टाम एफ. 3.	1–12 कि. इक्टिव इनग्रे.		बुवाई के 15 दिन बाद	सभी खरपतवार	एम. सी. पी. ए के साथ मिला कर भी स्प्रे कर सकते है।
नये खरपतवार नायक (टोकफई) 251	2–6	300 से 600 लीटर पानी	फसल जमने से पहले किसी समय,	सभी खरपतवार	वीड कन्ट्रोल पेज 5.0–552 क्रापट्स और रोबीन्स।
रोहन और होस या एम. ए. वी. वी. 202	2–8 किग्रा.	300 से 600 लीटर पानी	किसी समय	सभी खरपतवार	

सामान्य खरपतवार नष्ट करने के उपाय—

1 कांस (1) सी एम यू. 40–80 किग्रा. प्रति हेक्टर प्रयोग करने से कांस को नष्ट किया जा सकता है। यह पदार्थ महंगी है तथा भूमि कृषि योग्य नहीं रहती है।

(2) 3 कि. डालापान 650 से 750 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टर घोल छिड़कते हैं।

2. प्याजी (1) फरकोल्जोन ढाई कि. को 1000 लीटर पानी में विलियन करके प्रति हेक्टर घोल छिड़कते हैं।

(2) सोडियम 2,4–डी को 325 किलो से 4·8 किलो प्रति हेक्टर, प्रयोग करना चाहिए।

(3) डाइटाक्स का भी प्रयोग उपयोगी सिद्ध हुआ।

3. मेथा (1) एग्रोजन (एम. सी. पी. ए.) 5 प्रतिशत से 3 प्रतिशत तक 100 ली. पानी में मिलाकर प्रति हेक्टर प्रयोग करना चाहिए।

(2) 2, 4–डी अमाइनसाल्ट 3–4 कि. प्रति हेक्टर की दर से, 1000 लीटर पानी के साथ बराबर छिड़कते हैं।

(3) मिथाइल ब्रोमाइड किलो प्रति 100 वर्ग फीट के फ्यूमीगेशन से साफ किये जा सकते हैं।

(4) टी.सी.ए. 20 किलो प्रति हे. की दर से बिना फसल के प्रयोग किये जा सकते हैं।

(5) सी.एम.यू. ई. पी.टी.सी., 1·25 प्रतिशत तथा डीजल तेल से भी नष्ट किया जा सकता है।

4. सत्यनाशी (1) 1 किलो 2,4-डी को 750 लीटर पानी के साथ प्रति हेक्टर स्प्रे करना चाहिए।

(2) 2,4 डी तथा 2,4–5 टी. का मिश्रित 1 : 1 का एसिड इक्वीवेलेन्ट से ज्यादा नही होना चाहिये। सरसों में प्रयोग नही करना चाहिये।

5. हिरनखुरी (1) सोडियम क्लोरेट का घोल छिड़क देने से नष्ट हो जाती है।

(2) आर्सेनिक कम्पाउण्ड छिड़कने से नष्ट हो जाती है।

(3) गेहूं के खेत में एम.सी.पी.ए. का प्रयोग करना चाहिए।

(4) 2, 4 डी का प्रयोग 280 या. 600 लीटर पानी मिलाकर प्रति हेक्टर छिड़काव करने में हिरनखुरी नष्ट हो जाती है।

6. लहसुवा (1) 2, 4–डी 1 कि. एसिड इक्वीलेन्ट प्रति हेक्टर का प्रयोग करने से नष्ट हो जाता है।

(2) 2.4–डी सोडियम लवण अथवा ईस्टर 2 किलो एसिड इक्वीवेलेन्ट प्रति हैक्टर की दर से प्रिइमरजेन्स के रूप में मक्का खेत में प्रयोग करते हैं।

(3) एम. सी. पी. ए 4 किलो एसिड इक्वीवेलेन्ट प्रति हेक्टर की दर से मक्का के खेत मे प्रयोग करते हैं।

7. वायसुरो (1) 18 लीटर एग्रोजोन 10 प्रतिशत वाला 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

(2) 2, 4 डी. 1½ किलो एसिड इक्वीवेलेन्ट प्रति है, की दर से पौधों की छोटी अवस्था पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

(3) एम. सी. पी. 0 किलो एसीड इक्वीवेलेन्ट प्रति हेक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

8. हजारदाना (1) 2, 4–0–1½ किलो एसिड इक्वलेन्ट प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करने से समाप्त हो जाता है।

9. जवामा (1) खेत को पानी से भर देना सर्वोत्तम रहता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. खरपतवार किसे कहते है ? खरपतवार नियन्त्रण की कल्चर विधि का वर्णन कीजिए।
2. खरपतवार से क्या तात्पर्य है ? खरपतवार का आर्थिक महत्व लिखते हुए उसके नियन्त्रण की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।

अध्याय 1

पशुधन का कृषि में महत्त्व

कृषि शास्त्र का क्षेत्र अब इतना विस्तृत हो गया है कि उसको एक विषय के ही अन्तर्गत अध्ययन करना असंभव सा ही है। इसलिए कृषि शास्त्र को अनेक शाखाओं में बाँट दिया गया है, जैसे—शस्य विज्ञान, कृषि अभियन्त्रण, बागवानी, पशुपालन इत्यादि।

पशुपालन विज्ञान, कृषि शास्त्र का वह विभाग है जिसके अन्तर्गत हम पशुओं के विषय में अध्ययन करते हैं। इस शास्त्र के अन्तर्गत हम विभिन्न प्रकार के पशुओं की जातियों का अध्ययन करते हैं और उनके पालन-पोषण के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। पशुओं को आदर्श और संतुलित भोजन किस प्रकार दिया जाना चाहिए यह भी हमें पशुपालन के अन्दर बताया जाता है।

पशुपालन विज्ञान में हमें यह भी बताया जाता है कि पशु जाति के सुधार के लिए कौन-कौन से नए साधन खोजे जा रहे हैं। इस विज्ञान के अन्तर्गत पशु आयुर्वेद भी आता है जिसमें पशुओं की विभिन्न प्रकार की बीमारियों का अध्ययन कराया जाता है और उनके लिए दवाइयाँ भी बताई जाती है।

अतः पशुओं के पालन-पोषण, स्वास्थ्य रक्षा, जाति वृद्धि एवं सुधार तथा रहन-सहन के लिए स्वास्थ्य-प्रद गृह की रचना के विषय में अध्ययन कराने वाले शास्त्र को पशुपालन-विज्ञान कहते हैं।

पशुधन का कृषि में महत्त्व :

हमारा साहित्य इस बात का साक्षी है कि पशुओं की महिमा प्राचीन काल से चली आ रही है। भगवान श्री कृष्ण को गऊएँ चराते हुए एवं स्त्रियाँ गाय तथा उसके बछड़े को खड़ी पूजते हुए कई चित्रों में देखा होगा। पहले लोग पशुओं के महत्त्व और सहयोग को भली-भाँति समझते थे। यही कारण है कि उस समय दूध तथा घी की नदियाँ बहा करती थी। हालांकि आज हमारे पशुओं की हालत कुछ हीन है फिर भी पशुओं के सहयोग को भुलाना देश की उन्नति में बाधा डालना है। निम्नलिखित बातों के लिए हम पशुओं को महत्त्व देते हैं—

1. कृषि—हालांकि आज के वैज्ञानिक युग में खेती ट्रैक्टरों द्वारा की जाती

है, परन्तु भारत में उनकी संख्या बहुत ही कम है। इसका एक कारण यहाँ के जोत के आकार का छोटा होना है। छोटे-छोटे खेत होने के कारण ऐसे यंत्रों का प्रयोग सम्भव नहीं हो पाता। साथ ही निर्धनता के कारण किसान ऐसे यंत्रों को खरीद भी नहीं पाता। अतः कृषक अपनी कृषि बैलों के सहारे करता है।

2. सिंचाई—कृषि के लिए जल-सिंचन का बड़ा महत्त्व है। भारत में जल-सिंचन अधिकतर कुओं से किया जाता है जिनसे पानी निकालने के लिए बैलों का ही प्रयोग किया जाता है। अतः सिंचाई के कार्यों के लिए भी पशुधन का प्रयोग किया जाता है।

3. कार्बनिक खाद—खाद उपज हेतु एक पौष्टिक पदार्थ है। भूमि की उर्वरता को बढ़ाती है। गोबर एवं मूत्र जो कि एक प्राकृतिक अत्युत्तम खाद है इन्हीं पशुओं से ही प्राप्त होती है।

4. यातायात—आज वैज्ञानिक युग में यातायात के साधनों की कमी नहीं है, परन्तु गाँवों में जहाँ पक्की सड़कें नहीं हैं बैलगाड़ियों से ही काम लिया जाता है, जिनमें बैल अथवा भैंसे को जोता जाता है। खेत से खलिहान एवं खलिहान से घर अथवा मण्डी तक सामान इन्हीं बैलगाड़ियों द्वारा ही लाया जाता है।

5. अकार्बनिक खादें—पशुओं के मरने के बाद उनकी हड्डियों से सुपर फास्फेट खाद बनाई जाती है जो कि फसलों की पैदावार बढ़ाने के लिए खेत में डाली जाती है।

6. चमड़ा—पशुओं के चमड़ों से कई प्रकार की चीजें बनाई जाती हैं। बैग, जूता इत्यादि परन्तु कृषि की दृष्टिकोण से चमड़े का बड़ा थैला जिसे मोट या चरस कहते हैं, बनाया जाता है जो सिंचाई के काम आता है।

7. बाल—पशुओं की स्वच्छता अर्थात् सफाई के लिए तरह-तरह के ब्रुश बनाये जाते हैं जिससे बैलों का स्वास्थ्य ठीक रहता है। उनके स्वस्थ रहने से कृषि का कार्य सुचारु रूप से चलता रहता है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि भारत जैसे गरीब एवं कृषि प्रधान देश में पशु के बिना, खेती करना संभव नहीं है। अतः पशुधन का कृषि में अत्यन्त महत्त्व है।

पशुधन का दैनिक जीवन में महत्त्व :

1. दूध एवं दूध से बने हुए पदार्थ—पशुओं से हमें दूध प्राप्त होता है। जो मनुष्यों के भोजन का एक मुख्य अंग है। इनमें दूध से भिन्न-भिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ बनाये जाते हैं, जैसे—रसगुल्ले, रसमलाई, बर्फी, गुलाब जामुन आदि।

2. रोगियों के लिए औषधि—रोगियों के लिए, पशुओं की महत्ता और भी अधिक हो जाती है क्योंकि वे रोग में दूध के अतिरिक्त कोई भी महत्वपूर्ण भोज्य पदार्थ नहीं खा सकते। इसके अतिरिक्त दूध एक प्राकृतिक औषधि का काम भी करता है। दूध एक प्रकार से पूर्ण भोजन है क्योंकि भोज्य पदार्थ के सभी आवश्यक तत्व इस दूध में विद्यमान हैं और यह दूध पशुओं से ही प्राप्त होता है।

3. ऊन—पशुओं से ऊन मिलती है जिनसे गर्म कपड़े बनाये जाते हैं। सर्दियों में इन ऊनी कपड़ों से सर्दी से बचाव किया जाता है। इससे आर्थिक सहायता मिलती है।

4. चमड़ा—चमड़े का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इससे अनेक प्रकार के थैले, जूते, पर्स आदि बनाए जाते हैं। घड़ियों के पट्टे, रेडियो आदि के केस बनाये जाते हैं।

5. बाल—पशुओं के बालों से अनेक प्रकार के ब्रुश बनाए जाते हैं। मनुष्यों की दाढी बनाने का ब्रुश, बूट पालिस के ब्रुश एवं पशुओं के लिए ग्रूमिंग ब्रुश आदि बनाने के काम आता है। कई प्रकार के बालो के ब्रुश से कपड़ो की सफाई भी की जाती है।

6. सींग एवं खुर—पशुओं के सींग व खुरो से बटन कंघियां आदि बनाई जाती हैं। पशुओं के सींगों से सजावट की अनेक चीजे बनाई जाती है। हाथी के दाँतों से बहुत-सी चीजें बनाई जाती है जिससे आधुनिक फैशन के रूप मे उपयोग में लाया जाता है।

7. मल-मूत्र—पशुओं के मल-मूत्र को एकत्र करके सबसे बढ़िया कार्बनिक खाद बनाई जाती है। फसल की पैदावार बढ़ाने के लिए इसी मल-मूत्र का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के खाद में पौधे के सभी आवश्यक तत्व, विद्यमान होते है। किसान बिना पैसा खर्च किए इतनी अच्छी खाद घर बैठे पशु पाल कर प्राप्त करता है। गाय के मूत्र का प्रयोग लोग दवा के रूप में भी करते हैं।

8. बछड़े—खेती करने के लिए बछड़े भी इन्हीं पशुओं से प्राप्त होते हैं। छोटे किसान ट्रैक्टर का प्रयोग करने में असमर्थ होते हैं, अतः वे इन्ही बछड़ो पर खेती के लिए निर्भर रहते हैं।

9. शाकाहारी लोगों के लिए पौष्टिक पदार्थ—भारत की अधिकांश जनसंख्या शाकाहारी है। उनके लिए दूध, दही और मक्खन पौष्टिक भोजन है। मांसाहारी व्यक्तियों को तो मांस के पौष्टिक तत्व मिल जाते है परन्तु शाकाहारियों को दूध ही मांस का काम देता है।

10 मांस—इस संसार में शाकाहारी लोगों के साथ-साथ मांसाहारी लोगों की भी कमी नहीं है। मांस और कहीं से नहीं, इन्हीं पशुओं से ही प्राप्त होता है।

11. यातायात—पुराने जमाने में पशुओं को यातायात के काम में लिया जाता था, परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में इसका प्रचलन कम हो गया है। फिर भी गांवों में जहां अच्छी सड़कों का अभाव है, वहां इन्हीं पशुओं की सहायता ली जाती है।

12. मनोरंजन—कई घरों में पशुओं से भी मनोरंजन प्राप्त किया जाता है। ज्यादातर घरों में कुत्ते आदि पाले जाते हैं। कुत्ते के अलावा घोड़े आदि भी पालते हैं।

13. सजावट—मरे हुए पशुओं के शरीर अथवा उनके सींग, मुंह अथवा दांत आदि को घरों में सजावट के लिए प्रयोग करते हैं।

14. औषधि—कई पशुओं से औषधि भी प्राप्त होती है। मरने के बाद उनकी चर्बी से कई प्रकार की दवायें बनती हैं।

15. हड्डी की खाद—पशुओं के मरने के बाद उनकी हड्डियों से फास्फोरस वाली खाद बनाई जाती है।

16. कृषक की जीविका—आज के युग में किसान कृषि पर अपने परिवार का भरण नहीं कर सकता। अतः उसकी आय की वृद्धि के लिए पशुओं का विशेष महत्व है।

17. चर्बी—पशु से दूध एवं मांस के अलावा चर्बी भी प्राप्त होती है। यह अधिक पौष्टिक वाला पदार्थ है, इससे अधिक शक्ति मिलती है।

18. आर्थिक लाभ—पशुओं से प्राप्त विभिन्न चीजों के बेचने से आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। पशुधन का देश की अर्थ-व्यवस्था का एक बहुत बड़ा साधन है। हमारी राष्ट्रीय आय का 30% से अधिक भाग पशुओं से प्राप्त होता है।

19. रहन-सहन का स्तर—पशुओं के पालने से आर्थिक लाभ होता है। आर्थिक लाभ से उसके रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो जाता है। कृषक अच्छा खाएगा, पीएगा, अच्छा पहनेगा तथा अच्छी तरह रहेगा। रहन-सहन का स्तर ऊंचा होने से समाज में प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

20. पीने के पानी की व्यवस्था—सुदूर गांवों में जहां पानी की विकट समस्या हो जाती है। अधिकतर गर्मियों में यह समस्या काफी भयकर रूप धारण कर लेती है। कुओं में पानी की सतह काफी नीचे चली जाती है जिससे पानी बाहर निकालना अत्यन्त कठिन हो जाता है। जहां पर विद्युत की सुविधा नहीं है वहां लोग बैल

स्थानों में पानी के अभाव में काफी दुःखी हो जाते हैं। ऐसे स्थानों में पशुओं की सहायता से काफी गहराई का पानी निकालकार पीने की समस्या को हल करते है।

संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि मनुष्यों और पशुओं का जीवन एक दूसरे पर निर्भर करता है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के शब्दों में हम कह सकते है "भारत की समृद्धि गाय तथा उसकी संतान की समृद्धि के साथ जुड़ी हुई है।"

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पशुधन का कृषि में क्या महत्व है ? विस्तार से लिखिए।
2. पशु से मानव को क्या-क्या लाभ होते हैं ? संक्षेप में लिखिए।
3. खेती के उत्पादन में पशुओं का महत्व बताइए।
4. पशुधन का दैनिक जीवन में क्या महत्व है ?
5. "मनुष्यों और पशुओं का जीवन एक दूसरे पर निर्भर करता है"—संक्षेप मे लिखिये।

---

(6) सपानोगैनेटिक पौधे :

कुछ पौधे ऐसे है जिनमें छोटी अवस्था में हायड्रोसायनिक एसिड अधिक पाया जाता है। इस एसिड की 1 से 1.5 कि. ग्रा. मात्रा पशुओं के लिये हानिकारक होती है। जैसे—ज्वार, स्टार ग्रास आदि के पौधे।

(7) कीटोसिस :

असंतुलित भोजन देने से कार्बोहाइड्रेट्स व प्रोटीन का संतुलन बिगड़ जाता है। कार्बोहाइड्रेट्स की कमी में फैट मैटाबोलिज्म बढ़ जाता है। रक्त में कीटोन पदार्थों की मात्रा अधिक हो जाती है। इसे कीटोसिस कहते है।

(8) मिल्वर्ड फार्मिंग की कमी :

भारत के किसान कृषि भी करते है तथा दुग्ध के लिये गाय भैंस भी रखते है लेकिन ज्ञान की कमी के कारण मिश्रित खेती के सिद्धान्तों को नहीं जानते। पशुओं को केवल अपनी आवश्यकता पूर्ति, घी व दूध के लिये पालते है। कृषि भी व्यक्तिगत आवश्यकता के लिये करते हैं। ये फसल इस उद्देश्य से नहीं बोते कि पशुओं को चारा प्रचुर मात्रा में मिल सके।

(9) उन्नत कृषि क्रियाएं व बीज की कमी :

भारतवासी पुराने ढंग से खेती करते है। पुराने बीज बोते हैं तथा सिंचाई के साधन भी कम है जिसके कारण उत्पादन कम मिलता है। सिंचाई की कमी के कारण फसलें कम वृद्धि करती हैं।

(10) सूखा चारा तथा साइलेज बनाने की कमी :

इनकी कमी में काफी चारा बेकार जाता है। बहुत सी घास सूखने पर बेकार हो जाती है। सूखा चारा तथा साइलेज की कमी से पशुओं को पोषक तत्व कम मिलते है।

(11) फोरेज डमोंस्ट्रेशन केन्द्रों की कमी :

इन केन्द्रों की कमी के कारण किसान साइलेज तथा सूखा सारा बनाना नहीं जान पाते है एवं चारे की कमी के समय में उन्हें चारे की सहायता भी नहीं मिल पाती है।

उन्नतिशील क्रियायें तथा सुझाव

(1) चरागाह तथा चारे के साधनों का विकास :

गाँव की सामूहिक भूमि में नियमित तथा स्टेसनली चरागाह स्थापित करने चाहिए तथा उनके प्रबन्ध का अधिकार ग्राम पंचायत, सहकारी संस्थाओं का होना चाहिये। पहाड़ी जगहों पर जहां भूमि है चरागाहों को पशु संख्या के आधार पर

बनाना चाहिये। कुछ भाग चरागाह का गर्मियों में घास की कटिंग के लिये छोड़ देना चाहिए।

(2) मिश्रित फसल प्रणाली व अच्छे फसल चक्र :

फसलें मिलाकर बोना भी हमारे लिये लाभदायक रहता है। जैसे चरी + काउपी शीघ्र उपयुक्त चारा देती है, बाजरा + काउपी + मोठ, व काउपी + मोठ बोने से अधिक मात्रा में शीघ्र चारा मिलता है। फसल चक्र अच्छे बनाने से भूमि की उर्वरा शक्ति स्थिर रहती है जिसमें अधिक उपज मिलती है और पशु खूब दूध देते हैं। जैसे बाजरा-तोराई-गेहूँ-मूंग व गेहूँ-मूंग-मक्का-तोरई (1 वर्ष) गेहूँ-मूंग-ज्वार-आलू (1 वर्ष)।

(3) प्राकृतिक घास की भूमि का अच्छा प्रबन्ध :

खाली भूमि में कटाव हो जाते हैं। कास आदि खरपतवार हो जाते हैं। अतः उर्वरा शक्ति का ह्रास होने लगता है। इसके लिये चारे की फसलों की खेती करने से विशेषकर फलीदार फसलें लेने से उर्वरा शक्ति कायम रहती है और अधिक मात्रा में चारा प्राप्त होता है।

(4) कन्ट्रीवेटिड भूमि से अधिक मात्रा में चारे का उत्पादन :

उन्नत कृषि क्रियाओं व उन्नत बीजों का प्रयोग करना चाहियें, जिससे अमुक क्षेत्रफल में अधिक मात्रा में चारे का उत्पादन मिल सके जैसे ज्वार की सादा उपज 23 टन होती है परन्तु उन्नत कृषि क्रियायें अपनाने पर 60 टन प्रति हैक्टर उपज प्राप्त होती है।

(5) हे और साइलेज बनाना :

चारे को घास के रूप में सुखाकर रखने से चारे का पोषक मूल्य अधिक रहता है। खेत में जल्दी फसल काटने से दूसरी फसल बो देते हैं। साइलेज बनाने से चारा स्वादिष्ट होता है तथा दूसरे मौसम में भी मिल जाता है। फसल के पौधे के सब भाग प्रयोग में आ जाते है। फसल को बीमारी से बचाकर शीघ्र काट लेते हैं कुछ घासें जो सुखा कर प्रयोग में नहीं आती साइलेज के रूप में काम में आती हैं।

(6) प्रोटीन व कार्बोहाइड्रेट्स का संतुलन :

पशुओं को सूखी अवस्था में मेन्टीनेंस चारा देते है तो वे उसी से स्वस्थ रहते हैं लेकिन ब्याने पर उनकी खुराक में वृद्धि आवश्यक है, अन्यथा प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स का संतुलन बिगड़ जायेगा और कीटोसिस हो जाती हैं। ऐसे पशु को ब्याने के 5–6 सप्ताह बाद तक 4 से 5 कि.ग्रा. प्रतिदिन सोरा देना चाहिये।

(7) धान के भूसे के पोषक तत्वों की लेग्यूम चारे से पूर्ति :

धान के भूसे में पोषक तत्वों की कमी के कारण लेग्यूमस चारे की पूरक के रूप मे दिया जा सकता है । धान की मात्रा से जो पोषक-तत्व मिलते है वे लेग्यूमस की थोड़ी मात्रा से मिल जाते हैं, जैसे बरसीम ।

(8) नहर की पटरियों को घास को चराना :

बरसात के मौसम में नहर की पटरियों की घास को रख कर चराना चाहिए ।

(9) चरागाह विकास व प्रबन्ध :

सामूहिक चरागाह के अतिरिक्त व्यक्तिगत चरागाह भी बनाये जायें । पशुओं की संख्या के अनुसार चरागाह का क्षेत्रफल रखना चाहिये । ओवर ग्रेजिंग से घास उखड़ कर वेकार हो जायेगी और अंडर ग्रेजिंग से घास पकने पर पोषक मूल्य कम हो जायेंगे । अतः इन्हें रोकना चाहिये ।

(10) मिश्रित खेती का विकास :

कृषि के साथ अन्य व्यवसाय जैसे डेयरी व पोल्ट्री से काफी लाभ होता है जिससे पशुओं का मल मूत्र खेती में काम आता है तथा खेती में उत्पादित चारा अच्छा व सस्ते रूप में पशुओं के काम आता है ।

(11) पशु बध गृह व गो-सदन का विकास :

बेकार पशुओं को गऊशाला में भेज देना चाहिये ताकि वे खड़ी फसल को हानि न पहुँचायें । अधिक बुड्ढे पशुओं को अमेरिका की तरह पशु वध गृहों में भिजवा देना चाहिये ताकि उनकी हड्डी व चमड़ा प्रयोग में लिया जा सके ।

(12) जन्तु जन्य खाद्य पदार्थों का प्रयोग :

वटर मिल्क, स्किम मिल्क, ब्लड मील, फिस मील छोटे बच्चो व पशुओं को देने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है ।

(13) फोरेज डिमोन्स्ट्रेशन केन्द्रों का विकास :

गाँव में फोरेज डिमोस्ट्रेशन केन्द्र होने चाहिये जो जनता को सूखा चारा और साइलेज बनाने की विधि डिमोंस्ट्रेशन करके दिखायें व विपत्ति के समय चारा देकर मदद करें ।

(14) फोरेज रिसर्च इन्स्टीट्यूट का विकास किया जाय ताकि लोगों को अधिक पैदावार देने वाले चारों की जाति एवं उत्पादन क्रिया सम्बन्धी ज्ञान करा सके ।

आर. ओ. व्हाइट के अनुसार

डेयरी कंसन्ट्रेट्स मिक्सचर :

(1)	रेप केक	25 भाग
	गेहूँ की भूसी	15 भाग
	मक्का	35 भाग
	चना	25 भाग
(2)	चना	45 भाग
	गेहूँ की भूसी	20 भाग
	बिनौले	25 भाग
	मूँगफली की खली	10 भाग
(3)	कोटन सीड केक	25 भाग
	दली हुई मक्का	35 भाग
	क्रश्ड जई	10 भाग
	गेहूँ की भूसी	20 भाग
(4)	मूँगफली की खली	10 भाग
	राइस ब्रान	25 भाग
	चना	65 भाग

मिनरल मिक्सचर :

बोन मील	57 भाग
ग्राउंड चौक	10 भाग
कामन साल्ट	24·4 भाग
आयरन ऑक्साइड	0·4 भाग
पोटेशियम आयोडाइड	0·25 भाग
स्टार्च सोडियम	0·75 भाग
कार्बोनेट	0·75 भाग
सोडियम थायोसल्फेट	0.75 भाग
कोपर सल्फेट	0·25 भाग
मैंगनीज सल्फेट	0·30 भाग
कोबाल्ट क्लोराइड	0.05 भाग

तालिका नं० 23

दो वर्ष तक के पशुओं का प्रतिदिन का संतुलित भोजन (आहार)

आयु	हरा चारा कि.ग्रा. में	सूखा चारा कि.ग्रा. मे	दाने का मिश्रण कि.ग्रा. में	साल्ट ग्रा. में	मिनरल मिश्रण ग्रा.में	होल मिल्क कि.ग्रा. मे	स्किम्ड मिल्क कि.ग्रा. में
जन्म से 5 दिन तक	—	—	—	14	7	2·2	—
6 से 15 दिन	—	—	—	14	7	2·6	—
16 से 30 दिन	—	0·225	115	14	7	3·1	—
1 से 2 माह	0·9	0·45	115	14	7	3·5	1·3
2 से 3 माह	1·3	0·675	35	14	7	2·2	3·5
3 से 4 माह	2·2	0·675	35	14	7	1·3	4·4
4 से 5 माह	2·6	0·9	45	14	7	—	5·3
5 से 6 माह	3·1	1·3	675	14	7	—	2·2
7 से 12 माह	4·4	2·2	9	28	7	—	—
1 से 2 वर्ष	8·8	2·2	9	28	7	—	—
2 वर्ष से ऊपर	13·2	2·2	9	56	14	—	—

तालिका नं० 24

प्रौढ़ पशुओं के लिए प्रतिदिन का सतुलित आहार

क्र सं.	पशु	हरा चारा कि ग्रा. में	सूखा चारा कि.ग्रा. में	कनसन्ट्रेटस कि.ग्रा. में	साल्ट ग्रा. में	मिनरल मिश्रण ग्रा. में
1.	दूध वाली गाय (वजन 225–230 किग्रा.)	8 8–11·0	4·4–5·3	1·5 कि.ग्रा, व 5 कि.ग्रा. 1·5 कि.ग्रा. दूध पर	56	28
2.	दूध वाली भैंस (भार 270–450 कि.ग्रा.	15·4–17·6	4·4–5 3	1·5 कि.ग्रा. व 5 कि.ग्रा. 1·25 कि ग्रा.	56	28
3.	बैल (भार 350–450 कि.ग्रा.)	15·4–17·6	4·4–5·3	1·5 कि ग्रा. व 1·0 कि.ग्रा. कार्य पर	56	28
4.	गाय का साँड (भार 450–675 कि.ग्रा.)	17·6–19·8	4·4–5·3	1·5 कि.ग्रा. व 0·5 कि.ग्रा. प्रजनन कार्य के लिए	56	28
5.	भैंस साँड (भार 450–675 कि.ग्रा.)	19·8–24 2	4·4–5·3	1 5 कि.ग्रा. व 0·5 कि.ग्रा. प्रजनन कार्य के लिए	56	28

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत में पशु-पालन की क्या समस्यायें हैं और आप उनका समाधान किस प्रकार करेंगे ?

2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
   (अ) संतुलित आहार।
   (ब) चारागाह।
   (स) मिलवां खेती।

अध्याय 3

गो-पालन

भारतवर्ष में गाय का बहुत अधिक महत्त्व है । हिन्दू लोग गाय को पवित्र तथा पूज्य मानते हैं तथा इसे धन-धान्य का दाता समझते हैं । फिर भी भारतवर्ष में उत्तम नस्ल की गायें संख्या में बहुत कम हैं । हमारी गायों का औसत दुग्ध उत्पादन 600 कि. ग्रा. प्रति ब्यांत है, जबकि विदेशी गायों का औसत दुग्ध उत्पादन 4000 कि. ग्रा. प्रति ब्यांत है ।

गायों को दुग्ध उत्पादन एवं बछड़ों की शक्ति एवं कार्य के आधार पर तीन भागों में बांट सकते हैं —

1. **अधिक दूध देने वाली नस्लें**—इस वर्ग में वे गायें आती हैं जो अधिक दूध देती हैं परन्तु इनके बछड़े शक्तिशाली नहीं होते हैं और ये कृषि कार्य के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं क्योंकि ये बछड़े शरीर में भारी और कार्य करने में सुस्त होते हैं जैसे – साहीवाल, लाल सिंधी और गीर नस्ल।

2. **अच्छे बछड़े उत्पन्न करने वाली नस्लें** – इस वर्ग में वे गायें आती हैं जो बछड़े तो अच्छे पैदा करती हैं परन्तु दुग्ध उत्पादन क्षमता बहुत कम होती है जैसे – मालवी, कोसी, नागौरी और अमृत महल ।

3. **द्वि-प्रयोजनी नस्ल**—इस वर्ग में वे गायें आती हैं जो अच्छे दुग्ध उत्पादन के साथ-साथ अच्छे बछड़े भी पैदा करती हैं, जैसे—हरियाणा और थारपारकर ।

1. साहीवाल गाय

इस गाय को लम्बीकार, मांटगोमरी और लोला नाम से पुकारा जाता है । इसका मूल निवास स्थान मानुवाड़ी जिला मांटगोमरी (पंजाब, पाकिस्तान) है । इस जाति के पशुओं पर जलवायु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । इसलिए इसे भारत के प्रत्येक भाग में पाया जा सकता है । (देखो चित्र सं. 1)

गाय का लक्षण :

1. इस जाति की गाय के सींग छोटे, मोटे एवं नीचे को झुके हुए होते हैं ।
2. माथा चौड़ा होता है ।

3. सिर लम्बा एवं गोल होता है।
4. त्वचा पतली और ढीली होती है।
5. इसका अयन पीछे से बड़ा तथा आगे से कुछ छोटा और छूने में मुलायम होता है।
6. इसकी पूँछ लम्बी होती है।



चित्र सं. 1. (साहीवाल गाय)

गाय के गुण :

1. गाय का रंग पीला, लाल, गहरा बादामी और श्वेत रंग मिला हुआ काला होता है।
2. गाय शान्त स्वभाव की, सुशील और भोली-भाली होती है।
3. यह गाय दुग्ध उत्पादन के लिए सभी जातियों में श्रेष्ठ है।

बैल एवं सांड :

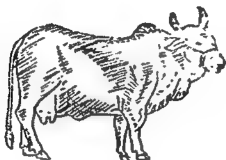
1. इस जाति के बैल अथवा सांड का सिर लम्बा और गोल होता है।
2. सींग छोटे और मोटे होते हैं।
3. छाती गलकम्बल तथा शीथ मुलायम होते हैं।
4. इनका मुतान लटका हुआ होता है।

बैल के गुण :

बैल मन्द काम के ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं। कृषि कार्य के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। इस जाति के सांड जाति वृद्धि के लिए अच्छे समझे जाते हैं।

2. लाल सिन्धी गाय

करांची तथा पाकिस्तान का उत्तरी पश्चिमी भाग इसका मूल स्थान है। करांची के अलावा सुक्कवाल, गोरावासी और हैदराबाद में भी इस नस्ल के पशु पाये जाते हैं। लासवेला (बिलोचिस्तान) में इसकी विशुद्ध नस्ल पायी जाती है। (देखो चित्र सं. 2)



चित्र सं. 2. (सिन्धी गाय)

गाय के लक्षण :

1. इस जाति की गाय के सींग छोटे, मोटे तथा गुठलदार नोकों वाले होते हैं।
2. माथा चौड़ा एवं उभरता हुआ होता है।
3. सिर छोटा एवं सुडौल होता है।
4. त्वचा चिकनी तथा मुलायम होती है।
5. अयन पूर्ण विकसित होता है। आगे से बड़ा पीछे से कुछ छोटा होता है।
6. दूध का औसत उत्पादन 5443 कि. ग्रा. प्रति ब्यांत है।
7. इसका रंग गहरे बादामी से लेकर गहरा लाल होता है।
8. इसके चहरे एवं गलकम्बल पर सफेद धब्बे होते हैं।

गाय के गुण :

1. गाय मस्तानी, सुन्दर और सुशील होती है।
2. दुग्ध उत्पादन के लिये अच्छी होती है।

बैल अथवा सांड :

बैल या सांड का सिर छोटा तथा सुडौल होता है। सींग छोटे तथा गुठलदार

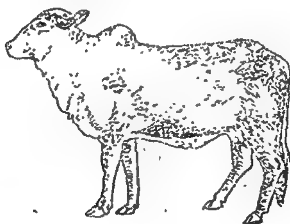
नोकों वाले और छाती छोटी होती है। गलकम्बल पतला तथा सुन्दर होता है। गुतान पूर्ण विकसित एवं लटकता हुआ होता है।

बैल के गुण :

1. बैल कृषि के लिए अच्छे नही होते हैं परन्तु गाड़ी खींचने में अच्छे रहते है।
2. बैल देखने में सुन्दर होते हैं। इन्हे प्रजनन कार्य के लिए उत्तम माना जाता है।

3. गीर नस्ल की गाय

देश के विभाजन के बाद अब गीर ही ऐसी नस्ल रह गई है जिसे भारत की अच्छी नस्ल कहा जा सकता है। इसका मूल निवास स्थान काठियावाड़ है। इस कारण इसे काठियावाड़ी नस्ल भी कहते है। (देखो चित्र सं. 3)



चित्र सं. 3. (गीर गाय)

गीर नस्ल के लक्षण :

1. साधारण लम्बा शरीर, लेकिन आभास में स्थूल होना इस नस्ल का महत्त्वपूर्ण लक्षण है।
2. ललाट उत्तम, उभरा हुआ होता है जो सामने की ओर गोल आकार का दिखाई देता है।
3. निचला जबड़ा शक्तिशाली एवं गलकम्बल से ढका रहता है।
4. आँखें बड़ी-बड़ी होती हैं। इनके ऊपर बड़ी-बड़ी भौंएँ होती हैं।
5. बहुत बड़े-बड़े कान जो मुड़ी हुई पत्तियो के समान लटकते रहते हैं।

6. साधारण लम्बाई और मोटाई के सींग जो माथे पर पीछे की ओर अजीब तरह से मुड़े हुए होते हैं।
7. आंखों के ऊपर माथे की हड्डी इतनी उभरी होती है जिससे पशु की आंखें बन्द मालूम होती हैं।
8. नर पशुओं की गर्दन छोटी और मोटी होती है।
9. गलकम्बल पतला और छोटी-छोटी सिकुड़न युक्त होता है। नर पशुओं में गलकम्बल अधिक विकसित होता है।
10. अयन मध्य आकार का होता है। अयन के सामने का भाग अधिक आगे की ओर फैला रहता है परन्तु पिछला भाग पीछे ऊपर तक उभरा हुआ होता है।
11. त्वचा मुलायम, ढीली और अच्छी किस्म की होती है।
12. पूंछ भूमि तक लटकती हुई गुच्छेदार होती है।

गाय के गुण :

1. गाय सहनशील स्वभाव वाली तथा शान्त-चित्त होती है।
2. दुग्ध उत्पादन के लिए अच्छी मानी जाती है।
3. दूध उत्पादन 3175 कि. ग्रा. प्रति ब्यांत होता है।

बैल एवं सांड :

बैल साधारण कार्य करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं। सांड प्रजनन के लिए अच्छे माने जाते हैं।

4. थारपार कर गाय

इसका मूल स्थान दक्षिणी पूर्वी सिंध है। इस नस्ल के पशु सुगठित, मजबूत और श्वेत रंग के होते हैं। राजस्थान में यह नस्ल जोधपुर और जैसलमेर के क्षेत्र में पाई जाती है। (देखो चित्र सं. 4)

लक्षण :

1. इस नस्ल के पशु का सिर मध्यम आकार का होता है।
2. चौड़ा ललाट जो आंखों पर उभरा हुआ होता है।
3. नेत्र बड़े-बड़े, शान्त और सुन्दर होते हैं।
4. पतला, सुन्दर और थूथन के निकट थोड़ा-सा दबा हुआ चेहरा होता है।
5. नथुने चौड़े एवं काले रंग के होते हैं।
6. कान लम्बे और चौड़े होते हैं। कान के भीतर का रङ्ग पीला होता है जिसे अच्छा माना जाता है।



चित्र सं. 4. (थारपार कर गाय)

7. दूर-दूर स्थित सींग जो पहले ऊपर की ओर फिर बाहर की ओर मुड़े होते हैं।

8. गल कम्बल ढीला और लचकदार होता है परन्तु अधिक बड़ा नहीं होता है।

9. नर पशुओं का हम्प साधारणतया पूर्ण विकसित होता है।

10. पैर अपेक्षाकृत छोटे और उचित अनुपात में होते हैं।

11. पीठ मजबूत, सीधी और साधारण लम्बाई की होती है।

12. नर पशुओं में साधारणतया लम्बा मुतांग होता है।

13. अयन पूर्ण विकसित होता है। अयन त्वचा मुलायम हल्के पीले रङ्ग की होती है।

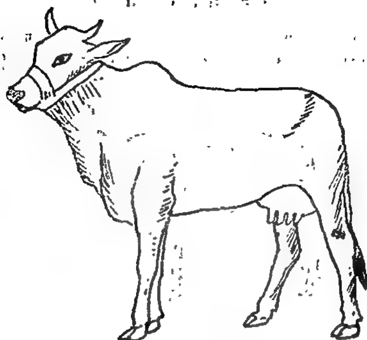
14. पशुओं का रङ्ग श्वेत होता है। पीठ पर भूरे (धूसर) रंग की धारियाँ होती हैं।

15. दूध की अधिकतम मात्रा 4375 कि. ग्रा. प्रति ब्यात होती है।

16. इस नस्ल के नर पशु हल चलाने तथा गाड़ी खींचने में अच्छे माने जाते हैं।

5. नागौरी गाय

इस नस्ल का मूल निवास स्थान जोधपुर रियासत का उत्तरी पूर्वी भाग है। इस नस्ल के पशु राजकीय प्रजनन फार्म नागौर में रखे गये हैं। यह भारत की प्रमुख तथा भार वाहक नस्लों में से एक है। प्रायः इस नस्ल के पशुओं का रङ्ग श्वेत होता है। पर्वतसर (अजमेर) के पशु मेले में इस नस्ल के पशु बहुतायत में मिलते हैं। (देखो चित्र सं. 5)



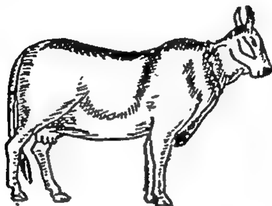
चित्र सं. 5. (नागौरी गाय)

लक्षण :

1. लम्बा चेहरा और शक्तिशाली शरीर होता है।
2. पीठ सीधी, गर्दन मजबूत और छाती चौड़ी होती है।
3. सीधी मांसल टांगें और उत्तम पैर होते हैं।
4. पतला लम्बा चेहरा व चपटा ललाट होता है।
5. बड़े-बड़े कान और मध्य आकार का ललाट होता है।
6. मध्यम आकार के सींग जो की पोल के बाहरी भाग से निकल कर बाहर की ओर फैलते हुए उठते हैं और नाके समीप में झुकी होती है।
7. त्वचा मुलायम गलकम्बल और मुतांग छोटा होता है।
8. काले धब्बे युक्त पूंछ होती है।
9. इस नस्ल की गाय बहुत कम दूध देती है। चार कि. ग्रा. दूध प्रतिदिन प्राप्त होता है।
10. बैल कृषि कार्यों के लिए अति उत्तम होते है।

6. हरियाणा नस्ल की गाय

इस नस्ल का मूल स्थान हरियाणा, रोहतक, करनाल, गुड़गांव तथा देहली है। हरियाणा नस्ल के पशु सारे उत्तर भारत में पाले जा सकते हैं। (देखो चित्र सं. 6)



चित्र सं. 6. (हरियाणा गाय)

लक्षण :

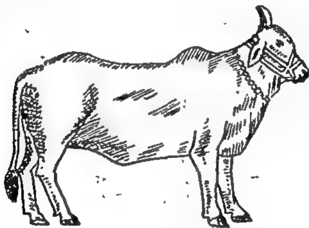
1. सिर हल्का एवं सुव्यवस्थित होता है।
2. चेहरा लम्बा, पतला तथा थोड़ा-सा उत्तल होता है।
3. थूथन काला तथा नथुने चौड़े होते हैं।
4. आँखें बड़ी-बड़ी, चमकीली और प्रभावपूर्ण होती है।
5. छोटे-छोटे चौकन्ने कान होते हैं।
6. सींग छोटे-छोटे ऊपर और भीतर की ओर मुड़े होते है।
7. गर्दन साधारण लम्बाई की परन्तु सुन्दर होती है। नर पशु की गर्दन मोटी होती है।
8. गलकम्बल छोटा, पतला और सिकुड़न रहित होता है।
9. भली प्रकार विकसित छाती होती है।
10. साधारण लम्बे और पतले पैर होते हैं।
11. बड़ा अयन जो आगे की ओर पूर्ण विकसित होता है।
12. थन मध्यम आकार के होते हैं। आगे के दोनों थन पीछे के दोनों थनों से बड़े होते हैं।
13. बढ़िया पतली कसी हुई त्वचा होती है। त्वचा पर श्वेत तथा सलेटी रङ्ग के बाल होते है।
14. काले धब्बे युक्त सुन्दर पूँछ होती है जो टखनों तथा भूमि के आधी दूरी पर लटकी रहती है।

गुण :

1. इस जाति की गायों का मुख्य गुण है कि इसका अगला भाग हल्का एव सकरा तथा पिछला भाग भारी होता है।
2. बैल हल चलाने तथा सडक पर दौड़ने के लिए प्रसिद्ध हैं।
3. दूध की अधिकतम मात्रा 1361 कि. ग्रा. प्रति ब्यांत है।
4. इसके साड प्रजनन के लिए उत्तम माने जाते है।

7. मेवाती नस्ल की गाय

इस नस्ल का प्राप्ति स्थान मथुरा जिले का कोसी नामक गाँव है। इसलिए इसे कोसी नस्ल भी कहते हैं। राजस्थान मे अलवर और भरतपुर में भी इस नस्ल के पशु पाये जाते हैं। इस नस्ल के बैल शक्तिशाली होते हैं। भारी हल चलाने तथा गाड़ी जोतने में अच्छे होते है। ये हरियाणा नस्ल के बैलों की अपेक्षा बड़े होते है। (देखो चित्र सं. 7)

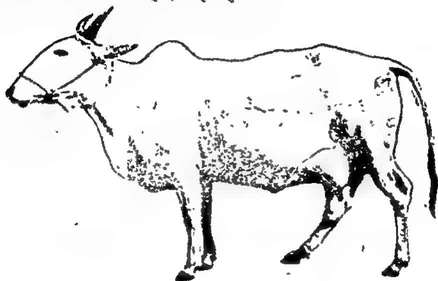


चित्र सं. 7 (मेवाती गाय)

लक्षण :

1. हरियाणा नस्ल से मिलती-जुलती है। परन्तु शरीर की बनावट अपेक्षाकृत ढीली होती है।
2. माथा आगे से उभरा हुआ होता है।
3. सीग सिर के ऊपरी गोल के बाहरी कोरों से निकलते है और सिर पर कुछ पीछे की ओर मुड़ जाते है।
4. श्वेत रङ्ग लेकिन सिर, गला और कंधा कुछ गहरे रंग का होता है।
5. पूंछ लम्बी तथा नीचे से काली होती है।
6. हम्प बड़ा तथा गलकम्बल पूर्ण विकसित होता है।
7. दूध की अधिकतम मात्रा 1000 कि. ग्रा. प्रति ब्यांत है।
8. इस जाति के बछड़े कृषि कार्य के लिए अच्छे होते हैं।

राठ या राठी—इस नस्ल के पशु पुराने अलवर राज्य के उत्तरी पश्चिमी भागों तथा राजपूताने के दक्षिण क्षेत्र में पाये जाते हैं। चूँकि ये जाति शुष्क क्षेत्रों में अधिकतर पाई जाती है, इसलिए इन्हें बोई हुई चरी पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इस नस्ल के पशुओं का शरीर हरियाना नस्ल के पशुओं से मिलता-जुलता होता है। लेकिन उनकी अपेक्षा यह छोटे होते हैं।



चित्र सं. 8 (राठ गाय)

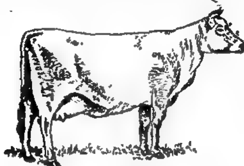
लक्षण—1. इस जाति के पशुओं का कद मध्यम होता है।
2. इनके पुट्ठे मजबूत और पूंछ ऊँची होती है।
3. पिछला भाग भली-भांति विकसित होता है।
4. इस नस्ल की गायें दूध अधिक देती है।
5. इनके बछड़ो का उपयोग खेती में किया जाता है इसलिए इन्हें दुकाजी नस्लो मे रखा गया है।
6. ये खुराक कम खाते है, इसलिए गरीब किसान भी इन्हें पाल सकते है।
7. इनके बछड़े अधिक भारी कामों के लिए अच्छे नही होते। जैसे गहरी जुताई अथवा बोझा ढोना आदि। केवल साधारण कार्य के लिए उपयुक्त हैं।
8. पशु का रंग सफेद, भूरा या सलेटी पाया जाता है।

विदेशी गो-पशुओं की नस्ल—

विदेशी नस्लों का दुग्धोत्पादन, परिपक्वावस्था एवं प्रजनन क्षमता का अच्छा रिकार्ड है। इसका प्रमुख कारण यह है कि पश्चिमी देशों में चयन पद्धति के माध्यम से वर्तमान प्रजनन पद्धतियों को अपनाया है, एवं इनको उत्तम प्रबन्ध व पोषण मिलता है जिससे उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई है। राजस्थान में जहां पर कोई निर्दिष्ट एवं शुद्ध नस्ल के पशु नहीं पाये जाते, जर्सी द्वारा संकर प्रजनन कार्य लागू किया गया। सन् 1967-68 में जयपुर जिले में जर्सी एवं होलस्टीन की विदेशी

नस्ल के सांड द्वारा संकर प्रजनन नीति लागू की गई। वर्ष 1968–69 में अजमेर जिले में रेड-डेन नस्ल द्वारा भी संकर प्रजनन शुरू किया गया। बाद में धीरे-धीरे संकर प्रजनन प्रक्रिया राज्य के विभिन्न क्षेत्र में जलवायु, मिट्टी के आकार, स्थानीय नस्ल एवं पशुपालकों की मांग के अनुसार प्रचलित की गई है। कुछ विदेशी नस्लो का विवरण निम्नांकित है—

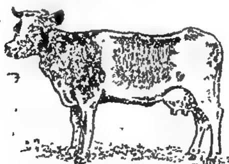
1. जर्सी—यह जाति इंगलिश चैनेल के जर्सी नामक टापू से निकली है। इसका रंग शुभ्र व धसर होता है जिस पर कभी-कभी सफेद धब्बे हो सकते हैं। शरीर का गठन मंझोला और सामने की अपेक्षा पीछे का भाग चौडा होता है। अन्य पशुओं की तुलना में इनके शरीर का आकार छोटा होता है। गर्दन नाटी और



चित्र सं० 9 (जर्सी गाय)

पतली होती है। पूंछ लम्बी और कान छोटे होते हैं। इनके दूध में मक्खन अधिक होता है। ये 2–2½ वर्ष की आयु में ब्याती है। एक ब्यात में ये औसतन 3·5 से 4 हजार कि. ग्राम दूध देती है।

2. होलस्टीन फ्रिजियन—यह हालैण्ड की जगत प्रसिद्ध गाय है। हालैण्ड देश में फ्रिजलैण्ड को इसका उद्‌भव स्थान माना जाता है। यह अमेरिका में भी बहुत पाली जाती है जिनका रंग काला और सफेद होता है। परन्तु यूरोप मे पाये जाने वाली गाय लाल रंग की भी होती है। 2 वर्ष की आयु मे गाय ब्याती है। इस जाति की गाय दूध बहुत देती है। अच्छा पौष्टिक आहार देने से यह शीघ्र ही



चित्र सं० 10 (होलस्टीन फ्रिजियन गाय)

मोटी हो जाती है। यह जर्सी से ज्यादा दूध देती है। एक ब्यात मे औसतन 4 से 6 हजार कि. ग्राम दूध देती है। काले रंग के माथे पर सफेद टीका रहता है। इनका चमड़ा पतला, आखें सुन्दर, गला पतला और पूंछ लम्बी होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गाय की नस्लों का वर्गीकरण करो तथा प्रत्येक वर्ग की एक नस्ल का विस्तार से वर्णन करो ।
2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—
   (अ) साहीवाल गाय
   (ब) हरियाणा गाय
   (स) मेवाती गाय
3. गंगानगर क्षेत्र में गाय की कौनसी नस्ल पाई जाती है ? इस जाति की विशेषताएँ, निवास स्थान तथा प्रयोजन लिखो ।
4. साहीवाल, नागौरी और हरियाणा नस्ल की गायों में से कौनसी नस्ल कृषक के लिए अधिक उपयोगी है ? स्पष्ट करो ।
5. निम्न पर टिप्पणी लिखो—

(i) सिन्धी	(ii) गीर
(iii) मेवाती	(iv) थारपारकर
(v) नागौरी	(iv) राठी गाय

6. विदेशी नस्लों की दो प्रमुख गायों की विशेषताएँ लिखिए ।
7. जर्सी गाय की प्रमुख विशेषता बतलाइए तथा देशी और विदेशी गाय में प्रमुख अन्तरों को लिखिए ।

3. रेड-डेन—इस नस्ल की गाय डेनमार्क में अधिक पायी जाती है। इसका रंग लाल होता है। इसका शरीर कसा हुआ होता है। यह जाति दूध, मक्खन, पनीर के लिए पाली जाती है। डेनमार्क मक्खन, पनीर व खोया दूसरे देशों को भेजता है अर्थात् यह जाति काफी दूध देती है। औसत लम्बाई अधिक होती है। एक ब्यात में अन्य नस्लों की अपेक्षा अधिक दूध देती है। प्रतिदिन 10–30kg. दूध देती है। इस नस्ल का उपयोग अजमेर, पाली, बीकानेर में किया जा रहा है। यह गर्मी सहन कर लेती है।

तालिका सं० 25

देशी तथा विदेशी नस्लों की गायों में प्रमुख अन्तर

क्र० सं०	विवरण	देशी गाय	विदेशी गाय
1.	पीठ	इनकी पीठ धनुषाकार होती है।	इसकी पीठ सीधी होती है।
2.	थुवा (Hump)	इसमें थुवा (कूबड़) होता है।	इनमें कूबड़ नहीं होता है।
3.	लम्बाई	साधारण लम्बाई होती है।	अपेक्षाकृत अधिक लम्बी होती है।
4.	ऊँचाई	इनकी ऊँचाई साधारण होती है।	अपेक्षाकृत ऊँचाई कम होती है।
5.	पुट्ठे (Rump)	यह सीधा होता है।	यह सीधा नहीं होता है।
6.	मुतान एवं नाभी	प्रायः लटका रहता है।	इसमें चुस्त रहता है।
7.	आवाज	ऊँची आवाज में बोलता है।	स्वर दबा होता है।
8.	दूध की मात्रा	औसतन 6–10 लीटर दूध	औसतन 20–35 लीटर दूध।
9.	वसा की मात्रा	अधिक होता है।	अपेक्षाकृत कम होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गाय की नस्लों का वर्गीकरण करो तथा प्रत्येक वर्ग की एक नस्ल का विस्तार से वर्णन करो।
2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—
   (अ) साहीवाल गाय
   (ब) हरियाणा गाय
   (स) मेवाती गाय
3. गंगानगर क्षेत्र में गाय की कौनसी नस्ल पाई जाती है ? इस जाति की विशेषताएँ, निवास स्थान तथा प्रयोजन लिखो।
4. साहीवाल, नागौरी और हरियाणा नस्ल की गायों में से कौनसी नस्ल कृषक के लिए अधिक उपयोगी है ? स्पष्ट करो।
5. निम्न पर टिप्पणी लिखो—
   (i) सिन्धी (ii) गीर
   (iii) मेवाती (iv) थारपारकर
   (v) नागौरी (iv) राठी गाय
6. विदेशी नस्लों की दो प्रमुख गायों की विशेषताएँ लिखिए।
7. जर्सी गाय की प्रमुख विशेषता बतलाइए तथा देशी और विदेशी गाय में प्रमुख अन्तरों को लिखिए।

अध्याय 4

भैंस-पालन

आर्थिक दृष्टिकोण से भैंस अधिक लाभप्रद है क्योंकि दूध के अतिरिक्त इसके दूध में वसा की मात्रा गाय के दूध की अपेक्षा वसा की लगभग दूनी होती है। भैंसे बैल के स्थान पर कम खर्चे पर ही अधिक कार्य करते है। अधिकतर गरीब किसान बैल के स्थान पर भैंस ही रखते है। अतः भैंस दोनो दृष्टिकोण से (दूध एवं शक्ति) बहुत ही उपयोगी है। भैंसों की कुछ नस्लें इस प्रकार है—

(1) मुर्रा	(2) मेहसाना
(3) नीली	(4) जाफरावादी
(5) सूरती	(6) नागपुरी
(7) रावी	(8) भदावरी

अन्य नस्लों का वर्णन पाठ्यक्रम से बाहर होने के कारण यहाँ संभव नही है।

1. मुर्रा

यह भैंस की महत्त्वपूर्ण नस्ल है। लगभग सारे उत्तरी भारत में यह नस्ल दूध के लिये पाली जाती है। इसका मूल स्थान दिल्ली राज्य व पंजाब का दक्षिणी



चित्र सं० 11 (मुर्रा)

भाग, हरियाणा के रोहतक, करनाल, हिसार और गुडगाँव जिले में भी पायी जाती है। मुर्रा नस्ल के पशु काले स्हाय रग के होते है। लेकिन मुंह, पैर और पूंछ पर

सुनहरे रंग के बाल पाये जाते हैं। दूध की मात्रा प्रति ब्यांत 4536 कि.ग्रा. है। काफी मुड़े हुए सींग इस नस्ल की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

लक्षण :

1. अपेक्षाकृत छोटा सिर जो सांडों में भारी होता है।

2. चौड़ा थोड़ा सा विशिष्ट ललाट

3. मादाओं में विशेष चंचलता और चमकीले नेत्र किन्तु नर पशुओं में वे इतनी प्रमुख नहीं होती है।

4. छोटे-छोटे कान जो पतले होते हैं।

5. चमकदार मुड़े हुए सींग इसके कारण इनका नाम मुर्रा रखा गया है।

6. मादा पशुओं में लम्बी पतली गर्दन व नर पशुओं में यह विस्थुल होती है।

7. गलकम्बल नहीं होता है।

8. छोटे-छोटे सीधे पैर जिनके खुर काले रंग के होते हैं।

9. मादा पशुओं के शरीर के आगे का भाग हल्का और पतला, पीछे का भाग भारी व चौड़ा होता है।

10. टकनों पर लटकती लम्बी पतली और लचीली पूंछ जिसके सिर पर सफेदी गुच्छा होता है।

11. पूर्ण रूप से विकसित अयन जिस पर टेढ़ी-मेढ़ी दूर दोरी।

12. लम्बे दूर-दूर असतम्भ स्थित होते है आगे की सतम्भ की अपेक्षा पीछे के लम्बे होते है। पतली मुलायम और चिकनी त्वचा जिस पर बाल बहुत कम होते हैं। दूध की प्रतिदिन मात्रा 18 से 20 कि.ग्रा. होती है।

2. मेहसाना नस्ल

यह मुर्रा और सूरती नस्लों के बीच की नस्ल है जो कि उत्तर गुजरात के मेहसाना जिले और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में पाई जाती है। मेहसाना, पाटन, सिद्धपुर, बीजापुर, काडी, कील राधनपुर जिलों में इस नस्ल के शुद्धवंशीय पशु पाये जाते हैं। दूध और मक्खन की दृष्टि से इस नस्ल की भैंस पालना लाभकर रहता है। इस नस्ल की भैंस के दूध में वसा की प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक होती है। अतः शहर और गांव में लोग इस नस्ल के पशुओं का पालना पसन्द करते हैं।

पूना स्थित राजकीय कृषि कालिज के डेयरी फार्म पर मेहसाना नस्ल की भैंसो का यूथ रक्खा है।

उपयोगिता—इस नस्ल की भैंस दुग्ध उत्पादन के लिये बड़ी प्रसिद्ध है। ये पशु बहुत समय तक दूध देते और इनके सूखे रखने (dry period) का समय बहुत कम होता है। अहमदाबाद में दूध के लिये इस नस्ल के पशु बड़ी संख्या में प्रयोग किये जा रहे हैं। इस नस्ल की भैंसें मुर्रा नस्ल की भैंसों से भी उत्तम समझी जाती हैं। इन पशुओं को खूँटे पर बांध कर पाला जाता है (stall feeding)। इस नस्ल के नर पशुओं की देखभाल ठीक नहीं होती। पड़रे (male calves) ठीक प्रकार से लालन-पालन न किये जाने के कारण प्रायः जल्दी ही मर जाते हैं लेकिन अच्छे प्रगतिशील किसान शुद्ध नस्ल के सांडों को प्रजनन के लिये पालते हैं। इस नस्ल के पशुओं का विकास सूरती नस्ल के पशुओं तथा मुर्रा नस्ल के पशुओं के मिलन से होता है।

मेहसाना नस्ल की भैंस मध्यम आकार की होती हैं। इनका सर मुर्रा नस्ल के पशुओं से मिलता-जुलता होता है। इसके सींग मुर्रा अथवा सूरती नस्ल के पशुओं से मिलते-जुलते होते हैं। गर्दन लम्बी और सुन्दर होती है। अयन मुर्रा के समान होता है।

इस नस्ल के पशुओं का वजन लगभग 540 कि० ग्रा० होता है। दुग्ध उत्पादन 300 दिन के ब्यांत में 1350 कि० ग्रा० से लेकर 1800 कि० ग्रा० तक होता है।

इस नस्ल के पशु गहरे काले रंग के होते हैं और सीधे निकलते हैं। ये पशु घर पर बांध कर भी पाले जा सकते हैं और चराकर भी।

मेहसाना नस्ल के पशुओं के लक्षण

मेहसाना नस्ल के पशुओं की पहिचान के लिए देखिये—

1. चौड़ा ललाट जिसके मध्य में थोड़ा-सा गड्ढा होता है।
2. चेहरा लम्बा और सीधा होता है। थूथन मोटी तथा चौड़े खुले हुए नथूने।
3. आँखें बहुत प्रमुख (prominent), काली और चमकीली होती हैं।
4. मध्यम आकार के नोकदार कान। कान के अन्दर बाल उगे होते हैं।
5. सींग दरांत की शक्ल के होते हैं (sickle shaped)। सूरती नस्ल की अपेक्षा इनमें टेढ़ापन अधिक ऊपर की ओर होता है। मुर्रा नस्ल की अपेक्षा सींग कम मुड़े हुये होते हैं।
6. गर्दन लम्बी और कन्धों पर भली प्रकार स्थित होती है। नर पशुओं में गर्दन स्थूल (massive) होती है।
7. अयन सुव्यवस्थित और सुविकसित होता है। स्तन काफी मोटे-मोटे लम्बे और अनम्य (pliable) होते हैं।

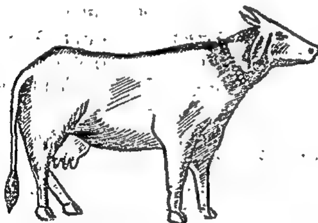
8. त्वचा का रंग काला होता है।

नीली नस्ल—इस नस्ल का मूल स्थान पंजाब की सतलज घाटी विशेष रूप से फिरोजपुर जिला तथा पश्चिमी पाकिस्तान का मौंटगोमरी जिला है। लेकिन इस नस्ल के पशु उत्तर प्रदेश के बरेली, मुरादाबाद, रामपुर और नैनीताल जिलों में भी बहुतायत से पाये जाते है।

इस नस्ल की भैसे दुधारू हैं और 250 दिन के एक ब्यात में इनका औसत दुग्ध उत्पादन 1587 किलोग्राम (3500 पौंड) है। दूध में चिकनाई का प्रतिशत भी 10% से अधिक ही रहता है। इस दृष्टि से यह जाति मुर्रा से भी उत्तम है। नीली नस्ल के पशु प्रायः काले रंग के होते है लेकिन भूरे रंग के पशु भी मिलते है। माथे पर सफेद टीका तथा चेहरे, थूथन और पैरो पर सफेद धारियां पाई जाती है।

नीली नस्ल के पशु हिसार स्थित सतगुरु प्रतापसिंह फार्म, मंगी (सिरसा), हिसार में रखे गये है।

नीली नस्ल के भैंसे बलिष्ठ होते है और बोझा ढोने के लिये उपयोग किये जाते है।



चित्र स० 29 नीली भैंस

नीली नस्ल के पशुओं के लक्षण

नीली नस्ल के पशुओं की पहिचान के लिये देखिये—

1. सिर का ऊपरी भाग उत्तल (convex)। एक रेखा इसे दो भाग में बांटती है।

2. घँसा हुआ ललाट (dished forehead)।

3. चेहरा सुन्दर जिस पर कुछ पशुओं में सफेद निशान पाये जाते हैं और कुछ में नही भी पाये जाते।

4. चौड़े-चौड़े नथुने।
5. मादा पशुओं में आँखें प्रमुख (prominent) और चमकीली होती हैं।
6. मध्यम आकार के नोकीले कान
7. छोटे और मोटे सींग जो मुड़े हुए होते हैं।
8. लम्बी पतली गर्दन।
9. गलकम्बल नहीं होता।
10. सीधे छोटे-छोटे पैर होते हैं।
11. पीठ सीधी मजबूत और चौड़ी होती है।
12. अयन पूर्ण विकसित और स्तन लम्बे, एक से, दूर-दूर।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत में पाई जाने वाली भैंस की नस्लों के नाम बताइये और उनमें से किसी एक नस्ल के गुण-दोषों का सविस्तार वर्णन करिए।
2. भैंस की नीचे लिखी नस्लों में से किन्हीं दो का वर्णन करिए—
   (अ) मुर्रा (ब) नीली (स) मेहसाना
3. भारतवर्ष की भैंसों की चार मुख्य जातियों के नाम लिखो। वे एक दूसरी से किस प्रकार भिन्न है?
4. भैंसों की किन्हीं दो जातियों का मूल स्थान, सामान्य विवरण, दुग्ध क्षमता और अन्य गुणों के बारे में लिखिए।

अध्याय 5

भेड़-पालन

हमारी कृषि अर्थ-व्यवस्था मे 'अवि' अर्थात् भेड़ों का महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व की कुल 100 करोड़ भेड़ों में से लगभग 5 करोड़ भारत मे हैं जिनसे करीब 4 करोड़ किलो ऊन पैदा होती है। 1971 की गणना के अनुसार राजस्थान में लगभग एक करोड़ छः लाख भेड़ें हैं, जो करीब एक करोड़ 97 लाख किलो ऊन पैदा करती हैं।

भेड़ हमें माँस, चमड़ा, ऊन आदि के अतिरिक्त खाद भी देती है। अधिकतर भेड़ें मोटे रेशे की ऊन पैदा करती हैं। भारी बारीक ऊन जो कपड़े बनाने के लिए आवश्यक है हमें विदेशों से आयात करनी पड़ती है। हमारे यहाँ प्रति भेड़ ऊन का उत्पादन डेढ़ से दो किलो ही होता है जो आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड की भेड़ों की तुलना में बहुत कम है, जहाँ 4 किलो ऊन प्रति वर्ष पैदा होती है।

देश के कुल ऊन उत्पादन का 43 प्रतिशत कपड़े, लोई, जर्सी, दुशाले आदि बनाने में काम आता है। शेष लगभग 56 प्रतिशत ऊन गलीचे, नमदे, गर्म दरियाँ एवं अन्य औद्योगिक वस्तुएँ बनाने के काम आती है।

अक्सर पड़ते रहने वाले अकालों के कारण अपने यहाँ चरागाहों में भेड़ों के लिए घास की कमी सी रहती है जिससे भेड़ों की संख्या में अधिक वृद्धि नही हो पाती। साथ ही वैज्ञानिक विधि से भेड़ पालन नही हो पाने से भेड़ों में वंश वृद्धि के लिए आवश्यक बच्चों (मेमनों) का प्रतिशत बहुत कम रहता है। अतः भेड़ों की प्रमुख जातियों के लक्षण एवं उनके पालन-पोषण के बारे मे जानकारी प्राप्त कर उनकी वंश वृद्धि कराना तथा उत्पादन क्षमता बढ़ाना राजस्थान के किसानों के लिए आवश्यक है।

भेड़-पालन में भारत का संसार में पाँचवा स्थान है। हालांकि भारतवर्ष में अधिकतर भेड़ें बालों वाली हैं, जो बहुत कम ऊन पैदा करती हैं। भौगोलिक स्थितियों एवं जलवायु सम्बन्धी दशाओ के अनुसार भारत में भेड़-पालन वाले क्षेत्रों को निम्नलिखित संभागों में बाँटा जा सकता है—

(1) शीतोष्ण हिमालय संभाग—जिसमे कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब व उत्तर प्रदेश का पहाड़ी भाग सम्मिलित है।

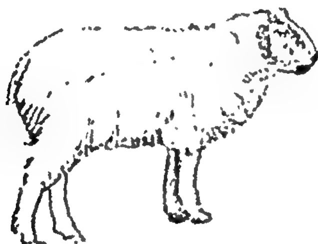
(2) दक्षिणी संभाग—इसमें मध्य प्रदेश का कुछ भाग, तमिलनाडु, आन्ध्र-प्रदेश, हैदराबाद और मैसूर आदि क्षेत्र आते हैं।

(3) पश्चिमी शुष्क संभाग—इसमें राजस्थान, दक्षिणी-पूर्वी पंजाब, सौराष्ट्र, उत्तरी गुजरात, कच्छ और उत्तर प्रदेश का कुछ पश्चिमी भाग सम्मिलित है।

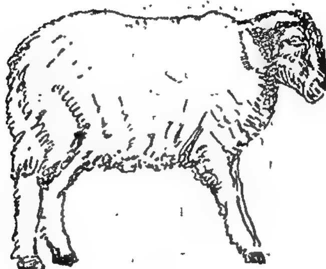
राजस्थान का अधिकांश क्षेत्र शुष्क है, अतः यहाँ भेड़-बकरी पालन का कार्य सुगमता से चलाया जाता है। यहाँ की जलवायु उनके लिए अधिक उपयुक्त है। राजस्थान में निम्नलिखित आठ नस्लें अधिकता से पाई जाती हैं—

(1) चोकला (चोकला) (2) मगरा (3) नाली (4) मालपुरा (5) जैसलमेरी (6) मारवाड़ी (7) पूगल (8) सोनाड़ी।

(1) चोकला—सीकर जिले में प्रमुख पाई जाती है। इसके अतिरिक्त यह नस्ल बीकानेर, जैसलमेर व जोधपुर के भागों में भी मिलती है। अन्य भारतीय नस्लों की अपेक्षा इस नस्ल की ऊन बढ़िया मानी जाती है। यह उत्तम किस्म के गलीचे बनाने के लिए प्रसिद्ध है और अधिकांशतः निर्यात की जाती है। राज्य में इस नस्ल की कुल संख्या लगभग 7,37,474 है।



मारवाड़ी—इस जाति की भेड़ जोधपुर डिवीजन व उसके सीमावर्ती क्षेत्र अजमेर व जयपुर जिलों में भी पायी जाती है। राज्य में इस नस्ल की कुल भेड़ संख्या 35,76,523 है।



चित्र सं० 14 (मारवाड़ी)

लक्षण :

1. इनके शरीर का आकार बड़ा व चेहरा काला होता है।
2. कान व पूंछ छोटे होते हैं।
3. यह कठिन परिस्थितियों का सामना करने में अपेक्षाकृत सबल होते हैं।
4. इनमें रोग रोधक क्षमता अधिक होती है।
5. भेड़ों का वजन 25 से 35 kg. व नर का वजन 30 से 40 kg. होता है।
6. ऊन मध्यम व निम्न श्रेणी की होती हैं।
7. ऊन उत्पादन एक से दो kg. प्रति भेड़ प्रति वर्ष होता है और वर्ष में दो वार काटी जाती है।

भेड़ों का पोषण

भेड़ों के समुचित पोषण हेतु आहार एवं भोजन की समुचित व्यवस्था होना आवश्यक है। भेड़ों को आहार दो प्रकार से कराया जाता है—

(अ) खुले में प्राकृतिक चराई एवं

(ब) बाड़े में चराई।

(अ) खुले में प्राकृतिक चराई :

भेड़ों की चराई की व्यवस्था आस-पास ही होनी चाहिए। फार्म पर भेड़ों की संख्या चराई हेतु उपलब्ध जमीन के अनुसार ही रखिए। राजस्थान के विभिन्न भागों के लिए भूमि और भेड़ों का अनुपात अलग-अलग है तथा भूमि और भेड़ के अनुपात का कोई सर्वमान्य नियम नहीं है। व्यक्तिगत अनुभव और भूमि की किस्म तथा वर्षा की मात्रा के अनुसार यह व्यवस्था कीजिए। भेड़ों को चराने का समय ऋतु पर निर्भर करता है। साथ ही वर्षा का ध्यान रखना पड़ता है। सर्दियों में मौसम अच्छा होने 10 घण्टे तथा गर्मियों में 12 से 14 घण्टे प्रतिदिन चराइए। इसमें दुपहरी का आराम भी शामिल है। जहां वर्षा कम होती है वहां रात को चराने का समय बढ़ा दीजिए, परन्तु दोपहरी को आराम का समय भी बढ़ाना पड़ेगा। चरागाह की कमी होने की अवस्था में भेड़ों को दाना तथा चारा खिलाइए, जिससे कि वे स्वस्थ रहें।

(ब) बाड़े में चराई :

भेड़ों को भी सन्तुलित आहार चाहिए। उसमें माडी (शर्करा), प्रोटीन, चिकनाई तथा खनिज लवणों की उचित मात्रा हो। प्रोटीन के लिए मोठ, ग्वार, चने आदि की दालें दी जा सकती है। मक्का, जौ आदि से माडी (कार्बोहाईड्रेट) प्राप्त की जा सकती है। चर्बी के रूप में तिल की खली एवं मूंगफली की खली आदि दीजिए। नमक, हड्डी का चूरा आदि खनिज लवणों के रूप में दिए जा सकते है। दाएा 10 इन्च से अधिक चौड़ी नहीं होनी चाहिए। दानों को दल लीजिए जिससे कि वे आसानी से हजम हो सकें। बाड़े में चराने हेतु दाने की मात्रा एवं रचना कई बातों, जैसे खाद्य पदार्थों के स्वाद, पचनीयता, प्रोटीनों की मात्रा एवं भेड़ के शरीर का भार आदि पर निर्भर करती है। फिर भी सुझाव के रूप में प्रति भेड़ प्रतिदिन निम्नलिखित राशन काम में लीजिए—

सूखा चारा (पाला या खेजड़े की पत्तियाँ) 1 से 2 किलो।

हरा चारा (बरसीम, रिजका, हरा ग्वार) 1·5 से 2 किलो।

आषाढ़ी (लीन पीरियड) में वर्षा के कारण चरने की जगह न मिलने पर भी भेड़ों को खुले में चराइए एवं ऊपर लिखित मात्रा का आधा अतिरिक्त राशन अवश्य दीजिए।

विशेष अवस्थाओं जैसे गर्भकाल, प्रजनन एवं दुग्ध उत्पादन हेतु निम्नलिखित दानों का मिश्रण दीजिए—

चना	4 भाग
चापड़	3 भाग
तिल की खली	1 भाग
नमक	1 प्रतिशत

चने की जगह ग्वार और मक्का आदि खिलाए जा सकते है। चना और तिल प्रोटीन युक्त होते है जो शरीर की वृद्धि एवं रखरखाव के लिए आवश्यक है। हर मादा भेड़ को प्रतिदिन निम्नांकित दाना उपर्युक्त राशन के अलावा दें—

[i] ब्याने से लगभग दो सप्ताह पूर्व 60 ग्राम प्रति दिन।

[ii] ब्याने के दो सप्ताह बाद से दो माह तक—125 ग्राम प्रतिदिन।

[iii] गर्भाधान से दो सप्ताह पूर्व तैयारी के लिए 60 ग्राम प्रतिदिन।

उपर्युक्त राशन इच्छानुसार आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए परिवर्तित किया जा सकता है।

मेढ़ों के लिए आहार :

पौष्टिक आहार, अच्छा रेवड़ तैयार करने का आधार होता है। मेढ़ों को पूरे वर्ष अच्छी चराई के अतिरिक्त नित्य प्रति आधा किलो दाना भी दें। दाना निम्नांकित में से कोई भी हो सकता है—

दाने का मिश्रण :

(1)

जौ	60 भाग
मूंगफली की खली	20 भाग
गेहूं का चापड़	18 भाग
लवण मिश्रण	1 भाग
नमक	1 भाग

(2)

जौ	30 भाग
मूंगफली की खली	20 भाग
मक्का	30 भाग
गेहूं का चापड़	18 भाग
लवण मिश्रण	1 भाग
नमक	1 भाग

(3)

चना की दाल	2 भाग
गेहूं का चापड़	1 भाग
लवण मिश्रण	1 भाग
नमक	1 भाग

(4)

ग्वार दाल	2 भाग

(अ) खुले में प्राकृतिक चराई :

भेड़ों की चराई की व्यवस्था आस-पास ही होनी चाहिए। फार्म पर भेड़ों की संख्या चराई हेतु उपलब्ध जमीन के अनुसार ही रखिए। राजस्थान के विभिन्न भागों के लिए भूमि और भेड़ों का अनुपात अलग-अलग है तथा भूमि और भेड़ के अनुपात का कोई सर्वमान्य नियम नहीं है। व्यक्तिगत अनुभव और भूमि की किस्म तथा वर्षा की मात्रा के अनुसार यह व्यवस्था कीजिए। भेड़ों को चराने का समय ऋतु पर निर्भर करता है। साथ ही वर्षा का ध्यान रखना पड़ता है। सर्दियों में मौसम अच्छा होने 10 घण्टे तथा गर्मियों में 12 से 14 घण्टे प्रतिदिन चराइए। इसमें दुपहरी का आराम भी शामिल है। जहाँ वर्षा कम होती है वहाँ रात को चराने का समय बढ़ा दीजिए, परन्तु दोपहरी को आराम का समय भी बढ़ाना पड़ेगा। चरागाह की कमी होने की अवस्था में भेड़ों को दाना तथा चारा खिलाइए, जिससे कि वे स्वस्थ रहें।

(ब) बाड़े में चराई :

भेड़ो को भी सन्तुलित आहार चाहिए। उसमें माडी (शर्करा), प्रोटीन, चिकनाई तथा खनिज लवणों की उचित मात्रा हो। प्रोटीन के लिए मोठ, ग्वार, चने आदि की दालें दी जा सकती है। मक्का, जौ आदि से माडी (कार्बोहाईड्रेट) प्राप्त की जा सकती है। चर्बी के रूप में तिल की खली एवं मूंगफली की खली आदि दीजिए। नमक, हड्डी का चूरा आदि खनिज लवणों के रूप में दिए जा सकते है। दाणा 10 इन्च से अधिक चौड़ी नहीं होनी चाहिए। दानों को दल लीजिए जिससे कि वे आसानी से हजम हो सकें। बाड़े में चराने हेतु दाने की मात्रा एवं रचना कई बातों, जैसे खाद्य पदार्थों के स्वाद, पचनीयता, प्रोटीनों की मात्रा एवं भेड़ के शरीर का भार आदि पर निर्भर करती है। फिर भी सुझाव के रूप में प्रति भेड़ प्रतिदिन निम्नलिखित राशन काम में लीजिए—

सूखा चारा (पाला या खेजड़े की पत्तियाँ) 1 से 2 किलो।

हरा चारा (बरसीम, रिजका, हरा ग्वार) 1·5 से 2 किलो।

आषाढ़ी (लीन पीरियड) में वर्षा के कारण चरने की जगह न मिलने पर भी भेड़ों को खुले में चराइए एवं ऊपर लिखित मात्रा का आधा अतिरिक्त राशन अवश्य दीजिए।

विशेष अवस्थाओं जैसे गर्भकाल, प्रजनन एवं दुग्ध उत्पादन हेतु निम्नलिखित दानों का मिश्रण दीजिए—

चना	4 भाग
चापड़	3 भाग
तिल की खली	1 भाग

चने की जगह ग्वार और मक्का आदि खिलाए जा सकते है। चना और तिल प्रोटीन युक्त होते हैं जो शरीर की वृद्धि एवं रखरखाव के लिए आवश्यक है। हर मादा भेड़ को प्रतिदिन निम्नांकित दाना उपर्युक्त राशन के अलावा दें—

[i] ब्याने से लगभग दो सप्ताह पूर्व 60 ग्राम प्रति दिन।
[ii] ब्याने के दो सप्ताह बाद से दो माह तक—125 ग्राम प्रतिदिन।
[iii] गर्भाधान से दो सप्ताह पूर्व तैयारी के लिए 60 ग्राम प्रतिदिन।

उपर्युक्त राशन इच्छानुसार आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए परिवर्तित किया जा सकता है।

भेड़ों के लिए आहार :

पौष्टिक आहार, अच्छा रेवड़ तैयार करने का आधार होता है। भेड़ों को पूरे वर्ष अच्छी चराई के अतिरिक्त नित्य प्रति आधा किलो दाना भी दे। दाना निम्नांकित में से कोई भी हो सकता है—

दाने का मिश्रण :

(1)

जौ	60 भाग
मूंगफली की खली	20 भाग
गेहूँ का चापड़	18 भाग
लवण मिश्रण	1 भाग
नमक	1 भाग

(2)

जौ	30 भाग
मूंगफली की खली	20 भाग
मक्का	30 भाग
गेहूँ का चापड़	18 भाग
लवण मिश्रण	1 भाग
नमक	1 भाग

(3)

चना की दाल	2 भाग
गेहूँ का चापड़	1 भाग
लवण मिश्रण	1 भाग
नमक	1 भाग

(4)

ग्वार दाल	2 भाग

गेहूँ का चापड़	1 भाग
लवण मिश्रण	1 भाग
नमक	1 भाग

चराई की स्थिति के अनुसार औसत दर्जे के मेढ़े को 22 ग्राम से 500 ग्राम तक दाना देवें। यदि चराई अच्छी हो तो 225 ग्राम दाना ही काफी रहेगा। कम चराई के काल में आधा किलो से एक किलो तक हरे चारे के साथ 500 ग्राम दाना देने की आवश्यकता होगी।

संभोग काल के एक माह पूर्व से मेंढ़ों को 200 ग्राम अतिरिक्त दाना दें और जैसे-जैसे प्रजनन काल समीप आता जाय इसे क्रमशः बढ़ाकर 750 ग्राम प्रतिदिन तक कर दें। संभोग काल समाप्त होने के एक महीने बाद तक दाने की मात्रा घटाकर सामान्य कर दें।

दाने मे एक चौथाई भाग मोटा अनाज देना भी अच्छा रहता है, क्योंकि इससे वीर्य अच्छा और अधिक मात्रा में बनता है।

भेड़ों का प्रजनन

बारह महीने की उम्र में मादा भेड़ें बच्चा पैदा करने योग्य हो जाती हैं। इस उम्र मे जब वह गर्मी पर आने लगे उसे उन्नत नस्ल के मेढ़े से मिलावें। गर्भाधान के 145–150 दिन बाद उसको बच्चा पैदा हो जाता है। यदि गर्भाधान न हो तो वह फिर 14 से 19 दिन बाद गर्मी मे आती है। इसे भेड़ का ऋतु-चक्र कहते हैं, जो सामान्यतः 16 दिन का होता है। सबसे छोटा ऋतु-चक्र 14 दिन का उस समय होता है जब दिन भी सबसे छोटे होते है।

एक बार गर्भ धारण कर ब्याने के बाद भेड़ लगभग 35 दिन बाद पहली बार गर्मी पर आती और ऋतु-चक्र 16-16 दिन पर चलता रहता है। कुछ देशों में भेड़ साल में केवल दो बार जनवरी-फरवरी तथा अगस्त-सितम्बर के माह में ही गर्मी पर आती है। पर अपने यहां भेड़ें लगातार साल भर ही गर्मी पर आती रहती है और किसी भी समय ब्या सकती है।

प्रजनन शक्ति बढ़ाना :

भेड़ों की प्रजनन शक्ति को बढ़ाने के मुख्य दो तरीके है—(1) अच्छा दाना और (2) जी० टी० हारमोन देना। यदि भेड़ को हम गर्भित करने के छः सप्ताह पूर्व अच्छा प्रोटीन युक्त दाना या घास खिलाते है तो भेड़ को प्रजनन शक्ति बढ़ जाती है। इस विधि को उद्धावन (फ्लुशिंग) कहते है, निश्चित आप चाहेंगे कि भेड़ को गर्भित कराने के पूर्व के हफ्तों मे अच्छा पौष्टिक खाद्य खिलाया जाय जिससे

अधिक मेमने पैदा हो सकें। अपने यहाँ भेड़ें लगभग 80 प्रतिशत बच्चे पैदा करती हैं। आर्थिक उपयोगिता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हम भारतीय भेड़ों की प्रजनन शक्ति को बढ़ायें।

प्रजनन हेतु मेंढे :

रेवड़ के मेंढ़ों का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान दीजिए—

1. जहाँ तक हो सके संकर मेंढ़े लीजिए। यदि यह संभव न हो तो फिर किसी अच्छी नस्ल का मेंढ़ा चुनें जो अच्छी तरह पोषित रेवड़ से ही हो।

2. मेंढ़ा खरीदते समय यह अवश्य देख लें कि वह स्वस्थ और शक्तिशाली है, तथा उसका शरीर सुगठित होना चाहिए।

3. उसकी टाँगें छोटी, मजबूत हड्डी तथा अच्छे खुराक वाली, सीना चौड़ा और उभरा हुआ तथा गलथान लटका हुआ और मांसल हो।

4. उसकी कमर चौड़ी, पुट्ठे ठोस और भरे हुए हों। मेंढा शक्तिशाली और उसका सिर सुनिर्मित तथा गर्दन भारी होनी चाहिए।

5. मेंढ़े के लैंगिक अंग पूर्ण विकसित हों। उसकी प्रजनन शक्ति की परीक्षा कर लें। यदि सम्भव हो, तो गर्मी में आई हुई भेड़ के साथ छोड़कर मेंढ़े की संभोग शक्ति की भी परीक्षा कर लें।

6. ऊन के लिए पाले जाने वाले मेंढ़ों के शरीर पर अच्छे किस्म के और घने रोये हों।

7. ऐसे मेंढ़ों को कभी नहीं चुनें जिसके ऊपर या नीचे के जबड़े छोटे-बड़े हों, टाँगे कमजोर हों, शरीर दुर्बल हो या जिनमें और कोई खराबी हो।

8. यदि आप कोई संकर मेंढा, जिसमें उपर्युक्त गुण भी हों अपनी रेवड़ के लिए प्राप्त करें तो आपको लाभ होगा, क्योंकि—

(i) स्थानीय भेड़ और संकर मेंढ़े के संयोग से बच्चे संकर मेंढे जितने ही अच्छे तो नहीं हो जाते किन्तु फिर भी स्थानीय मेंढ़े से पैदा होने वाले बच्चे की अपेक्षा ये कहीं ज्यादा व अच्छी ऊन व मांस पैदा करते हैं।

(ii) संकर मेंढा अपनी ही आयु के देशी मेंढे से ज्यादा वजन वाला व बड़े आकार का होता है।

(iii) इसकी ऊन लम्बाई में तो कुछ कम, परन्तु वजन में ज्यादा होती है, क्योंकि रेशों की आबादी ज्यादा घनी होती है।

(iv) इसकी ऊन ज्यादा नरम, मुलायम व प्रति सेन्टीमीटर तक अधिक तहों वा होती है ।

(v) यह ऊन ज्यादा मजबूत होती है, क्योंकि इसके रेशों में खोखलापन कम हो है व असली ऊनी रेशे ज्यादा होते हैं ।

(vi) इसकी ऊन के रेशे ज्यादा बारीक होते हैं व विभिन्न गुच्छों में रेशों के प्रक की व्यूह रचना ज्यादा भिन्न नहीं होती है ।

(viii) इसके शरीर पर की ऊन में रेत, कांटे व पत्तियां अधिक अन्दर नहीं घु पाते इसलिए यह ऊन ज्यादा साफ रहती है ।

प्रजनन काल में मेंढ़े की व्यवस्था

मेंढों को वर्ष भर रात-दिन भेड़ों के साथ न रहने दें । इससे मेंढों की प्रजनन शक्ति क्षीण होती है और मेमने दुबले-पतले होते है ।

संभोग कार्य के लिए विशेष काल निश्चित करना आवश्यक है । संभोग काल में भी मेंढो को केवल रात के समय ही भेड़ों के साथ रखें । दिन के समय उन्हें अलग कर दे । इससे मेढो को विश्राम के लिए समय मिल जाता है और वे स्वस्थ बने रहते है ।

जहाँ तक संभव हो रेवड़ को 40-50 भेड़ों के छोटे-छोटे झुण्डों में बांट दें और प्रत्येक झुण्ड के साथ 1 मेढा छोड़ें । ऐसा करने से निम्नलिखित लाभ होंगे—

1. मेंढे आपस मे लड़ नहीं सकेंगे क्योंकि एक ही बाड़े में दो या अधिक मेंढे रहने से ही आपस में अवश्य लड़ाई होती है ।
2. रेवड़ के प्रजनन का उचित लेखा-जोखा रखने में सुविधा रहेगी ।
3. यदि मेंढे को कोई रोग होगा तो इस ढंग से उसका पता लग सकेगा और यह रोग अन्य भेड़ों में फैलने से पहले ही रोगी मेंढे को बाड़े से निकाला जा सकेगा ।

मेंढे 8 या 9 माह की आयु से ही परिपक्व अवस्था में आ जाते है । प्रजनन काल मे एक जवान मेंढे को 40 से अधिक भेड़ों के साथ संभोग नही करने दें । 4 से 6 वर्ष तक की आयु के मेंढों को 50 भेड़ों तक के साथ समोग करने दिया जा सकता है । यदि आवश्यक हो तो एक मेंढे से कृत्रिम गर्भाधान विधि द्वारा कई भेड़ों का गर्भाधान कराया जा सकता है । खासतौर से संकर मेंढों का लाभ लेने हेतु यह विधि उत्तम रहती है ।

अनियमित प्रजनन रोकने के लिए नर मेमनों को दूध छोड़ने की अवस्था के तुरन्त बाद बधिया कर दें । जब मेंढो को दूसरे स्थान पर ले जाना पड़े तो उन्हें

संभोग हेतु छोड़ने से पहले थोड़ा विश्राम अवश्य दें और नये वातावरण से परिचित करादे। जब प्रजनन का मौसम न हो तो संकर मेंढे के मुतांग को उसके शरीर के गिर्द पट्टी से बांध कर ढका रखें तथा मुतांग के आस-पास के बाल समय पर काटते रहें।

गर्भवती भेड़ों की देखभाल :

ब्याने वाली भेड़ों को कभी भयभीत नहीं होने दें। उन्हे एक जगह पर अधिक संख्या में इकट्ठा कर भीड़ नहीं करें। ग्यामिन भेड़ों को खाई या गड्ढे पर से कूदने नहीं दें और न ही सकरे रास्ते से गुजारें। उन्हें गर्मी के दिनों में अधिक दूर न ले जावें। गर्भकाल के आखिरी महीने मे भेड़ को अच्छा एवं सन्तुलित भोजन की काफी मात्रा में आवश्यकता होती है। उन्हे न तो अधिक मोटा ही होने दें और न बिलकुल दुबला ही।

प्रबन्ध

भेड़ों का धोना :

भेड़े ऊन के लिए पाली जाती है, अतः अच्छी ऊन पाने के लिए उन्हे कतरने से पूर्व धोना जरूरी है। इससे ऊन पर जो मैल आदि हो वह धुल जाता है। भेड़ों को बहते हुए पानी या तालाब के पास स्थित पोखर में धोवें। यह ध्यान रखें कि जिस दिन भेड़ों को धोया जाय उस दिन धूप अच्छी निकली हुई हो। भेड़ों को कतरने के एक दो दिन पूर्व ही धोले जिससे ऊन अच्छी सूख जाय। उन्हे सर्दी के दिनों में सुबह 10 बजे व गर्मी में सुबह 9 बजे धोना ठीक रहता है।

कतरना :

भेड़ों को 'शीयरिंग शेड' या साफ सुथरी जगह पर त्रिपाल पर कतरे। उन्हें हाथ से चलने वाली कतरनियों से अथवा कतरने की मशीन से कतरा जा सकता है। राजस्थान में भेड़ों को साल में दो बार मार्च-अप्रैल तथा सितम्बर-अक्टूबर में पुनः कतरें। कई स्थानों पर साथ में तीन बार भी कोई भेड़ कतरी जाती है। प्रत्येक भेड़ को कतरने के लिए कम से कम से कम 5+5 फीट स्थान की जरूरत पड़ती है।

अच्छा अनुभवी व्यक्ति हाथ की मशीन से 50 से 60 भेड़ें प्रतिदिन कतर सकता है— जबकि शक्तिचालित मशीन से वही व्यक्ति 150 से 200 भेड़ प्रतिदिन कतर सकता है।

उचित तो यह है कि भेड़ को पहले पैर, पेट तथा सिर से कतर कर इस ऊन को अलग रख दें। यह ध्यान रखें कि भेड की ऊन को छोटी-छोटी कतरनों में न काट कर एकल खेप में पूरी काटे। जहां तक सम्भव हो उनके शरीर पर किसी प्रकार का जख्म नहीं होने दे। यदि कतरते समय कोई घाव हो ही जाय तो तुरन्त

टिंचर आयोडीन लगा दें। इस प्रकार ऊन को समेटें कि त्वचा की तरफ की ऊन बाहर की तरफ रहे।

भेड़ों का निष्कासन

वर्ष में दो बार भेड़ों की छंटनी में उन भेड़ों को निकाल दें जो या तो अनुपयोगी हों अथवा बहुतायत में हों। मेमनों के जब निशान लगाए जाते हैं उस समय छंटनी करने में आसानी रहती है।

निम्नांकित लक्षणों वाले मेमनों की छंटनी कर दें—

(1) रङ्गीन या धब्बादार ऊन वाले,
( ) रेवड़ की नस्ल से अन्य,
(3) ऐसी बीमारी से ग्रस्त जिसका इलाज होना असम्भव हो, और
(4) जिनमें अन्य कोई कमी हो।

मादा भेड़ों की छटनी गर्भाधान काल के एक माह पूर्व ही कर दें। ऐसी भेड़ों को छांट कर अलग कर दें—

(1) जो दो वर्ष तक लगातार न ब्याएं।
(2) जो मेमनों को दूध न पिला सकें।
(3) जिनकी आयु 6 वर्ष से ज्यादा हो गई हो।
(4) जिन भेड़ों की ऊन—उत्पादन क्षमता एवं ऊन का स्तर नीचा हो
(5) जिनके नीचे वाले दांत दोषयुक्त (ब्रोकन माऊथ) हो।
(6) जिनके जबड़े लम्बे अथवा अधिक छोटे हों।
(7) जो कमजोर या निर्बल हों।
(8) जिनके कंधों के पीछे गड्ढा (डेविल्स ग्रिप) पड़ता हो।
(9) जिनके पैर फटे हुए हों या जिनके पिछले घुटने टकराते हों (हौकीग्णीप)।
(10) जिनके कंधे अथवा कूल्हे सिकुड़े हुए ।
(11) धब्बेदार भेड़ें पेट या छो तथा
(12) ऐसी भेड़ें जि हो।

मेंढ़ छंट

ऐसे मेढ़ों को भी छांट सेव

(1) क्रिया

(2

(3) जिनकी ऊन उत्पादन क्षमता उन मौसम के समस्त मेंढ़ों की औसत उत्पादन क्षमता से कम हो ।
(4) जिनकी ऊन नापसन्द हो, तथा
(5) जिन मेंढ़ो का स्थान रेवड़ के एक निश्चित माप-मान से नीचे हो ।

संकर मेंढ़े का रख-रखाव :

संकर मेंढे को किसी विशेष देख-रेख की व रखने के लिए किसी अलग स्थान की आवश्यकता नहीं होती। इसको दूसरे मेंढ़ों के साथ ही रेवड में रखा जा सकता है। परन्तु फिर भी इसके प्रबन्ध में कुछ सावधानियां अवश्य बरती जानी चाहिए—

(1) संकर मेंढ़ो को भेड़ो को 'पोक्स व ऐन्टेरोटोक्सीमिया' बीमारियों का टीका अवश्य लगवा लें।
(2) और भेड़ों की भांति इसको भी हर तीन माह बाद एक बार पेट के कीड़े मारने की दवाई देते रहें।
(3) संकर मेंढ़े को हर रोज पाव भर दाना देवें।
(4) इसको कड़ी धूप, अधिक सर्दी व तेज बरसात से बचा कर रखें।
(5) यदि मेंढ़े को चरने नहीं भेज रहे हैं तो प्रतिदिन एक किलो हरा व एक किलो सूखा चारा तथा पाव भर दाना देवें।
(6) संकर मेमने की पूँछ बचपन में ही काट देवें।
(7) मेंढ़े के खुर समय पर काटते रहें।
(8) संकर मेंढ़ो द्वारा प्रजनित मेमना दूसरे मेमनों से साधारणतया बड़े आकार व अधिक वजन का होता है। इसलिए इसको अधिक खुराक की आवश्यकता होती है। अतः इसकी मां का दूध अलग से निकाल कर दूसरे काम में लाने से पूर्व देख लें कि इसे पूरी खुराक मिल गई है।

भेड़ों के प्रमुख रोग

भेड़ की प्रमुख बीमारियों को मुख्यतः चार भागों में बांटा जा सकता है—
(1) बाह्य परजीवी,
(2) आन्तरिक परजीवी,
(3) जीवाणु (बेक्टीरिया) रोग एवं
(4) विषाणु (वायरस) रोग।

1. बाह्य परजीवी :

चीचड, जूं (लाइस), शीप स्केब, क्रो, पस्साई, स्क्रू वर्म आदि कुछ ऐसे

परजीवी कीट है जो भेड़ों के शरीर पर बाहर से आक्रमण कर उन्हें रोगी बना देते हैं।

(क) चीचड़े भेड़ का रक्त चूसते हैं और अपना जीवन उसी पर बिताते हैं। रक्त को चूस कर ये भेड़ को कमजोर बना देते हैं तथा भेड़ खाज करती रहती है जिससे ऊन का नुकसान होता है। जब भेड़ पर ऊन छोटी हो उस समय लिन्डेन नामक दवा को पानी में घोलकर उससे नहलावें। दवा का घोल 0·05 प्रतिशत हो। ऐसे घोल को भेड़ों पर छिड़कने से जूं और चीचड़े भी मर जाते है। लिन्डेन के उपर्युक्त घोल में नहलाने (डिपिंग) से शीप स्केब भी रोकी जा सकती है।

(ख) ब्लो फ्लाईज ऐसी मकड़ियों का समूह है जो भेड़ों को बड़ा नुकसान पहुँचाता है। भेड़ की खाल में इस मक्खी के शिशु कीड़े से पड़ जाते है जो मेगट कहलाते है। इससे तथा स्क्रू वर्म से भेड़ों को बचाने के लिए एक चम्मच तारपीन का तेल में आधा ग्राम चर्बी (लार्ड) को अच्छी तरह मिलाकर उस जगह लगावें जहाँ कीड़े पड़े हुए हों। तीन-चार दिनों तक यह लगाने के बाद घाव ठीक हो जाता है।

2. आन्तरिक परजीवी :

(क) फेफड़े के कीड़े (लग वर्म)—ये कीड़े भेड़ों के शरीर में प्रवेश कर उन पर अन्दर ही अन्दर आक्रमण करते है। ये कीड़े उन भेड़ों में पाए जाते है जो नम चरागाहों पर चरती है। ये फेफड़ों में चार इन्च तक लम्बे हो सकते है। इनसे बचने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि नम चरागाहों पर भेड़ों को न चराया जाय, अन्यथा इसका कोई इलाज नहीं है।

(ख) लीवर-फ्लूक—जिन चरागाहों पर शंख पाये जाते है वहीं से लीवर-फ्लूक का कीड़ा भेड़ के जिगर में प्रवेश करता है। यह भेड़ के जिगर को नष्ट कर देता है और इलाज न होने पर जानवर मर जाता है।

एक मिली लीटर टेट्राक्लोराइड का जिलेटिन कैप्सूल इस बीमारी की सब से अच्छी दवा है। 4 सप्ताह के बाद दूसरा कैप्सूल देने से यह बीमारी ठीक हो जाती है। ग्याभिन या ब्याई हुई या थकी हुई भेड़ों को यह दवा नहीं देवें। भेड़ों को शंख-ग्रस्त चरागाह पर भी नहीं चरावें।

(ग) पेट के कीड़े (कामन वर्म)—पेट के कीड़ों से भेड़ को बचाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि हर दो सप्ताह के बाद चरागाह बदल दिया जाय। इसके अतिरिक्त बड़ी भेड़ को 30 ग्राम फिनोथाईजीन देने से ये कीड़े मर जाते हैं। 30 किलो से कम भार की भेड़ को 15 ग्राम फिनोथाईजीन ही दें।

3. शाकाणु (बेक्टीरिया) रोग :

(क) फड़का या ब्लेक लेग—भेड़ों को यह बीमारी वर्षा के मौसम में होती है। भेड़ को तेज बुखार चढ़ता है। यह चल नही सकती और अन्ततः मर जाती है। मरे हुए जानवरों को जला दें या गहरे गाड़ दें। इलाज के लिए अपने पशु-चिकित्सक से सलाह लेकर इसके सीरम की सूई लगवा लें।

(ख) गल घोंटू (हेमोरेजिक सेप्टीसीमिया)—यह रोग भी वर्षा ऋतु में ही होता है। भेड़ को तेज बुखार चढ़ता है और पांच-छः घण्टो मे ही गला सूज कर यह मर जाती है।

बीमार भेड़ों को अलग कर दें तथा पशु चिकित्सक की सलाह से इसके भी सीरम की सूई लगवा लें। स्वस्थ भेड़ों को इस रोग से बचाने हेतु निरोधक (वेक्सीन) टीका अवश्य लगवालें।

4. विषाणु (वाईरस) रोग :

भेड़ की माता, रिन्डरपेस्ट, मुंह और खुर की बीमारी आदि रोग विषाणुओं द्वारा भेड़ों में फैलते है। ये बीमारियां भेड़ पालको को काफी नुकसान पहुँचाती है।

जैसे ही इन रोगों को फैलने का पता लगे तुरन्त अपने समीप के पशु चिकित्सक को या भेड़ एवं ऊन प्रसार अधिकारी को सूचना दें जिससे कि वे समय रहते आवश्यक निदान कर सके।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. हमारी कृषि अर्थव्यवस्था में भेड़ों का क्या महत्व है ?
2. निम्नांकित पर टिप्पणी लिखें—
   (अ) चोखला (ब) मारवाड़ी
3. निम्न बिन्दु पर संक्षेप में लिखें—
   (अ) भेड़ों का पोषण
   (ब) भेड़ों का प्रजनन
   (स) प्रजनन काल में भेढ़ों की व्यवस्था
4. भेड़ों के प्रमुख रोगों का वर्णन करो एवं इन्हें रोकने का उपाय लिखिये।

अध्याय 6

बकरी पालन

बकरी को प्राय: गरीब की गाय कहा जाता है। भारतवर्ष में बकरी की संख्या सारे विश्व में बकरी संख्या का लगभग चौथाई है। भारतवर्ष में लगभग 560 लाख से अधिक बकरियाँ हैं। बकरी एक ऐसा जानवर है जिसे सरलतापूर्वक कम खर्च में ही पाला जा सकता है। यह थोड़ी-सी घास और मामूली से दाने पर अपना निर्वाह कर लेती है।

प्रति वर्ष 560 लाख बकरियों से लगभग 1,60,000 टन मांस प्राप्त होता है। खालों का वार्षिक उत्पादन 220 लाख का है जिसकी कीमत 690 लाख रुपये होती है। बाल लगभग 35 लाख किलोग्राम होते हैं जिसकी कीमत 72 लाख रुपये होती है। इसके अलावा कश्मीरी बकरियों का पश्मिना, बढ़िया कपड़े और शाल बनाने के काम आता है।

इसका दूध स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभदायक होता है। यह इतना हल्का होता है कि छोटे बच्चे भी आसानी से हज़म कर सकते हैं। शरीर भार के अनुसार बकरी गाय की अपेक्षा अधिक दूध देती है।

बकरी के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा लगभग 6 गुना लोहा पाया जाता है जो खून बनाने के लिए आवश्यक है। कुछ लोगों की शिकायत है कि बकरी के दूध में दुर्गन्ध आती है। दूध में यह दुर्गन्ध हमारी अज्ञानता के कारण होती है। बकरे की त्वचा में कुछ ऐसी ग्रंथियाँ होती हैं जिनसे कैप्रिक एसिड नामक दुर्गन्ध-युक्त अम्ल निकलता है। जब बकरे के पास ही बकरी का दूध निकाला जाता है जो दूध शीघ्र ही बकरे की त्वचा से निकलने वाली कैप्रिक एसिड की दुर्गन्ध को सोख लेती है और दूध दुर्गन्ध-युक्त हो जाता है। अतः बकरे को कम से कम 15 से 20 मीटर दूर (दूध दुहते समय) बाँधना चाहिए।

बकरियों की अनेक नस्लें पाई जाती हैं, जैसे—जमुनापारी, बारबरी, बीतल, सूरती, मलाबारी, गद्दी, कश्मीरी, बरारी आदि। कुछ विदेशी नस्लें भी यहाँ पाली जाती हैं जैसे—सनेन, टोगेनबर्ग, अंगोरी आदि।

भौगोलिक आधार पर बकरियों को निम्नलिखित क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है—

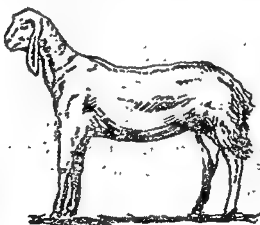
1. हिमालय क्षेत्र
2. शुष्क पश्चिमी क्षेत्र
3. पूर्वी क्षेत्र
4. दक्षिणी क्षेत्र

कश्मीरी, गद्दी आदि बकरियाँ हिमालय क्षेत्र (समशीतोष्ण जलवायु) में पाई जाती हैं। जमुनापारी, बारबरी, मलबरी, बीटल बकरियाँ शुष्क पश्चिमी क्षेत्र मे पायी जाती हैं। बरारी, सूरती आदि दक्षिणी क्षेत्र की बकरियाँ हैं। पूर्वी क्षेत्र में बंगाल बकरी आती है।

परन्तु यहाँ पर केवल शुष्क पश्चिमी क्षेत्र की बकरियों (जमुनापारी, बारबरी, मलबरी) का ही वर्णन किया जा रहा है। अन्य बकरियों का वर्णन पाठ्यक्रम से बाहर होने के कारण यहाँ सम्भव नही है।

1. जमुनापारी

इस नस्ल की बकरियाँ यमुना, गंगा, चम्बल नदियो के तटवर्ती क्षेत्रो में पाई जाती हैं। उत्तर प्रदेश के इटावा जिलों मे सहसों और चन्द्र क्षेत्र में बहुतायत से पाई जाती है। भारत में पाई जाने वाली बकरियों की नस्ल मे यह नस्ल आकार में सबसे बड़ी होती है और बढ़िया माँस तथा अधिक दूध दोनों ही गुण इस नस्ल में होते हैं। अतः सहसो और दयात दोनों में ही आय का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। (देखो चित्र सं० 15)



चित्र सं० 15 (जमुनापारी)

लक्षण :

1. माथा चौड़ा तथा कुछ उभरा हुआ होता है।

2. इस नस्ल के बकरों मे लम्बी दाढ़ी पायी जाती है।

3. कान बकरी के 30 सेमी. लम्बे तथा पीछे की ओर लटके हुए होते हैं जिनके ऊपर शानदार बाल होते है।

4. आम तौर पर शरीर पर काले और भूरे अथवा सिर काला और शरीर श्वेत या सिर और कान भूरे और शरीर श्वेत होता है।

5. शरीर की अपेक्षा पिछली टाँगों पर बाल घने तथा लम्बे होते हैं जो इस नस्ल की विशेषता है।

6. इस नस्ल की बकरियों के सींग छोटे और चपटे होते हैं। आकार में बड़े होते हैं तथा अयन पूर्ण विकसित होता है।

7. थन लम्बे होते है मोटाई में मध्यम होते है।

8. मादा बकरी का पिछला भाग तथा नर शरीर का अगला भाग भारी होता है।

9. इनका प्रसव काल 150 दिन होता है।

10. दूध की मात्रा $4\frac{1}{2}$ से 5 कि. ग्रा. प्रतिदिन होती है। वसा 3% होती है।

(2) सिरोही जाति (Sirohi goats)—इस जाति की बकरियां पालनपुर राज्य में विशेष रूप से पाली जाती हैं। इस जाति की दूध के लिये विशेष रूप से पाला जाता है। इस जाति की बकरियों का कद मध्यम होता है। इनके नथुने छोटे और नुकीले होते हैं। इनके कान लम्बे होते है। इन बकरियो का रंग सफेद या भूरा पाया जाता है। इनके शरीर पर बाल छोटे-छोटे होते है जो वर्ष में 1″ तक बढ़ते हैं। इस जाति की बकरिया इस वर्ष में केवल एक बार बच्चे को जन्म देती हैं। ये बकरियां भी अच्छी मानी गई हैं।

(3) अलवरी नस्ल—यह नस्ल अलवर जिले के अकराना क्षेत्र मे पाई जाती है, इसी क्षेत्र का बाजरा भी प्रसिद्ध है। यह नस्ल 5 kg के लगभग प्रतिदिन दूध देती है, अन्य क्षेत्रो में जाने पर इसके दूध का उत्पादन कम हो जाता है। इसका मूल कारण प्राकृतिक वनस्पति का न मिलना है। इस नस्ल को सुधारने के लिए स्विट्ज़रलैंड के सहयोग से भारत सरकार ने अजमेर के पास रामसर क्षेत्र फार्म मे बकरी प्रजनन फार्म स्थापित किया है जिसमे विदेशी बकरो का संकरण करवाकर नई नस्लों का विकास किया जा रहा है। वैसे अन्य बकरियों की अपेक्षा औसत रूप से नस्ल अच्छी मानी जाती है।

बकरियों का पोषण :

गाँवों मे बकरियो को केवल चराई पर ही पाला जाता है। बकरी पालने में खर्च अधिक नही बैठता। यह अधिकतर पेड़ों के पत्ते, नरम कलियाँ, टहनियाँ और घासें खाती हैं। वैसे देखा जाय तो शायद ही कोई ऐसी चीज हो जिसे बकरी न खाती हो। कभी-कभी दाना आदि भी बकरी को दिया जाता है। परन्तु दाना केवल दूध देने वाली बकरी को ही देते हैं।

यदि बकरियो को घर पर रख कर ही खिलाना है तो उसके चारे दाने मे अदल-बदल करते रहना चाहिए। प्रायः शहरों में ही लोग बकरियों को घर पर रख-

कर पालते हैं। बकरियों को रोजाना हरी घास या हरी पत्तियाँ खिलानी चाहिए। इनसे बकरियों का स्वास्थ्य ठीक रहता है तथा दूध भी अधिक मात्रा में मिलता है।

बकरियों को भी नमक देना चाहिए। दैनिक-राशन में एक प्रतिशत तक नमक होना चाहिए। बकरियों को नमक उतना ही जरूरी है जितना कि अन्य पशुओं के लिए है। स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए कैलशियम और फास्फोरस की जरूरत होती है। बकरी को भेड़ की अपेक्षा अधिक कैलशियम की जरूरत रहती है।

दूध देने वाली बकरियों को उनके दूध के उत्पादन के अनुसार चने का दाना चने की चूनी और छिलका, गेहूँ का चोकर या भूसी, अनगी की खली आदि खिलाये जाते हैं। बकरियाँ बबूल की फलियाँ, पलाश तथा झरबेरी के पत्तों को खाना बहुत पसन्द करती हैं। जो भी चारा खिलाया जाय उसमें रेशे की मात्रा अधिक और पचने वाली सामग्री की मात्रा कम होती है।

बकरियों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि उनके खिलाने-पिलाने पर अधिक ध्यान दिया जाय। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए 225-250 ग्राम, दाना प्रति एक कि. ग्रा. दूध उत्पादन के हिसाब से 150 ग्राम दाना चाहिए। आमतौर पर दूध देने के दिनों में बकरियों को रोजाना 400-500 ग्राम दाना 1·8-2·0 कि. ग्रा. चारा देना काफी है।

चारे में कम से कम 900-1300 ग्राम तक सूखा चारा होना चाहिए, जैसे पेड़ों की पत्तियाँ एवं टहलनी फसलों का भूसा आदि। हालांकि दूध देने वाली बकरियों को दाना नहीं खिलाया जाता परन्तु उनके स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए 225-250 ग्राम दाना उनके वजन के अनुसार देना जरूरी है।

दाने के मिश्रण में गेहूँ की भूसी, मक्का का दलिया, अलसी की खली (1:2:1) या मक्का का दलिया, जौ का दलिया, सरसों की खली, चने का छिलका (2:1:2:2:) अथवा गेहूँ की भूसी, जौ का दलिया, मूंगफली की खली (1:2:1) आदि मिलाया जा सकता है।

दूध देने वाली बकरियों को दूध न देने वाली बकरियों की अपेक्षा प्रतिदिन अधिक पानी की आवश्यकता होती है। उन्हें दिन भर में कम से कम 2-3 बार पानी पिलाना चाहिए। पानी साफ ताजा होना चाहिए। बहते नालों का पानी इन्हें ज्यादा पसंद है।

प्रजनन :

भारतीय बकरियाँ प्रायः एक वर्ष में दो बार और 2 वर्ष में तीन बार ब्याती हैं। मदकाल अवधि 24 से 48 घन्टे होता है। परन्तु कुछ नस्लों में 18 घन्टे भी हो

सकता है। गर्भावधि 145–153 अर्थात 5 महीना है गर्भ धारण न होने पर मद 18–21 दिन बाद पुनः आता है।

साधारणतया बकरियाँ मई-जून के महीने में गर्मी में आती हैं। जो बकरियाँ वर्ष में केवल एक बार ब्याती है उनके बच्चों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है, अतः दूध के लिए ऐसी बकरियाँ अच्छी होती है। बकरियों की प्रजनन आयु 14-18 माह है। प्रथम ब्यांत के समय उनकी आयु लगभग 2 वर्ष होनी चाहिए।

सामान्य दशाओं में बकरी का औसत जीवन लगभग 12-14 वर्ष होता है। बकरी 5–7 वर्ष की आयु में अपने पूर्ण यौवन मे होती है। यदि बकरे की खिलाई-पिलाई का प्रबन्ध अच्छा रखा जाय तो वह 8–10 वर्ष तक की आयु तक प्रजनन मे समर्थ रहता है। जिन बकरों को मास के लिए पाला जाता है उनकी 2–4 सप्ताह की आयु में उन्हें बधिया कर दिया जाता है। इससे मास का स्वाद बढ़ जाता है। शरीर का वजन तेजी से बढ़ता है।

आवास प्रबन्ध :

बकरियाँ अधिकतर छोटी जगहो में रहना पसंद करती है लेकिन बंद जगहो में नही अर्थात् खूब ताजी हवा एवं साफ सूखी जगह अधिक पसंद आती है। अतः बकरियो का बाड़ा स्वच्छ तथा खुला हो, जगली पशुओं से सुरक्षित हो तथा गर्मी, वर्षा व शीत तीनों ही ऋतुओं में बचाव प्रदान कर सके। एक वर्ग मीटर स्थान प्रति बकरी के लिए काफी है। जब संख्या कम होती है तो एक कतार मे बांधी जाती हैं परन्तु अधिक संख्या होने पर दुहरी कतार में बांधी जा सकती है।

बकरी के चरही का माप 15×40 से.मी. होना चाहिए। बाड़े का फर्श भूमि से 15 से. मी ऊँचा हो और चरही से नाली तक 8 से. मी. ढाल हो जिससे पेशाब मारा बहकर नाली में चला जावे। फर्श साफ व सूखा होना चाहिए तथा तेज हवा एवं वर्षा को रोकने के लिए एक दीवार का होना भी आवश्यक है। बकरों का बाड़ा बकरियों के बाड़े से 16–20 मीटर की दूरी पर होना चाहिए।

प्रत्येक बाड़ा 1·5 मीटर लम्बा 0·75 मीटर चौड़ा और 1·8 मीटर ऊँचा होना चाहिए। यह बकरियो के एक जोड़े के लिए काफी है। बच्चो के लिए अलग बाड़ा होना चाहिए। माता और बच्चो के बीच ऐसा लगाव होना चाहिए कि वे एक-दूसरे को देख सकें।

तालिका सं 26

बकरी एवं गाय के दूध में अन्तर

क्र. सं.	तत्त्व का नाम	बकरी	गाय
1.	प्रोटीन	4·06	4·48
2.	वसा	5·14	3·13
3.	शर्करा	5·28	4·77
4.	खनिज	0·58	0·60
5.	जल	84·94	87·02
	योग	100.00	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि बकरी के दूध में वसा और शर्करा की प्रतिशत मात्रा गाय के दूध की अपेक्षा अधिक होती है। बकरी के दूध का आपेक्षिक घनत्व 1.032 होता है। भारतीय बकरियाँ प्रतिदिन 250 ग्राम से 5 कि. ग्रा. तक दूध देती हैं। उनके दूध में औसतन चिकनाई 4 से 5 प्रतिशत तक होती है। बकरियों के दूध की रचना में थोड़ा बहुत अन्तर हो सकता है क्योंकि दुग्ध-रचना निम्नलिखित बातों से प्रभावित होती है—

1. दूध देने की अवधि   2. ब्यांत की संख्या
3. मौसम   4. नस्ल।

बीमारी—बीमारी अधिकतर वे ही लगती हैं जो भेड़ को लगती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बकरियों की प्रमुख जातियों के नाम लिखिए। बकरी के पालन-पोषण और आहार का विवेचन करिए।
2. बकरियों की तीन मुख्य जातियों के नाम लिखिए तथा किसी एक का वर्णन कीजिए।

3. जमुनापारी और बारबरी का निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर अन्तर स्पष्ट कीजिए—
   (अ) मूल स्थान
   (ब) लक्षण (विशेषतायें)
   (स) दूध की मात्रा
4. बकरी एवं गाय के दूध में उपस्थित तत्वों की तुलना कीजिए।
5. बकरी का दूध दुर्गन्ध युक्त क्यों होता है ? इसको दूर करने के लिए आप क्या-क्या उपाय करोगे ?
6. निम्नांकित नस्लों की विशेषतायें लिखिए—
   (अ) अलवरी
   (ब) सिरोही

अध्याय 7

ऊँटपालन

परिचय एवं उपयोगिता—ऊँट एक ऐसा पशु है जो दुनिया के गरम और ठंडे रेगिस्तानों में पाया जाता है। जो ऊँट गरम रेगिस्तानों में पाया जाता है। उसके एक थुवा (Hump) होता है और ठंडे रेगिस्तानों में पाये जाने वाले ऊँटों के दो थुवे होते हैं। यह थुवा सिर्फ चरबी के बने होते हैं जो ऊँट के बुरे दिनों में यानि जब खाने को कम मिलता है तब ये पिघल कर उसे जिन्दा रखने में सहायता करते हैं। ऊँट में पानी को अपने शरीर में संचित करने की शक्ति होती है। जिसके सहारे यह कई दिनों तक बगैर पानी पिये भी रेगिस्तानों को पार करने में सफल होता है। भारत में ऊँट की संख्या लगभग 12 लाख हैं, जबकि अकेले राजस्थान में लगभग 8 लाख की संख्या है।

ऊँट रेगिस्तान व अर्द्ध रेगिस्तान में किसानों के हल चलाने, कुएँ से पानी निकालने, किसानों की पैदावार को घर व घर से मण्डी तक पहुँचाने, एक गाँव से दूसरे गाँव तक सवारियाँ ले जाने, शहरों से गाँवों तक, रेल के स्टेशनों से गाँवों तक सवारियों व माल ढोने के लिए आज भी उतना ही उपयोग में आता है। इसके रखने पर किसान को खर्च नहीं के बराबर होता है क्योंकि यह जो भी रेगिस्तान में उगता है, जैसे कटेली व नमकीन झाड़ियाँ खाकर ही मोटा ताजा रहता है और अपने मालिक की सेवा के लिए हर वक्त तैयार मिलता है।

इन छोटे-छोटे कामों के अलावा अब ऊँट का उपयोग इसके मांस के लिए भी बड़े पैमाने पर होने लगेगा। इसके बालों से कम्बल व गर्म वस्त्र भी तैयार किए जाते हैं। रेगिस्तान में जब ज़ोर की धूल भरी आंधी आती है तब ऊँट का सवार ऊँट को बैठाकर उसके ओट में औंधा लेट जाता है इससे सवार और ऊँट दोनों का बचाव हो जाता है।

ऊँटों की नस्लें—अतीत में ऊँट एक ही जगह से अर्थात् अरब से ही दूसरे देशों में गये और वहाँ उन्होंने अपने आप को रहने लायक स्थिति में ढाल लिया। इसलिए उनमें थोड़ी-थोड़ी भिन्नता आ गई, यह भिन्नता होने से ही अलग-अलग ऊँटों की नस्लें बन गई। भारत में ऊँट आने के बाद उसमें कई नस्ल पैदा हो गई और अपने रहने के स्थान और काम के मुताबिक उसके शारीरिक लक्षणों में थोड़ा फर्क आ गया। राजस्थान में ऊँटों की मुख्य छः नस्लें पाई जाती हैं।

1. बीकानेरी
2. जैसलमेरी
3. मारवाड़ी
4. मेवाड़ी
5. सिन्धी
6. संकर नस्ल

1. बीकानेरी—यह ऊँट सिन्धी, बलूची, अफगानी और थारी ऊँटों के मिश्रण से पैदा हुआ मालूम होता है क्योंकि इस नस्ल में इन नस्लों के लक्षण पाये जाते हैं। यह ज्यादातर तो गहरा भूरा रंग का होता है। यह दुनियाँ के ऊँटों में सबसे सुन्दर लगता है। यह सब प्रकार के कामों के लिए उपयुक्त साबित हुआ है और ट्रेनिंग देने पर सवारी के लिए अच्छा होता है, सवार को किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती, इसकी गति भी अच्छी होती है। यह बीकानेर क्षेत्र में अधिक पाया जाता है।

इसे खेती करने, छकड़ा चलाने, कुएँ से पानी निकालने आदि काम में ज्यादातर लेते हैं। इसकी ऊँचाई 2 मीटर से 2·5 मीटर तक होती है। शरीर गठीला व मजबूत होता है, आँखें गोल-गोल व बड़ी-बड़ी होती हैं। नाक लम्बी व ऊपर से दो हिस्सों में बंटी होती है, ठोड़ी व मुँह कसा हुआ सा लगता है।

2. जैसलमेरी—यह नस्ल जोधपुर क्षेत्र में ज्यादा पायी जाती है। यह एक रात में 100·00 कि० मी० दूर जा सकता है। यह बीकानेरी नस्ल से हल्का होता है। शरीर में छोटा व पतला होता है। इसकी ऊँचाई 1·75 से 2·0 मीटर तक होती है। हल्के भूरे रंग का होता है तथा सिर छोटा, मुँह, नाक, ठोडी, भी छोटे-छोटे होते हैं। कान पास-पास और छोटे-छोटे होते हैं जो खड़े रहते हैं। इसमें लम्बी यात्रा पर जाने में थकान नहीं आती। इनके बीकानेरी के जैसे कपाल उठा हुआ नहीं होता और गढ़ा (Stop) भी नहीं होता। इनके बाल छोटे-छोटे ही होते हैं जिन्हें कतरने की जरूरत नहीं होती।

3. मारवाड़ी—यह मिश्रित नस्ल का ऊँट है जो मारवाड़ क्षेत्र में अधिकता से पाया जाता है। यह ऊँट देखने में बीकानेरी या जैसलमेरी के जैसे सुन्दर व चुस्त नहीं है बल्कि भद्दे से लगते हैं। इसका सिर बड़ा व भारी व लम्बाई मझले आकार की होती है। आँखें सुस्त व छोटी होती हैं। मुँह के नीचे का होठ गिरा हुआ होता है। इसकी गर्दन छोटी और मोटी होती है। ये तीव्र गति से नहीं चल सकते। परन्तु भार उठाने और बोझा धीमी गति से ले जाने में समर्थ होते हैं।

हिन्दुस्तान में अब राजस्थान ही एक प्रांत है जहाँ सबसे अधिक ऊँट पाये

जाते हैं। यहीं से दूसरे प्रांतों और देशों को ऊँट भेजे जाते हैं। यहाँ की सरकार को ऊँटों की विक्रीकर से लाखों रुपयों की सालाना आमदनी होती है।

ऊँट की देखभाल अथवा प्रबन्ध —

1. ऊँट को खुली जगह बांधना चाहिए। धूप व वर्षा से बचाने के लिए छाया का प्रबन्ध करना चाहिए। फर्श कच्चा तथा पीछे की ओर ढलान रखना चाहिए। इससे मल मूत्र नालियो में जा सके।
2. सीधा जानवर है इसलिए देखभाल अच्छी करनी चाहिए अन्यथा यह जिद्दी बन जाता है।
3. नियन्त्रण हेतु काम लेने से एक माह पूर्व ही उसके नथुने छिदवा देने चाहिए और छेदों के बीच एक नकेल डाल देनी चाहिए।
4. प्रजनन काल में ऊँटों को ऊँटनियों से अलग रखा जावे अन्यथा ऊँट अधिक परेशान कर सकता है।
5. तीन वर्ष की आयु के ऊँट को सवारी के लिए तैयार करना प्रारम्भ कर देना चाहिए। सवारी करते समय कभी भी ऊँट की गर्दन पर चाबुक नहीं लगाना चाहिए।
6. पांच वर्ष की आयु मे इसे कृषि कार्य में लगाया जा सकता है। दोपहर 2–3 घण्टे का आराम देना चाहिए। दिन मे कुल 8–10 घण्टे से अधिक कार्य नही लेना चाहिए।
7. ऊँट के बाल मार्च-अप्रैल में काटने का रिवाज है। पीठ के उस हिस्से के बाल न काटें जिस पर पलान बाधा जाता है। इससे 2–3 कि० ग्रा० बाल प्राप्त होते हैं।
8. सर्दियों से बचने के लिए कम्बल ओढायें। सरसों या तारामीरा के तेल मे मालिश करनी चाहिए। मालिश के बाद ऊँट को छाया मे रखें।
9. ऊँट को चारा चराकर एकदम तेज नहीं दौड़ना चाहिए। अन्यथा पेट में दर्द अथवा अफारा हो जायेगा।
10. लम्बी, मुलायम व रसदार घास आदि खिलाना चाहिए। पेट भर चराई 5–8 घण्टे में कर लेता है।
11. ज्यादा देर तक ऊँट को भूखा नहीं रखना चाहिए इससे उसे जुगाली करने का समय कम मिलता है और उसका हाजमा बिगड़ जाता है।
12. खाने के साथ प्रतिदिन 50 ग्राम नमक अवश्य खिलायें तथा 20–25 लीटर

स्वच्छ जल पिलायें। पानी पिलाने से पूर्व अथवा सामान उतारने के बाद पिलायें।

13. ऊँट अगर लम्बा सफर करके आया हो तो उसे भूसा या दाना तुरन्त नहीं देना चाहिए। उसे थोड़ा विश्राम करवाकर थोड़ा सा पानी पिलाना चाहिए। पानी में गुड़ अथवा आटा घोला जा सकता है इसके आधा घण्टे बाद चारा देना चाहिए।

14. जिस ऊँट को घर पर भूसा या नाज नहीं देते उसे रोजाना 8–10 घण्टे चरने के लिए जंगल में छोड़ना चाहिए ताकि वह अपना पेट भर सके।

15. जहाँ चिकनी मिट्टी हो वहाँ वर्षा के बाद चरने के लिए नहीं छोड़ना चाहिए, इससे उसके फिसलने का डर रहता है।

16. ऊँटों को साबूत नाज, जौ, जई, चना, बिनौले वगैरह नहीं खिलाना चाहिए, क्योंकि ये साबूत ही मींगनों में निकल जाते हैं जिससे कोई फायदा नहीं होता है। इनको दलवाकर और दलिये को करीब 4–6 घण्टे तक भिगोकर खिलाने से लाभ होता है।

17. ऊँट को दूसरे क्षेत्र में ले जाने पर रोजाना के चारे चरने के भी ले जाना चाहिए ताकि नये चारे खाने में परेशानी न हो। नये चारे को धीरे-धीरे देना चाहिए ताकि हाजमा खराब न हो।

ऊँट का प्रजनन —

1. ऊँट की आयु 6–8 वर्ष होने पर ही उससे प्रजनन का काम लेना चाहिए।
2. ये अधिकतर दिसम्बर से मार्च तक अधिकतर मदकाल में रहती है।
3. औसत गर्भकाल एक वर्ष है। परन्तु ऊँटनी दो वर्ष में एक बार ब्याती है और एक बार में एक ही बच्चा देती है।
4. ये 20 वर्ष तक बच्चा दे सकते हैं और इनकी औसत आयु 40–50 वर्ष होती है।
5. ऊँटनी की ब्यात 10–18 माह तक होती है जिसमें 2 से तीन हजार लीटर दूध देती है।
6. नवजात बच्चे की मृत्यु पर ऊँटनी का दूध निकाल देना चाहिए। इससे थनों में कोई बीमारी होने की आशंका नहीं रहती और दूध भी मनुष्यों के काम आ जाता है।

रोग व बीमारी—

ऐसा पाया गया है कि ऊँटों में रोग निरोध शक्ति दूसरे पालतू पशुओं की तुलना में अधिक होती है। संभव है ऐसा होने का कारण कठिन वातावरण के जलवायु वाले देशों में रहने की वजह से हो, क्योंकि यह पशु ज्यादातर शुष्क मरुस्थलों में ही पाया जाता है, जहाँ मनुष्यों और पशुओं में सामान्यतया बीमारियाँ कम होती हैं। दूसरा कारण इसके हर प्रकार के वृक्षों की पत्तियाँ, झाड़ियाँ, बेलें, पौधे खा लेने की आदत है जिससे इसको हर प्रकार के खनिज व विटामिन मिलते रहते हैं। इसलिए इसके शरीर में किसी तत्व की कमी नहीं आने पाती और अपना स्वास्थ्य अच्छा बनाये रखता है।

(i) स्वस्थ ऊँट का तापमान 100°F होता है। यह 2–3 डिग्री (F) तक घटता बढ़ता रहता है जो कार्य की मात्रा, धूप आदि से होता है। अधिक अन्तर आने पर पशु के बीमार होने का संकेत मिलता है।

(ii) स्वस्थ ऊँट की नाड़ीगति साधारणतया प्रातः 32 से 39 और सायंकाल 34 से 44 प्रति मिनट होती है। नाड़ी देखने से पशु को डराना, उकसाना या धमकाना नहीं चाहिए। इससे तेज या धीमी गति अस्वस्थ पशु का संकेत है। बीमारियों के कारण नाड़ी गति बढ़ सकती है तथा मरने वाले ऊँट की नाड़ी गति कम हो जाती है।

(iii) स्वस्थ ऊँट एक मिनट में 6–9 बार श्वास लेता है। सर्दी के मौसम में यह क्रिया धीमी और गर्मी के मौसम में तेज हो जाती है। दौड़कर आने के बाद यह क्रिया बढ़ जाती है। परन्तु सामान्य दशा में श्वास गति का बढ़ना और घटना बीमारी का सूचक है।

अतः ऊँट पालक को चाहिए कि जैसे ही उसे ऊँट में असामान्य स्थिति दिखाई दे तो पशु चिकित्सक की तुरन्त सलाह लेना चाहिए। ऊँट जुगाली करना बन्द कर दे तथा हरा चारा दाना न खाये तो पशु चिकित्सक को दिखाने में देर नहीं करनी चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "रेगिस्तान का जहाज ऊँट है" इस कथन की पुष्टि कीजिए।
2. जैसलमेरी और बीकानेरी ऊँट में क्या अन्तर है?
3. ऊँट पशु की प्रमुख विशेषताओं को लिखिए।
4. कृषि में ऊँट की क्या उपयोगिता है?
5. ऊँट को स्वस्थ रखने के लिए आप क्या उपाय करेंगे?
6. ऊँटों के प्रजनन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

अध्याय 8

पशुओं की सामान्य देखभाल

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, यहाँ लगभग 60 प्रतिशत कृषि कार्य पशुओं द्वारा किया जाता है। गाय, भैंस व बकरी से हमें पोषक पदार्थ (दूध) मिलता है। परन्तु आजकल पशुओं की दशा बहुत ही शोचनीय है इसका कारण पशुओं को उचित मात्रा में चारा-दाना न मिलना और उनकी भली प्रकार से देखभाल न होना है। इससे पशुओं का स्वास्थ्य गिर जाता है और उनकी उत्पादन क्षमता में भी कमी आ जाती है। उत्पादन में वृद्धि करने के लिए आवश्यक है कि पशुओं की अच्छी प्रकार से सम्भाल की जावे। इसके लिए निम्नलिखित कार्य करने चाहिए—

1. पशुओं को नहलाना :

पशुओं को नहलाना स्वास्थ्य की दृष्टि से अति आवश्यक है। नहलाने से पशु के शरीर पर लगी गन्दगी साफ हो जाती है जिससे पशु के जुएं किलौलियाँ इत्यादि नहीं लगती है और चर्म रोग नहीं होते हैं। पशु को सप्ताह में एक बार किसी भी साबुन से नहलाना चाहिए। पशुओं की पहली सफाई में अधिक पानी का प्रयोग करना चाहिए। बाद की सफाई के लिए कम पानी प्रयोग करना चाहिए। अधिक पानी से पशु की त्वचा के प्राकृतिक गुण (कोमलता) समाप्त होने लगती है और त्वचा सूखने लगती है।

2. व्यायाम कराना :

पशुओं के शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए व्यायाम कराना भी आवश्यक है। व्यायाम कराने के लिए पशु को सुबह, शाम दिन में दो बार टहलाना चाहिए। टहलाने से निम्न लाभ होते हैं—

1. पशु के शरीर का रक्त संचार ठीक होता है।
2. पशु के समस्त अंग सुचारु रूप से कार्य करने लगते है।
3. पशु में चुस्ती एव स्फूर्ति आती है।
4. पशु का खाया चारा दाना टहलने से पच जाता है।
5. पशु का मन उदास नहीं होता है क्योंकि एक ही स्थान पर बंधे होने से पशु का मन ऊब जाता है।

. पशु के खुरहरा करना :

पशुओं को स्वस्थ रखने के लिए संतुलित भोजन आवश्यक है, उसी प्रकार नके शरीर पर खुरहरा करना भी अति आवश्यक है। खुरहरा करने से पशु के रीर का रक्त संचार बढ़ जाता है, पशु के शरीर की धूल, मिट्टी एवं टूटे बाल ड़ जाते हैं जिससे पशु अपने शरीर को हल्का महसूस करता है। खुरहरा करने के लए दो प्रकार के खुरहरों का प्रयोग किया जाता है—1. लोहे का बना खुरहरा 2. सख्त एवं नर्म बालों से बने हुए ब्रुश का खुरहरा।

खुरहरा करने की विधि :

खुरहरा करने की विधि बहुत ही आसान है सर्वप्रथम सख्त बालों के ब्रुश को पशु के शरीर पर मलते हैं, बाद में नर्म ब्रुश से पशु के शरीर की धूल मिट्टी झाड़ देते है। ब्रुश फेरते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि ब्रुश अधिक जोर से न लगे जिससे पशु की चमड़ी उघड़ जाये तथा ब्रुश बालों की दिशा में ही फेरा जाना चाहिए और खुरहरा उसी समय किया जावे जब पशु आराम कर रहा हो।

खुरहरा करने से होने वाले लाभ :

पशुओं को खुरहरा करने से निम्न लाभ होते हैं—

1. पशु का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।
2. पशु के शरीर का रक्त संचार बढ़ जाता है।
3. पशु के शरीर पर लगी धूल-मिट्टी, जूएँ, किलीलियाँ एवं टूटे हुए बाल झड़ जाते हैं जिससे पशु साफ दिखाई पड़ता है।
4. पशुओं के बाल नर्म एवं चमकीले हो जाते हैं।
5. पशु का व्यायाम हो जाता है।
6. पशु को आराम मिलता है जिससे उसकी थकावट दूर हो जाती है।
7. पशु की कार्यक्षमता एवं दुग्ध उत्पादन बढ़ता है।
8. शुद्ध दूध उत्पादन के लिए खुरहरा करना जरूरी है।

4. गाय के मदकाल का अवलोकन :

(ऋतुमयी गाय के लक्षण)

प्रत्येक पशुपालक को यह जानना आवश्यक है कि ऋतुमयी गाय के क्या लक्षण होते है। यदि उसको इस बात का अनुभव नहीं है तो उसे काफी नुकसान उठाना पड़ सकता है क्योंकि ऋतुमति गाय को उसी समय सांड से मिलाना आवश्यक है यदि नहीं मिलाया गया तो उसे ग्याभिन कराने के लिए फिर से ऋतुमयी होने के समय का इन्तजार करना पड़ेगा। एक ऋतुमयी गाय के निम्न लक्षण दिखाई पड़ते है—

1. गाय खाना पीना छोड़ देती है।
2. गाय बेचैन हो जाती है।
3. गाय बार-बार, थोड़ा-थोड़ा मूत्र करती है।
4. नर पशुओं पर चढ़ने लगती है।
5. बार बार रंभाती है।
6. मुड़ मुड़ कर पीछे देखती है।
7. पूंछ ऊपर को उठाती है।
8. योनी से तरल पदार्थ निकलता है।
9. गुप्तांग थोड़ा सा फूल जाता है।
10. एक स्थान पर नहीं ठहरती है।
11. आँखों में विशेष चमक रहती है।
12. गर्भाशय का द्वार खुला रहता है।
13. दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है।
14. बच्चे को पास नहीं आने देती है।

जब गाय में उपर्युक्त लक्षण दिखाई पड़ें तो उसे तुरन्त ही सांड से मिला देना चाहिए। गाय लगभग 2-3 दिन तक ऋतुमयी रहती है परन्तु वह 24 घण्टे में ही सांड से मिलना पसन्द करती है इसलिए उसे 24 घण्टे के अन्दर ही सांड से मिला देना चाहिए। यदि किसी कारणवश गाय को समय पर सांड से न मिलाया जा सके तो वह पुन: 21 दिन बाद ऋतुमयी होगी, उस समय उसे मिलाना चाहिए।

5. ब्यामिन कराने के लिए गाय को ऋतुमयी (गर्भ) करने के उपाय :

सामान्यत: गाय ब्याने के 3–3½ माह के अन्दर ही ऋतुमयी हो जाती है। यदि इस समय में गाय ऋतुमयी हो तो निम्न उपाय द्वारा गाय को गर्माया जाना चाहिए—

1. गाय को सांड के साथ छोड़ देना चाहिए।

2. गाय को 2 किलोग्राम सनई का बीज उबाल कर खिलाना चाहिए। अथवा एक जायफल को गर्म करके चने के आटे के साथ खिलाना चाहिए।

3. गाय की खुराक कम कर देनी चाहिए।

4. पशुचिकित्सक की सलाह लेकर जेस्टाइल का टीका लगवाना चाहिए।

गाय ग्यामिन होने के बाद उसे गर्म वस्तुएँ खिलानी चाहिए और उसकी देखभाल ठीक तरह से करनी चाहिए।

6. गर्भवती गाय की पहचान :

जब गाय गर्मी में आती है तो वह सांड से मिलने को उत्सुक होती है और सांड से मिलकर गर्भ धारण करने वाली गाय को गर्भवती गाय कहते हैं। गर्भवती

गाय में निम्नलिखित लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिससे हम कह सकते हैं कि गाय गर्भवती है—

1. गर्भवती गाय फिर ऋतुमयी नहीं होती है। यह इसका मुख्य लक्षण है।
2. गर्भवती गाय सांड के पास जाना पसन्द नहीं करती।
3. गाय का स्वभाव बदल जाता है।
4. गर्भवती गाय सुस्त रहने लगती है।
5. गाय भागना बन्द कर देती है।
6. गाय के शरीर पर चर्बी बढ़ने लगती है।
7. ज्यों-ज्यों गाय के ब्याने का समय पास आता है उसके पेट एवं अयन में बढ़ोत्तरी प्रारम्भ हो जाती है।
8. कभी-कभी गाय के पेट में बच्चे का हिलना भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है।
9. अयन व थन बढ़ने शुरू हो जाते हैं।
10. गाय के 5-6 माह की ग्यामिन होने पर, उसके पेट पर कान लगाकर बच्चे की धड़कन सुन सकते हैं।
11. योनी से गाढ़ा तरल पदार्थ निकलता है।

उपर्युक्त लक्षण दिखाई पड़ते ही समझना चाहिए कि गाय गर्भवती है। यदि फिर भी स्पष्ट मालूम न पड़े तो पशु चिकित्सक से इसकी परीक्षा करवा लेनी चाहिए।

7. गर्भवस्था में गाय की देखभाल :

गाय गर्भ धारण करने के 280 दिन बाद ब्याती है। इस समय के दौरान गाय के शरीर की क्रियाओं में वृद्धि हो जाती है। जब कोई बछिया पहली बार गर्भ धारण करती है तो उसे भी इस समय में काफी क्रियाशील रहना होता है क्योंकि गर्भ (बच्चा) अपने विकास के लिए माता के ऊपर ही निर्भर होता है। ऐसी स्थिति में गायों की सम्हाल उचित रूप से करनी चाहिए। गाय की देखभाल ठीक न होने से बच्चे (गर्भ) पर और गाय के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

जब पशुपालक को यह पता चल जाए कि गाय गर्भवती हो गई है तो उस समय गाय की देखभाल करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. गर्भवती गाय से उदारता का व्यवहार करना चाहिए।
2. गाय को भगाना नहीं चाहिए और न ही अधिक परिश्रम कराना चाहिए।
3. गर्भ के विकास एवं गाय के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए संतुलित भोजन देना चाहिए।
4. पाचनशील भोजन देना चाहिए।
5. खनिज लवण उचित मात्रा में देने चाहिए।

6. गर्भवती गाय को अन्य गायों से अलग कर देना चाहिए।

7. गाय के ब्याने से 2–3 माह पूर्व दूध निकालना बन्द कर देना चाहिए।

8. गाय को प्रसव के दिन से 15–20 दिन पूर्व बाहर चरने भेजना बन्द कर देना चाहिए।

9. गाय के नीचे बिछावन बिछा देना चाहिए।

10. गाय को गर्म वस्तुएँ नहीं खिलानी चाहिए।

11. गाय को गर्मी-सर्दी से बचाना चाहिए।

12. ब्याने के लगभग एक सप्ताह पूर्व 200 ग्राम अजवान प्रतिदिन खाने के तेल (सरसों का तेल) के साथ देनी चाहिए।

8. प्रसव के समय गाय की देखभाल :

जब गाय की गर्भावधि पूर्ण हो जाती है तो गाय बच्चा जनती है। ऐसी स्थिति को प्रसव अवस्था कहते हैं। प्रसव के समय गाय की सम्भाल अति आवश्यक है। प्रसव पीड़ा शुरू होने पर गाय में निम्नलिखित लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिनसे हम जान सकते है कि गाय ब्याने वाली है—

प्रसव के लक्षण :

1. गाय बार-बार उठती और बैठती है।

2. गाय बार-बार मूत्र करती है।

3. गाय के थन एवं अयन फूल जाते है।

4. गाय चारा दाना चरना बन्द कर देती है।

5. गाय के गुप्तांग से पीले रंग का तरल पदार्थ निकलना प्रारम्भ हो जाता है।

6. गाय एकान्त मे रहना चाहती है।

7. गाय बार-बार लात झटकती है।

उपर्युक्त लक्षणों को देखकर हम गाय के प्रसव के समय का पता लगा सकते है। प्रसव के समय निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिए।

प्रसव के समय देखभाल :

1. गाय के नीचे पुआल या रेत बिछा देना चाहिए।

2. गाय को एकान्त में रखना चाहिए।

3. प्रसव पीड़ा प्रारम्भ होने से 3–4 घण्टे तक तकलीफ रहे और गाय बच्चा न जने तो पशु चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

4. ब्याते समय गाय जो कोमल झिलनी का तरल थैला बाहर निकालती है उसे बच्चे के बाहर आने से पूर्व फाड़ना नहीं चाहिए।

5. ब्याने के ठीक पश्चात् भी गाय और बछड़े को सर्दी से बचाना चाहिए।

9. प्रसव के बाद गाय की देखभाल :

1. ब्याने के बाद गाय को सर्दी से बचाना चाहिए।

2. प्रसव के बाद गाय के पिछले भाग को गर्म पानी में भीगे हुए कपड़े से पोंछ देना चाहिये।

3. प्रसव के बाद गाय के पुट्ठे, योनी, सींग और कानों पर अरण्डी का तेल लगाना चाहिये।

4. प्रसव के तुरन्त बाद गाय को गुड़, अजवायन, सोंठ और मेथी पानी में उबालकर देना चाहिये।

5. यदि गाय पानी पीना चाहे तो गुनगुना पानी पिलाना चाहिये।

6. यदि गाय जेर गिरा दे तो उसे तुरन्त वहां से हटा देना चाहिये। नहीं तो गाय उसे खा जाती है और बीमार हो जाती है।

यदि गाय जेर न गिराये तो पशु डॉक्टर की सलाह लेनी चाहिये। अन्यथा पेट में सड़कर विष बन सकती है जिससे गाय की मृत्यु हो जायेगी।

7. गाय के नीचे सूखा, स्वच्छ एवं मुलायम बिछौना होना चाहिये।

8. प्रसव के 2–3 घण्टे बाद गाय को दलिया देना चाहिये।

जौ + गेहूँ या जौ + बाजरा, थोड़ा सा सोंठ और नमक डालकर दलिया तैयार किया जा सकता है।

9. प्रसव के बाद एक बार में ही पूरा दूध नहीं निकालना चाहिये। दूध की मात्रा 2–3 बार में निकालनी चाहिये।

10. प्रसव काल के शीघ्र बाद उसे खली या दाना नहीं देना चाहिये।

तालिका सं० 27

विभिन्न पशुओं की गर्भावधि

क्र. सं.	नाम पशु	गर्भावधि (दिनों में)
1.	गाय	283 दिन
2.	भैंस	310 दिन
3.	बकरी	145 दिन
4.	भेड़	150 दिन
5.	ऊँटनी	370 दिन
6.	घोड़ी	340 दिन
7.	गधी	374 दिन
8.	बिल्ली	55 दिन
9.	कुत्ती	63 दिन
10.	हथनी	720 दिन

10. गायों का दूध सुखाना :

अगले वर्ष गाय से अधिक दूध प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है कि गा ब्याने के लगभग 2 माह पूर्व गाय का दूध सुखा देना चाहिए। यदि हम गाय ब्याने के समय तक दूध निकालते रहे तो पशु का स्वास्थ्य गिर जाता है और प अगले वर्ष भी दूध कम देता है।

दूध सुखाने की सर्वोत्तम विधि है कि प्रारम्भ में दूध की कम मात्र निकालनी चाहिए बाद में एक समय का दूध निकालना बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकार कुछ समय में पशु का दूध सूख जावेगा। यदि हम इस समय के दौरान पशु के भोजन में थोडी कमी कर दे तो पशु का दूध आसानी से सूख जाता है। दूध सूखने के बाद पशु को संतुलित भोजन देना चाहिए ताकि उसका स्वास्थ्य पुनः सुधर जावे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ऋतुमयी गाय (मदकाल अवधि का) के लक्षणों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. प्रसव के समय एवं प्रसव के बाद गाय की देखभाल हेतु आप क्या-क्या उपाय करोगे ?
3. (अ) किन्हीं 5 पशुओ के गर्भावधि लिखिए।
   (ब) गाय का दूध सुखाने से क्या लाभ होता है ?
4. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   (i) पशु को नहलाना।
   (ii) पशु को व्यायाम कराना।
   (iii) पशु को खुरहरा करना।
   (iv) गाय को गर्म करने के उपाय।

अध्याय 9

बछड़ों की देखभाल

जिस प्रकार ब्याने के बाद गाय की देखभाल अनिवार्य है उसी प्रकार बच्चों की देखभाल करना भी आवश्यक है क्योंकि यही बच्चा भविष्य में ही अच्छी गाय, बैल अथवा सांड बनेगा ।

नये जन्मे बच्चे की देखभाल : बच्चों को स्वस्थ बनाए रखने के लिए प्रारम्भ से ही उनकी देखभाल की जानी चाहिए । नये जन्मे बच्चे की देखभाल की जानी चाहिए । नये जन्मे बच्चे की देखभाल में निम्न क्रियाएँ आवश्यक हैं—

1. बच्चे के शरीर की सफाई :

जब बच्चा सर्वप्रथम बाहर आता है उसके शरीर पर एक झिल्ली रहती है । इस झिल्ली को बच्चे के शरीर से हटा देना चाहिए और बच्चे के शरीर को कपड़े में रगड़ कर, बच्चे को गाय के आगे चाटने के लिए छोड़ देना चाहिए । यदि गाय न चाटे तो बच्चे के शरीर पर थोड़ा नमक बुरका देना चाहिए जिससे गाय बच्चे को चाटने से बच्चे के शरीर का रक्त संचार बढ़ जाता है और बच्चा श्वास लेने लगता है । यदि बच्चा सांस न ले तो उसे कृत्रिम श्वास देना चाहिए ।

2. बच्चे का नाड़ा उपचार :

इसके साथ-साथ नाड़ा उपचार भी करना चाहिए । नाड़ा उपचार करते समय निम्न क्रियाएँ करनी चाहिए—

(i) नाड़े को आधार के नीचे की ओर दो तीन बार दबाना चाहिए जिससे नाड़े के अन्दर का पानी बाहर निकल जावे ।

(ii) आधार से तीन से. मी. नीचे नाड़े को साफ धागे से बांध कर शेष भाग को तेज एवं साफ कैंची से काट देना चाहिए।

(iii) काटने के पश्चात् कटे हुए भाग पर टिंचर आयोडीन लगा देनी चाहिए ।

3. बच्चों को दूध पिलाना :

नाड़ा उपचार करने के बाद बच्चे को दूध पिलाना चाहिए । वैसे तो बच्चा जन्म के 15–30 मिनिट के भीतर ही खड़ा होकर थनों को मुँह लगाने लगता है। फिर भी यदि बच्चे को कुछ कठिनाई आए तो उसके मुँह में गाय का थन देकर उसे दूध पीने में (थन दबाने में) सहायता देनी चाहिए । गाय के जिस दूध को बच्चा

सर्वप्रथम पीता है उसे खीस कहते हैं। बच्चों को खीस पिलाना अति आवश्यक है— क्योंकि इससे निम्न लाभ हैं—

(i) खीस पेट और आँतों की सफाई करती है क्योंकि यह दस्तावर होती है।

(ii) खीस में प्रोटीन, विटामिन ए और डी तथा लोह तत्व होता है जो वृद्धि के लिए आवश्यक है।

(iii) बच्चे को हानिकारक कीटाणुओं के आक्रमण से बचाता है।

यदि किसी कारण से बच्चे को खीस न मिल सके तो उसे एक चम्मच अरण्डी का तेल 2-3 घण्टे बाद देना चाहिए। खीस एवं दूध बच्चों को उसके भार, आयु एवं स्वास्थ्य के अनुसार ही पिलाना चाहिए। दिन में 2-3 बार में थोड़ा-थोड़ा दूध पिलाना अच्छा रहता है। दूध को पिलाने से पूर्व 100^0F तक गर्म कर लेना चाहिए। आयु के अनुसार निम्न मात्रा में बच्चों को भोजन देना चाहिए—

तालिका सं० 28

बच्चों के भोजन की तालिका

क्र. सं	बच्चे की आयु	शुद्ध दूध की मात्रा	सपरेटा दूध की मात्रा	घासी + दाना + चोकर
1.	1 माह तक	4 कि. ग्रा	—	—
2.	1–2 „	3–4 „	1 कि. ग्रा.	200 ग्राम
3.	2–4 „	2–3 „	2 „	500 „
4.	4–5 „	2–2½ „	2 „	1000 „
5.	5–6 „	1–2 „	1 „	1200 „
6.	6–12 „	—	—	1500 „

इसके अतिरिक्त बच्चे को हरी एवं मुलायम घास देनी चाहिए जितनी वह खा सके। प्रति बच्चे को 30 ग्राम नमक एवं खनिज लवण प्रतिदिन देना आवश्यक है।

तालिका सं० 29

सैनिक फार्मों के अनुसार बच्चों को उनकी निश्चित आयु पर दूध, सपरेटा, दाना तथा चारा निम्न प्रकार देना चाहिए—

उम्र		खीस	दूध	सपरेटा	दाना	चारा	दिन में भोजन खिलाने का समय
1–3	दिन	500 ग्राम	—	—	—	—	3
4–7	दिन	—	500 ग्राम	—	—	—	3
2	सप्ताह	—	600 ग्राम	—	—	—	2
3	सप्ताह	—	600 ग्राम	—	—	—	2
4	सप्ताह	—	500 ग्राम	125 ग्राम	[illegible]	—	2
5	सप्ताह	—	500 ग्राम	125 ग्राम	[illegible]	[illegible]	2
6	सप्ताह	—	500 ग्राम	125 ग्राम	[illegible]	[illegible]	2
7	सप्ताह	—	300 ग्राम	180 ग्राम	[illegible]	[illegible]	2
8	सप्ताह	—	300 ग्राम	180 ग्राम	[illegible]	[illegible]	2
9	सप्ताह	—	300 ग्राम	180 ग्राम	[illegible]	[illegible]	2
10–12	सप्ताह	—	250 ग्राम	250 ग्राम	[illegible]	[illegible]	2
13–16	सप्ताह	—	125 ग्राम	250 ग्राम	[illegible]	[illegible]	2
17–19	सप्ताह	—	—	180 ग्राम	[illegible]	[illegible]	2
20–23	सप्ताह	—	—	125 ग्राम	[illegible]	[illegible]	2
24–26	सप्ताह	—	—	50 ग्राम	[illegible]	[illegible]	2

भोजन देते समय ध्यान रखने योग्य बातें :

1. भोजन निश्चित मात्रा एवं अनुपात में देना चाहिए।
2. भोजन निश्चित समय पर देना चाहिए।
3. भोजन खिलाने के बर्तन साफ हों।
4. एक सप्ताह तक की आयु के बच्चों को दिन में तीन बार दूध पिलाना चाहिए।
5. एक सप्ताह से बड़ी आयु के बच्चों को दिन में दो बार प्रातः एवं सायं भोजन देना चाहिए।
6. लवण व खनिज पदार्थ 30 ग्राम अवश्य देना चाहिए।
7. हरा चारा एवं सूखा चारा दो और एक के अनुपात में देना चाहिए।

बच्चों की पालन विधियाँ

1. प्राकृतिक पालन विधि :

इस विधि के अनुसार बच्चो को मां के साथ ही रखकर पालते हैं। उन्हे गाय दुहते समय दूध पिलाया जाता है। बच्चे की आयु के अनुसार उसे एक थन या दो थन का दूध पिलाना चाहिए।

इस विधि से बच्चे पालने के निम्न लाभ हैं—

1. इसमें पशु पालक को अधिक लाभ एवं समय लगाने की आवश्यकता नही होती है।

2. बछड़े के साथ गाय शीघ्र उदीप्त (पावस) होती है।

3. बछड़े को शुरू-शुरू मे दूध पीना सीखना नही पड़ता है।

इन लाभो के अतिरिक्त इस विधि में कुछ दोष भी है, जो निम्न हैं—

1. दूध की मात्रा का ठीक-ठीक पता नही चलता है।

2. बच्चे की मृत्यु होने पर गाय दूध देना बन्द कर देती है।

3. गाय के बीमार होने पर बच्चे के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है।

4. कई बार बच्चे थन काट देते है।

5. बच्चे को शुद्ध दूध ही पिलाना पड़ता है, सपरेटा नही दे सकते है।

6. बच्चे के मुंह की गदगी दूध मे पहुंच सकती है।

7. यदि किसी कारण गाय दूध न दे तो बच्चे को भूखा रहना पड़ता है।

8. दूध की मात्रा ठीक ज्ञात न होने से चारे दाने की मात्रा निश्चित करना कठिन होता है।

2. मां से अलग करके बछड़े को पालना (कृत्रिम विधि)
(Weaning System)

गाय के ब्याने के तीन चार दिन बाद बच्चे को गाय से अलग करने की क्रिया को वीनिंग कहते है। इस विधि मे बच्चो को दूध अलग से पिलाया जाता है। दूध पिलाने के लिए बोतल, कृत्रिम थन अथवा खुले बर्तन मे अगुलियों का प्रयोग करते हैं।

खुले बर्तन मे दूध लेकर उसमे हाथ की हथेली एवं अंगुलियां डुबो कर, हाथ के बीच की अंगुली बच्चे के मुंह में लगाते हैं। बच्चा अंगुली को थन समझ कर दूध पीने लगता है।

इसके अलावा एक बाल्टी में एक टोंटी लगा कर उसके आगे रबर की थन के आकार की नली लगा देते है। बाल्टी में दूध भर कर थोड़ा ऊंचा टांग देते हैं। बच्चे के मुंह में रबर की टोंटी लगाकर टोंटी आवश्यकतानुसार खोल देते है जिससे बच्चा आसानी से दूध पी सके।



चित्र संख्या 16 (बच्चे को माँ से अलग करके दूध पिलाना)

कृत्रिम विधि से बच्चे पालने के लाभ :

1. गाय की दूध की मात्रा का सही-सही पता लग जाता है।
2. गाय की बीमारी बच्चे को नहीं लगती है।
3. चारा दाना दूध उत्पादन के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है।
4. बछड़े को संतुलित आहार दिया जा सकता है।
5. यदि किसी कारण बच्चा मर जावे तो गाय दूध देती रहती है।
6. गाय की मृत्यु होने पर भी बच्चा आसानी से पाला जा सकता है।
7. शुद्ध दूध उत्पादन में सहायक है।

दोष :

1. बच्चे को दूध पिलाने में अधिक श्रम एवं व्यय होता है।
2. कई गायें बछड़े के बिना दूध नहीं देती या कम देती हैं।

पशुओं को चिह्नित करना :

बड़े-बड़े फार्मों पर जहाँ पशुओं की संख्या अधिक होती है वहाँ पर पशुओं की पहचान करना उतना आसान नहीं है जितना कि हम सोचते हैं। हर एक पशु को अलग नाम या संख्या से पुकारना तथा उसको याद रखना बहुत ही कठिन कार्य है। इस कार्य को सरल बनाने के लिए पशु की छोटी अवस्था में ही कुछ मुख्य भागों पर चिह्न लगा देते हैं अथवा अंक लगाते हैं। इसी क्रिया को चिह्नित करना कहते हैं।

पशुओं को चिह्नित करने का समय :

पशु को चिह्नित करने का सबसे अच्छा समय पशु की बाल्यावस्था ही है। वैसे तो हम कभी भी पशु को चिह्नित कर सकते हैं। पशु की छोटी अवस्था में भी

सर्दी की ऋतु में चिह्नित करना उत्तम रहता है क्योंकि इस समय घाव शीघ्र भर जाता है। यह कार्य वर्षा ऋतु में कभी भी नहीं करना चाहिए क्योंकि घाव शीघ्र ठीक नहीं होता है।

चिह्नित करने के उद्देश्य :

1. बड़े-बड़े समूहों में हर एक पशु को पहचानने के लिए अंकित किया जाता है।

2. पशुओं के पंजीकरण के लिए उनके नाम अथवा संख्या का होना आवश्यक है।

3. पशुओं की वंशावली को जानने के लिए उनको नाम या संख्या से सम्बोधित करने के लिए अंकित करना जरूरी है।

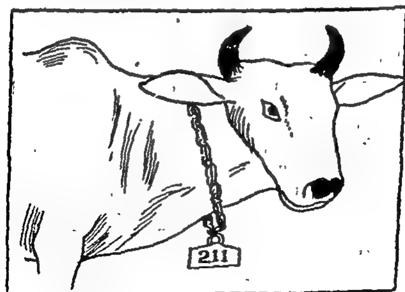
4. पशु की जांच इत्यादि करने के लिए, उनका उत्पादन अंकन के लिए पशुओं का नाम या संख्या होना आवश्यक है।

चिह्नित करने की विधियां

सभी प्रकार के पशु पक्षियों को एक ही प्रकार से चिह्नित नहीं किया जा सकता है। उनको चिह्नित करने की अलग-अलग विधियां है, जो निम्न हैं—

1. टेगिंग (गले में नम्बर प्लेट बांधना) :

यह विधि अन्य सभी विधियों से आसान है। इस विधि में पशु के गले में टीन



चित्र सं० 17 (फीता बांधना)

की एक प्लेट पर पशु की संख्या या नाम लिखकर उसके गले में बांध देते हैं। इसी प्लेट को देखकर हम पशु की पहचान कर सकते हैं। इस विधि का मुख्य दोष है कि कुछ समय बाद प्लेट के अंक मिट जाते हैं और कई बार पशु गले में से प्लेट गिरा लेता है तथा कभी-कभी बरसात के कारण प्लेट पर जंग लग जाने से प्लेट के अंक पढ़ने योग्य नहीं रहते है।

2. दागना (Branding)

इस विधि में लोहे की छड़ अथवा लोहे के बने अंकों को लाल गर्म करके पशु की जाघ पर दाग देते है। इस लोहे के बने अंकों को "ब्राडिंग आयरन" कहते है। ये संख्या में नौ होते हैं। ये अंक एक से आठ तथा शून्य के अंक होते हैं। अंक नौ के लिए अंक छः को ही उल्टा करके प्रयोग करते है। (देखो चित्र संख्या 19)



चित्र सं० 18 (दागने का यंत्र)

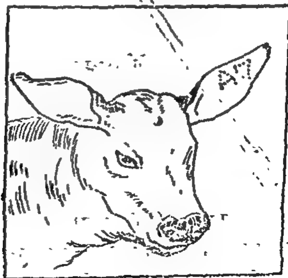
दागने के लिए निश्चित अंकों को लाल गर्म कर लेते है और जहाँ जाघ पर दागना होता है वहाँ से बाल काट कर कार्बोलिक लोशन लगाकर, बाद में लोहे के निर्धारित अंकों से दाग देते है। दागने का कार्य शरद् ऋतु मे ही किया जाना चाहिए। यदि दागने में कोई कमी रह जावे तो उसे पुनः दागना चाहिए नहीं तो पशु की जाघ पर सूजन आ जाती है।



चित्र सं० 19 (दागना)

3. टैटूइंग द्वारा (Tattoing)

इस विधि से अंकित करने में एक विशेष प्रकार के यन्त्र को काम में लेते हैं जिसे "टैटूइंग" कहते हैं। यह यन्त्र सण्डासी की तरह का होता है। इसके अगले भाग



चित्र सं० 20 (गोदना)

में दो जबड़े होते हैं। एक जबड़े के अन्दर की तरफ सख्त रबर लगा रहता है और

दूसरे जबड़े में एक खाँचा होता है जिसमें काँटेदार अंक लगाए जाते हैं। इस यन्त्र द्वारा पशु के कान के मुलायम भाग पर नम्बर लगाए जाते है। पशु के कान पर जो संख्या बनानी हो उसे इस यन्त्र के जबड़े मे लगा लेते है तथा कान के बाल हटा कर, यन्त्र द्वारा वह संख्या पंच (छेद) कर देते है। बाद में इसमें (पंच स्थान में) टेटूईंक इंक (स्याही) लगा देते है। यह अंक अधिकतर कान के निचले भाग में लगाए जाते है। इस विधि से पशुओं को कष्ट कम होता है। परन्तु पहचान के लिए उसके पास जाना पड़ता है।



चित्र सं० 21 (टैटूइंग यन्त्र)

4. छल्ला विधि (Ringing)

इस विधि में एल्यूमीनियम या लोहे के बने छल्लो पर संख्या बनाकर पशु या पक्षी के परो में बांध देते है। अधिकतर यह विधि मुर्गियो, बत्तखो को अंकित करने के लिए प्रयोग की जाती है।

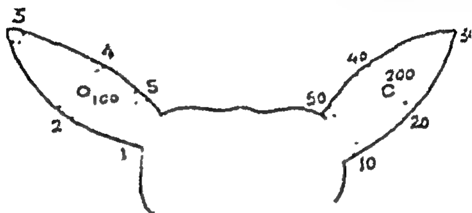
101

चित्र सं० 22 (छल्ले के लिए एल्यूमीनियम की पतली पत्ती)

5. कान पर निशान अथवा छेद बनाना (Notching)

इस विधि में पशुओं के कान पर निशान लगाए जाते हैं। यह कार्य कम आयु के पशुओं में करना चाहिए क्योकि उनके कान की त्वचा मुलायम होती है जिससे कार्य सरलता से एवं कम कष्टप्रद होता है तथा कान से रक्त भी कम मात्रा में निकलता है। इस विधि में कान का बाहरी किनारा काटा जाता है या कान में छेद तथा काट का विभिन्न स्थान के अनुसार विभिन्न अंक होता है। कान को काटने के लिए कैंची या अन्य यन्त्र का प्रयोग किया जाता है। काटने के तुरन्त बाद टिंचर ऑफ आयोडीन लगा देनी चाहिए जिससे घाव शीघ्र ठीक हो जावे। यह कार्य वर्षा के दिनों में नही करना चाहिए। कान को चित्रानुसार काटकर विभिन्न संख्या अंकित की जा सकती है।

इस तरीके का मुख्य दोष है कि कई बार कटे हुए या छेद किए हुए कान पर घाव बन जाते व ग्रस्त ... हो जाती है और पशु के कानों की सुन्दरता नष्ट हो जाती है।



चित्र सं० 23 (नाचिंग विधि)

उदाहरण :

302 एवं 125 संख्या वाले पशु को नाचिंग विधि से दिखायें।

पशु संख्या 302 :



चित्र सं० 24।

पशु संख्या 125 :



चित्र संख्या 25

सींग रोधन (Dehorning)

पशुओं को सींग हीन करने की क्रिया को सींग रोधन कहते हैं अथवा सींगों की वृद्धि को रोकने के लिए जो क्रिया की जाती है उसे सींग रोधन कहते हैं। आजकल अधिकतर छोटे सींग वाले या बिना सींग वाले पशु ही पसन्द किए जाते हैं। पशुओं के सींग रोधन की निम्नलिखित विधियाँ हैं—

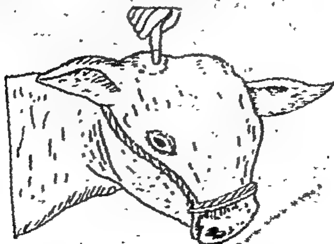
1. डी-हॉर्निंग स्तीकर द्वारा :

इस विधि से पशुओं को दो सप्ताह की आयु में सींग हीन किया जाता है क्योंकि इस आयु में एक तो सींग पूर्ण रूप से विकसित नहीं होते हैं और दूसरे उनके सींग अभी मुलायम रहते हैं। इसलिए सींग बटनों के ऊपर का भाग नष्ट होने से सींग कट जाते हैं और पशु के घाव नहीं हो पाता। छोटे बच्चों में इसका प्रयोग अच्छा रहता है।

2. आरी द्वारा सींग काटना :

युवा अवस्था के पशुओं को सींग हीन करने के लिए आरी का प्रयोग किया जाता है। इस आरी को "डीहॉर्निंग सा" कहते हैं। इस विधि में सींगों को चमड़ी से लगभग एक सेमी ऊंचा काटते हैं। काटने के बाद सींग के कटे भाग पर टिंचर आयोडीन लगा देते हैं।

इस विधि द्वारा सींग हीन करने की क्रिया सर्दी की ऋतु में करनी चाहिए। वर्षा ऋतु में घाव के पकने का डर रहता है। इस विधि का प्रयोग छोटे बच्चों में नहीं करना चाहिए। यह विधि भैंसों के लिए उत्तम है।



चित्र —

3. पोटाश की छड़ द्वारा :

इस विधि से सींग रोधन का कार्य छोटे बच्चों में किया जाता है। जब बच्चे की आयु 8 से 10 दिन होती है तो इस विधि से सींग रोधन किया जाता है। सर्व-प्रथम सींगों वाले स्थान पर से बालो को कैंची की सहायता से काट देते हैं। बाद में कास्टिक पोटाश की छड़ को कपड़े या कास्टिक होल्डर में लगाकर पकड़ते हैं और उसे सींग के स्थान पर रगड़ते है। रगड़ने से वह स्थान पहले लाल फिर सफेद और अन्त में गहरा लाल दिखाई पड़ने लगता है और इसके बाद खून बहने लगता है। जब रक्त निकलने लगे तो घाव पर टिंचर ऑफ आयोडीन लगा देनी चाहिए इस कार्य में विशेष सावधानी रखी जानी चाहिए कि खून बच्चे की आंखो व मुंह में न जाने पाये तथा छड़ को केवल सींग के बटन (स्थान) पर ही रगड़ना चाहिए। कास्टिक छड़ को हमेशा बन्द शीशी में रखना चाहिए। (देखो चित्र सं. 26)

4. विद्युत द्वारा :

आजकल सींग रोधन करने के लिए "इलेक्ट्रिक डी होरनिंग" का प्रयोग किया जाने लगा है। यह विधि बड़े पशुओं के लिए उपयोगी है। इसमें "इलेक्ट्रिक डीहोरनर" को सींग के स्थान पर रखकर विद्युत प्रवाह प्रारम्भ कर देते है। इससे यन्त्र 900°F से 1000°F तक गर्म हो जाता है जिससे सींग की समस्त कोशिकाएँ नष्ट हो जाती है। इस कार्य में 5 से 10 सैकिण्ड का समय लगता है।

इसके अतिरिक्त यदि सींग हीन सांड से गायो को ग्याभिन कराया जावे तो सन्तान सींग हीन ही पैदा होगी।

सींग रोधन से लाभ

1. थोड़े से स्थान पर अधिक संख्या में पशु रख सकते हैं।
2. छोटी नांद मे भी सींग हीन पशु आसानी से चारा खा सकते हैं।
3. आपस की लड़ाई में पशु एक दूसरे को घायल नही करते।
4. पशुओं को वश में आसानी से कर सकते हैं।
5. पशु शरीर खुजलते समय स्वयं को घायल नही करते।
6. पशुपालक को हानि कम होती है।
7. पशु देखने मे सुन्दर लगते है।
8. सींग हीन पशुओं का मूल्य अधिक मिलता है।

बधियाकरण (Castration)

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। अधिकतर यहां के कृषकों के पास थोड़ी-थोड़ी जमीन है जिस पर मशीनों का प्रयोग नही हो सकता है क्योंकि एक तो जमीन कम है, दूसरी किसानों की आर्थिक स्थिति अच्छी नही है। इस कारण इन छोटे किसानों की कृषि का कार्य बैलो पर ही निर्भर करता है। कृषि कार्य को अच्छे तरीके

से करने के लिए अच्छे बैलों की आवश्यकता होती है। अच्छी नस्ल प्राप्त करने के लिए अच्छे सांड़ों की आवश्यकता होती है। परन्तु हमारे गाँवों में सांड छोड़ने की प्रथा है। उसमें व्यक्ति सांड छोड़ते समय उसकी नस्ल का ध्यान नही रखता है। यदि साड खराब नस्ल का छोड़ दिया गया तो आगे की पूरी नस्ल (जो उस विशेष सांड से ग्याभिन हो) खराब हो जाती है।

इसलिए खराब सांडों की संख्या कम करने के लिए और बछड़ों को बधिया किया जाता है। बैलों में यदि पुरुषत्व रहेगा तो वे कृषि कार्य नहीं कर सकते हैं।

बधियाकरण क्यों किया जाय ?

1. बछड़ों को बैल बनाने के लिए।
2. उनकी काम चेष्टा समाप्त करने के लिए ताकि वे कृषि कार्य कर सकें।
3. मादा पशुओं के प्रति रुचि कम करने के लिए।
4. बैलों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए।
5. उनकी सहनशीलता एवं शारीरिक शक्ति में वृद्धि करने के लिए।
6. घटिया एवं कमजोर नस्ल की उत्पत्ति रोकने के लिए।
7. उनको आज्ञाकारी बनाने के लिए।
8. उनमें फुर्ती एवं चुस्ती लाने के लिए।

बधियाकरण का समय

बधियाकरण करने के लिए अक्तूबर-नवम्बर का महीना उत्तम माना गया है क्योंकि इन दिनों घाव आसानी से एवं शीघ्रता से ठीक हो जाता है। यह कार्य बरसात के दिनों में कभी भी नहीं करना चाहिए क्योंकि घाव के पकने का डर रहता है। इसके साथ-साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बछड़े की आयु 12 माह और 15 माह के मध्य हो तो अच्छा है।

बधिया करने की विधियाँ

बछड़ों को बधिया करने की निम्नलिखित दो विधियाँ हैं -

1. ग्रामीण या देशी विधि।
2. वैज्ञानिक या आधुनिक विधि।

(A) ग्रामीण विधि :

यह विधि प्राचीन समय मे गाँवो में अपनाई जाती थी। इसमें बछड़े के अण्डकोषों या उनकी नसो को पत्थर अथवा लोहे के मूसल से कुचल दिया जाता था जिससे उसके अण्डकोष नष्ट हो जाते थे और उसका पुरुषत्व नष्ट हो जाता था। इस विधि के अग्रलिखित कई दोष हैं, जिस कारण आजकल प्रयोग में नही लेते हैं—

1. पशु को बहुत अधिक पीड़ा होती है।

2. कई बार पीड़ा के कारण पशु की मृत्यु तक हो जाती है।

3. पशु का स्वास्थ्य पीड़ा के कारण बिगड़ जाता है और वह कई दिन तक चल फिर नही सकता।

(B) वैज्ञानिक विधि :

ग्रामीण विधि के दोषों को देखकर आजकल ऐसी विधि निकाली गई है जिसमें उपर्युक्त दोष काफी सीमा तक कम हो गये हैं। वैज्ञानिक विधि में बधियाकरण करने की भी तीन विधियाँ हैं—

(i) चीरा लगाकर।

(ii) बर्डिजो कास्ट्रेटर द्वारा।

(iii) रबड़ का छल्ला चढ़ाकर।

(i) चीरा लगाकर :

इस विधि में शल्य चिकित्सा द्वारा नर पशु के अण्डकोषों को चीरा लगा कर अलग कर दिया जाता है। इस कार्य के लिए चिकित्सक का अनुभवी होना आवश्यक है। इस विधि का मुख्य दोष है कि इससे पशु को कष्ट होने के साथ-साथ छूत के रोग भी लग सकते हैं और घाव के पकने का डर भी रहता है।

(ii) बर्डिजो कास्ट्रेटर (By Burdizzo's Castrator)

इस विधि में एक यन्त्र के द्वारा पशु को बधिया किया जाता है। इटली के वैज्ञानिक मिस्टर बर्डिजो ने पशुओं को वैज्ञानिक ढंग से बधिया करने के लिए इस यन्त्र का आविष्कार किया। उन्ही के नाम पर इस यन्त्र का नाम बर्डिजो कास्ट्रेटर पड़ा। इसके अतिरिक्त मिस्टर एसथोनी ने भी एक यन्त्र का निर्माण इस हेतु किया जो बर्डिजो से कुछ भिन्न है और उसकी कार्य प्रणाली थोड़ी कठिन होने के कारण उसका प्रयोग नहीं किया जाता है। इन यन्त्रों को रक्त रहित बधियाकरण यन्त्र (Blood less Castrator) कहते है।



चित्र सं० 27 (बर्डिजो कास्ट्रेटर)

बर्डिजो कास्ट्रेटर एक संडासी की तरह का लोहे का बना यन्त्र होता है। इसके दो जबड़े होते हैं। इनके बीच में अण्डकोषों के ऊपर की नसो को दो बार दबा

कर नष्ट कर दिया जाता है । कुछ दिन के बाद ग्रण्ड कोष सूख जाते हैं । नस को दबाने से स्परमेटिक कोर्ड नस का सम्बन्ध टूट जाता है जिससे अण्डकोषों को रक्त, भोजन ग्रौर ग्रॉक्सीजन मिलना बन्द हो जाता है जिसके फलस्वरूप ग्रण्डकोष नष्ट हो जाते है। इस कार्य में दो से तीन मिनट का समय लगता है। थोड़ी सी जानकारी करने के बाद एक साधारण व्यक्ति भी इस कार्य को ग्रासानी से कर सकता है।

(iii) रबड़ का छल्ला चढ़ाकर :

यह विधि पहली समस्त विधियों से ग्रासान है। इसमें एक सख्त रबड़ का छल्ला ग्रण्ड कोषों की ऊपर की नसों पर चढ़ा दिया जाता है जिससे नसें दब जाती हैं ग्रौर ग्रण्ड कोषों का सम्पर्क टूट जाने से उनमें रक्त, भोजन एवं ग्रॉक्सीजन न पहुँचने से वे सूख जाते हैं।

बधियाकरण करते समय निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिए—

1. यन्त्र की देखभाल पहले भली प्रकार कर लेनी चाहिए।
2. पशु का स्वास्थ्य ठीक होना चाहिए।
3. पशु की ग्रायु 12 से 15 मास होनी चाहिए।
4. जिस पशु को बधिया करना हो उसे कम से कम 3-4 घण्टे भूखा रख कर बधिया करना चाहिए।
5. बरसात के मौसम में बधिया नहीं करना चाहिए।
6. बधिया करते समय पशुग्रों को धीरे से दायीं ग्रोर से चीरना चाहिए।
7. पशु के गिरते ही उसकी पेडी ढीली कर देनी चाहिए जिससे उसे श्वसन क्रिया में कठिनाई न हो।
8. पशु का सिर पीछे की ग्रोर कर देना चाहिए।
9. बधिया करते समय घाव होने पर टिंचर ग्रायोडीन लगा देना चाहिए।

बैल व सांड में ग्रन्तर

ग्राग्रो बच्चों तुम्हें ग्राज एक राज की बात बताते है।
बैल सांड में ग्रन्तर क्या है, तुम्हें ग्राज समझाते हैं ॥1॥
एक साथ ही जन्म लिया ग्रौर, एक साथ ही बड़े हुये।
एक साथ ही पाले जाते, वीर्य दोनों लिये हुये ॥2॥
डेढ़ वर्ष की ग्रायु ग्रन्दर, जो बछड़े बधिया किए गये।
वीर्य ग्राना उन्हें बन्द हुग्रा, गाय भैंस से नफरत किए हुये ॥3॥
ग्रण्डकोष सूख जाने पर, बैलो की संज्ञा पाते है।
बैल सांड में ग्रन्तर क्या है, तुम्हें ग्राज समझाते है ॥4॥
ग्राग्रो बच्चो ‥ ....

अध्याय 10

सांडों का प्रबन्ध

भारत में बछड़ों को दो कार्यों के लिए पाला जाता है—1. अच्छे बैल बनाने के लिए। 2. अच्छे सांड बनाने के लिए।

बछड़े का अच्छा पालन, पोषण व देखभाल ही भविष्य में अच्छा बैल या सांड बनाती है। यदि प्रारम्भ में बछड़े को सन्तुलित आहार एवं सुरक्षा न मिले तो उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है जो सांड या बैल के गुणों को प्रभावित करता है।

अतः एक बछड़े को अच्छा सांड बनाने के लिए उसकी देखभाल, उचित पालन-पोषण एवं प्रबन्ध करना आवश्यक है क्योंकि कहावत है कि अकेला सांड आधे झुण्ड के बराबर होता है अर्थात् एक सांड एक वर्ष में लगभग 50 बच्चे पैदा कर सकता है, जबकि गाय के बैल एक।

सांड के उचित पालन-पोषण एवं देखभाल करने में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

1. बछड़े की देखभाल जिसे भविष्य में सांड बनाना है :

उस बछड़े को जिसे सांड बनाना है [illegible] माह की आयु में बछियों से अलग कर देना चाहिए और उसकी देखरेख, रहने का स्थान, व्यायाम तथा सर्दी-गर्मी से रक्षा का उचित प्रबन्ध करना चाहिए। एक बछड़ा लगभग दो वर्ष में सांड बन जाता है परन्तु $2\frac{1}{2}$ वर्ष की आयु से पूर्व उससे गायों को ग्याभिन नहीं कराना चाहिए।

2. सांड का निवास स्थान :

सांड को रखने के लिए खुले हुए हवा एवं प्रकाश युक्त पर्याप्त स्थान की आवश्यकता होती है जहाँ सांड स्वतन्त्रता पूर्वक घूम-फिर सके। साल भर में कम से कम दो बार सांड घर में सफेदी करा देनी चाहिए और उसकी सफाई प्रतिदिन करनी चाहिए। स्वच्छ वातावरण सांड को स्वस्थ व प्रसन्न रखने में बहुत सहायक होता है। सांड घर ऐसा हो जिससे सांड की गर्मी, सर्दी तथा वर्षा से रक्षा हो सके।

3. सांड को व्यायाम करवाना :

सांड के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए उसे व्यायाम कराना आवश्यक है। यदि उसे बांध कर रखेंगे तो वह नपुंसक बन जायेगा। इसलिए उसे प्रतिदिन 1–2 किलोमीटर की दूरी तक घुमाना चाहिए या उसे गाड़ी इत्यादि में जोतना चाहिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पशुओं को अंकित करने की कौन-कौन सी विधियाँ हैं ? विस्तार से समझाओ।
2. सींग रोधन क्या है ? इसकी आवश्यकता क्यों होती है ? सींग रोधन की विधियाँ लिखिए।
3. वधियाकरण के क्या-क्या लाभ हैं ? वधियाकरण की सर्वोत्तम विधि का वर्णन कीजिए।
4. बैल व सांड में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. निम्न बिन्दुओं के आधार पर बछड़े की देखभाल आप कैसे करोगे—
   1. बच्चे के शरीर की सफाई
   2. नाड़ा-उपचार
   3. बच्चों का भोजन
6. छोटे बच्चे को कितनी विधियों से पाला जाता है ? माँ से अलग किये गये बछड़ों की देखभाल आप अपने शब्दों में लिखिए। इसमें क्या-क्या लाभ होता है ?
7. निम्न पर टिप्पणी लिखिए -
   (i) दागना (ii) नाड़ा-उपचार,
   (iii) कास्टिक छड़ (iv) बर्डिजो, कास्ट्रेटर

अध्याय 10

सांडों का प्रबन्ध

भारत में बछड़ों को दो कार्यों के लिए पाला जाता है—1. अच्छे बैल बनाने के लिए। 2. अच्छे सांड बनाने के लिए।

बछड़े का अच्छा पालन, पोषण व देखभाल ही भविष्य में अच्छा बैल या सांड बनाती है। यदि प्रारम्भ में बछड़े को सन्तुलित आहार एवं सुरक्षा न मिले तो उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है जो सांड या बैल के गुणों को प्रभावित करता है।

अतः एक बछड़े को अच्छा सांड बनाने के लिए उसकी देखभाल, उचित पालन-पोषण एवं प्रबन्ध करना आवश्यक है क्योंकि कहावत है कि अकेला सांड आधे झुण्ड के बराबर होता है अर्थात् एक सांड एक वर्ष में लगभग 50 बच्चे पैदा कर सकता है, जबकि गाय के बैल एक।

सांड के उचित पालन-पोषण एवं देखभाल करने में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

1. बछड़े की देखभाल जिसे भविष्य में सांड बनाना है :

उस बछड़े को जिसे सांड बनाना है छः माह की आयु में बछियों से अलग कर देना चाहिए और उसकी देखरेख, रहने का स्थान, व्यायाम तथा सर्दी-गर्मी से रक्षा का उचित प्रबन्ध करना चाहिए। एक बछड़ा लगभग दो वर्ष मे सांड बन जाता है परन्तु $2\frac{1}{2}$ वर्ष की आयु से पूर्व उससे गायों को ग्याभिन नहीं कराना चाहिए।

2. सांड का निवास स्थान :

सांड को रखने के लिए खुले हुए हवा एव. प्रकाश युक्त पर्याप्त स्थान की आवश्यकता होती है जहां सांड स्वतन्त्रता पूर्वक घूम-फिर सके। साल भर में कम से कम दो बार साड घर में सफेदी करा देनी चाहिए और उसकी सफाई प्रतिदिन करनी चाहिए। स्वच्छ वातावरण सांड को स्वस्थ व प्रसन्न रखने में बहुत सहायक होता है। सांड घर ऐसा हो जिससे सांड की गर्मी, सर्दी तथा वर्षा से रक्षा हो सके।

3. सांड को व्यायाम करवाना :

सांड के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए उसे व्यायाम कराना आवश्यक है। यदि उसे बांध कर रखेंगे तो वह नपुंसक बन जायेगा। इसलिए उसे प्रतिदिन 1–2 किलोमीटर की दूरी तक घुमाना चाहिए या उसे गाड़ी इत्यादि में जोतना चाहिये।

व्यायाम करने से सांड स्वस्थ रहता है। रोग और बीमारी उसके पास नहीं आती है।

4. सांड का भोजन :

सांड के बचपन का भोजन वही होना चाहिए जिसमें छः माह के बछड़े को दिया जाता है परन्तु छः माह बाद उसे अलग किया जाता है तो उसे पौष्टिक भोजन देना चाहिये। भोजन में दाना, दाल वाली फसलों का चारा, साइलेज, नमक तथा खनिज लवण उचित भाग में होने चाहिए और खाने पिलाने में समय की नियमितता का ध्यान रखा जाना चाहिए। जहाँ तक हो भोजन में चिकनाई तथा शक्कर की मात्रा बहुत कम होनी चाहिए। अधिक चिकनाई से सांड के शरीर पर चर्बी चढ़ जाती है जिससे वह अपना कार्य सुचारु रूप से नहीं कर पाता। यदि चर्बी चढ़ जाय तो उसे शारीरिक परिश्रम लेना चाहिए और साथ ही दाने की मात्रा कुछ समय के लिए कम कर देनी चाहिए जिससे उसके शरीर की चर्बी कम हो जावे। एक सांड को प्रतिदिन भोजन निम्नानुसार देना चाहिए—

(अ) दाना—1. एक कि. ग्रा. दाना सांड के जीवन निर्वाह हेतु देना चाहिये।
2. दो कि. ग्रा. दाना सांड के उत्पादन कार्य हेतु देना चाहिए।
3. दोनों के मिश्रण में 40% अनाज+दाल, 40% खली और 20% चोकर हो।

(ब) चारा—सांड के भार के अनुसार 100 कि. ग्रा. भार पर 2½ कि. ग्रा. सूखा पदार्थ देना चाहिए। सूखे पदार्थ की आधी मात्रा सूखे चारे से तथा आधी हरे चारे से दी जावे। हरे चारे में दाल वाली बिन दाल वाली दोनो तरह के चारे को प्रयोग में लाना चाहिये।

(स) नमक एवं खनिज लवण—प्रत्येक सांड को 30 ग्रा. नमक व 30 ग्रा. हड्डी का चूरण प्रतिदिन देना चाहिए।

5. सांड से सेवा लेना :

जब गाय को ग्याभिन करना हो तो गाय को सर्विस क्रेट में खड़ा करके सांड को छोड़ना चाहिए और सांड को दो तरफ रस्सी से बांधकर छोड़ना अच्छा रहता है। अगर सांड को पौष्टिक आहार दिया जाता है तो उससे प्रति सप्ताह दो गायें ग्याभिन करानी चाहिए। दो से अधिक गायें ग्याभिन कराने से सांड की सेवा शक्ति कम हो जाती है। सांड की आयु 2½ वर्ष से कम हो तो गाय को ग्याभिन नहीं करानी चाहिए। एक सांड की अधिक से अधिक सेवा अवधि 14 वर्ष होती है। परन्तु "कोपलेण्ड" के कहने के अनुसार एक सांड की सेवा अवधि 9½ वर्ष है और "लूस"

के अनुसार केवल दो वर्ष ही सेवा लेना उत्तम है। एक वर्ष में एक सांड लगभग 50 से 100 गायें ग्याभिन कर सकता है।

6. सांड की सम्भाल :

सांडों का व्यवहार उसकी सम्भाल पर निर्भर करता है। यदि सांड के साथ दया, नम्रता का व्यवहार किया जावेगा तो सांड सीधा सादा होगा, परन्तु इसके विपरीत व्यवहार पर खतरनाक रूप धारण कर लेते हैं अतः सांड के साथ शुरू से ही अच्छा व्यवहार करना चाहिये। उसके मालिश, खुरहरा तथा अच्छा व्यवहार से खतरनाक सांड भी सीधा बन जाता है। सांड को काबू करने के लिये सांड के नाक में छल्ला पहना देते हैं। इसे नाक का छल्ला (Nose ring) कहते हैं। यह धातु का बना हुआ एक छल्ला होता है जो आसानी से खुल सकता है एवं बन्द हो सकता है। इस छल्ले को नाक के नथने के नीचे पहनाया जाता है। इस छल्ले द्वारा सांड को आसानी से काबू में करने के लिए बुलहोलडर या लीडर का प्रयोग करते है। यह 1·8–2 मीटर लम्बा लकड़ी का लट्ठा होता है। इसके एक किनारे पर एक हुक लगा होता है और उस हुक के एक लम्बी रस्सी बंधी होती है। इस हुक को सांड के नाक के छल्ले में फंसा देते हैं। हुक में एक प्रकार का स्प्रिंग लगा होता है जिससे यह हुक अपने आप छल्ले से नहीं निकलता। हुक से लगी रस्सी को खींचने से हुक छल्ले से निकल जाता है। बुलहोलडर लगाकर एक साधारण व्यक्ति भी सांड को काबू मे कर सकता है।

7. सांड को नाथना :

सर्वप्रथम सांड को धीरे से पकड़कर उसे एक मजबूत रस्सी से बांध देना चाहिये। रस्सी को सांड की कमर से बांधकर जिस ओर खड़े है उसकी दूसरी ओर सांड की अगली टांग बांधकर खींचने से सांड आसानी से गिर जाता है। अब किसी यन्त्र द्वारा नाक मे छेद बनाया जाता है। बाद में रस्सी डालकर दवा लगादी जाती है जिससे नाक में घाव न पड़े। सांड को नाथने के लिए 5–6 मनुष्यों की जरूरत पड़ती है।

सावधानियाँ :

(i) सांड गिराने के बाद वह हिलने न पावे।

(ii) छेदते समय ध्यान रखा जावे कि दूसरी नस न फटे।

(iii) छेदने के बाद दवा अवश्य लगा दी जाय।

उपकरण :

रस्सी, छेद करने का यन्त्र।

8. सांडों की कमी पूर्ति :

देखा जाय तो भारत में सांडो की कमी नहीं है परन्तु उत्तम नस्ल के सांडो की कमी अवश्य ही है। इस कमी को पूर्ण करने के लिए हम निम्न कार्य कर सकते हैं—

1. कृत्रिम गर्भाधान।
2. उत्तम नस्ल की गायों को पालना।
3. उत्तम नस्ल के सांडों को संरक्षण देना।
4. सांड सहकारी संस्था की स्थापना करना।
5. उत्तम नस्ल का वीर्य एकत्रित करने के लिए वीर्य कोषों की स्थापना करना।
6. उत्तम नस्ल के पशुओं के प्रजनन फार्म खोलना।
7. वर्तमान प्रजनन संस्थानों का विस्तार करना।
8. अच्छे पशुओं को राजकीय सहायता देना।
9. जनता द्वारा सांड दान के लिए आर्थिक सहायता देना।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सांड की देखभाल करने में कौन-कौन सी बातों का ध्यान रखोगे?
2. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
(i) सांड का भोजन (ii) सांड का निवास-स्थान (iii) सांड को नाथना

अध्याय 11

कृत्रिम गर्भाधान

हमारे देश में पशुओं की संख्या तो बहुत अधिक है परन्तु उत्तम नस्ल के पशु संख्या में बहुत ही कम हैं। उत्तम नस्ल की कमी का कारण अच्छे सांडों की कमी का होना है। यद्यपि सांड छोड़ने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है परन्तु आजकल लोग ऐसे बछड़े या सांड को छोड़ते हैं जो किसी भी कार्य के लिए उपयुक्त न हो वे इसके पालन-पोषण के खर्च से डरते हुए ऐसा करते हैं जो नस्ल सुधार के स्थान पर नस्ल बिगाड़ता है।

इस समय नस्ल सुधार पर हमारी सरकार बहुत ध्यान दे रही है। इसके लिए पंचायत स्तर पर अच्छी नस्ल के सांडों का प्रबन्ध किया जा रहा है और की विलेज केन्द्र (Key village centres) की स्थापना की जा रही है। जहाँ पर कृत्रिम गर्भाधान की क्रिया से गायों को ग्याभिन किया जाता है।

कृत्रिम गर्भाधान–यह प्रजनन की एक विधि है। इसमें सांड का वीर्य एकत्रित करके परिरक्षित किया जाता है जो बाद में मादा पशुओं को ग्याभिन करने के काम में आता है। इस सम्पूर्ण क्रिया को कृत्रिम गर्भाधान क्रिया कहते हैं। इस विधि के दो चरण मुख्य हैं—

(अ) नर पशु के वीर्य एकत्रित करना एवं परिरक्षित करना।

(अ) **वीर्य एकत्रित करना**—नर पशुओं के वीर्य को एकत्रित करने की निम्न विधियाँ हैं—

1. **पेन कलेक्शन विधि (Pan collection Method)**—वीर्य एकत्रित करने की विधि सबसे आसान विधि है। इसमें बाहर गिरे हुए वीर्य को किसी बर्तन में एकत्रित किया जाता है। इसमें मुख्य दोष यह है कि वीर्य शुद्ध प्राप्त नहीं होता है।

2. **स्पंज विधि**—इस विधि में स्पंज को गर्म पानी में जीवाणु रहित करके मादा पशु की योनी में रख देते हैं। जब सांड मादा पशु पर चढ़ता है तो वीर्य स्पंज में एकत्रित हो जाता है। इस स्पंज को निकाल कर वीर्य एकत्रित कर लेते हैं। यह विधि भी उपयुक्त नहीं है क्योंकि स्पंज निकालते समय बहुत से स्पर्मस नष्ट हो जाते हैं।

3. **ब्रीडर्स बैग विधि (Breeder's Bag Method)**—इस विधि में एक

थैली पशु के लिंग पर चढ़ा दी जाती है। इस थैली के सिरे पर एक गोलाकार भाग होता है जिसमें वीर्य एकत्रित होता है। जब सांड मादा पर चढ़ता है तो लिंग के साथ थैली भी योनी मे चली जाती है और वीर्य इस थैली में एकत्रित हो जाता है। इस विधि में दोष यह है कि यह विधि नुकीले लिंग वाले पशुओं का वीर्य एकत्रित करने के लिए ही प्रयोग की जा सकती है।

4. विद्युत द्वारा—इस विधि में विद्युत की दो छड़ों का प्रयोग किया जाता है। इन छड़ों में एक छड़ नुकीली तथा गोल होती है। इनमें गोल छड़ को नर पशु (मेढ़े) के मल द्वार पर तथा नुकीली छड़ को लम्बर कशेरुका पर लगा कर 5 सेकिण्ड तक प्रवाहित करते है। ताप मिलने के कारण पशु का वीर्य स्खलित हो जाता है जिसे एक शीशे की नली में एकत्रित कर लिया जाता है। यह विधि केवल मेढ़ों के लिए ही प्रयोग की जा सकती है, अन्य पशुओं में नही।

5. यान्त्रिक क्रिया द्वारा (By Mechanical Manipulation)—इस विधि मे मलद्वार में हाथ डालकर सेमीनल वेसाईकुल को दबा देते है जिससे वीर्य निकल आता है। यह विधि गाय, भैंस, कुत्ता व मुर्गी के लिए ही प्रयोग की जा सकती है। इसका मुख्य दोष यह है कि वीर्य के साथ-साथ पशु का मूत्र भी आ जाता है।

6. कृत्रिम योनी द्वारा—यह विधि उपर्युक्त समस्त विधियों से उत्तम विधि है इसमें कृत्रिम योनी का प्रयोग किया जाता है। योनी की बनावट एवं तापक्रम मादा पशु के समान होता है। तापक्रम बनाए रखने के लिये मादा पशु के तापक्रम के बराबर ताप का पानी योनी मे भरा जाता है। वीर्य एकत्रित करने के लिये मादा पशु को सर्विस क्रेट में खड़ा करके साड को उसके ऊपर चढ़ाते हैं। जब साड मादा पर चढ़ता है तो उसका लिंग हाथ से पकड़ कर कृत्रिम योनी में डालते है और कृत्रिम योनी को मादा की योनी के पास रखते है। साड समझता है कि वह मादा पशु पर चढ़ा है और वह स्खलित हो जाता है। इस प्रकार कृत्रिम योनी का वीर्य संग्रहनलिका में एकत्रित हो जाता है।

वीर्य को तनु करना :

वीर्य एकत्रित करने के बाद उससे अधिक से अधिक मादा पशुओं को गर्भित करने के लिये उसे तनु (Dilute) किया जाता है। एक घन से. मी. वीर्य के आयतन को तनु करके दस घन से. मी. बनाया जाता है। तनु करने के लिये निम्न पदार्थ मिलाये जाते है—

1. सोडियम साईट्रेट (Sodium citrate)
2. ग्लुकोज का बफर सोल्युसन (Buffer solution of glucose)

3. एग योक (Egg yolk)

गायों के वीर्य को तनु करने के लिए एक योक तथा बफर सोल्युशन मिलाया जाता है जबकि भैंसों के लिए सोडियम साइट्रेट और एग योक मिलाया जाता है। इस प्रकार एक घन से. मी. वीर्य को तनु करके दो मादा पशुओं को ग्याभिन कराया जा सकता है।

मादा पशु को कृत्रिम विधि से ग्याभिन करना

कृत्रिम विधि से ग्याभिन करने की दो विधियां हैं—

1. रेक्टल विधि :

इस विधि से गर्भित करने से पूर्व गाय को सर्विस क्रेट में खड़ा करते हैं। फिर गाय के मलद्वार में हाथ डालकर गोबर को बाहर निकाल कर उसे साफ कर देना चाहिए। इसके बाद एक हाथ मलद्वार में डालकर, दूसरे हाथ में नोजिल लेकर उसे योनी में डालते हैं। पहले हाथ की मदद से नोजल को गर्भाशय के अन्दर पहुँचा देते हैं फिर दो घन से. मी. वीर्य को पिचकारी में भरकर नोजल के द्वारा गर्भाशय में पहुँचा देते हैं। इस प्रकार से गाय गर्भित हो जाती है।

2. वेजाइनल स्पेकुलम द्वार :

इस विधि से गाय को गर्भित करने के लिये वेजाइनल स्पेकुलम नामक यन्त्र का प्रयोग किया जाता है। गाय को सर्विस क्रेट में खड़ा करने के बाद स्पेकुलम को गाय की योनी में डालते है। जब स्पेकुलम को खोलते है तो गाय के गर्भाशय का द्वार खुला दिखाई पड़ता है। गर्भाशय में नोजल लगा कर पिचकारी द्वारा दो घन से. मी. वीर्य गर्भाशय में पहुँचा देते हैं। इस प्रकार से गाय ग्याभिन हो जाती है।

गर्भाधान किया करने से पहले ध्यान रखने योग्य बातें :

1. इस बात का निश्चय कर लेना चाहिये कि गाय गर्मी में है।
2. वीर्य का प्रयोग करने से पहले उसकी जांच कर लेनी चाहिये कि स्पर्मस जीवित है।
3. काम में आने वाले यन्त्रों को जीवाणु रहित कर लेना चाहिये।
4. हाथों को लाल दवा या साबुन से धोना चाहिये।

कृत्रिम गर्भाधान से लाभ

1. एक सांड के वीर्य से अधिक पशु ग्याभिन किये जा सकते हैं।
2. सांड एवं गाय की बीमारी एक दूसरे तक नहीं पहुँचती है।
3. जहाँ उत्तम नस्ल के सांड उपलब्ध न हो वहाँ इस विधि से उत्तम नस्ल के वीर्य से गर्भाधान किया जा सकता है।

4. उत्तम नस्ल के सांड को दूसरी जगह ले जाना मुश्किल है परन्तु उसका वीर्य आसानी से ले जाया जा सकता है।
5. नस्ल की शुद्धता की गारंटी रहती है।
6. जन्मे बच्चे के माता-पिता की पूर्ण जानकारी रहती है।
7. विदेशी नस्ल के वीर्य का उपयोग करके नई नस्ल पैदा की जा सकती है जैसे साहीवाल नस्ल की गाय को ब्राउन स्वीस (विदेशी नस्ल) के सांड से ग्याभिन करवा कर नई नस्ल किरण स्विस निकाली गई है जिसमें दोनों नस्लों के गुण विद्यमान है।

इस प्रकार से थारपारकर को होलस्टीन या जर्सी नस्ल से, गीर को रेडडेन होलस्टीन से ग्याभिन कराया जा सकता है। परन्तु इसमें ध्यान रखना चाहिये कि छोटी नस्ल जैसे जर्सी को बड़ी नस्ल जैसे होलस्टीन से ग्याभिन नहीं करवाना चाहिये क्योंकि बच्चा माता की नस्ल के अनुपात में बड़ा होता है और गाय के ब्याते समय कठिनाइयाँ आती हैं। देशी नस्ल को विदेशी नस्ल से ग्याभिन कराने (संकर प्रजनन) से निम्न लाभ हैं—

1. संकर बछड़ियाँ 15 से 18 माह की आयु में यौवनावस्था को प्राप्त होती हैं तथा गर्भित होकर 24 से 27 माह के मध्य प्रथम ब्यांत में आकर दुग्ध उत्पादन शुरू कर देती है। देशी बछड़ियाँ 4-5 वर्ष की होने पर उत्पादन आरम्भ करती है। इससे बछड़ियों को गायों में परिणत करने में बहुत कम व्यय करना पड़ता है।
2. संकर गायों का प्रजनन निरन्तर है, अर्थात् प्रति 13–14 माह से ब्याह जाती है। ब्याहने के 60–70 दिनों के बीच गर्मी में आ कर गर्भित हो जाती है। देशी गायों का अन्तर्प्रजनन काल लगभग 22–24 माह का होता है।
3. संकर गायें देशी गायों की तुलना में प्रथम ब्यांत में ही दुगुना-तिगुना दूध अधिक देती है तथा लगातार 10 माह तक दूध देती रहती है। देशी गायों में बहुत कम ऐसी गायें होती हैं जो लगातार 10 माह तक दूध देती रहें।
4. संकर गायों का सूखाकाल दो माह से अधिक नहीं होता जबकि देशी गायों का सूखाकाल 13–14 माह तक होता है।
5. संकर गायें आहार पचाकर उत्पादन वस्तुओं में परिणत करने की देशी नस्ल की तुलना में अधिक क्षमता रखती हैं।
6. संकर गायें देशी गायों की तुलना में अधिक लाभकारी है। शीघ्र परि-

पक्वता से कम व्यय पर उत्पादन में आने, निरन्तर प्रजनन तथा छोटे सूखे काल एवं अन्तर्प्रजनन काल से संकर गायें अधिक लाभकारी हैं।

7. संकर गायों में देशी नस्लों के सभी अधिक गुण विद्यमान होते हैं। साथ ही देशी नस्लों में पाये जाने वाले गुण जैसे रोग-रोधिता तथा ताप सहन करने की क्षमता इत्यादि को भी पूर्ण संरक्षण मिलता है। इस दोहरे लाभ को प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि संकर नस्ल में विदेशी रक्त को 50 से 60.5 प्रतिशत तक स्थिर रखा जाय।

कृत्रिम गर्भाधान के दोष

1. कृत्रिम गर्भाधान से मादा पशुओं को आनन्द नहीं आता जबकि नर पशु को आनन्द आता है।
2. एक अनुभवी व्यक्ति ही इस कार्य को कर सकता है।
3. प्रत्येक स्थान पर वीर्य को रखना सम्भव नहीं है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. संकर प्रजनन क्यों आवश्यक है? उदाहरण देकर समझाओ।
2. कृत्रिम गर्भाधान पर एक लेख लिखिए।

अध्याय 12

दूध के लिए पशुओं का चुनाव एवं पशुओं की देखभाल

दूध के लिए पशुओं का चुनाव कैसे ?

अनुसंधानों से यह पता चला है कि केवल मात्र अनाज की खेती करने की अपेक्षा उसी जमीन पर डेयरी व्यवसाय या मिश्रित खेती करने से अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। आमतौर पर शहरों के आस-पास के क्षेत्रों में लोगों में पशु रखने की प्रवृत्ति भी बढ़ने लगी है। इन बातों को देखते हुए इस बात की जानकारी आवश्यक है कि अच्छे दुधारू पशुओं का चयन (चुनाव) कैसे किया जाये।

दुधारू नस्लें—सर्वप्रथम हमें दुधारू नस्लों के बारे में जानना आवश्यक है। हमारे देश में दूध के लिए अनेक उन्नत नस्लें हैं, किन्तु उदयपुर क्षेत्र के लिए जलवायु आदि की दृष्टि से गीर, थारपारकर, राठी व कांकरेज गायें व मुर्रा और सूरती नस्लों की भैंसें उपयुक्त समझी जाती हैं। अधिक दूध की प्राप्ति के लिए संकर नस्ल की गायों को भी पाल सकते हैं। इनका आहार व व्यवस्था अच्छी हो तो ये गायें सामान्यत: उनकी माँ से अधिक दूध देती हैं।

दुधारू पशु—हर नस्ल में अच्छे व बुरे जानवर होते है अत: नस्ल के चयन के बाद उसमें अच्छे पशुओं का चुनाव करना अति आवश्यक है। इसके लिए निम्नांकित बातों का ध्यान रखें—

1. पशु स्वास्थ्य—सबसे पहले हमें पशु का स्वास्थ्य देखना चाहिए, क्योंकि पशु का तन्दुरुस्त होना उसके उत्तम होने के लिए आवश्यक है।

2. पशु की ब्यात व उम्र—स्वास्थ्य के बाद हम यह मालूम करें कि पशु ने कितनी बार बच्चा दिया है। वैसे तो पहली ब्यात में ही पशु को खरीद सकते हैं, किन्तु साधारण तौर पर दूसरी ब्यात का पशु दूध के हिसाब से अच्छा समझा जाता है। यह देखा गया है कि आमतौर पर 6–7 साल की उम्र तक या प्रथम 3 ब्यात तक पशु का दूध पहली ब्यात से बढ़ता जाता है। इसके बाद अगली 2-3 ब्यात (यानि 5-6 ब्यात) तक उतना ही रहता है और फिर धीरे-धीरे उम्र के साथ कम होने लगता है।

3. पशु का लेखा-जोखा—जहाँ पर पशुओं के रेकार्ड मिलते हैं वहाँ पशु विशेष की उम्र, ब्यात, पिछली ब्यात में दूध का उत्पादन आदि बातों को ध्यान से देखें। यदि सम्भव हो तो पशु वंशावली का भी भली-भाँति अध्ययन करें जिसमें पशु की माँ, दादी, परदादी, नानी, बहिन आदि के दूध उत्पादन का लेखा-जोखा हो। इसका कारण यह है कि इनसे पशु की दूध उत्पादन क्षमता का पता चल जायेगा। उत्तम पशु वही होगा जिसके मातृ-कुल व पितृ-कुल के सदस्यों ने अधिक दूध दिया हो।

4. शारीरिक लक्षण—आम तौर पर हम देखते है कि हमारे देश में पशु पालकों के पास वंशावली का लेखा-जोखा नहीं मिलता है। ऐसी परिस्थिति में पशुओं का चयन उनके शरीर के बाहरी लक्षणों को भली-भाँति देखकर किया जाता है। शरीर के बाहरी लक्षणों में जिन बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए, वे हैं—

(अ) शरीर का आकार—किसी भी नस्ल मे बड़े आकार के पशु का चयन करना उत्तम समझा जाता है। बड़े पशु की चारा-दाना खाने की क्षमता छोटे आकार के पशु से अधिक होती है और बड़े जानवर साधारणतः अधिक दूध देते हैं। इसी तरह छोटे आकार की बछियों की अपेक्षा उसी उम्र की बड़े आकार की बछियों का प्रजनन जल्दी हो जाता है और वे कम उम्र में बच्चा दे सकती हैं। इसके अतिरिक्त बड़े जानवर को ब्याते समय कोई कष्ट नहीं होता है। उनके बछड़े भी बड़े आकार के पैदा होते हैं और उनकी शारीरिक बढ़ोत्तरी तेजी से होती है। इन सब बातों के अतिरिक्त बड़े आकार के पशु में रोग, प्रतिरोध क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है। स्पष्ट है अधिक दूध के लिए बड़े आकार के पशु लाभकर होते हैं।

(ब) शरीर की क्षमता—सामान्यतः शरीर की क्षमता पशु के आकार से सम्बन्धित होती है, किन्तु गायों का आकार एक होते हुए भी क्षमता विभिन्न हो सकती है। शारीरिक क्षमता पशु के वक्षस्थल व उदर क्षेत्र से सम्बन्ध रखती है। जिस पशु के वक्षस्थल का आकार बड़ा होगा उसमे हृदय व फेफड़े बड़े होंगे और उनको सुचारु रूप से काम करने के लिए स्थान भी अधिक होगा। इसी तरह क्षमता का सम्बन्ध उदर क्षेत्र में पाचक अङ्गों द्वारा अधिक मात्रा में चारा व पानी ग्रहण करने व रखने से होता है। किसी भी पशु का विशाल वक्षस्थल व बड़ा पेट अधिक दूध देने का लक्षण माना जाता है। अतः गाय के चयन के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसकी छाती का घेरा बड़ा व पेट का आकार बड़ा हो।

(स) डेरी प्रकृति—डेरी प्रकृति में पशु के कई गुण हैं। जैसे-गाय की गर्दन लम्बी व पतली हो। पसली की हड्डियाँ मोटी, दूर-दूर व उभरी हों। पशु की पीठ सीधी, मजबूत व लम्बी हो। पशु की कमर चौड़ी व समतल हो। पुट्ठे व कूल्हे की

हड्डियाँ समुचित दूरी पर हों। पुट्ठे की हड्डियों के पास होने पर पशु को ब्याते समय तकलीफ हो सकती है। पीछे से देखने पर ऐसा प्रतीत हो कि अयन (गादी) को दोनों पैरों के बीच में समुचित स्थान मिला है। पशु की त्वचा या चमड़ी छूने पर मुलायम, ढीली व पतली लगे, उसके बाल चमकदार हों। स्वभाव से पशु शांत हो। पूँछ लम्बी व ऊपर से नीचे की ओर पतली होती चली जाय। पशु के नथुने बड़े व थूथन चौड़ा हो।

गाय में मोटापे के लक्षण न हों। मोटापे के लक्षण हैं—चमड़ी का मोटा होना, गर्दन व थुए में चर्बी का होना, कूल्हों का अधिक भारी होना व हड्डियों में उभरापन नजर न आना। पशु में अधिक चर्बी का पाया जाना कम दूध देने का लक्षण माना जाता है। हाँ, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पशु बिलकुल दुबला-पतला लगे। एक अच्छे पशु के शरीर पर समुचित रूप से मांस-पेशियाँ बनी होती हैं। इन लक्षणों के अलावा यदि हम अच्छी गाय को ऊपर से बराबर से व पीछे से देखें तो सभी तरफ से शरीर त्रिकोण का सा नजर आवे।

(ब) **अयन व थन**—अयन वह स्थान है जहाँ पर दूध बनता है और दूध निकालने तक एकत्र रहता है। एक अच्छे पशु का अयन का आकार बड़ा होता है जिससे उसमें अधिक दूध बनकर इकट्ठा हो सके। अयन का आगे व पीछे का हिस्सा शरीर से अच्छी तरह जुड़ा हो और उसका कुल फैलाव भी अधिक हो, किन्तु अयन लटकता सा नजर नहीं आए। अयन के आकार का अनुमान दूध दोहने के पहले लगाया जा सकता है। साथ ही दूध निकालने के बाद भी ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि अधिक दूध देने वाले पशुओं का अयन सिकुड़ सा जाता है और उसमें बहुत सी परतें सी नजर आती हैं। अधिक परतों का होना अयन में अधिक दूध बनकर उसके धारण करने की क्षमता का लक्षण है। यदि दूध निकालने के शीघ्र बाद भी अपेक्षाकृत अयन तना-तना सा लगे और छूने पर उसमें मांसल भाग महसूस हो तो समझें कि उसमें दूध देने वाले लचीले कोष कम व चर्बीले कोष अधिक हैं। अतः अयन दबाने पर स्पंज के जैसा लचीला होना चाहिए। इसी प्रकार पिछले पैरों के बीच की दूरी अधिक हो जिससे अयन के फैलने को अधिक जगह मिल सके।

पशु के थनों का आकार एक सा हो व थनों की दूरी बराबर हो। थन लम्बाई में न अधिक बड़े और न ही अधिक छोटे हों। थनों में मांसल गांठें न हों व दूध सुगमता से निकाला जा सकता हो।

अच्छे पशु के अयन पर व पेट की मध्यरेखा के दोनों ओर दुग्ध शिरायें लम्बी, मोटी और टेढ़ी-मेढ़ी हों। ऐसे लक्षणों का होना अधिक दूध होने का लक्षण माना जाता है। इसी प्रकार दुग्ध कूप—जोकि दुग्ध शिराओं के पशु वक्ष में प्रवेश करने का स्थान होते हैं, काफी उभरे हों।

(इ) पैर—पशु के आगे के पैर सीधे व मजबूत हों। पिछले पैरों में दूरी समुचित हो, पैरों की हड्डियाँ लम्बी, मोटी व मजबूत हो। पशु चाल में फुर्तिला हो।

(फ) पशु को खरीदने से पहले उसकी वास्तविक दूध उत्पादन क्षमता की जाँच अवश्य कर लेवें। इसके लिए पशु को 3-4 बार बराबर दूध दुहें, जिससे उसकी दूध की उपज का सही पता चल जायेगा।

उपर्युक्त सभी बातों के अलावा चयन करने वाले व्यक्ति के मस्तिष्क में उत्तम पशु का एक चित्र बना रहना भी अति आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जब वह व्यक्ति कई बार अच्छे पशु को भली-भाँति देख चुका हो।

पशुओं की देखभाल

साधारणतः अपने यहाँ पशुओं की देख-भाल, साज-सम्भाल व खिलाई-पिलाई अच्छी नहीं होती है। नतीजा यह होता है कि संसार का श्रेष्ठ पशुधन अपने यहाँ होते हुए भी ज्यादातर जानवर कमजोर व कम लाभ देने वाले मिलते हैं। अतः आवश्यक है कि हम अपने पशुओं की परिवार के सदस्यों के समान देख-भाल करें। यहाँ कुछ ऐसी ही बातें बताई जा रही है जिन्हें अपनाकर हर पशु-पालक किसान परिवार अपने जानवरों से अधिक लाभ कमा सकता है—

(अ) आरामदेह प्रबन्ध :

1. पशुओं को अधिक गर्मी, सर्दी, धूप, लू व आँधी से बचाइए।
2. उन्हें सदैव ताजा, साफ एवं शुद्ध पानी पिलाइए।
3. पशुओं के लिए समुचित रोशनी वाले एवं हवादार, सूखे आवास जिनमें गोबर, मूत्र आदि न पड़े रहें एवं पर्याप्त बिछावन हो ऐसी व्यवस्था रखिए।
4. खाने की कुण्डियों और पानी की नाँद प्रत्येक पशु के लिए अलग से बनायें तथा खड़े रहने व बैठने की जगह काफी खुलासा रखिए।
5. जुयें, चीचड़ी एवं मक्खियाँ आदि बाहरी एवं अन्दरूनी परजीवियों से उन्हें सदैव मुक्त रखिए।
6. पशु आवासों में भीड़ या अतिशय सघन पशु आबादी न होने दीजिए।
7. पशु स्वच्छन्द विचरण कर सकें इसकी समुचित व्यवस्था करिए।

(आ) नवजात बछड़े-बछड़ी की देख-भाल :

1. बछड़े-बछड़ी (पाड़ी-पाड़े, मेमने आदि) के जन्मते ही उसके नाक और मुँह पर से झिल्ली (म्यूकस) हटाकर साफ कर दीजिए ताकि वह आसानी से श्वास ले सके। यदि वह श्वांस नहीं ले रहा है तो कृत्रिम

श्वांस दीजिए। इसके लिए बछड़े के सीने को हलके हाथों से बारी-बारी से दबाते व छोड़ते हुए श्वांस की क्रिया को चालू करवाएँ।

2. खीस (गुता) याने पहला दूध नवजात को बिना चूके अवश्य पिलाइए। यह बड़ा उपयोगी होता है, क्योंकि इसमें प्रोटीन की मात्रा सर्वाधिक होती है। साथ ही इसमें रक्षक पदार्थ (प्रति पिण्ड) भी होते हैं जिनसे नवजात में रोगों से सदैव सुरक्षित रहने की ताकत आती है।
3. नवजात के नाले को टिन्चर में भिगोकर सूँत दीजिए। बाद में नाभि से एक इन्च नीचे मजबूत धागे से बांध कर काट दीजिए। उस पर फिर से भली प्रकार टिन्चर आयोडीन लगा दीजिए। यही नहीं काटने के बाद भी इस जगह तीन-चार दिन तक रोज टिन्चर आयोडीन लगाते रहिए।
4. जहाँ तक सम्भव हो ब्याने के तुरन्त बाद बच्चे को माँ से दूर हटा ले जाइए। उन्हें अलग रख कर ही पालिए। यदि तत्काल ऐसा न कर सकें तो कम से कम दो तीन दिन बाद तो ऐसा अवश्य कीजिए।
5. ब्याने के दो-तीन सप्ताह के अन्दर ही बछड़े का सींग-रोधन (सींग उड़ाना) कर दीजिए। सींगों को न उगने देने हेतु सींग-रोधन की क्रिया कास्टिक पोटाश की बत्ती को सींग के उगने के स्थान पर रगड़ कर की जाती है। सींग-रोधन से पशु भविष्य में अधिक पालतू बन जाता है और उससे पालने वाले को भी खतरा नहीं रहता।
6. नवजात को सही पहचान देने के लिए उसके कान पर गोदना (टेटू) मशीन से अंक लिख दीजिए या फिर क्रमांक लगा छल्ला कान में पहना दीजिए।

(इ) दुधारू पशुओं का दोहना :

1. ब्यामिन गायों-भैंसों की दोहन पूर्व प्रक्रियाएँ पूरी करने के लिए उन्हें बाड़ों में ही रोक कर दुहाई हेतु तैयार कर लीजिए और तब ही उन्हें दोहन शाला में ले जाइए।
2. दोहन पूर्व पशुओं को नियमित रूप से साफ पानी से नहलाइए। कम से कम उनका शरीर और पार्श्व भाग तो पूरी तरह साफ कर ही दीजिए। उन्हें साफ सूखे कपड़े से पोंछ दीजिए।
3. हर पशु को नियमित रूप से एक ही सुनिर्धारित समय पर दुहिए।
4. एक के बाद दूसरे दोहन के बीच का समय बराबर-बराबर ही निश्चित रखिए।
5. दोहते समय पशु के बबाड़े या गादी (स्तन) को हिलाएँ या झकझोरें

नहीं और न ही थनों को खींचे। अंगूठे की हड्डी और मुट्ठी मे थनों को दबाते हुए खींचकर दूध निकालने से पशुओं को अत्यधिक पीड़ा होती है और कालान्तर में थन भी खराब हो जाते हैं। साथ ही इससे दूध भी कम उपलब्ध होता है। इसलिए सदैव पूरे हाथ से, कोहनी को घुटनों पर टेक कर, बारी-बारी से दोनों विरोधी थनो को पकड़ कर दोहें और दूध की अंतिम मात्रा को चुटकियों से आखिरी बूंद तक निकाल लेवें। जहाँ तक हो सके गुमटाकार शक्ल की, एक ही चद्दर की यनी पूरी कलईदार बाल्टी में दूध निकालिए।

6. गायों-भैंसों को बड़ी फुर्ति से दूहें और आखिरी बूंद तक पूरा-पूरा दूध निकाल लेवें। दोहते हुए हाथों को सूखे स्वच्छ रखें। थनो को गीला न करें।

(इ) बछड़ियों की देखभाल :

1. बछड़े-बछड़ियों के लिए भरपूर पौष्टिक एवं सन्तुलित आहार की व्यवस्था कीजिए जिसमें बढ़िया किस्म का सूखा हरा चारा और समुचित मात्रा में दाना सम्मिलित हो।
2. उन्हें सदैव परिपुष्ट अवस्था में रखिए ताकि उनके शरीर की सामयिक एवं सन्तुलित वृद्धि होती रहे।
3. किशोर पशु-समुदाय का लिंग भेद के आधार पर वर्गीकरण एवं समूहीकरण कर दीजिए। इस प्रकार कभी भी सांड़ बछड़ों को बछड़ियों के साथ न रहने दीजिए।

(उ) लोटों-झोटियों की देखभाल :

1. ग्याभिन बछड़ियो को दोहन कार्य के लिए काफी पहले से ही प्रशिक्षित कीजिए। उन्हें मोरा (हाल्टसे) के सहारे चलना सिखाइए।
2. उन्हें दुधारु एवं वयस्क पशुओं के बीच में रहने दीजिए।
3. उन्हें दोहन शाला मे, स्टेनचियन या दो तरफा रस्सी द्वारा दुधारु पशुओं के बीच में ही बांधना प्रारम्भ कर दीजिए।
4. अन्य वयस्क दुधारु पशुओं की भांति काफी समय पूर्व से उन्हें नहलाना, उनके पार्श्व भाग साफ करना, धोना, उघस (अवाडा या गादी) सहलाना, थनों को सही तरीके से पकड़कर दूध निकालना आदि का पूरा अभिनय यथा समय नियमपूर्वक कीजिए। इस प्रकार एवं धीरे-धीरे सधाकर उनमें अच्छी आदतें डालिए। ये आदतें भविष्य में उनका शान्तिपूर्वक दोहन करने मे बड़ा महत्त्वपूर्ण योग देंगी। काफी समय पूर्व से थनों एवं उघस् (गादी) को सहलाने से उन्हें ब्याने के बाद, छुना अटपटा नहीं लगेगा, न गुदगुदी ही होगी और वे जल्दी ही 'वापस' जाया करेंगी।

(ऊ) केड़ियों-पाड़ियों की देखभाल :

1. बछड़ियाँ जब वयस्क पशु के भार का $\frac{2}{3}$ (केड़ियाँ 200 किलो व पाड़ियाँ 300 किलो) भार ग्रहण कर लें और उनके शरीर का समुचित एवं सर्वांगीण विकास हो जाये तो उन्हें ग्याभिन करा दीजिए।

2. गाय-भैंस साधारणतया स्वच्छ अवस्था में, ब्याने के बाद हर 18 से 21वें दिन मद में (गर्मास या पाली पर) आती है। और एक दिन तक ऋतुमती रहती है। ब्याने के बाद पहले दो मद-काल छोड़ करके ही उन्हें ग्याभिन कराइए। मद-काल का सतर्कतापूर्वक ध्यान रखिये और मध्य से उत्तरार्द्ध मद-काल में ही पशु को ग्याभिन कराइए। मद-काल के प्रारम्भ में ग्याभिन कराने से बहुत बार पशुओं को ग्याभन नहीं ठहरता।

3. ग्याभिन हो जाने के बाद पूरे गर्भ काल तक पशु पुनः पाली या मद में नहीं आता। फिर भी गाय को 60 दिन बाद और भैंस को 90 दिन बाद पशु-चिकित्सक को दिखा कर जाँच करा कर पुष्टि कर लीजिए। इस जरा से श्रम से आपके पशु अधिक दिन सूखे नहीं रह पायेंगे।

4. यदि पशु पाली (मदकाल) में ही नहीं पाली आता हो या अनियमितता से कभी-कभी आता हो और बार-बार गर्भाधान कराने पर भी ग्याभन नहीं ठहरता हो तो उसे तत्परता से पशु-चिकित्सक को दिखाइए और उसके निर्देशानुसार उपचार कराइए।

5. यथा साध्य कृत्रिम गर्भाधान पद्धति से ही पशुओं को ग्याभिन कराइए। कृत्रिम गर्भाधान के कारण कई संक्रामक रोग, जो आमतौर से सांड से सीधे ग्याभिन कराने पर मादा पशु को लग जाते है, उनसे आपके पशु सुरक्षित रह सकेंगे। यही नही सर्वोत्कृष्ट सांड की संतति भी आपको सहज ही सुलभ हो सकेगी। कृत्रिम पद्धति से गर्भाधान कराने पर विकलांग पशु भी बड़ी आसानी से पुनः उपजाऊ बना सकेंगे।

(ए) ग्याभिन पशुओं की देखभाल :

1. गर्भस्थ शिशु और उसकी माँ के सन्तुलित शारीरिक विकास के लिए ग्याभिन पशु को समुचित किस्म का आहार दीजिए।

2. पूरी सतर्कता बरतिए कि गर्भकाल में उन्हे किसी किस्म का शारीरिक, मानसिक या अन्य प्रकार का आघात न पहुँचे।

3. ब्याने के दिन का निश्चित पता लगा कर बड़ी सावधानीपूर्वक देखभाल रखिए। यह समय गायों के लिए गर्भाधान के लगभग 230 दिन बाद भैंसों के गर्भाधान के 310 दिन बाद आता है।

4. पूरी गर्भावस्था में उन्हें शांत वातावरण में रखें और कभी उत्तेजित होने दीजिए।
5. उन्हें भरपूर पौष्टिक किन्तु रोचक आहार खिलाइए।
6. उनके उधस् (अवाड़े) की पूरी देखभाल एवं हिफाजत रखिए। ब्याने के समय से पूर्व यदि उधस् में दूध की अधिकता से सोजिस या जरूरत से ज्यादा तनाव पायें तो थोड़ा दूध समय पर निकाल भी दीजिए।
7. *ब्याते समय गाय का सावधानीपूर्वक ध्यान रखिए और पशु को सहायता* की आवश्यकता हो तो तुरन्त सहायता करिए।
8. जरायु (जेर) की पूर्णतया गिर जाने की प्रतीक्षा करिए। यही नहीं, यदि 8 से 24 घण्टे के भीतर जरायु न गिरे तो पशु-चिकित्सक से उपचार कराइए।
9. जरायु गिर जाने पर उसे जमीन में गहरा गाड़ दीजिए और पशु की समुचित सफाई कर दीजिए।
10. ब्याने के बाद पशुओं को पौष्टिक, किन्तु आसानी से पचने वाला रेचक आहार दीजिए और क्रमशः बदलते हुए 10-12 दिन में दूध उत्पादन पौष्टिक खुराक पर लाकर जमा दीजिए।

(ऐ) सूखी या ठाली गाय-भैंसों का प्रबन्ध—

1. गायों, भैंसों को ब्याने से पूर्व काफी दिनों आराम देने हेतु सुखा दीजिए। यह अवधि कम से कम 45 से 60 दिनों तक होनी चाहिए।
2. इस अवधि में उन्हें भरपूर प्रोटीन वाला पौष्टिक और खनिज लवण युक्त आहार खिलाइए। जहाँ तक हो आहार रेचक ही रखिए।
3. ग्याभिन पशुओं को परस्पर लड़ने-भिड़ने मत दीजिए। उन्हें डराना, भगाना या अधिक दूरी तक चलाना व थकाना बड़ा अहितकर होता है।
4. ग्याभिन गायों-भैंसों के बिछावन के लिए साफ-सुथरा और मुलायम घास काम में लीजिए। जहाँ तक सम्भव हो, उन्हें साफ पानी पीने के लिए कई बार दीजिए और सूखे, पर्याप्त हवा एवं रोशनीदार आवासों में बाँधिए। जिन जानवरों के गर्भ गिरने का रोग हो उनके साथ स्वस्थ ग्याभिन पशुओं को कभी न रखिए।

(ओ) भार वाहक पशुओं की देखभाल—

1. नये भार वाहक पशुओं के साथ बड़ा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार कीजिए और उन्हें क्षमता से अधिक बोझ ढोने को विवश न करें। न बहुत अधिक समय तक कठिन परिश्रम में लगाए रखें।

2. बहुत हल्का श्रम प्रारम्भ में उनसे करवाएँ वह भी लगातार नहीं। विश्राम का समय भी प्रारम्भ में अधिक देवें ताकि वो एकदम टूट न जाएँ।

3. काम का समय सुनिश्चित करने एवं प्रातः, सायं में विभाजित करने से पशु निर्धारित समय पर सदैव तैयार रहेगा और पूर्ण मनोयोग से कार्य करेगा।

4. बिना काम के समय एवं हल्के और भारी श्रम करने की अवस्था में यथेष्ठ पोषक पदार्थों का उसके आहार में समावेश करना न भूलें।

5. पशु आवास सदैव हवा रोशनीदार होवें और धूप का भी यथोचित प्रवेश उन्हें सूखा एवं स्वस्थ रखने में सहायक होगा। समुचित बिछावन मूत्र एवं गोबर के बह जाने के लिए आवासों में विशेष प्रबन्ध कीजिए। अँधेरे आवासों में बँधने वाले पशु बिदकने लग जाते हैं एवं मरखने बन जाते है।

6 उन्हें परजीवियों से सदैव मुक्त रखें। आमतौर पर कीलनी, बगें, या मच्छर जुएँ उन्हें अधिक परेशान करते हैं। कभी रक्त व मूत्र रोग का कारण भी ये परजीवी बन जाते है। अतएव एक भाग गैमेक्सीन या बी एच. सी. 10, छः भाग राख या तेल में मिलाकर लगाते रहें ताकि परजीवियों से उन्हें मुक्त रखा जा सके। नियमित खुरहरा एव ब्रुश करते रहने से पशु इन परजीवियो से मुक्त रहते है।

7. अत्यधिक शीत, गर्मी या लू के झपटो से भी इनका बचाव करें और काम के लिए विभिन्न ऋतुओं में अलग-अलग समय निर्धारित करें।

8. पीने का स्वच्छ पानी दिन में कई बार सुलभ करें। विशेष कर गर्मी के दिनों मे एक बार उन्हे नहलाने की अनिवार्य व्यवस्था करें।

9. बैलों को सदैव अलग से चरावें। अधिक परिश्रम या दूर से चलकर आये बैलों को नमक तो खिलावें ही, साथ ही एक प्रतिशत नमक के घोल से उनकी टाँगें भली प्रकार धो देवें इसमे उनकी थकान जल्दी दूर हो जाती है।

10. हल या गाड़ी में जोतते समय उचित प्रकार का चिकना किया जूड़ा ही प्रयोग करें। नाक में डाली जाने वाली नाथ की रस्सी मजबूत किन्तु न अधिक मोटी, न एक दम पतली हो।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. दुधारू पशुओं का चुनाव करते समय किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए।
2. दुधारू पशु खरीदते समय पशु के कौन-कौन से मुख्य गुणों को ध्यान में रखना चाहिए?
3. पशु का लेखा-जोखा पशु के चुनाव में किस प्रकार सहायक है, स्पष्ट करें।
4. निम्नलिखित पशुओं की देखभाल कैसे करोगे—
   (अ) नवजात बछड़े-बछड़ियों की देखभाल।
   (ब) ग्याभिन पशुओं की देखभाल।
   (स) सूखी गाय या भैंस की देखभाल।
   (द) सांडों-झोटियों की देखभाल।
5. निम्न पर टिप्पणी लिखो—
   (अ) दुधारू पशु की देखभाल।
   (ब) भार-वाहक पशुओं की देखभाल।
   (स) बछियों (ओसर) की देखभाल।
   (द) केड़ियों-पाड़ियों की देखभाल।
6. विभिन्न प्रकार के पशुओं की देखभाल पर एक संक्षिप्त लेख लिखो।

अध्याय 13

गौ-दोहन के सिद्धान्त एवं दोहन विधि

गाय का दूध निकालना एक प्रकार की कला है। इस कला में अनुभवी व्यक्ति शीघ्र एवं अधिक दूध निकाल सकता है, परन्तु अप्रशिक्षित व्यक्ति अधिक दूध प्राप्त करने के स्थान पर पशु का उत्पादन कम कर सकता है। इसलिए दोहने की उत्तम विधि एवं उसके सिद्धान्तों की जानकारी प्रत्येक पशुपालक को होनी आवश्यक है।

गौ-दोहन के सिद्धान्त

गाय के अयन में एकत्रित दूध को थनों द्वारा बाहर निकालने की क्रिया को ही गौ दोहन कहते हैं।

गाय के चार थन होते हैं। प्रत्येक थन में एक थन नालिका (Teat Canal) और एक थन सिसटर्न (Teat Cistern) होता है। थन के भीतर थन सिसटर्न, ग्रन्थि सिसटर्न (Gland cistern) में खुलता है। ग्रन्थि सिस्टर्न गोल या अण्डाकार अथवा अनियमित आकार का रिक्त स्थान होता है। एक ग्रंथि सिस्टर्न में 500 से 600 ग्राम दूध एकत्रित करने की क्षमता होती है। प्रत्येक ग्रन्थि सिस्टर्न में 12 से 50 तक दुग्ध नालिकाएँ आकर खुलती हैं। प्रत्येक दुग्ध नालिका छोटी-छोटी बहुत सी नलिकाओं में विभाजित होती है। इन छोटी नालिकाओं के सिरे पर लोब्युल (Lobule) होता है। जिस लोब्युल में बहुत सी एलव्योलाई (Alveoli) होती हैं जिनमें दूध बनता है।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णित मार्ग से होता हुआ दूध अयन में पहुँचता है जिसे हम निकालते हैं।

गौ-दोहन की विधियाँ

यदि गौ-दोहन क्रिया पूर्ण रूप से नहीं होती है तो पशु दूध की मात्रा धीरे-धीरे कम करता जाता है और एक समय ऐसा आता है कि वह दूध बन्द कर देता है। दोहन की क्रिया को सुचारु रूप से करने के लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम गाय को उद्दीप्त किया जावे। गाय से दयालुता का व्यवहार करना, दूध दुहने के बर्तनों की मीठी आवाज करना, पशु की पीठ थपथपाना उसे उद्दीप्त करने में सहायक होता है। गाय के अयन को धीरे-धीरे सहलाना व उसके बच्चे का गाय के पास लाना भी दूध उतारने के लिए काफी सहायता करता है। जब गाय पूर्ण रूप से उद्दीप्त हो

उस समय उसे दुहना चाहिए। दूध जितनी शीघ्र हो निकाल लेना चाहिए गाय की उद्दीपन अवस्था 5 से 7 मिनिट तक ही रहती है। क्योंकि उद्दीपन आक्सीटोसिन हारमोन के कारण होती है जो पियुस ग्रन्थि से स्रावित होता है केवल 5–7 मिनिट तक ही क्रियाशील रहता है। इसके निष्क्रिय होते ही ऊपर चढ़ा जाता है।

अधिक एवं शुद्ध दूध प्राप्त करने के लिए दुहते समय निम्न बातों की पालना चाहिए—

समय की नियमितता रखी जावे। साधारणतया गाय दिन में दो बार दुही जाती है। इसके लिए प्रातः और सायं का समय निश्चित हों।

गौ दोहन क्रिया शीघ्र 5–7 मिनिट के भीतर पूर्ण कर लेनी चाहिए।

दूध दुहने से पूर्व गाय का अयन भली प्रकार साफ कर लेना चाहिए।

अयन को धोकर साफ एवं सूखे कपड़े से पोंछना चाहिए।

ग्वाले के नाखून कटे हों तथा उसके हाथ साबुन से साफ किये हो।

दूध दुहने का स्थान एवं बर्तन साफ होना चाहिए।

दोहन शाला में जोर-जोर की आवाज नही होनी चाहिए।

दूध निकालने से पहले या बाद में गाय के साथ कोई बुरा बर्ताव नही करना चाहिए।

ग्वाले के कपड़े गाय को चौका देने वाले न हों।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त दोहन विधि का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

दोहन की विधियाँ

गाय से अधिक दूध प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि दोहन विधि ऐसी जिससे पशु आराम महसूस करे तथा दोहन शीघ्रता से हो सके। दोहन दो प्रकार किया जा सकता है—

1. मशीन द्वारा
2. हाथों द्वारा

1. मशीन द्वारा—वर्तमान में दूध निकालने के लिए मशीनों का प्रयोग होने लगा है। जब पशुओं की संख्या अधिक, दूध की मात्रा अधिक और मजदूर न मिलते हो तो मशीन का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार की मशीन में चार थनों के आकार के टीट कप (Teat cup) हैं। इन कपो के अन्दर रबर की दीवार होती हैं। इनको थनों में लगाकर मशीन को विद्युत की सहायता से चालू करते हैं। यह मशीन सर्व प्रथम ग्रेट ब्रिटेन

में प्रयोग में लाई गई । इस विधि का मुख्य दोष है कि यदि पूर्ण दूध निकालने के मशीन समय पर बन्द न हुई तो खून भी निकल सकता है ।

2. हाथों द्वारा—भारत में हाथों द्वारा दूध निकालने की तीन विधियाँ है। ये विधियाँ थनों को हाथों से पकड़ने के आधार पर भिन्न-भिन्न हैं—



चित्र सं. 45 (हाथो द्वारा दुहना)

(I) चुटकी से दुहना (Stripping)

इस विधि में थन को अंगूठे तथा आगे की दो उंगलियों को दबाकर दूध निकाला जाता है । इस विधि से पशु को दूध दुहते समय कष्ट होता है । इसका प्रयोग छोटे थन वाली गाय का दूध निकालते समय या अन्त मे जब थनो में थोड़ा सा दूध शेष रह जावे; उसे निकालने के लिए करना चाहिए ।

(II) अंगूठा दबाकर (Knuckling or Neveling)

इस विधि मे चारो उंगलियों को थन के चारो ओर लगाकर अंगूठा बीच में दबाकर दूध निकाला जा सकता है । यह विधि पहली विधि से हानिकारक है । इस विधि से दूध निकालते समय पशु को कष्ट होता है जिससे पशु पूरा दूध नहीं उतारता है और कई बार अंगूठे दबाव के कारण थन को भी हानि पहुँचती है। यदि ग्वाले के नाखून थोड़े से बड़े है तो थन या ... रूम भी हो सकते हैं। अतः इस विधि को भी प्रयो... नही लाना चा...

अन्त में कहा जा सकता है कि गाय का दूध निकालते समय गाय के आराम का पूरा ध्यान रखना चाहिए तथा गाय के सभी थनों से समान रूप से दूध निकालना चाहिए। ऐसा नही करना चाहिए कि तीन थनों का दूध निकाल कर चौथा थन बच्चे के लिए छोड़ दें।

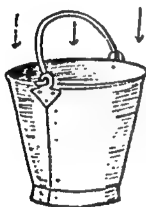
अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गौ-दोहन के क्या-क्या सिद्धान्त हैं? गौ-दहन की विभिन्न विधियों का सविस्तार वर्णन करें।
2. निम्न पर टिप्पणी लिखें—
   (i) पूर्ण हस्त दोहन विधि
   (ii) अंगूठा दाब विधि
   (iii) मशीन द्वारा दूध दुहना।

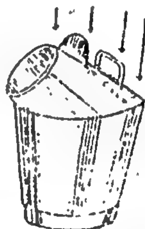
अध्याय 14

दुग्ध शाला के बर्तनों की सफाई

अधिकतर कीटाणु दूध में बर्तनों से ही प्रवेश करते हैं। इसलिए जो भी बर्तन प्रयोग में लाये जावें वह स्वच्छ होने चाहिएँ। गन्दे बर्तनों में कीटाणु छिपे रहते हैं। बर्तन ऐसे होने चाहिए जो आसानी से साफ हो सकें। बिना जोड़ के भली प्रकार कलई किये हुये तथा जंग रहित बर्तन काम में लाने चाहिए। जहाँ तक हो बर्तनों में कभी भी कोने (Corners) नहीं होने चाहिए क्योंकि इन्हीं कोनों में कीटाणु छिपे रहते हैं तथा इन कोनों की अच्छी तरह सफाई नहीं हो पाती जिससे कीटाणुओं की संख्या में वृद्धि होती रहती है। दूध दुहने के लिए ऐसे बर्तनों का प्रयोग करना चाहिए जिसमें धूल के कण अथवा कीटाणु वगैरहा आसानी से प्रवेश न कर सकें।



चित्र नं. 46 सादा बाल्टी



चित्र नं 47 स्वच्छ दूध दुहने के लिए बर्तन (बन्द मुँह की बाल्टी)

उपर्युक्त चित्रों से स्पष्ट है कि सादी बाल्टी में धूल के कण आदि आसानी से प्रवेश कर सकते हैं जबकि बन्द मुँह की बाल्टी में धूल के कण प्रवेश नहीं कर पाते क्योंकि इस बाल्टी का मुँह भी सकरा होता है।

बर्तनों की सफाई—दूध के लिए प्रयोग में लाये गये सभी बर्तनों को खाली करने के तुरन्त ही बाद साफ कर लेना चाहिए, अन्यथा दूध दूषित होने का भय रहता है। दूध के इन बर्तनों का जीवाणु हनन (Sterilization) अच्छी प्रकार कर लेना चाहिए। जीवाणु हनन निम्नलिखित की तरीकों से कर सकते हैं—

(1) भौतिक जीवाणु हनन (Physical sterlization)

(2) रासायनिक जीवाणु हनन (Chemical sterlization)

(1) भौतिक जीवाणु हनन – साफ करने के लिए पहले साधारण पानी से खूब मल-मल कर धोना चाहिए। पहले ठण्डे पानी से धोकर फिर गर्म पानी से धोना चाहिए। गर्म भाप द्वारा भी बर्तन धोये जाते हैं। यदि भाप उपलब्ध नहीं हो तो इसके स्थान पर उबले हुये गर्म पानी का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए पानी का तापक्रम 180° फा० 15 मिनट के लिए काफी है अथवा 212° फा० केवल 5 मिनिट तक रखने से बर्तन के भीतर छिपे सभी कीटाणु मर जाते हैं।

(2) रासायनिक जीवाणु हनन—इस विधि में रसायनिक पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। सबसे ज्यादा कपड़ा धोने का सोडा प्रयोग किया जाता है। गर्म पानी के साथ सोड़ा प्रयोग करने से बर्तन आसानी से जीवाणु-रहित हो जाता है। इसके अलावा ब्लीचिंग पाउडर का गर्म घोल भी प्रयोग में लाया जा सकता है। बर्तनों को जीवाणु-रहित करने के लिए क्लोरीन-जल का भी प्रयोग किया जाता है। सोडियम हाइपो-क्लोराइड से भी बर्तन को जीवाणु-रहित किया जा सकता है।

बर्तनों को धोने के बाद सुखाया जाता है। बर्तनों को सुखाने के लिए कपड़े का कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। बर्तन को सदैव धूप में रखकर सुखाना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जीवाणु-हनन से क्या समझते हो ? बर्तनों का जीवाणु-हनन क्यों आवश्यक है ?
2. दुग्ध शाला में बर्तनों की सफाई किस प्रकार की जाती है ?

अध्याय 15

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन तथा वितरण

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है जिसकी 70-75% जनसंख्या कृषि तथा इससे सम्बन्धित सहायक धन्धो पर निर्भर रहती है। जिसमें दूध-उत्पादन का कार्य भी एक सहायक आमदनी का धंधा है जो मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु हमारे देश में दूध की पैदावार बहुत कम है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में लगभग 190 लाख टन दूध का उत्पादन होता था। जिससे लगभग प्रत्येक व्यक्ति को 140 ग्राम दूध औसत मिलता था। अब हमारे देश में लगभग 200-220 टन दूध प्रति वर्ष पैदा होता है, परन्तु जनसंख्या के बढ़ने के अनुपात में यह कम है और इस प्रकार अब केवल प्रति व्यक्ति औसतन 100 ग्राम दूध प्रति दिन ही रह गया है, जबकि एक दिन में एक व्यक्ति को 250 ग्राम दूध निश्चित किया गया है।

दूध की इतनी कम मात्रा होने पर भी जो कुछ दूध पैदा होता है वह भी स्वच्छ नही होता उनमे बीमारी के जीवाणु तथा अन्य प्रकार की गन्दगी भरी रहती है। इस प्रकार हम दूध मे होने वाली गन्दगी को दो भागों मे बाँट सकते है —

(1) आँख से दिखाई देने वाली गंदगियां :

यह ऐसी गंदगी है जो आँख से दिखाई देती है जैसे चारे के टुकड़े, मक्खी, मच्छर, मिट्टी, बाल तथा अन्य प्रकार की गंदगियाँ जो 'ऐन' के बाहर से ही आती है।

(2) आँख से न दिखाई देने वाली गंदगी :

यह ऐसी गंदगी है जो आँख से दिखाई नही देती तथा इसे देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता लेनी पड़ती है। यह गंदगी 'ऐन' के भीतर तथा बाहरी वातावरण दोनों से आती है। यदि बाहर से कोई गंदगी न आवे तो भी दूध 300-1500 जीवाणु प्रति घन सेंटीमीटर तक होते है। बीमार पशु के दूध में जीवाणुओं की संख्या और भी अधिक होती है।

जिस दूध में बाहर से कोई गंदगी न मिले तो ऐसे दूध को प्रकृति दूषित (प्रस्टिकली क्लीन मिल्क) कहते हैं। इस प्रकार यदि हम स्वच्छ दूध की परिभाषा करें तो वह निम्न प्रकार हो सकती है—

जिस दूध का उत्पादन स्वच्छ वातावरण मे किया गया हो जो बाह्य दूषित पदार्थ (विजिबल डर्ट) तथा बीमारी फैलने वाले जीवाणुओं से मुक्त हो तथा

जिसमें जीवाणु की संख्या भी कम हो ऐसे दूध को स्वच्छ दूध कहा जा सकता है।

स्वच्छ दूध पैदा न होने से कठिनाइयाँ :

यदि दूध स्वच्छता पूर्वक पैदा न किया जाय तो उसमें बहुत से हानिकारक कीटाणु जैसे टी० बी०, टाईफाइड, मलेरिया इत्यादि के जीवाणु प्रवेश कर जाते है और उससे दूध के शीघ्र खराब होने का भय रहता है। जो मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी बुरा असर डाल सकता है। स्वच्छ दूध पैदा न होने से निम्नलिखित कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती है—

(1) दूध के अन्दर गंदी बदबू प्रवेश कर जाती है।
(2) दूध शीघ्र खराब हो जाता है।
(3) दूध से बनने वाले पदार्थ जैसे दही, रबड़ी, लस्सी आदि भी अच्छी किस्म की नहीं बनती है।
(4) दूध का सेवन करने वालों में बीमारियाँ फैल सकती है।
(5) दूध का बाजार में मूल्य भी कम हो जाता है।

उपरोक्त कठिनाइयों से बचने के लिए यह जरूरी है कि दूध को गंदा होने से बचाया जाय। दूध को गंदा होने से बचाने के लिए हमें यह देखना चाहिए कि कौन-कौन से कारक दूध को गन्दा करते है।

दूध को गंदा करने वाले मुख्य कारक :

(1) पशु का स्वास्थ्य और उसकी सफाई।
(2) दूध दुहने वालों की सफाई तथा स्वास्थ्य।
(3) दुग्ध-शाला की बनावट तथा सफाई।
(4) दूध दुहने में प्रयोग होने वाले बर्तन।
(5) पशुओं को चारा व दाना खिलाने की विधि।
(6) दूध निकालने मे प्रयोग होने वाले यन्त्र।
(7) पशु-शाला से दूध हटाने का समय।
(8) दूध छानने की विधि।
(9) अन्य कारण।

उपरोक्त कारण कैसे-कैसे दूध को गंदा करते हैं इनका हम विस्तार से वर्णन इस प्रकार कर सकते है —

(1) पशु का स्वास्थ्य और उसकी सफाई :

जो पशु दूध देता है उसका स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए उसमे किसी भी

प्रकार की बीमारी जैसे ऐन (अडर) की सूजन, थनैला तथा क्षय रोग आदि बीमारियाँ नहीं होनी चाहिए। ऐसा होने से रोग के जीवाणु दूध में भी प्रवेश कर जाते है जिसका उपयोग मनुष्य द्वारा करने पर वह भी बीमारी से पीड़ित हो सकता है।

पशु के स्वास्थ्य के ठीक होने के साथ-साथ उसके शरीर की सफाई करना भी परम आवश्यक है। पशु की सफाई दूध निकालने से $1-1\frac{1}{2}$ घन्टा पहले कर देनी चाहिए। यदि गंदे पशु से दूध निकाला जाय तो वह गंदा हो जायेगा। एक प्रयोग द्वारा ज्ञात हुआ है कि पशु की सफाई करने पर जीवाणु की संख्या 2154 प्रति घन सेंटीमीटर तथा पशु की सफाई न करने पर 17027 जीवाणु प्रति घन सेंटीमीटर दूध में पाये गये। इसलिए पशु की सफाई तथा स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए।

(2) दूध दुहने वाले की सफाई तथा स्वास्थ्य :

पशु के स्वास्थ्य तथा उसकी सफाई के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उसके दूध निकालने वाले मनुष्य का स्वास्थ्य भी अच्छा हो उसमें किसी प्रकार की गंदी आदत जैसे थूकना, बीड़ी पीना, सिर को न ढकना, छींकना आदि नही होनी चाहिए।

दूध दुहने वाले मनुष्य को साफ तथा सफेद कपड़े पहनने चाहिए। दूध दुहने से पहले हाथों को साबुन से धोकर साफ करके तौलिए से पोंछना चाहिए तथा तब दूध निकालना चाहिए।

(3) दुग्ध-शाला की सफाई व बनावट :

दुग्ध-शाला सदैव साफ तथा स्वच्छ रहनी चाहिए। उसे दूध दुहने से $1\text{-}1\frac{1}{2}$ घंटा पहले साफ कर लेना चाहिए। दीवालों पर कलई करानी चाहिए तथा पेशाब की नालियों में फिनाइल डालना चाहिए। एक आदर्श पशु शाला के निम्नलिखित गुण हैं—

(1) पशुशाला प्रकाशमय होनी चाहिए।
(2) पशुशाला का खुला वातावरण होना चाहिए तथा हवा का आदान-प्रदान अच्छी तरह होना चाहिए।
(3) पशुशाला का संवातन (वेन्टीलेशन) ठीक होना चाहिए।
(4) दूध इकट्ठा करने का कमरा पशुशाला के पश्चिम मे होना चाहिए।
(5) कमरे पर जाली लगी होनी चाहिए जिससे मक्खी-मच्छर प्रवेश न कर सकें।

(6) कमरे में दूध 'नापने वाले के अतिरिक्त कोई दूसरा आदमी' प्रवेश नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार पशुशाला की सफाई तथा बनावट अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(4) दूध दुहने में प्रयोग होने वाले बर्तन :

दूध दुहने वाले बर्तन का मुँह छोटा होना चाहिए,यदि बर्तन बड़े मुँह वालाने होगा तो उनमें जीवाणु शीघ्र तथा अधिक मात्रा में प्रवेश कर सकते हैं। प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि चौड़े मुँह के बर्तन में दूध निकालने से जीवाणुओं की संख्या लगभग 5000 प्रति घन सेंटीमीटर तथा छोटे मुँह के बर्तन में दूध निकालने से जीवाणुओं की संख्या लगभग 2700 प्रति घन सेंटीमीटर पाई गई, जबकि अन्य बातें समान रही।

दूध निकालने वाले बर्तनों को हत-जीवाणु (स्टरीलाइज) कर लेना चाहिए। हत-जीवाणु करने की विधि निम्न है—

(1) पहले बर्तनों को पानी से धोना चाहिए।

(2) गर्म पानी में धोने वाला सोडा मिलाकर ब्रुश से रगड़ कर धोना।

(3) इसके बाद भाप या उबलते पानी से धोना।

(4) अन्त में ठण्डे पानी से धोना।

यदि बर्तनों को जीवाणु हनन के लिए सोडा तथा गर्म पानी न मिले तो 9-12% क्लोरीन जल से जीवाणु-हनन किया जा सकता है। मशीन द्वारा जीवाणु-हनन करने से बर्तन को 180° फा॰ पर 15 मिनट या 215° फा॰ पर 5 मिनिट तक जीवाणु-हनन किया जाता है।

(5) पशु को चारा व दाना खिलाने की विधि :

वैज्ञानिकों का विचार है पशु को चारा खिलाने के तुरन्त बाद दुहा जाय **और यदि पशु ने कोई दुर्गन्ध युक्त चारा खाया है** तो दूध में उसकी बदबू आ जाती है तथा चारे के छोटे-छोटे टुकडे हवा में उड़ते रहते हैं, जो दूध को गंदा कर देते हैं। इसलिए पशु को चारा खिलाने के 1½ या 2 घण्टे बाद या चारा खिलाने से पहले दुहना चाहिए।

(6) पशु दुहने में प्रयोग होने वाले यन्त्र या मशीन :

जिन डेरी फार्मों पर दूध निकालने के लिए मशीन का प्रयोग किया जाता है उनमें सबसे अधिक दूषण (कटेमिनेशन) होता है क्योंकि मशीन का रबड़ वाला भाग अच्छी तरह साफ नहीं होता। इसलिए दूसरी बार दूध निकालने पर दूषित हो जाता है।

(7) पशुशाला से दूध हटाने का समय :

दूध दुहने के तुरन्त बाद दूध को ढक कर पशु शाला से हटा लेना चाहिए। ऐसा न करने पर दूध में पशुशाला की गंध तथा मक्खियाँ आदि प्रवेश कर जाती हैं जिससे दूध गंदा हो जाता है। इसलिए दूध को दुहने के तुरन्त बाद पशुशाला से हटा लेना चाहिए।

(8) दूध को छानने की विधि :

दूध को दुहने में चाहे कितनी भी सावधानी रखी जाय परन्तु उसमें कुछ न कुछ बाहरी गंदगी अवश्य प्रवेश कर जाती है। इसलिए दूध को अवश्य छानना चाहिए। छानने में प्रयोग होने वाला कपड़ा या पैड बदलते रहना चाहिए नहीं तो वह दूध को और भी अधिक गंदा कर सकता है। क्योंकि कपड़े पर गंदगी इकट्ठी होती रहती है।

(9) अन्य कारण :

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त दूध अन्य कारणों जैसे मक्खी, मच्छर, बिल्ली, कुत्ता, धुल भरी आँधी इत्यादि के कारण भी गंदा हो सकता है।

दूध का परिवहन करने में भी दूध गंदा होता है जैसे दूध एक स्थान से दूसरे स्थान को डिब्बों द्वारा ले जाया जाता है तो वह छलकता है और गंदा होता है। कभी-कभी परिवहन के समय ग्वाले भी दूध में नदी, नाले तथा तालाब का गंदा पानी उसमें मिला देते हैं, जिससे दूध गंदा हो जाता है।

यदि दूध को तुरन्त निरोगित (पास्चुराइज) नहीं किया जाता तो दूध को तुरन्त ठण्डा कर देना चाहिए नहीं तो दूध में जीवाणुओं की संख्या बढ़ने लगती है। नीचे तालिका संख्या 1 में तापक्रम का प्रभाव दिखाया गया है।

तालिका संख्या 30

जीवाणुओं की संख्या पर तापक्रम का प्रभाव

दूध संचय करने का तापक्रम	ताजे दूध में जीवाणु संख्या	24 घंटे पश्चात जीवाणुओं की संख्या	48 घंटे बाद जीवाणुओं की संख्या	72 घंटे बाद जीवाणुओं की संख्या
40° फा.	4295	4138	4566	8246
50° फा.	4295	13961	126626	5625266
60° फा.	4295	587333	33011111	326500000

हमारे देश में स्वच्छ दुग्ध उत्पादन पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। इसी कारण हमारे देश मे जो दूध पैदा किया जाता है उसमें जीवाणुओं की संख्या अधिक होती है। दूध में जीवाणुओं की संख्या अधिक होने के निम्नलिखित कारण है—

(1) दूध दुहने से पहले बच्चों को थनों से दूध पिलाना।

(2) थनों को पानी से धोना तथा फिर भीगे थनों से दूध निकालना।

(3) दूध दुहने, परिवहन करने तथा वितरण में गंदे बर्तनो का प्रयोग करना।

(4) गंदे पशुओं से दूध निकालना।

(5) गंदे हाथों से दूध निकालना।

(6) दूध निकालते समय गंदी आदतों का प्रयोग करना जैसे थूकना, बीड़ी पीना, छीकना आदि।

(7) अस्वस्थ मनुष्यों द्वारा कार्य करना।

(8) दूध निकालते समय सफाई का ध्यान न रखना।

(9) दूध को देर तक पशुशाला में रखने से दूध का मच्छर, मक्खी द्वारा दूषित होना।

(10) परिवहन के समय दूध में पेड़ों की पत्तियाँ डालना।

(11) गन्दे पानी से दूध का अपमिश्रण करना।

(12) देश की गर्म जलवायु का होना।

(13) स्वच्छ दुग्ध उत्पादन की महत्ता को न समझना।

(14) अशिक्षित व्यक्तियों का इस व्यवसाय में कार्य करना।

(15) दूध व्यवसाय का अविकसित होना।

(16) दूध व्यवसाय मे अधिक धन का व्यय तथा कम लाभ का होना।

उपर्युक्त कारणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि हमारे देश मे दूध का उत्पादन बहुत गंदे ढंग से होता है।

दूध वितरण की समस्या :

हमारे देश मे बड़े-बड़े शहरो में दूध के वितरण की बड़ी समस्या है क्योंकि अधिकतर दूध देने वाले पशु गाँवों मे पाले जाते हैं। शहरो से कुल दुग्ध उत्पादन का 5% ही पैदा होता है इसलिए दूध की समस्या रहती है। शहरो मे जो दूध पैदा होता है उसका वितरण दो प्रकार के ग्वाले करते है—

(1) पहली प्रकार के ग्वाले वे होते है जो 2-4 भैंसें दूध देने वाली रखते हैं और उन्हें गली, मोहल्लों मे दूध लेने वाले ग्राहकों के पास जाकर दूध दुहते है। इस प्रकार का दूध वैसे तो शुद्ध होता है परन्तु उसमें जीवाणुओं की संख्या बहुत ज्यादा प्रवेश कर जाती है क्योंकि वे स्थान की स्वच्छता का कोई ध्यान नहीं रखते। पशु के रस्मे नाली में भीग

कर गंदे हो जाते हैं और वह उन्हें पकड़ कर चलता है तथा फिर उन्ही हाथों से दूध निकाल देता है। जिससे दूध में गंदगी प्रवेश कर जाती है इसी प्रकार से दूधिया के कपड़े भी गन्दे होते हैं तथा यही आदमी पशुओं को चारा भी डालता है।

(2) कुछ ग्वाले शहरों में किसी स्थान पर 10-15 पशु दूध देने वाले रखते हैं तथा निश्चित समय पर पशुओं का दूध निकालते हैं और सब ग्राहक वहीं पर अपने बर्तन लेकर आ जाते हैं तथा दूध ले जाते है। इस विधि द्वारा भी दूध अच्छा तो होता हैं, परन्तु उसमें जीवाणु काफी मात्रा में प्रवेश कर जाते हैं और वे सफाई का अधिक ध्यान नही रखते।

शहरों में पैदा होने वाले दूध का 75% बेचने में तथा 25% निजी काम में लाया जाता है। परन्तु यह भी दूध व्यवसाय करने वाले ग्वालों के दुग्ध विज्ञान के विषय में अज्ञानता तथा पशु व बर्तनों की गंदगी के कारण भी गंदा ही रहता है।

शहरों में सप्लाई होने वाले दूध का अधिकतर भाग गाँवों से ही शहरों मे जाता है। जब ग्वाला शहरों में दूध ले जाता है तो वह अधिकतर खुले बर्तनों में ही ले जाता है तथा दूध छलकने पर वह उसमें पत्ते इत्यादि डाल देता है जो दूध को और गंदा कर देता है। इसके अतिरिक्त गाँव से शहरों तक दूध आने में कई घण्टे लग जाते हैं तथा वह रास्ते में उसमें पानी भी मिलाता है जिससे दूध में जीवाणु वृद्धि कर जाते हैं तथा बीमारी फैलने का भय रहता है।

हमारे देश में जो दूध के मानक (स्टैंडर्ड) बनाए गए हैं उनकी अपेक्षा शुद्ध दूध में वसा तथा अन्य पदार्थों की मात्रा अधिक होती है। इसलिए दूध का व्यवसाय करने वालो को उसमें पानी मिलाने का अवसर मिल जाता है। पानी मिलाने मे वह स्वच्छता का कोई ध्यान नहीं रखता तथा दूध मे मिट्टी, जोंक तथा अन्य बैक्टीरिया प्रवेश कर जाते हैं।

जब यह दूध हलवाई के पास जाता है तो वह भी उसमे (लाभ कमाने के लिए) पानी मिला देता है। इस प्रकार दूध मे केवल $\frac{1}{2}$ भाग ही दूध रह जाता है और शेष पानी का रहता है।

शहरों में जो दूध निरीक्षण करने वाला निरीक्षक रहता है वह भी रिश्वत ले लेता है, इससे अपमिश्रण होता है। यदि कोई निरीक्षक ईमानदारी से कार्य करे, तो भी अपमिश्रण को नही रोक पाता क्योकि गाय के दूध में 5% तक वसा पाई जाती है जबकि गाय के दूध का मानक 3·5%. वसा तथा 8·5%. वसा रहित पदार्थ का है। भैंस के दूध का मानक 6·0% वसा तथा 9%. वसा रहित पदार्थ का है। जबकि भैंस के दूध में 7·5%. तक वसा पाई जाती है। कुछ ग्वाले भैंस के दूध में पानी मिलाकर उसे गाय का दूध कहकर बेच देते हैं।

गाँव से शहरों तक दूध ठीक हालत में पहुँचाना भी एक जटिल समस्या है। क्योंकि यहाँ की जलवायु गर्म होने से दूध 3–4 घण्टे में ही खराब होने लगता है दूध के बहुत से गुण दूध को पहुँचाने के साधनों पर भी निर्भर करते हैं। दूध गाँवों से प्रायः शहरों में साइकिल, घोड़ा, ताँगा, रेल, बैलगाड़ी, मोटर, ऊँट इत्यादि साधनों द्वारा ले जाया जाता है। सिर पर रख कर, बैलगाड़ी, ऊँट, नाव, खच्चर आदि द्वारा एक से दो मील का दूध आता है घोड़ा, ताँगा, साइकिल इत्यादि से 8–10 मील की दूरी तक का दूध आता है तथा रेल, मोटर तथा ट्रक द्वारा 30 से 100 मील तक दूध का वितरण होता है। इस प्रकार ये साधन भी दूध का वितरण करते हैं परन्तु इनमें भी दूध गन्दा हो जाता है।

दूध वितरण की समस्याओं के हल के लिए सुझाव :

आजकल हमारे देश में दूध की बहुत जटिल समस्या है, क्योंकि यहाँ पर दूध कम मात्रा में पैदा होता है तथा जो दूध पैदा होता है वह गाँवों में ही पैदा होता है। गाँवों से ही दूध शहरों में बेचने के लिए लाया जाता है। दूध की समस्या को सुधारने के लिए निम्नलिखित सुझाव हैं—

(1) जिन शहरों में सरकारी दुग्ध संघ स्थापित हो गए हैं उनमें कुछ हद तक दूध की समस्या हल हो गई है, इसलिए जिन शहरों में दुग्ध संघ स्थापित न हुए हों उनमें दुग्ध संघ स्थापित करने चाहिए।

(2) सहकारी दुग्ध संघों के स्थापित होने से दूध की समस्या शहरों की हल हो जायेगी, परन्तु गाँव वालों द्वारा सारा दूध देने से उनका स्वास्थ्य खराब हो जायेगा। इसलिए सहकारी संघ को चाहिए कि ग्रामीणों से सारा दूध न लेकर कुछ दूध उनके लिए अवश्य छोड़ दें।

(3) शहरों तथा गाँवों में स्वच्छ दूध पैदा करने का प्रचार करना चाहिए। जिससे दूध के गुणों में सुधार हो।

(4) दूध के अपमिश्रण को रोकने के लिए दूध के मानक (लीगल-स्टैण्डर्ड) में सुधार होना चाहिए क्योंकि आजकल के स्टैण्डर्ड बहुत कम हैं।

(5) फूड अडलट्रेशन (अपमिश्रण एक्ट) के नियमों को कठोर करना चाहिए तथा अपमिश्रण करने वालो को कठोर दण्ड मिलना चाहिए।

(6) शहरो में क्रय-विक्रय मण्डल (संघ) या बोर्ड होने चाहिए जो स्वच्छ तथा अधिक दूध पैदा करने वालो को सहायता कर सके।

(7) दूध के यातायात या परिवहन मे मोटर, ट्रक या रेलगाड़ियों में प्रशीतन या कूलर का प्रबन्ध होना चाहिए।

(8) बीमारी से बचाने तथा पशु प्रजनन के लिए डाक्टरों का प्रबन्ध होना चाहिए।

(9) पशुओं को सन्तुलित आहार देने के लिए पशुपालकों में प्रचार करना चाहिए।

(10) अच्छी नस्ल के पशु पालने के लिए पशुपालकों को सलाह देनी चाहिए।

(11) किसानों में अच्छी नस्ल के पशु पालने का तथा नस्ल सुधारने का प्रचार करना चाहिए।

(12) सरकार को अनुसन्धानात्मक कार्य पर अधिक बल देना चाहिए तथा क्रोसिंग द्वारा 'करनस्विस' जैसी उत्तम नस्लों की जाति निकालने के लिए वैज्ञानिकों को सहायता देनी चाहिए।

(13) सरकार को 'हरित-क्रांति' के साथ-साथ श्वेत-क्रांति पर भी बल देना चाहिए तथा इसमें अनुसन्धानात्मक कार्य किए जाने चाहिए।

(14) दूसरे पदार्थ जैसे सोयाबीन इत्यादि का दूध बनाने से भी दूध की समस्या में काफी सुधार हो सकता है यदि इसे बड़े स्तर पर लागू किया जाय।

(15) दूध के जीवाणु स्टैंडर्ड भी निर्धारित करने चाहिए जिससे दूध के ताजा होने का अनुमान लगाया जा सके।

इसके अतिरिक्त अवारा साडों का कास्ट्रेशन (बधिया) करना, अच्छे पशुओं को काटने से रोकना, बेकार पशुओं को गोसदान पहुंचाना आदि कारणों के हल होने से काफी हद तक स्वच्छ दूध वितरण की समस्या का हल हो सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. दूध में गन्दगी कितने प्रकार की होती है ? दूध को गन्दा करने वाले मुख्य-मुख्य कौन-कौन से कारक है।
2. तापक्रम किस प्रकार जीवाणुओं की संख्या को प्रभावित करता है ? स्वच्छ दुग्ध-उत्पादन किस प्रकार प्राप्त करोगे ?
3. दूध वितरण की क्या समस्यायें है ? आप इन समस्याओं के लिए क्या-क्या सुझाव दोगे।
4. दुग्धशाला की सफाई व बनावट किस प्रकार स्वच्छ दुग्ध-उत्पादन में सहायक होता है।

अध्याय 16

गाय के बाह्य शरीर का अध्ययन

पशु विशेष की उपयोगिता तथा उत्तमता बहुत कुछ उनके विभिन्न अवयवों की बनावट पर निर्भर करती है। अतः वैज्ञानिक अध्ययन हेतु यह जरूरी है कि पशु के विभिन्न अवयवों की जानकारी हो। पशु के वाह्य अवयवों की बनावट देखकर ही हम अनुमान लगा सकते हैं कि अमुक गाय दुग्ध-उत्पादन अथवा बैल खेती के लिए उपयुक्त हैं कि नहीं। उदाहरण के रूप में साफ दीखती हुई और टेढ़ी-मेढ़ी दुग्ध शिरायें इस बात का प्रतीक है कि गाय के अयन में पर्याप्त रक्त भ्रमण करता है जो अधिक दुग्धोत्पादन के लिए आवश्यक है। साथ ही अवयवों की जानकारी होना पशु की बीमार अवस्था में पशु चिकित्सक को सही-सही जानकारी देकर उचित निदान में सहायक होता है।

मुख्यतः पशु के शरीर को निम्नलिखित भागों में बाँट सकते है—

1. सिर और गर्दन
2. अगला भाग
3. मध्य भाग
4. पिछला भाग
5. पूँछ

Parts of cow in English

चित्र सं. 48

Parts of a cow in Hindi

चित्र सं. 49

उपर्युक्त चित्र में पशु शरीर के विभिन्न अवयवों को अंग्रेजी एवं हिन्दी नामों में दिखाया गया है, ताकि छात्र आसानी से नामों को याद कर सकें एवं समझ सकें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गाय का एक स्वच्छ चित्र बनाकर निम्न अङ्गों को दिखाओ—

(i) Dewclaw (ii) Dewlap
(iii) Rump (iv) Hump

2. गाय का चित्र बनाकर निम्न अङ्गों को दिखाओ—

(i) Muzzle (ii) Muffle
(iii) Hock Joint (iv) Udder
(v) Crown (vi) Switch of the tail

अध्याय 17

अच्छी गाय का चुनाव

पशु पालक गाय को लाभ के लिए पालते है। अतः खरीदते समय उन्हें गाय के अच्छी-बुरी होने के लक्षणों का पता होना आवश्यक है। जो पशुपालक गाय को दूध के लिए पालते हैं उन्हें अधिक दूध देने वाली गाय अच्छी लगती है और कृषकों को द्विप्रयोजनी गाय अच्छी लगती है। एक अच्छी गाय की पहचान हम निम्न प्रकार से कर सकते है—

(अ) गाय के बाह्य लक्षण देखकर।

(ब) दुग्ध उत्पादन पंजिका देखकर।

(स) पशु की वंशावली पंजिका देखकर

(द) गुणांकन तालिका बनाकर।

(अ) बाह्य लक्षण देखकर गाय की पहचान—अच्छी गाय के निम्न लक्षण होते है जिन्हें खरीदते समय ध्यान मे रखना चाहिए—

1. गाय का शरीर आगे से पतला, पीछे से चौड़ा (भारी) होना चाहिए जो शरीर का त्रिकोण बनावे।
2. चमड़ी पतली और चर्बी चढ़ी न हो।
3. पसलियां और पीठ की हड्डियां उभरी हुई और मांस रहित हों।
4. आयन अच्छा और बड़ा हो। लचीला और गोस्त के टुकड़ों से रहित हो।
5. थन बराबर की दूरी पर व उचित लम्बाई के हो।
6. गाय सीधे और शान्त स्वभाव की हो।
7. गाय शुद्ध नस्ल की हो।
8. गाय का शरीर लम्बा और सुगठित हो।
9. मुंह सुन्दर और पतला हो।
10. पसलियां लम्बी और दूर-दूर हो।

11. गाय नई अवस्था की हो अर्थात् प्रौढ़ न हो।
12. गाय कम दिनों की ब्याई हो।
13. गाय कम ब्यांत वाली हो।
14. एक ब्यांत में कम से कम आठ माह तक दूध देती हो।
15. नियमित समय पर ब्याती हो।
16. बच्चा स्वस्थ्य एवं अच्छा हो।
17. सिर सीधा, गला पतला, आँखें बड़ी-बड़ी एवं चमकीली हो।
18. पीठ सीधी एवं मजबूत हो।
19. कमर लम्बी व चौड़ी हो।
20. पूँछ लम्बी, ऊपर से मोटी एवं नीचे से पतली हो।
21. पैर मजबूत एवं सीधे हो।
22. दूध की मात्रा अधिक हो।

(ब) दुग्ध उत्पादन पंजिका देखकर जांच करना—दुग्ध उत्पादन पंजिका में गाय के दुग्ध उत्पादन की प्रतिदिन की मात्रा को अंकित किया जाता है। उसी से गाय के पूरे ब्यांत तैयार किया जाता है। इस पंजिका को देखने से पता चलता है कि गाय ने एक ब्यांत में कितने समय तक और कुल कितना दूध दिया। इन बातों को देखकर हम गाय की उत्पादन क्षमता की पहचान कर सकते हैं।

(स) गाय की वंशावली पंजिका देखकर—वंशावली पंजिका में गाय का पिछला पूरा इतिहास लिखा रहता है। इससे गाय के पूर्वजों व माता पिता का पूर्ण विवरण जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त ब्यांत की संख्या अंकित होती है। गाय द्वारा दिए गए बच्चों की संख्या, उनका स्वास्थ्य, उनकी जन्म-मृत्यु सम्बन्धी लेखा, भी इसमें अंकित किया जाता है। इन सब बातों को देखकर भी गाय की पहचान की जा सकती है।

(द) गुणांकन तालिका द्वारा—इस विधि द्वारा गाय की परख (जांच) करना उपर्युक्त सभी विधियों से आसान है। इसमें पशु के प्रत्येक अंग के लिए, उनकी विशेष रचना के लिए निश्चित अंक होते हैं। उन्हीं निर्धारित अंकों में से अंक दिए जाते हैं। (अंगों की विशेषताएँ "अ" भाग में वर्णित हैं।) यदि गाय 50% अंक प्राप्त करती है तो साधारण, 51–74% या इससे अधिक अंक प्राप्त करने वाली गाय उत्तम मानी जाती है। गुणांकन तालिका अग्रलिखित प्रकार है—

गाय व भैंस की परख के लिए गुणांकन पत्र

गुण	अङ्क	पशुओं का नाम या नम्बर		
		1	2	3
1. दुधारूपन के अनुरूप शरीर की रचना	15 अंक			
(अ) गाय सुडौल बदन की हो तथा उसका रूप स्त्रैण हो अच्छे पशुओं के लक्षण और गुणांकन-पत्र विधि द्वारा उनकी परख, शरीर पर मांस एकत्रण की प्रवृत्ति का अभाव हो।	5			
(ब) गाय की आकृति सामने, बगल तथा ऊपर से देखे जाने पर फानाकार हो। कंधा, ककुद श्रोणि अस्थि अपसास्थि तथा रीढ़ विकसित और उभरी हुई हो।	4			
(स) कमर चौड़ी, पसलियां लम्बी, दूर-दूर और बाहर की ओर फैली हुई हो।	3			
(द) गाय चुस्त प्रकृति की हो लेकिन वह भड़कने वाली कदापि न हो।	3			
2. पर्याप्त भोजन कर सकने और पचाने की क्षमता	15 अंक			
(अ) चौड़ा थूथन और बड़ा मुंह।	1			
(ब) बाल मुलायम तथा त्वचा पतली, श्लथ और आलम्य हो।	4			
(स) गहरा, चौड़ा और लम्बा तथा खूब ऊपर की ओर खिंचा पेट हो।	10			
3. शारीरिक गठन	15 अंक			
(अ) उभरी हुई पसलियों युक्त चौड़ी छाती हो।	8			
(ब) बड़े और खुले हुए नथुने हों।	2			
(स) शरीर स्वस्थ और प्रबल दशा में हो लेकिन शरीर अधिक मांसलपन लिए न हो।	5			
4. पूर्ण विकसित पयस्राव अंग	15 अंक			
(अ) अयन—				

		1	2	3
1. आकार में खूब बड़ा हो।	7			
2. लचीला तथा गाँठों से रहित हो।	7			
3. आगे और पीछे की ओर भली-भाँति फैला हो, तथा सब भाग सुव्यवस्थित हों। निलम्बी न हो।	6			
(ब) दुग्ध शिरायें—				
1. साफ दिखते हुई शाखायुक्त और टेढ़ी-मेढ़ी हों तथा दुग्ध कूप बड़े-बड़े और कई हों।	3			
2. दुग्ध शिरायें संख्या में कई हो।	7			
(स) थन—				
गोलाकार एक से और सुव्यवस्थित हों तथा चारो थन बराबर व भरे हुए हों।	5			
5. सामान्य आकृति और सुन्यता सूचक अंग	20 अंक			
(क) सिर-मध्य आकार का व सीधा।	1			
(ख) गर्दन-लम्बी, पतली, गोल व सुडौल।	1			
(ग) आँखें-बड़ी, सन्तोषी व चमकदार।	1			
(घ) पीठ-सीधी, मजबूत तथा हड्डियाँ स्पष्ट।	2			
(ङ) कूल्हे—चौड़े, समतल व बलिष्ठ।	2			
(च) पुट्ठे—लम्बे, चौड़े और ढलवाँ।	2			
(छ) कूल्हे पर हड्डियों के जोड़—काफी दूर तथा ऊँचाई पर।	2			
(ज) पूँछ—नस्ल के अनुरूप और सुन्दर।	1			
(झ) पैर—बलिष्ठ हड्डियों युक्त व सीधे।	5			
(ञ) कद—ऊँचा, और बनावट।	3			
अंकों का योग	100			

निष्कर्ष :

1. साधारण 50% तक
2. औसत 51–74% तक
3. उत्तम 75% या इससे अधिक।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गाय की पहचान के लिए आप कौन-कौन से उपाय काम में लेंगे?
2. गुणांकन तालिका विधि द्वारा गाय की पहचान कैसे करोगे?
3. बाह्य लक्षणों के आधार पर किस गाय की परख किस प्रकार करोगे?

अध्याय 18

अच्छे बैल का चुनाव

भारत में खेती के कार्य में बैलों का बहुत अधिक महत्त्व है। इस महत्त्व को ध्यान में रखते हुए किसान अच्छे बैलों का चुनाव करता है। अच्छे बैल का चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. बैल के शरीर की रचना—बैल का शरीर सुन्दर, सुडौल और सुगठित होना चाहिए। बैल के पैर लम्बे तथा बड़े, छाती चौड़ी, पीठ सीधी और गर्दन मजबूत होनी चाहिए। शरीर मांस पेशियों से ढ़का होना चाहिए, परन्तु शरीर पर चर्बी चढ़ी न हो। अच्छे बैल के पैरों के मध्य अधिक चौड़ाई होती है तथा चलते समय पैर एक दूसरे से टकराते नहीं है। पसलियाँ दूर-दूर, हम्प मध्यम तथा शरीर की त्वचा मुलायम होती है।

(2) बैल की ऊँचाई—बैलों की ऊँचाई कार्य और नस्ल के अनुसार होनी चाहिए। बोझा ढोने के लिए छोटे कद का तथा हल चलाने के लिए लम्बी टाँगों का बैल खरीदना चाहिए।

(3) बैल का भार—बैल ऐसा हो जो न तो अधिक भारी और न ही अधिक हलका हो। बैल अपने भार के अनुसार ही बोझ खींच सकता है। परन्तु भारी तेज चाल से नहीं चल सकता है।

(4) बैल की उम्र—बैल 4 से 6 वर्ष तक ही पूर्ण जवान रहता है। लगभग 8 वर्ष की आयु के बाद बैल की जवानी कम होने लगती है जिससे उसके कार्य करने में शिथिलता आ जाती है। अतः बैल क्रय करते समय बैल की आयु 4 से 6 वर्ष के मध्य होनी चाहिए।

(5) बैल की आकृति—बैल की शक्ल सूरत देखने में सुन्दर तथा नस्ल के अनुरूप हो। उसका माथा चौड़ा, आँखें उभरी तथा चमकीली और बड़ी-बड़ी होनी चाहिए। उनमें नस्ल के सभी गुण हों।

गाय व भैंस की तरह बैल की परख भी निम्न गुणांकन तालिका द्वारा कर सकते हैं।

बैलों की परख के लिए गुणांकन-पत्र

क्रम	गुण	अङ्क निर्धारित	पशु का नाम या नम्बर 1	2	3
1.	सामान्य रूप	(20)			
	(अ) नस्ल के अनुसार भार	10			
	(ब) नस्ल के अनुसार रंग	2			
	(स) चमड़ी पतली व बाल मुलायम	3			
	(द) हड्डियाँ मोटी एवं सख्त	2			
	(य) अच्छा स्वभाव	3			
2.	सिर एवं गर्दन	(21)			
	(अ) सिर सीधा एवं छोटा	4			
	(ब) सींग मध्यम	2			
	(स) थूथन सुन्दर एवं बड़ा नथुने बड़े, होट पतले	2			
	(द) आँखें चमकीली एवं चंचल	3			
	(य) कान लम्बे, बड़े एवं सुन्दर	2			
	(र) गला मध्यम, कंधा चौड़ा	8			
3.	अगला भाग	(17)			
	(अ) कधा लम्बा चौड़ा पीठ तक	6			
	(ब) अगले पैर मजबूत, छोटे, मांस पेशियों से ढ़के	4			
	(स) पिंडली, सीधी एवं छोटी	3			
	(द) घुटना छोटा एवं सीधा	2			
	(य) खुर काले एवं मजबूत	2			
4.	मध्यम अंग	(20)			
	(अ) छाती लम्बी एवं चौड़ी	8			
	(ब) हृदय भाग चौड़ा एवं मांस पेशियों से ढका	5			
	(स) पसलियाँ दूर-दूर लम्बी एवं झुकी	3			
	(द) पीठ मोटी एव सीधी	4			
5.	पिछले अंग	(22)			
	(अ) पिछाड़ी चौड़ी	3			
	(ब) पूँछ ऊपर से नीचे की ओर पतली व काले बालों के गुच्छे वाली।	2			

गुण		1	2	3
(स) जाँघें छोटी एवं मोटी	2			
(द) चूतड़ बड़े एवं मांसल	4			
(य) पिंडली छोटी एवं सीधी	2			
(र) घुट्टी छोटी एवं मजबूत	2			
(ल) खुर काले एवं मजबूत	2			
(व) पैर मांसल एवं बड़े	3			
अंकों का योग	100			

6. निष्कर्ष :

साधारण 50% तक	औसत 51-74%	उत्तम 75% से अधिक	

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एक अच्छे बैल की क्या पहचान है ? बैल खरीदते समय आप किन-किन बातों का ध्यान रखोगे ?
2. कृषि कार्य के लिए बैल का क्या महत्त्व है ? अच्छे बैल के गुणों का वर्णन कीजिए।
3. एक अच्छे बैल का चुनाव गुणांकन तालिका द्वारा कैसे करोगे ?

अध्याय 19

पशुओं का भार ज्ञात करना

प्रत्येक पशु पालक को पशुओं का वजन जानना अति आवश्यक है क्योंकि पशुओं के चारे दाने की मात्रा तथा औषधि की मात्रा का निर्धारण उनके वजन के आधार पर ही किया जाता है। पशुओं का भार ज्ञात करने से उनके स्वास्थ्य का भी पता चलता है। पशुओं का भार ज्ञात करने के निम्न लाभ है—

1. पशुओं के भोजन की मात्रा निर्धारण में सुविधा रहती है।
2. पशुओं की औषधि की मात्रा आसानी से निश्चित कर सकते हैं।
3. पशु के स्वास्थ्य का पता चलता है।
4. मांस वाले पशुओं के मांस के अनुपात का पता चलता है।

शिशु पशुओं का भार ज्ञात करना

शिशु पशुओं का भार विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न होता है। स्वस्थ शिशुओं का भार निम्न तालिका में दिखाए अनुसार होना चाहिए—

तालिका सं. 31

गाय एवं भैंस के बच्चे का आयु अनुसार भार

आयु	गाय के बच्चे का भार		भैंस के बच्चे का भार	
	नर	मादा	नर	मादा
जन्म के समय	25 कि. ग्रा.	20 कि. ग्रा.	36 कि. ग्र.	32 कि. ग्रा.
छः माह	135 "	125 "	160 "	165 "
एक वर्ष	225 "	200 "	280 "	260 "
डेढ़ वर्ष	320 "	270 "	385 "	335 "
दो वर्ष	385 "	340 "	480 "	410 "

बच्चा पैदा होने के बाद उसका भार बढ़ता रहता है शिशु के भार में वृद्धि दर प्रतिदिन अग्रांकित तालिका द्वारा दिखाई गई है—

तालिका सं. 6

भार में वृद्धि

आयु	गाय के बच्चे की		भैंस के बच्चे की	
	नर	मादा	नर	मादा
जन्म से 6 माह तक	600 ग्रा.	585 ग्रा.	675 ग्रा.	725 ग्रा.
6 माह से एक वर्ष तक	500 ग्रा.	435 ग्रा.	690 ग्रा.	545 ग्रा.

प्रौढ़ पशुओं का भार ज्ञात करना

प्रौढ़ पशुओं का भार निकालने की दो विधियां हैं—

1. मशीन द्वारा—पशु को भार तोलने की मशीन के मध्य में खड़ा करके मशीन के पैमाने को पढ़ लेते हैं। मशीन से भार मालूम करते समय सावधानी रखनी चाहिए कि पशु मशीन पर भली प्रकार मध्य में खड़ा हो और पैमाने का नाप भी ध्यान से पढ़ना चाहिए।

2. सूत्र द्वारा—कई बार गाँवों या अन्य स्थानों पर मशीन उपलब्ध नहीं होती है। ऐसी स्थिति में पशु का अनुमानित भार निकालने के लिए पशु की लम्बाई एवं छाती का घेरा मालूम करते हैं। पशु की लम्बाई कंधे से लेकर 'पिन बोन' तक नापते हैं तथा छाती का घेरा सीने के चारों ओर फीता लपेट कर मापते हैं। बाद में निम्न सूत्र द्वारा पशु का भार ज्ञात कर लेते हैं—

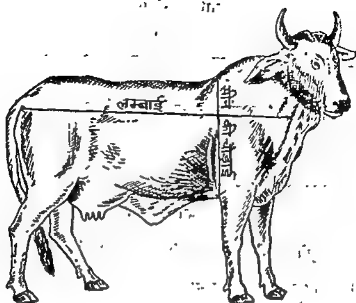
(अ) $\frac{(\text{सीने की चौड़ाई})^2 \times \text{लम्बाई}}{300}$ = भार (पौण्ड में)

(ब) $\frac{\text{सीने की चौड़ाई} \times \text{लम्बाई}}{(9 \text{ या } 8.5 \text{ या } 8)}$ = भार (सेरों में)

नोट :

1. इन दोनों सूत्रों से भार निकालने के लिए पशु की लम्बाई एवं छाती की (सीने की) चौड़ाई इन्चों में ली जानी चाहिए।

2. दूसरे सूत्र में—यदि पशु के सीने की चौड़ाई 65" या इससे कम हो तो 9, यदि सीने की चौड़ाई 65" से 80" हो तो 8.5 और यदि सीने की चौड़ाई 80" से अधिक हो तो 8 की संख्या का प्रयोग करना चाहिए।



चित्र सं 50. पशु की लम्बाई चौड़ाई ज्ञात करना

उदाहरण :

एक गाय की लम्बाई 5′—10″ है और उसके सीने की चौड़ाई 5′ – 3″ है उसका भार पौण्ड एवं सेर में निकालो।

हल :

गाय की लम्बाई इञ्चों में

$$=(5' \times 12)+10''=70 \text{ इञ्च}$$

गाय के सीने की चौड़ाई इञ्चों में

$$(5' \times 12)+3=63 \text{ इञ्च}$$

सूत्र (अ) के अनुसार

$$\frac{(\text{सीने की चौड़ाई})^2 \cdot \text{लम्बाई}}{300}=\text{भार पौण्ड में}$$

$$\frac{(63)^2 \times 70}{300}=\frac{63 \times 63 \times 70}{300}=926{\cdot}1 \text{ पौण्ड}$$

उत्तर,

सूत्र (ब) के अनुसार

$$\frac{\text{सीने की चौड़ाई} \times \text{लम्बाई}}{8 \text{ या } 8{\cdot}5 \text{ या } 9}=\text{भार सेरों में}$$

चूंकि सीने की चौड़ाई 65″ से कम है इस कारण 9 अंक का प्रयोग होगा। सूत्र मे मान रखने पर

$$\frac{62 \times 70}{9} = 490 \text{ सेर}$$

उत्तर

सूत्रों द्वारा पशु का वजन कि० ग्रा० निकालना

पशुओं का अनुमानित शरीर भार निम्नलिखित सूत्रों से ज्ञात किया जा सकता है।

$$\text{शरीर भार} = \frac{\text{छाती (H.G.) की चौड़ाई} \times \text{पशु की लम्बाई}}{\text{अ}} = \text{कि. ग्रा.}$$

जबकि अ = 64·4 (यदि H.G. 164 से. मी. से कम हो)
61·0 (यदि H.G. 165–200 से. मी. के बीच हो)
57·5 (यदि H.G. 200 से. मी. से अधिक हो)

नोट :

छाती की चौड़ाई एव पशु की लम्बाई को से. मी. मे बदलना जरूरी है। एक इंच = 2·47 से. मी.।

उदाहरण :

एक पशु जिसकी छाती की चौड़ाई 183 से. मी. और पशु की लम्बाई 160 से. मी. है तो पशु का वजन कि. ग्रा. में निकालो।

$$\text{सूत्रानुसार वजन} = \frac{\text{H.G. (cm)} \times \text{Length (cm)}}{\text{A}} = \text{kgs.}$$

चूंकि H.G. का माप 183 से. मी. है, अतः A का मान 61 होगा

$$\text{अतः } \frac{183 \times 160}{61} = 480 \text{ कि. ग्रा.}$$

उत्तर—पशु का शरीर भार 480 कि. ग्रा. है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पशु का भार ज्ञात करने से क्या-क्या लाभ होते हैं ?
2. पशुओं का भार किन-किन विधियों द्वारा ज्ञात किया जाता है ?
3. सूत्रों द्वारा पशुओं का भार ज्ञात कीजिए —
   (अ) पौण्ड में
   (ब) सेर में
   (स) कि. ग्रा. मे

अध्याय 20

पशुओं की आयु ज्ञात करना

प्रत्येक पशु पालक यह चाहता है कि उसे अपने व्यवसाय में अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो। लाभ के लिए वह पशुओं का क्रय-विक्रय करता है। पशु विक्रेता पशु का अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करना चाहता है जबकि क्रेता कम कीमत में खरीदना चाहता है। अधिकतर पशु की कीमत उसकी आयु पर निर्भर करती है। इस कारण विक्रेता पशु की आयु कभी भी ठीक नहीं बताते हैं।

हमारे देश में पशुओं की आयु का कोई भी लेखा-जोखा नहीं रखा जाता है जिसे देखकर पशु की आयु मालूम की जा सके। परन्तु आजकल कुछ अच्छे फार्मों पर लेखा रखा जाने लगा है। परन्तु जब किसी विशेष पशु की आयु का लेखा नहीं होता है तो पशु की भौतिक दशा और उसके शरीर की बनावट देखकर अनुमानित आयु मालूम की जाती है। आयु मालूम करने की निम्न विधियाँ हैं—

1. पशु की भौतिक दशा देखकर :

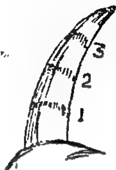
पशु की भौतिक दशा देखकर उसकी ठीक-ठीक आयु मालूम करना प्रायः कठिन है, परन्तु इसका अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है। युवा पशु की त्वचा नर्म बिना झुर्रियों के तथा सींग सीधे होते हैं। पशु की आँखें चमकीली होती हैं। पशु चुस्त एवं प्रसन्न दिखाई पड़ता है। इसके विपरीत जैसे जैसे पशु की आयु बढ़ती है उसकी त्वचा खुरदरी एवं ढीली पड़ती जाती है। सींगों पर छल्ले बनते रहते हैं। मादा पशु का अयन तथा थन बढ़ती आयु के साथ-साथ लटकने लगते हैं। इन सभी गुणों को देखकर भी पशु की आयु मालूम करने में काफी कठिनाई आती है, क्योंकि कई बार प्रौढ़ पशु का स्वास्थ्य अच्छा होने पर कम आयु का लगता है और युवा पशु बीमार होने पर अधिक आयु का लगता है। इस कारण यह विधि आयु निर्णय के लिए उपयुक्त विधि नहीं है।

2 खुरों को देखकर :

बहुत से व्यक्ति पशुओं के खुरों को देखकर उसकी आयु मालूम करते हैं। एक युवा पशु के खुर छोटे, चमकीले, तथा नस्ल के अनुसार होते हैं। जैसे-जैसे पशु की आयु बढ़ती है, खुर खुरदरे, बड़े तथा मुड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। यह विधि भी इतनी अच्छी नहीं है क्योंकि पशुपालक खुरों को कटवाकर उन पर तेल की पालिस कर देते हैं जिससे उसकी सही आयु का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है।

3 सींगों को देखकर :

इस विधि से पशु की आयु ज्ञात करना सबसे सरल है और आयु का अनुमान भी सही लग सकता है। यदि हम पशु के सीगों को देखें तो उन पर चारों ओर छल्लों के आकार की आकृतियाँ नजर आएँगी। प्रथम तीन वर्ष में पशु के सीगों पर एक छल्ला बनता है और इसके बाद एक छल्ला प्रति वर्ष बनता है। इस विधि से पशु की आयु ज्ञात करने के लिए पशु के सीगों के छल्लों की संख्या ज्ञात करने में निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं—



चित्र सं० 51
सीगो द्वारा आयु ज्ञात करना।

सूत्र :

छल्लों की संख्या + 2=आयु (वर्षों में)

उदाहरण :

चित्र मे 3 छल्ले हैं। अतः 3+2=5 वर्ष पशु की उम्र हुई।

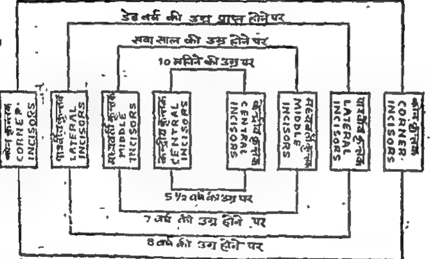
4. दाँतों द्वारा :

यह विधि समस्त विधियों से विश्वसनीय है। सभी पशुपालक इस विधि से ही पशु की आयु निर्धारित करते हैं क्योंकि इससे आयु का सही-सही पता चल जाता है।

जब गाय या भैंस का बच्चा जन्म लेता है तो उसके मुँह के निचले जबड़े में दाँतों के निशान दिखाई पड़ते हैं और कभी-कभी दो दाँत निकले हुए भी होते हैं। दूसरे सप्ताह में चार, तीसरे सप्ताह में छः, चौथे सप्ताह में आठ दाँत आ जाते हैं। इन दाँतों को दूधिया दाँत कहते है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है इन दाँतों की दूरी बढ़नी प्रारम्भ हो जाती है और दाँत घिसने लगते हैं। आठ से दस माह की आयु मे बीच के दो दात घिस जाते हैं। बारहवें माह मे घिसे दाँतों की संख्या चार, पन्द्रहवें माह में छः हो जाती है और अठारहवें माह में सभी आठों दाँत घिस जाते हैं। इसके बाद पशु के मुँह में पक्के दाँत आने शुरू होते हैं। दो वर्ष की आयु में दो दाँत, तीन वर्ष में चार, चार वर्ष मे छः तथा पाँच वर्ष की आयु में सभी आठों पक्के दाँत आ जाते हैं। छः वर्ष की आयु में सभी दाँत बराबर हो जाते है। इस स्थिति मे पशु को पूर्ण मुख (Full Mouth) कहते है। यह आयु पशु की जवानी की शिखर होती है। इसके बाद आयु बढ़ने के साथ-साथ पक्के दाँत भी घिसने लगते हैं और दस बारह वर्ष की आयु में सभी दाँत घिस जाते हैं जब दाँतों की घिसावट मसूड़ों तक पहुँच जाती है तो पशु बूढ़ा हो जाता है।

पशुओं के दांत निकलने की उम्र

दो वर्ष की उम्र में सारे अस्थाई कृन्तक दन्त घिस जाते हैं।



1. ग्यारह वर्ष की उम्र प्राप्त होने पर कृन्तक दन्त घिस कर छोटे हो जाते हैं।
2. बारह वर्ष की उम्र होने पर दांतों के बीच में जगह हो जाती है और दांतों के सिरे चौकोर हो जाते है।
3. बारह वर्ष की उम्र के बाद पशुओं की उम्र का ठीक-ठीक अनुमान करना कठिन होता है।

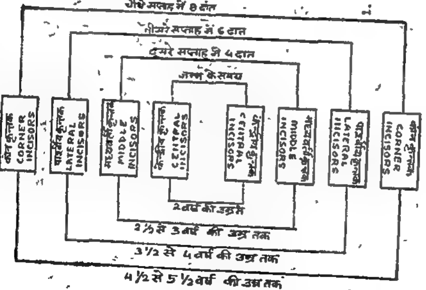
पशुओं के दांत घिसने की उम्र

पशुओं की उम्र की पहचान उनके निचले जबड़े के कुन्तक दन्त (Incisor teeth) देखकर की जाती है। ऊपर के जबड़े में ये दांत नहीं होते है।

चार सप्ताह की उम्र होने तक बछड़े के आठों अस्थायी कुन्तक दन्त निकल आते हैं।

उम्र जिसमे अस्थायी कुन्तक दन्त (दूध के दांत) निकलते हैं।

उम्र जिसमें स्थाई कुन्तक दन्त निकल आते हैं।



छः महीने की उम्र होने तक ये अस्थाई कुन्तक दन्त पूर्ण विकसित हो जाते हैं।

छः वर्ष की उम्र प्राप्त होने पर पशुओं के सारे स्थाई कुन्तक दन्त पूर्ण विकसित अवस्था में होते है, उनका आकार एक-सा होता है और उनके सिरे गोल होते हैं।

$4\frac{1}{2}$ से लेकर 5 वर्ष की उम्र तक पशुओं के सारे स्थाई कुन्तक दन्त निकल आते हैं :


① (जन्म पर)


② (दूसरे सप्ताह में)


③ (तीसरे सप्ताह में)

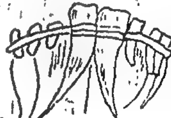

④ (चौथे सप्ताह में)


⑤ (आठ माह में)


⑥ (एक वर्ष में)

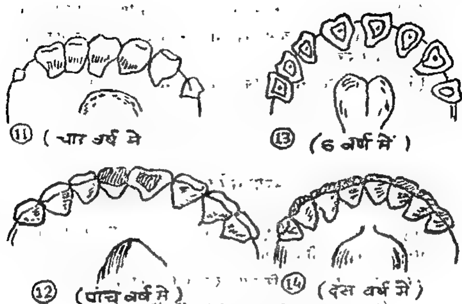

⑦ (15 माह में)


⑧ (18 माह में)


⑨ (दो वर्ष में)


⑩ (तीन वर्ष में)

चित्र सं० 52



(चित्र संख्या 52 का शेष)
आयु के अनुसार दांतो की विभिन्न स्थितियाँ

तालिका सं. 33

अस्थाई एवं स्थाई कृन्तक दांत

(छात्रों की सुविधा हेतु उम्र की पहचान करने के लिए यह तालिका संक्षिप्त रूप में दी जा रही है।)

क्र. सं.	दांतों के नाम	अस्थाई कृन्तक दांत		स्थाई कृन्तक दांत	
		दांत निकलने की उम्र	उम्र जिसमे दांतो में घि. शुरू होता है।	दांत निकलने की उम्र	उम्र जिसमे दांतो में घि. शुरू होती है।
1.	सेन्ट्रल इनसीजर्स	जन्म के समय	10 माह	2 वर्ष	5 से 5.5 वर्ष
2.	मिडिल इनसीजर्स	2 सप्ताह	15 माह	2·5 से 3 वर्ष	7 वर्ष
3.	लेट्रल इनसीजर्स	3 सप्ताह	18 माह	3·5 से 4 वर्ष	8 वर्ष
4.	कार्नर इनसीजर्स	21 माह	21 माह	4·5 से 5 वर्ष	9 वर्ष

टिप्पणी—(1) 6 माह की उम्र तक अस्थाई कृन्तक दन्त पूर्ण विकसित अवस्था में पहुँच लेते हैं।

(2) पौने दो वर्ष की उम्र में केन्द्रीय कृन्तक दन्त गिराऊ हो जाते हैं।

(3). 6 वर्ष की उम्र तक सम्पूर्ण स्थाई कृन्तक दन्त पूर्ण विकसित अवस्था प्राप्त कर चुकते हैं।

(4) 10 वर्ष की उम्र तक सभी दांत घिसे दीख पड़ते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पशुओं की आयु क्यों मालूम की जाती है ? आयु ज्ञात करने की सबसे अच्छी विधि कौन सी है ? और क्यों ?
2. सींगों द्वारा पशु की आयु किस प्रकार ज्ञात की जाती है ?
3. दांत कितने प्रकार के होते हैं ? दांतों द्वारा उम्र कैसे ज्ञात की जाती है ?

अध्याय 21

पशुओं का तापमान, नाड़ी गति एवं श्वास गति

पशुओं की सामान्य दशा में विभिन्न पशुओं का तापमान निश्चित होता है। पशुओं की असामान्य अवस्था में उनका तापमान मालूम करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है क्योंकि बिना तापक्रम ज्ञात किये पशु की असामान्यता का कारण नहीं जाना जा सकता।

पशुओं का तापमान ज्ञात करने के लिए मनुष्यों की भाँति ही डाक्टरी थर्मामीटर का प्रयोग किया जाता है जिसे पशुओं के मलद्वार के द्वार (Rectum) में एक मिनट तक रखा जाता है। इस समय ध्यान रखना चाहिए कि थर्मामीटर घुण्डी Rectum की आंतरिक दीवाल से स्पर्श करनी चाहिए गोबर से नहीं। एक मिनिट के पश्चात् थर्मामीटर को बाहर निकाल कर पढ़ लेने पर पशु का तापक्रम ज्ञात हो जाता है। थर्मामीटर की घुण्डी पर चिकना पदार्थ लगाकर रैक्टम में प्रवेश कराना चाहिए ताकि वह सरलता से प्रवेश हो जाता है।

साधारणतया पशुओं का तापक्रम 101 से 103°F के बीच स्थित रहता है जो पशुओं की स्वस्थता को प्रदर्शित करता है। गर्भित गाय अथवा भैंस का तापक्रम से 1·5°F अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त यदि तापक्रम बढ़ता है तो पशु की असामान्य स्थिति की ओर संकेत करता है।

पशुओं के तापक्रम को प्रभावित करने वाले कारक

पशुओं के सामान्य तापक्रम पर निम्नलिखित कारक प्रभाव डाल सकते हैं—

(i) भोजन—पशुओं के भोजन करते समय अथवा तुरन्त बाद तापक्रम ज्ञात करने से शरीर के साधारण तापक्रम में वृद्धि हो जाती है क्योंकि खाते समय शक्ति के लगने से तापक्रम बढ़ जाता है।

(ii) व्यायाम—शारीरिक परिश्रम के बाद पशु का साधारण तापक्रम बढ़ जाता है क्योंकि व्यायाम से एकत्रित शक्ति का ऑक्सीकरण होने से Heat निकलती रहती है जिससे सामान्य-तापक्रम में वृद्धि हो जाती है।

(iii) वातावरण—यदि वातावरण का तापक्रम शरीर के तापक्रम से अधिक होता है तो शरीर का तापमान बढ़ जाता है।

(iv) मादा तथा नर पशु का प्रभाव—नर पशु का तापक्रम कम तथा मादा पशु का तापक्रम अधिक होता है।

(v) पशु की अवस्था—पशु की युवावस्था में उसका तापक्रम अधिक तथा वृद्धावस्था में तापक्रम कम होता है।

(vi) पशु का भड़कना—पशु की क्रोधित अवस्था में तापक्रम अधिक हो जाता है।

तालिका सं. 34
विभिन्न पशुओं का तापक्रम

क्र. सं.	पशु का नाम	औसत तापक्रम	न्यूनतम तापक्रम	अधिक तापक्रम
1	गाय	101·5°F	100·4°F	102·2°F
2	भैंस	101 4°F	100 4°F	102·2°F
3	बैल	101·4°F	100·4°F	102·4°F
4	बकरी	103°F	101°F	103·8°F
5	भेड़	102°F	101°F	103°F
6	घोड़ा	100·4°F	99·7°F	101·2°F
7	हाथी	97·6°F	97·6°F	97·6°F
8	ऊँट	99·6°F	98°F	101°F
9	पक्षी (मुर्गी)	107°F	107°F	107°F
10	सूअर	102·5°F	101·6°F	103°F
11	कुत्ता, बिल्ली	101°F	—	—
12	खरगोश	103°F	—	—

पशुओं की नाड़ी गति (Pulse Rate of Animals)

तापक्रम की भांति ही सामान्य पशु की नाड़ी गति भी निश्चित होती है जिसमें विशेष परिस्थितियों में ही असामान्यता आती है। पशु की किसी भी धमनी से इसे ज्ञात किया जा सकता है। साधारणतया घोड़े जाति के पशुओं की नाड़ी गति

External Maxillary Artery के द्वारा ज्ञात की जाती है, जबकि गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़ इत्यादि पशुओं की नाड़ी गति ज्ञात करने के लिए Coccygeal artery का प्रयोग किया जाता है जो पशु की पूँछ की जड़ में पाई जाती है। उपर्युक्त धमनियों का प्रयोग के अलावा Planter artery तथा Radial Artery का भी नाड़ी गति ज्ञात करने में प्रयोग किया जा सकता है।

Coccygeal Artery द्वारा नाड़ी गति ज्ञात करने के लिए पशु की पूँछ की जड़ में उपस्थित इस नाड़ी को हाथ के बीच की अंगुली तथा अगूठे से दबाकर घड़ी की सहायता से प्रति मिनिट इसकी धड़कन को गिन लिया जाता है।

सामान्यतया बड़े पशुओं की नाड़ी की गति कम तथा छोटे पशुओं की गति अधिक होती है। मादा पशुओं की गति अधिक तथा नर पशुओं की गति कम होती है। नाड़ी की गति का यकायक कम होना पशु का बीमार हो जाने की ओर सकेत होता है। लेकिन कभी-कभी पशुओं की मानसिक उत्तेजना में यह बढ़ जाती है।

तालिका सं० 35

विभिन्न पशुओं की नाड़ी गति

क्रमांक	पशु का नाम	प्रति मिनिट नाड़ी गति
1	गाय, बैल, भैंस	45–50
2	भेड़-बकरी	70–80
3	घोड़ा	36–42
4	मुर्गी	120–160
5	ऊँट	50–60

पशुओं की श्वास गति (Respiration of Animals)—पशु की असामान्य अवस्था में पशु की श्वास गति में वृद्धि होती है, जबकि सामान्य अवस्था में इसकी स्थिति एक निश्चित अवस्था में होती है। व्यायाम की अवस्था में अथवा खाना खाने के बाद यदि पशु की श्वास गति मालूम की जावे तो इसमें वृद्धि होती है। बीमार पशु की श्वास गति भी सामान्य अवस्था की गति से अधिक होती है। साधारणतया पशुओं की श्वास गति 12–16 प्रति मिनिट होती है। पशुओं की श्वास गति पशुओं

के पेट पर हाथ रख कर अथवा नथुनों के सामने हाथ रखकर ज्ञात की जाती है। श्वांस का ऊपर चढ़ना तथा उतरना प्रति मिनिट ज्ञात कर लिया जाता हैं।

तालिका सं. 36.

(विभिन्न पशुओं की श्वांस गति)

क्रमांक	पशु का नाम	श्वास गति प्रति मिनिट
1	गाय, बैल	12–16
2	भैंस	12–16
3	भेड़, बकरी	12–20
4	घोड़ा	8–18
5	मुर्गी	15–48
6	ऊँट	10–15

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पशुओं का तापक्रम जानना क्यों आवश्यक है ? तापक्रम को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारक हैं। किसी पशु का तापक्रम कैसे ज्ञात करोगे ?
2. नाड़ी गति एवं श्वास गति कैसे ज्ञात की जाती है ? इसके जानने से क्या लाभ होता है ?
3. निम्नलिखित पशुओं का तापक्रम, नाड़ी गति एवं श्वास गति तालिका बनाकर लिखो—
   (i) गाय (ii) भैंस (iii) बकरी (iv) भेड़ (v) मुर्गी

अध्याय 22

पशुओं का आहार

भोजन की आवश्यकता (भोजन देने के उद्देश्य)

प्रत्येक जीव-जन्तु के लिए भोजन आवश्यक है, जिस प्रकार मनुष्य भोजन के बिना जीवित नहीं रह सकता है, उसी प्रकार पशु-पक्षी भी भोजन के बिना जीवित नहीं रह सकते है। पशुओं को भोजन की आवश्यकता निम्न उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए होती है—

(1) जीवन निर्वाह के लिए (For maintenance of body)
(2) दूध उत्पादन के लिए (For milk production)
(3) शरीर वृद्धि के लिए (For growth)
(4) कार्य के लिए (For work production)
(5) गर्भ के लिए (For cows in calf)

1. जीवन निर्वाह के लिए भोजन :

जिस समय पशु से कोई भी कार्य नहीं लिया जाता है और न ही वह किसी प्रकार का उत्पादन करता है, उस समय जो भोजन पशु को दिया जाता है वह जीवन निर्वाह भोजन कहलाता है। यह भोजन शरीर की रक्षा का कार्य करता है। पशु के शरीर के भार में कमी न होने पावे, इसलिए भी जीवन निर्वाह भोजन दिया जाता है। जीवन निर्वाह राशन निम्न कार्य करता है—

(अ) शरीर का तापमान समान बनाए रखता है।

(ब) शारीरिक शक्ति का उत्पादन करता है, जो श्वसन क्रिया, उत्सर्जन, रक्त संचार एवं अन्य शारीरिक क्रियाओं को करता है।

(स) टूटे हुए ऊतकों की मरम्मत तथा नये ऊतकों (Tissues) का निर्माण करता है।

(द) शरीर मे बीमारियों के प्रतिरोधकता पैदा करता है।

(य) जल शरीर में रक्त के बहाव को समान बनाए रखता है।

इसके अलावा मल उत्सर्जन, रक्त दबाव को निश्चित बनाए रखने में भी सहायता करता है।

उपर्युक्त सभी कार्य शरीर रक्षा के लिए भोजन करता है।

2. दूध उत्पादन के लिए :

दूध देने वाले पशु को अन्य पशुओं की अपेक्षा अधिक शक्ति खर्च करनी पड़ती है। इसी कारण जो पशु दूध देते हैं उनके शरीर पर कम चर्बी पाई जाती है। इस प्रकार दुग्ध उत्पादन में खर्च हुई शक्ति को पूरा करने के लिए जीवन निर्वाह के भोजन के अतिरिक्त भोजन देना पड़ता है। इस भोजन में शक्ति पैदा करने वाले पदार्थ चिकनाई फासफोरस, कैलशियम, नमक, खनिज लवण और प्रोटीन होना आवश्यक है जो अधिक दुग्ध उत्पादन करें।

3. शरीर की वृद्धि के लिए :

जब तक पशु जवान नही होता है, तब तक उसके शरीर मे वृद्धि होती रहती है। पशु के शरीर का आकार, ऊत्तकों की सख्या और उसकी हड्डियों में वृद्धि होती है। इसको सुचारु रूप से चलाने के लिए पशुओ के भोजन में प्रोटीन, कैलसियम, फास्फोरस तथा विटामिन्स की आवश्यकता पड़ती है। रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ाने के लिए लोहे की तथा पाचन शक्ति ठीक रखने के लिए सामान्य लवणो की आवश्यकता होती है।

4. कार्य के लिए भोजन :

जिस समय कोई पशु कार्य करता है तो उसके शरीर की शक्ति नष्ट होती है। इस शक्ति की पूर्ति के लिए जीवन निर्वाह भोजन पर्याप्त नहीं रहता है। इस कारण अतिरिक्त भोजन की आवश्यकता पड़ती है। इसी को कार्य उत्पादन राशन कहते है। यह राशन हलके एवं भारी कार्य के अनुसार कम या अधिक दिया जाता है। साधारणतः इस भोजन में वसा एवं शक्कर वाले भोजन अधिक हों तो अच्छा रहता है।

5. गर्भ के लिए भोजन :

जब कोई मादा पशु गर्भवती होती है तो उसे अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। क्योंकि इस समय गर्भ की वृद्धि के लिए भी भोजन चाहिए। जैसे-जैसे गर्भ धारण की अवधि बढ़ती जाती है, पशु को अधिक पौष्टिक भोजन देना चाहिए अन्तिम तीन माह में गर्भ (बच्चे) में अधिक वृद्धि होती है। ऐसे समय में, भोजन में अन्य पोषक तत्वों के अतिरिक्त प्रोटीन, विटामिन्स, नमक तथा कुछ वसा का होना आवश्यक है।

अन्त में हम कह सकते है कि उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पशुओ को भोजन देना आवश्यक है।

भोजन के आवश्यक तत्व

भोजन से शरीर को शक्ति प्राप्त होती है और उसकी वृद्धि एवं ऊतकों के

निर्माण तथा मरम्मत के लिए भी भोजन आवश्यक है, अत: पशु के भोजन में निम्न तत्वों का होना आवश्यक है—

(1) कार्बोहाईड्रेटस (Carbohydrates)
(2) प्रोटीन (Proteins)
(3) वसा (Fat)
(4) विटामिन (Vitamins)
(5) खनिज लवण (Mineral)
(6) जल (Water)
(7) रेशे (Fiber)

1. कार्बोहाईड्रेट्स—कार्बोहाईड्रेट्स तीन तत्वों आक्सीजन, कार्बन और हाईड्रोजन से मिलकर बनते हैं। पशुओं के लिए ये अति आवश्यक है, इनसे पशुओं के शरीर को शक्ति एवं ताप मिलता है। यह सब प्रकार के अनाज, भूसा तथा चारे में पाया जाता है। कार्बोहाईड्रेटस साधारणतया शक्कर, स्टार्च तथा सैलुलोज के रूप में अधिक पाया जाता है। मक्का तथा गेहूँ के दानों में लगभग 60 प्रतिशत स्टार्च होता है।

2. प्रोटीन—पशु के शरीर की वृद्धि एवं दुग्ध उत्पादन की वृद्धि के लिए प्रोटीन आवश्यक है। प्रोटीन्स में कार्बन, नत्रजन, गंधक तथा फास्फोरस होता है। पशुओं को निम्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रोटीन चाहिए—

(1) दूध, रक्त तथा नए तन्तु निर्माण के लिए प्रोटीन आवश्यक है।
(2) टूटे-फूटे तन्तु (ऊतकों) की मरम्मत के लिए भी प्रोटीन आवश्यक है।
(3) कभी-कभी वसा तथा कार्बोज की पूर्ति भी प्रोटीन करते है।

प्रोटीन हरी घास, फलियाँ, बिनौला, चोकर और दाल वाली फसलों में अधिक पाया जाता है।

3. वसा (Fat)—पशुओं के भोजन में ऐसे पदार्थों का होना आवश्यक है जिनमें वसा हो। वसा वाले पदार्थों में कार्बन, हाईड्रोजन और आक्सीजन होते हैं जो शक्ति प्रदान करते हैं। अधिक दूध देने वाले और अधिक कार्य करने वाले पशुओं को भोजन में वसा का होना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु छोटे बच्चों के लिए इसका कम मात्रा में होना ठीक रहता है। पशुओं को वसा निम्न दो कारणों से आवश्यक है—(1) दूध की वसा प्रतिशत बढ़ाने के लिए, (2) शरीर की चर्बी को बनाए रखने के लिए जो अन्य तत्वों की कमी होने पर पशु के काम आती है।

4. विटामिन्स—ये पशुओं को स्वस्थ रखने का कार्य करते है, इनकी कमी के कारण पशुओं में विभिन्न प्रकार के रोग हो जाते हैं। उनकी दुग्ध उत्पादन एवं

कार्य करने की शक्ति कम हो जाती है। बढ़ने वाले बच्चो, दूध देने वाली गायों तथा गर्भवती गायो के लिए भी विटामिन्स अति आवश्यक है। हरे चारे और वृद्धि करते हुए पौधो में विटामिन्स पाए जाते हैं, अतः पशुओं को हरा चारा अवश्य डालना चाहिए। मुख्यतया विटामिन्स दो प्रकार के होते हैं—(i) पानी में घुलनशील विटामिन्स जैसे विटामिन 'बी', 'सी', (ii) वसा Fat में घुलनशील विटामिन्स जैसे 'ए', 'डी', 'ई' एवं 'के'

विटामिन 'A'—इसकी कमी के कारण पशु को रतोंधी (आँखों का रोग) नामक रोग हो जाता है। इसके साथ-साथ चर्म रोग भी हो जाते है। पशु के बाल झड़ने लगते हैं और उसकी वृद्धि रुक जाती है। यह गाजर एवं सभी हरे चारों में पाया जाता है।

विटामिन 'B'—इसकी कमी होने पर पशु को बेरी-बेरी नामक रोग हो जाते हैं और पाचन क्रिया भी खराब हो जाती है।

विटामिन 'C'—इसकी कमी से स्कर्वी नामक रोग हो जाता है और दाँतों के रोग तथा चर्म रोग भी लग जाते हैं। यह सभी हरे चारों और खट्टे फलो में पाया जाता है।

विटामिन 'D'—इसकी कमी से रिकेट (Ricket) नामक रोग हो जाता है और इसकी उपस्थिति से ही कैलशियम और फास्फोरस का उपयोग पशु अपने में कर सकता है। यह वनस्पति तेलों और सूर्य की धूप में अधिक मिलता है।

विटामिन 'E'—इसकी कमी होने पर पशु की प्रजनन शक्ति कम हो जाती है। कई बार पशु बाँझ भी रह जाता है। यह छाछ, सपरेटा दूध और अंकुरित बीजो में पाया जाता है।

विटामिन 'K'—यह विटामिन पशु की मांसपेशियों के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है। इसकी कमी होने पर, चोट लगने पर घाव से खून का बहना बन्द नही होता है।

5. खनिज लवण—खनिज लवण पशु की वृद्धि, रक्त और सींगों लिए आवश्यक है। पाचक रस भी इन्ही की सहायता से बनते हैं। रक्त की सान्द्रता को समान बनाए रखने के लिए भी खनिज पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। मुख्यतया पशुओं को कैलशियम, मैगनीशियम, फास्फोरस, पोटाश सोडियम, क्लोरीन, मेगनीज, ताँबा, लोहा और आयोडीन की आवश्यकता पड़ती है। इसकी पूर्ति करने के लिए विभिन्न खनिज पदार्थ और हड्डी का चूरा दिया जाता है।

6. जल—पशुओं के भोजन मे जल का होना अति आवश्यक है। पशुओं के प्रकार के भोजन में जल उपस्थित रहता है। सूखे चारे में 10 प्रतिशत, हरे

चारों में 1-80 प्रतिशत, अनाज में 9 प्रतिशत है, सूखी घास में 15 प्रतिशत होता है। पशुओं को निम्न कारणों से पानी की आवश्यकता होती है—

(1) रक्त के तापक्रम को एक समान एवं स्थाई बनाए रखने के लिए।

(2) रक्त को पतला करने के लिए जिससे उसका संचार ठीक प्रकार से हो सके।

(3) भोजन के पदार्थों का घोल बनाने के लिए जिससे वे आसानी से पच जाए और रक्त में मिल जावे।

(4) शरीर में उपस्थित विषैले पदार्थों को मल, मूत्र और पसीने के रूप में बाहर निकालने के लिए।

(5) शरीर से दूध इत्यादि के क्षरण के लिए।

अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक पशु को वातावरण के तापक्रम, नमी तथा खाए गए चारे के अनुसार पानी की आवश्यकता पड़ती है। एक सामान्य पशु को दिन में कम से कम 10 लीटर जल की आवश्यकता होती है।

7. रेशे (Fibre)—पशुओं के भोजन में कुछ ऐसा भाग भी होता है जो बहुत ही कम पचता है और उसके चबाने के लिए भी पशु को परिश्रम करना पड़ता है। परन्तु जो भाग पच जाता है वह उतनी ही शक्ति पशु को देता है जितनी कार्बोहाइड्रेट देते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पशुओं को भोजन देना क्यों आवश्यक है? भोजन के विभिन्न आवश्यक तत्वों का उल्लेख करिए।
2. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   (1) निर्वाह राशन (2) दुग्धोत्पादन राशन (3) गर्भ-राशन।

अध्याय 23

अच्छे भोजन के आवश्यक गुण

समस्त जीव-जन्तुओं के लिए भोजन का बहुत ही महत्व है। यदि हम यह चाहें कि जो भोजन हम अपने पशु को दे रहे हैं, वह पशु को पूरा-पूरा लाभ दे, तो उस भोजन में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है।

1. भोजन स्वादिष्ट हो—भोजन का सबसे पहला गुण है कि भोजन स्वादिष्ट हो, उसमें किसी प्रकार की दुर्गन्ध न आवे; बल्कि उसमें उस चारे या दाने के अनुरूप सुगन्ध हो जिससे पशु रुचि से भोजन खा सके। यदि हम उसे अच्छा चारा न दें तो पशु पेट भरने के लिए खाएगा अवश्य, परन्तु वह पशु को अधिक लाभ नहीं पहुँचा सकता है।

2. भोजन पाचनशील हो—भोजन जो पशुओं को दिया जावे वह ऐसा होना चाहिए जिसे पशु आसानी से पचा सकें। यदि भोजन में पाचनशील तत्व कम होंगे तो पशु को भोजन पचाने में श्रम करना पड़ेगा जो अधिक उपयोगी नहीं रहता है। गेहूँ का सूखा भूसा कम पचनशील होता है, जबकि हरा चारा अधिक पचता है (लगभग 50 से 70 प्रतिशत तक) अतः भोजन में हरा चारा अवश्य देना चाहिए।

किसी भी पदार्थ की पाचनशीलता की प्रतिशत मात्रा निकालने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं—

सूत्र—

$$\text{पाचनशीलता } \% = \frac{\text{शरीर शोषित सूखे पदार्थ की मात्रा}}{\text{दिए गए सूखे पदार्थ की मात्रा}} \times 100$$

(शोषित पदार्थ = दिया गया सूखा पदार्थ—गोबर में निकला सूखा पदार्थ)

3. भोजन पशु अनुकूल हो—पशुओं को जो भोजन दिया जावे उसमें यह ध्यान भी रखना चाहिए कि भोजन पशु के अनुकूल हो। जैसे देखा गया है कि ग्वार बैलों के लिए अधिक उपयोगी होती है। परन्तु दूध देने वाले पशुओं के लिए इतना उपयोगी नहीं होता है। इसी प्रकार बिनौला भैंस के लिए लाभप्रद है और गायों के

लिए नहीं । इसलिए आहार नियत करते समय उसकी अनुकूलता का ध्यान अवश्य रखना चाहिए ।

4. भोजन में भिन्नता हो (Quality)—प्रतिदिन पशुओं को एकसा भोजन नहीं देना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से पशु भोजन चाव से नहीं खाता है। यदि समय-समय पर भोजन में परिवर्तन करते रहें तो पशु उस भोजन को अच्छी प्रकार भरपेट खाता है जो उसके लिए अधिक लाभप्रद होता है ।

5. भोजन स्वच्छ हो—भोजन साफ एवं स्वच्छ होना चाहिए उसे किसी भी प्रकार की फफूंदी नहीं लगी होनी चाहिए देखने में तथा खाने में भोजन साफ हो तो पशु आसानी से खाएगा ।

6. भोजन सन्तुलित हो—जो भोजन पशु को दिया जावे उसमें भोजन के सभी आवश्यक तत्व होने चाहिए जिसमें पशु की वृद्धि एवं स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़े ।

7. भोजन रसीला हो—जिस भोजन में 60 प्रतिशत या इससे अधिक जल की मात्रा पाई जाती है उसे रसीला भोजन कहते हैं । भोजन में ऐसे पदार्थों का होना भी आवश्यक है । इसके लिए हरा चारा, बरसीन इत्यादि या साईलेज देना चाहिए ।

8. भोजन का बाहरी रूप अच्छा हो—यदि भोजन देखने में सुन्दर मालूम होता है तो पशु उसे चाव से खाता है । इसके विपरीत यदि भोजन देखने में अच्छा और लगे तो पशु उसे या तो कम खाता है या खाता ही नहीं है ।

9. भोजन में खनिज पदार्थ हो—पशु को भोजन देते समय उसमें खनिज लवण अवश्य मिलना चाहिए । इसके लिए प्रत्येक पशु को 30 ग्राम हड्डी का चूरा तथा नमक देना आवश्यक है । इसकी पूर्ति के लिए प्रत्येक पशु की नांद में 'सरलेक्स' का एक ढेला रख देना चाहिए ताकि जब भी पशु की इच्छा हो उसे चाटता रहे ।

10. भोजन मात्रा में अधिक हो—जो भोजन हम पशु को दे रहे हैं वह मात्रा में अधिक होना चाहिए जिससे पशु का पेट भर जावे । कम होने पर पशु भूखा रह जाता है ।

11. भोजन की कीमत कम होनी चाहिए—पशुओं के भोजन को निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भोजन की कीमत कम हो और भोजन में सभी आवश्यक तत्व हों और भोजन मात्रा में भी इतना हो कि पशु का पेट भर जावे ।

12. भोजन में रेशे की मात्रा—भोजन में रेशे की मात्रा भी होनी चाहिए

जिससे पशु का पेट शीघ्र भर जाता है और यह भोजन पचने में भी सहायता करता है।

अन्त में, भोजन में उपर्युक्त समस्त गुण होने चाहिए जिससे हमें पशुओं से अधिकाधिक लाभ मिल सके।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अच्छे भोजन की क्या-क्या विशेषताएँ हैं ?
2. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   (i) रसीला भोजन
   (ii) भोजन में रेशे की मात्रा
   (iii) भोजन पाचनशील हो
   (iv) भोजन में विभिन्नता।

अध्याय 24

पशुओं को खिलाने के सामान्य सिद्धान्त

पशुओं की आहार व्यवस्था दोषपूर्ण होने से पशुओं का विकास पूर्णतया नहीं हो रहा है। अतः सन्तुलित आहार की अवस्था पशु के जन्म से ही होनी चाहिए।

बछड़े-बछड़ियों के उत्पन्न होते ही उनके शारीरिक भार का 8–10 प्रतिशत मात्र गाय का दूध देना आवश्यक है। पशुओं को सन्तुलित आहार देने के लिये यह आवश्यक है कि उनकी आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक भोज्य पदार्थ को गणना द्वारा दिया जाय ताकि आहार में भोज्य तत्त्वों का एक निश्चित अनुपात हो एवं साथ ही उचित गणना द्वारा भोजन को सस्ता बनाया जा सकता है।

आहार नियत करने के लिए आवश्यक बातें :

पशुओं को शुष्क पदार्थ आवश्यकता एवं विभिन्न खाद्य पदार्थों में शुष्क पदार्थ की उपलब्धता के आधार पर भोजन की गणना की जाती है। चारे-दाने की मात्रा का अनुपात दाने का मूल्य तथा प्राप्त चारे की किस्म पर निर्भर करता है। अतः विभिन्न प्रकार के चारे-दाने में शुष्क पदार्थ (Dry Matter) की प्रतिशत मात्रा तथा विभिन्न पशुओं की शुष्क पदार्थ की आवश्यकता का ज्ञान होना चाहिये, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैं—

तालिका सं. 37

विभिन्न प्रकार के चारे में औसतन शुष्क पदार्थ

क्र. सं.	विभिन्न प्रकार के चारे	शुष्क पदार्थ का प्रतिशत
1	सूखा चारा, सूखी घास (Hay), भूसा कड़वी आदि	90
2	खलिया, दाना, चोकर, चना-जौ-गेहूँ का भूसा तथा दाल एवं अन्य दानों में	90
3	ज्वार, मक्का व बाजरा (जुलाई से नवम्बर), साइलेज (दिसम्बर–मई), बरसीम (मार्च, अप्रेल), मई (जनवरी-अप्रेल) आदि चारों में	30
4	बरसीम (दिसम्बर-फरवरी), ज्वार, लोबिया, मटर, सरसों आदि हरे चारों में	25

तालिका सं. 38

विभिन्न महीनों में उपलब्ध चारे की सूची

क्रमांक	माह का नाम	उपलब्ध चारे का नाम
1.	जनवरी	गेहूँ का भूसा, ज्वार की कड़वी, बरसीम, जई, मेथी, गन्ने का अंगोला ।
2.	फरवरी	गेहूँ का भूसा, रिजका, मेथी, बरसीम, सरसों, जई, मटर, गन्ने का अंगोला ।
3.	मार्च	भूसा, रिजका, मटर, सरसों, जई, बरसीम ।
4.	अप्रेल	भूसा, साइलेज, बरसीम, रिजका ।
5.	मई	भूसा, साइलेज, लोबिया, बरसीम, रिजका ।
6.	जून	भूसा, रिजका, बरसीम, साइलेज, लोबिया, मक्का की चरी ।
7.	जुलाई	भूसा, मक्का की चरी, घास साइलेज, ज्वार की चरी, लोबिया ।
8.	अगस्त	भूसा, ज्वार तथा मक्का का चरी अन्य घासें ।
9.	सितम्बर	भूसा, ज्वार, बाजरा, घासें, ज्वार की चरी ।
10.	अक्टूबर	भूसा, ज्वार, बाजरा, घासें, ज्वार की चरी ।
11.	नवम्बर	भूसा, घासें, गन्ने के अंगोले, ज्वार की कड़वी ।
12.	दिसम्बर	भूसा बरसीम, रिजका, मेथी, ज्वार की कड़वी, गन्ने के अंगोले ।

विभिन्न पशुओं को शुष्क पदार्थ तथा दाने की आवश्यकता –

शुष्क पदार्थ :

1. गाय को प्रति 100 कि. ग्रा. वजन पर 2·5 कि. ग्रा. शुष्क पदार्थ दिया जाता है ।
2. भैंसों को प्रति 100 कि. ग्रा. वजन पर 2·5–3·00 कि. ग्रा. शुष्क पदार्थ दिया जाता है ।
3. दूध न देने वाली (Dry) गायों या बैलों के प्रति 100 कि. ग्रा. वजन पर 2·00 कि. ग्रा. शुष्क पदार्थ दिया जाता है ।
4. बछियों को 100 कि. ग्रा. शरीर भार पर 1·5 से 2·0 कि. ग्रा. शुष्क पदार्थ देते हैं ।
5. दूध न देने वाली (Dry) भैंसों एवं साड (Bull) को 100 कि. ग्रा. शरीर भार पर 2·5 कि. ग्रा. शुष्क पदार्थ दिया जाता है ।
6. शुष्क पदार्थ आधा हरे चारे से तथा आधा सूखे चारे से देना चाहिए ।

दाने की आवश्यकता :

1. स्वास्थ्य का दाना— गाय को 1·00 कि. ग्रा. एवं साड, भैंस तथा बैल को 1·50 कि. ग्रा. प्रतिदिन स्वास्थ्य का दाना दिया जाता है ।

2. दूध का दाना—गाय को प्रति एक लीटर दूध पर 333 ग्राम एवं भैंस को प्रति एक लीटर दूध पर 400 ग्राम दूध के लिए दाना दिया जाता है।

3. कार्य का दाना—बैल को उसके कार्य के अनुसार हल्का, औसत (मध्यम) एवं भारी कार्य के लिए क्रमशः 1·00, 1·5 एवं 2·00 कि. ग्रा. प्रतिदिन दाने का मिश्रण दिया जाता है।

4. सांड के लिए उत्पादन का दाना—सांड को उसके उत्पादन के लिए प्रति दिन 2·00 कि. ग्रा. दाने का मिश्रण दिया जाता है।

5. गर्भवती पशुओं का दाना—गर्भ के महिनों के अनुसार गर्भवती पशुओं को निम्न प्रकार से खली-दाना दिया जाता है। यह मिश्रण पशुओं के नस्ल पर भी निर्भर करता है। यदि पशु दूध भी दे रही है तो दूध का दाना अलग से नियमानुसार दिया जावेगा।

तालिक सं. 39

क्र. स.	गर्भ का समय	दाने की मात्रा
1.	2–3 माह	·800 कि. ग्रा.
2.	4 ,,	·900 कि. ग्रा.
3.	5 ,,	1 0 कि. ग्रा.
4.	6 ,,	1·2 कि. ग्रा.
5.	7 ,,	1 4 कि. ग्रा.
6.	7 ,, से ऊपर	1·5 कि. ग्रा

6. बछड़े-बछड़ियों का दाना—बछड़े-बछड़ियों को भी उनके उम्र के अनुसार खली-दाना दिया जाता है जो निम्नलिखित है—

तालिका सं. 40

क्र. स.	उम्र	दाने की मात्रा
1.	7 माह से कम	·5 कि. ग्रा.
2.	7–12 माह	·9 कि. ग्रा.
3.	1–2 वर्ष	1·0 कि. ग्रा.
4.	2–2½ वर्ष	1·5 कि. ग्रा.
5.	2½ से ऊपर	2·0 कि. ग्रा.

7. खनिज लवण—प्रत्येक पशु को 56 ग्राम नमक और 28 ग्राम हड्डी का चूरा प्रतिदिन देना चाहिए।

आवश्यक निर्देश

1. खली दाने के मिश्रण में 40 प्रतिशत अन्न जैसे चना, जो, मक्का, 35

प्रतिशत खली तथा 25 प्रतिशत अनाज के छिलके व चोकर होना चाहिए।

2. दाना मुर-मुरा पीसकर तथा उसे भिगो कर देना चाहिये। अधिक बारीक पिसा हुआ दाना ठीक नहीं होता। दाने के साथ ही नमक एवं हड्डी का चूरा मिला देना चाहिए।
3. हरा चारा सूखे चारे की मात्रा का $3\frac{1}{2}$ से 3 गुना दिया जाना चाहिए।
4. अधिक दूध देने वाली गायों को प्रोटीन तथा खनिज पदार्थों की ज्यादा जरूरत रहती है अतः इनके आहार में दाने की मात्रा ज्यादा देनी पड़ती। मूंगफली की खली प्रोटीन का बहुत ही अच्छा स्रोत है।
5. दुग्ध उत्पादन को अधिक लाभकारी बनाने के लिए पशु को ज्यादा से ज्यादा हरा चारा दिया जाना चाहिए। जिसमें 50 प्रतिशत तक रिजका बरसीम आदि फलीदार फसलों के साथ दाने की कम मात्रा देते हैं।
6. चराने के लिए छूट— यदि पशु चरागाह में चरने जाता है तो पर्याप्त मात्रा में (पशु चरागाह की व्यवस्था की अनुसार) चारा चर लेता है अतः घर पर खिलाए जाने वाले चारे में निम्नानुसार कम कर दिया जाता है।

तालिका सं. 41

चरने के छूट

क्र.स.	महीना	छूट का प्रतिशत
1.	जनवरी, फरवरी, मार्च	33
2.	अप्रैल, मई, जून	20
3.	जुलाई	33
4.	अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर	50
5.	नवम्बर, दिसम्बर	40

7. कभी पशुपालक बरसीम का चारा देने पर स्वास्थ्य का दाना नहीं देते हैं क्योंकि बरसीम से प्रोटीन की अधिक मात्रा पशु को मिल जाती है।
8. पशुओं को स्वच्छ एवं ताजा पानी आवश्यकतानुसार गर्मियों में 3–4 बार, सर्दियों में 1–2 बार पिलाना चाहिए।

भेड़ों व बकरियों के लिए आहार की गणना करना :

1. वयस्क भेड़ व बकरी को 500 ग्राम 'स्वास्थ्य (शारीरिक मांग) का दाना देते हैं।

2. इसके अलावा प्रति एक लिटर दूध पर 300 ग्राम दाना देना चाहिए ।
3. साधारणतया दुधारु बकरी भेड़ को 3-4 कि. ग्रा. चारा प्रतिदिन दिया जाता है जिसमें एक कि. ग्रा. सूखे चारे से तथा शेष हरे चरे द्वारा दिया जाता है ।
4. नवजात मेमनो तथा बकरी के बच्चों को 9 माह तक की आयु के लिए प्रतिदिन 100–125 ग्राम दाना देना चाहिएं ।
5. ग्याभन भेड़ व बकरी को प्रसव के अन्तिम दो माह में 250 ग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए ।
6. प्रजनन सेवा के समय मेंढ़ों तथा बकरों को 500 ग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए ।
7. चारे की कुल मात्रा को दिन में 3–4 बार में खिलाना चाहिए ।
8. स्वच्छ एवं ताजा पानी आवश्यकतानुसार पिलाते रहना चाहिए ।

आंकिक प्रश्न (Numerical Problems)

उदाहरण :

1. एक 400 कि ग्रा. वाली गाय जो 5 लिटर दूध प्रतिदिन दे रही है । 5 माह से ग्यानिन है । अगस्त माह के लिए एक दिन का चारा-दाना निकालो ।

उत्तर

(अ) शुष्क पदार्थ की मात्रा $\frac{2\cdot5}{100} \times 400 = 1000$ कि. ग्रा.

(ब) दाने की मात्रा—

(i) स्वास्थ्य का दाना—1·00 कि. ग्रा.

(ii) दूध का दाना—$5 \times \cdot333 = 1\cdot665$ कि. ग्रा.

(iii) बच्चे (गर्भ) का दाना—1 00 कि ग्रा.

3·665 कि. ग्रा.

(स) दाने में प्राप्त शु. प. की मात्रा—

$\frac{90}{100} \times 3\cdot665 = \frac{32\cdot9853\cdot2985}{10}$ या 3·3 कि. ग्रा.

(द) चारे द्वारा की जाने वाली शु. पं. की मात्रा—

10—3·3=6·7 कि. ग्रा.

(नियमानुसार आधा शु. प. सूखे चारे से एवं आधा शु. प. हरे चारे से दाना है ।)

$$\frac{6 \cdot 7}{2} = 3 \cdot 35$$ कि. ग्रा.

(य) सूखे चारे की मात्रा (भूसा 90 प्रतिशत शु. प.)

$$\frac{100}{90} \times 3 \cdot 35 = \frac{33 \cdot 5}{5} = 3 \cdot 72$$ कि. ग्रा.

(र) हरे चारे की मात्रा (चरी 30 प्रतिशत शु. प.)

$$\frac{100}{30} \times 3 \cdot 35 = \frac{3.35}{3} = 11 \cdot 16$$ कि. ग्रा.

(ल) अनाज की मात्रा $= \frac{40}{100} \times 3 \cdot 665 = 1.466$ कि. ग्रा.

(व) खली की मात्रा $\frac{35}{100} \times 3 \cdot 665 = 1 \cdot 2828$ कि. ग्रा.

(श) चोकर की मात्रा $= \frac{25}{100} \times 3 \cdot 665 = 0 \cdot 916$ कि. ग्रा.

गाय का एक दिन का आहार निम्नलिखित होगा :

1. सूखा चारा (भूसा)	3 72 कि. ग्रा.	26 00 कि. ग्रा.
2. हरा चारा (चरी)	11·16 कि. ग्रा.	
3. अनाज (चना, मक्का)	1.466 कि. ग्रा.	3 665 कि. ग्रा.
4. खली	1.283 कि. ग्रा.	
5. चोकर	0.916 कि. ग्रा.	
6. नमक	58 ग्राम	
7. हड्डी का चूरा (खनिज पदार्थ)	29 ग्राम	
8. स्वच्छ एवं ताजा जल		

उदाहरण :

2. एक भैंस जिसका वजन 600 कि० ग्रा० है। 5 लिटर दूध प्रतिदिन दे रही है। 8 माह से ग्याभिन है। यदि हमारे पास साइलेज है तो एक दिन का चारा-दाना निकालो—

उत्तर—

(i) शुद्ध पदार्थ की मात्रा $= \frac{3}{100} \times 600 = 18$ कि० ग्रा. शु. प.

(ii) दाने की मात्रा—

(अ) स्वास्थ्य का दाना 1·5 कि. ग्रा.

(ब) दूध का दाना $\cdot 400 \times 5 = 2 \cdot 00 = 2 \cdot 0$ कि. ग्रा.

(म) ग्यामन का दाना 1·5 कि. ग्रा

कुल दाने की मात्रा 5·00 कि. ग्रा

(iii) दाने में प्राप्त शुद्ध पदार्थ की मात्रा—

$\frac{90}{100} \times 4{\cdot}5$ कि. ग्रा. शु. प.

(iv) चारे द्वारा दी जाने वाली शुष्क पदार्थ की मात्रा—

$18 - 4{\cdot}5 = 13{\cdot}5$

नियमानुसार आधा शु. प. हरे से एवं आधा सूखे चारे से देना है।

$\frac{13{\cdot}5}{2} = 6{\cdot}75$ कि. ग्रा.

(v) सूखे चारे की मात्रा—(भूसा 90 प्रतिशत शु. प.)

$\frac{100}{90} \times 6{\cdot}75 = 7{\cdot}5$ कि. ग्रा.

(vi) हरे चारे की मात्रा—(साइलेज 30 प्रतिशत शु.प.)

$\frac{100}{30} \times 6{\cdot}75 = 22{\cdot}5$ कि. ग्रा.

(vii) अनाज (चना, जौ आदि) की मात्रा—

$\frac{40}{100} \times 5 = 2$ कि. ग्रा.

(viii) खली की मात्रा—

$\frac{35}{100} \times 5 = \frac{7}{4} = 1{\cdot}75$ कि. ग्रा.

(ix) चोकर की मात्रा—

$\frac{25}{100} \times 5 = \frac{5}{4} = 1{\cdot}25$ कि. ग्रा.

भैंस का एक दिन का चारा-दाना निम्नलिखित होगा :

(i) सूखा चारा (भूसा)	7·5 कि. ग्रा.	
(ii) साइलेज	22·5 कि. ग्रा.	
(iii) अनाज (चना मक्का)	2·0 कि. ग्रा.	5·00 कि. ग्रा.
(iv) खली	1·65 कि. ग्रा.	
(v) चोकर	1·25 कि. ग्रा.	
(vi) नमक	60 ग्राम	
(vii) खनिज (हरिद्र पूर्ण) पदार्थ	30 ग्राम	
(viii) स्वच्छ एवं ताजा जल	आवश्यकतानुसार	

उदाहरण :

3. एक 600 कि. ग्रा. वाले बैल का अक्टूबर माह के एक दिन का आहार ज्ञात करो।

(i) शुष्क पदार्थ की मात्रा—

$$\frac{2}{100} \times 600 = 12$$ कि. ग्रा.

(ii) दाने की मात्रा—

(अ) स्वास्थ्य का दाना	1·5 कि. ग्रा.
(ब) भारी कार्य का दाना	2·0 कि. ग्रा.
(अक्टूबर में भारी कार्य होता है।)	
दाने की कुल मात्रा	3·5 कि. ग्रा.

(iii) दाने में प्राप्त शुष्क पदार्थ—

$$\frac{90}{100} \times 3{\cdot}5 = \frac{6{\cdot}3}{2} = 3{\cdot}15$$ कि. ग्रा.

(iv) चारे द्वारा दी जाने वाली शु. प. की मात्रा—

12–3·15 = 8·85 कि. ग्रा.

(नियमानुसार आधा सूखे एवं आधा शु. प. हरे चारे से दाना है।)

$$\frac{8{\cdot}85}{2} = 4{\cdot}42$$ कि. ग्रा.

(v) सूखे चारे की मात्रा (भूसा 90% शु. प.)—

$$\frac{100}{90} \times 4{\cdot}42 = 4{\cdot}9$$ कि. ग्रा.

(vi) हरे चारे की मात्रा (मक्का 30% शु. प.)—

$$\frac{100}{30} \times 4{\cdot}2 = 14{\cdot}7$$ कि. ग्रा.

(vii) अनाज (चना, मक्का की मात्रा)—

$$\frac{40}{100} \times 3{\cdot}5 = \frac{14\,0}{10} 1{\cdot}4$$ कि. ग्रा.

(viii) खली की मात्रा—

$$\frac{35}{100} \times 3{\cdot}5 = \frac{4{\cdot}9}{4} = 1{\cdot}225$$ कि. ग्रा.

(ix) चोकर की मात्रा—

$$\frac{25}{100} \times 3{\cdot}5 = \frac{3{\cdot}5}{4} = 0{\cdot}875 \text{ कि॰ ग्रा॰}$$

(x) नमक की मात्रा 58 ग्राम
(xi) खनिज पदार्थ 29 ग्राम

बैल का एक दिन का आहार (अक्टूबर माह का) :

(i) सूखा चारा	4·9 कि॰ ग्रा॰	
(ii) मक्का का हरा चारा	14·7 कि॰ ग्रा॰	
(iii) अनाज (चना, मक्का)	1·400 कि॰ ग्रा॰	3·5 कि॰ ग्रा॰
(iv) खली	1·225 कि॰ ग्रा॰	
(v) चोकर	0 875 कि॰ ग्रा॰	
(vi) नमक	·58 ग्राम	
(vii) अस्थि-चूर्ण	·29 ग्राम	
(viii) स्वच्छ जल	आवश्यकतानुसार	

उदाहरण :

4. एक 850 किग्रा. वाले सांड (Bull) के लिए जुलाई माह में एक दिन का चारा-दाना निकालो —

(i) शुष्क पदार्थ की मात्रा—

$$\frac{2{\cdot}5}{100} \times 850 = \frac{42{\cdot}5}{2} = 21{\cdot}25 \text{ कि॰ ग्रा॰}$$

(ii) दाने की मात्रा—

(अ) स्वास्थ्य का दाना 1·5 कि॰ ग्रा॰
(ब) प्रजनन सेवा का दाना 2·0 कि॰ ग्रा॰

दाने की कुल मात्रा 3·5 कि॰ ग्रा॰

(iii) दाने में प्राप्त शु॰ प॰ की मात्रा—

$$\frac{90}{100} \times 3{\cdot}5 = \frac{6{\cdot}3}{2} = 3{\cdot}15 \text{ कि॰ ग्रा}$$

(iv) चारे द्वारा दी जाने वाली शु॰ प॰ की मात्रा—

21·25—3·15 = 18·10 कि॰ ग्रा॰

(नियमानुसार आधा सूखे एवं आधा शु॰ प॰ हरे चारे से देना है।)

$$\frac{18{\cdot}10}{2} = 9{\cdot}05 \text{ कि॰ ग्रा॰}$$

(v) सूखे चारे की मात्रा (भूसा 90% शु. प.)

$$\frac{100}{90} \times 9.05 = \frac{90.5}{9} = 10.555$$ कि० ग्रा०

(vi) हरे चारे की मात्रा (ज्वार हरी 30% शु० प०)—

$$\frac{100}{30} \times 9.5 = \frac{90.5}{3} = 30.166$$ कि० ग्रा०

(vii) अनाज (चना, मक्का) की मात्रा—

$$\frac{40}{100} \times 3.5 = \frac{1.4}{1} = 1.400$$ कि० ग्रा०

(viii) खली की मात्रा—

$$\frac{3.5}{100} = 3.5 = \frac{4.9}{4} = 1.225$$ कि० ग्रा०

(ix) चोकर की मात्रा—

$$\frac{25}{100} \times 3.5 = \frac{3.5}{4} = 0.875$$ कि० ग्रा०

जुलाई माह के एक दिन का सांड का आहार :

(i) सूखा चारा (भूसा)	10·555 कि. ग्रा.
(ii) हरा चारा (ज्वार)	30·166 कि. ग्रा.
(iii) अनाज	1·400 कि. ग्रा.
(iv) खली	1·225 कि. ग्रा. 3·5 कि. ग्रा.
(v) चोकर	0·875 कि. ग्रा.
(vi) नमक	60 ग्राम
(vii) अस्थि चूर्ण	30 ग्राम
(viii) स्वच्छ एवं ताजा जल	आवश्यकतानुसार

उदाहरण :

5. एक हरियाणा बछिया जिसका वजन 300 कि. ग्रा. है । 8 माह से ग्याभिन है । दिसम्बर माह में एक दिन का आहार निकालो ।

उत्तर—

(i) शुष्क पदार्थ की मात्रा—

$$\frac{2}{100} \times 300 = 6$$ कि. ग्रा. शु. प.

(ii) दाने की मात्रा—

(अ) स्वास्थ्य का दाना 1·00 किग्रा.

(ब) ग्याभिन का दाना 1·50 किग्रा.

कुल दाना 3·5 किग्रा.

(iii) दाने के प्राप्त गु. प. की मात्रा –

$$\frac{90}{100} \times 3{\cdot}5 = \frac{6{\cdot}3}{2} = 3{\cdot}15 \text{ किग्रा.}$$

(iv) चारे द्वारा की जाने वाली ग़ु. प. की मात्रा—
(नियमानुसार 50 प्रतिशत ग़ु. प. हरे से एवं 50 प्रतिशत ग़ु. प. सूखे चारे से देना है।)

$$\frac{2{\cdot}85}{2} = 1{\cdot}425 \text{ किग्रा.}$$

(v) सूखे चारे की मात्रा—

$$\frac{100}{90} \times 1{\cdot}425 = \frac{1425}{9} = 1{\cdot}583 \text{ किग्रा.}$$

(vi) हरे चारे की मात्रा—
(लोबिया 25 प्रतिशत ग़ु. प.)

$$\frac{100}{25} \times 1{\cdot}425 = 5{\cdot}700 \text{ किग्रा.}$$

(vii) अनाज की मात्रा—

$$\frac{40}{100} \times 3{\cdot}5 = 1{\cdot}400 \text{ किग्रा.}$$

(viii) खली की मात्रा—

$$\frac{35}{100} \times 3{\cdot}5 = 1{\cdot}225 \text{ किग्रा.}$$

(ix) चोकर की मात्रा—

$$\frac{25}{100} \times 3{\cdot}5 = 0{\cdot}875 \text{ किग्रा.}$$

सितम्बर माह के लिये बछिया का एक दिन का आहार :

1. सूखा चारा	1·583 किग्रा.
2. हरा चारा	5·700 ,,
3. अनाज	1·400 ,,
4. खली	1·225 ,,
5. चोकर	0·875 ,,
6. नमक	56 ग्राम
7. अस्थिचूर्ण	28 ग्राम
8. स्वच्छ जल	आवश्यकतानुसार

उदाहरण :

6. एक जमुनापुरी बकरी जो 2 प्रतिदिन लीटर दूध दे रही है। एक दिन का आहार ज्ञात करो।

उत्तर—

(i) चोकर की मात्रा 4·00 किग्रा.

(अ) सूखा 1·00] 4·00
(ब) हरा 3·00] किग्रा

(ii) दाने की मात्रा—

(अ) स्वास्थ्य का दाना 500 ग्राम
(ब) दूध का दाना 300 × = 600 ग्राम
(स) ग्याभिन का दाना 250 ग्राम
(बच्चे के लिए) 1340 ग्राम
या 1·350 किग्रा.

(iii) नमक 30 ग्राम

बकरी का एक दिन का आहार :

1. सूखा चारा 1·00 किग्रा.
2. हरा चारा 3·00 किग्रा.
3. दाना 1·350 किग्रा.
(आधा दाना आधा चोकर + खल)
4. नमक 30 ग्राम
5. अस्थिचूर्ण 10 ग्राम
6. स्वच्छ जल आवश्यकतानुसार

उदाहरण :

7. एक बकरी-बकरा का एक दिन का आहार निकालो जबकि उससे प्रजनन सेवा कार्य लिया जा रहा हो।

उत्तर –

1. सूखा चारा 100 किग्रा.
2. हरा चारा 2·5 किग्रा.
3. दाने की मात्रा—

(अ) स्वास्थ्य का दाना 500 ग्राम
(ब) प्रजनन का दाना 500 ग्राम
कुल दाना 1·000 किग्रा.

4 नमक 30 ग्राम

बकरे का एक दिन का आहार :

1. सूखा चारा 1·00 कि॰ ग्रा॰
2. हराचारा 2·5 कि॰ ग्रा॰
3. दाना 1·0 कि॰ ग्रा॰
(आधा दाना आधा चोकर)
4. नमक 30 ग्राम
5. खनिज पदार्थ 10 ग्राम
6. स्वच्छ जल आवश्यकतानुसार

उदाहरण :

8. एक भेड़ जो ½ लीटर दूध प्रतिदिन दे रही है, 5 माह से ग्यामिन है, एक दिन का चारा दाना निकालो।

उत्तर—

1. सूखा चारा 1·00 कि॰ ग्रा॰
2. हराचारा 2·00 कि॰ ग्रा॰
3. दाने की मात्रा—
(अ) स्वास्थ्य का दाना 500 ग्राम
(ब) दूध का दाना 300 × ½ = 150 ग्राम
(स) ग्यामिन का दाना 250 ग्राम
कुल दाना 900 ग्राम

भेड़ का एक दिन का आहार :

1. सूखा चारा 1·000 कि॰ ग्रा॰
2. हरा चारा 2·000 कि॰ ग्रा॰
3. दाना 0·900 कि॰ ग्रा॰
(आधा दाना आधा चोकर)
4. नमक 30 ग्राम
5. खनिज पदार्थ 10 ग्राम
6. स्वच्छ जल आवश्यकतानुसार

उदाहरण :

9. एक गाय जिसका वजन 400 कि॰ ग्रा॰ है। 4 लिटर दूध प्रतिदिन देती है। यह गाय 8 घण्टे के लिए प्रतिदिन चरने जाती है तो अगस्त माह के एक दिन का चारा निकालो।

(i) शुष्क पदार्थ की मात्रा—

$$\frac{2\cdot5}{100} \times 400 = 10\cdot00 \text{ कि॰ ग्रा॰}$$

(ii) दाने की मात्रा—

(अ) स्वास्थ्य का दाना — 1·00 कि० ग्रा०

(ब) दूध का दाना — $\cdot 333 \times 4 = 1\cdot 332$ कि० ग्रा०

दाने की कुल मात्रा— 2·332 कि० ग्रा०

(iii) दाने में प्राप्त शुष्क पदार्थ की मात्रा—

$$\frac{90}{100} \times 2\cdot 332 = \frac{20\cdot 988}{10} = 2\ 0988$$ या 2·1 कि० ग्रा०

(iv) चारे द्वारा दी जाने वाली शु. प. की मात्रा

$10 - 2\cdot 1 = 7\cdot 9$ कि० ग्रा०

चूंकि गाय प्रतिदिन चरने जाती है अतः घर पर उसे आवश्यक चारे की केवल आधी मात्रा ही खाने के लिए दी जाएगी।

$$\frac{7\cdot 9}{2} = 3\cdot 95$$ कि० ग्रा० शु. प.

(अब नियमानुसार आधा शु. प. हरे चारे से एवं आधा सूखे चारे से देना है।)

$$\frac{3\cdot 95}{2} = 1\cdot 975$$ कि० ग्रा०

(v) सूखे चारे की मात्रा (भूसा 90% शु० प०)—

$$\frac{100}{90} \times 1\cdot 975 = \frac{19\cdot 75}{9} = 2\cdot 183$$ कि० ग्रा०

(vi) हरे चारे की मात्रा (मक्का 30% शु० प०)

$$\frac{100}{30} \times 1\cdot 975 = \frac{19\cdot 75}{3} = 6\cdot 583$$ कि० ग्रा०

(vii) अनाज (चना, मक्का की मात्रा)

$$\frac{40}{100} \times 2\cdot 332 = \frac{9\cdot 328}{10} = 0\cdot 9328$$ कि० ग्रा० या 0·933 कि० ग्रा०

(viii) खली की मात्रा—

$$\frac{35}{100} \times 2\cdot 332 = \frac{16\cdot 324}{20} = 0\cdot 8162$$ कि० ग्रा०

(ix) चोकर की मात्रा—

$$\frac{25}{100} \times 2\cdot 332 = \frac{2\cdot 332}{4} = 0\cdot 583$$ कि० ग्रा०

चरने वाली गाय का एक दिन का आहार निम्नलिखित होगा :

1. सूखा चारा	2·183 कि० ग्रा०
2. हरा चारा	6·583 कि० ग्रा०
3. अनाज	0.933 कि० ग्रा०
4. खली	0·816 कि० ग्रा०
5. चोकर	0 583 कि० ग्रा०
6. नमक	58 ग्राम
7. खनिज पदार्थ	29 ग्राम
8. स्वच्छ एवं ताजा जल	आवश्यकतानुसार

उदाहरण :

10. एक भैंस का वजन 600 कि० ग्रा० है । 10 लिटर दूध प्रतिदिन दे रही है । 7 माह से ग्याभिन है । तथा प्रतिदिन चरने जाती है तो सितम्बर माह का एक दिन का चारा-दाना निकालो—

उत्तर

(i) शुष्क पदार्थ की मात्रा $-\frac{3}{100}\times 600 = 18{\cdot}00$ कि० ग्रा०

(ii) दाने की मात्रा—

(अ) स्वास्थ्य का दाना	1·500 कि० ग्रा०	
(ब) दूध का दाना	·400 × 10 = 40·00 कि० ग्रा०	
(स) ग्याभिन का दाना		1·500 कि० ग्रा०
कुल दाने की मात्रा	.. :	7 00 कि० ग्रा०

(iii) दाने में प्राप्त शुद्ध पदार्थ की मात्रा—

$\frac{90}{100} \times 7 = \frac{630}{100} = 6{\cdot}3$ कि० ग्रा० शु० प०

(iv) चारे द्वारा की जाने वाली शुष्क पदार्थ की मात्रा—

$18{\cdot}0 - 6{\cdot}3 = 11{\cdot}7$ कि० ग्रा०

चूंकि भैंस प्रतिदिन चरने जाती है अतः उसे आवश्यक चारे की केवल आधी मात्रा ही खाने के लिए दी जाएगी ।

$\frac{11{\cdot}7}{2} = 5{\cdot}85$ कि० ग्रा० शु० प०

(अब नियमानुसार 50 प्रतिशत शु०.प० हरे से एवं 50 प्रतिशत शु० प० सूखे चारे से देना है ।)

$\frac{5{\cdot}85}{2} = 2{\cdot}925$ कि० ग्रा० शु०प०

(v) सूखे चारे की मात्रा—(भूसा 90 प्रतिशत शु० प०)

$$\frac{100}{90} \times 2{\cdot}925 = \frac{29{\cdot}25}{9} = 3{\cdot}25 \text{ कि० ग्रा०}$$

(vi) हरे चारे की मात्रा—(ज्वार की चूरी 30 प्रतिशत शु० प०)

$$\frac{100}{30} \times 2{\cdot}925 = \frac{2{\cdot}925}{3} = 9{\cdot}75 \text{ कि० ग्रा०}$$

(vii) अनाज की मात्रा—

$$\frac{40}{100} \times 7 = \frac{28}{10} = 2{\cdot}8 \text{ कि० ग्रा०}$$

(viii) खली की मात्रा—

$$\frac{35}{100} \times 7 = \frac{245}{100} = 2{\cdot}45 \text{ कि० ग्रा०}$$

(ix) चोकर की मात्रा—

$$\frac{25}{100} \times 7 = \frac{7}{4} = 1{\cdot}75 \text{ कि० ग्रा०}$$

चरने वाली भैंस का एक दिन का चारा :

(i) सूखा चारा (भूसा)	3·25 कि० ग्रा०
(ii) हरा चारा	9·75 कि० ग्रा०
(iii) अनाज	2·8 कि० ग्रा०
(iv) खली	2·45 कि० ग्रा०
(v) चोकर	1·75 कि० ग्रा०
(vi) नमक	60 ग्राम
(vii) अस्थि चूर्ण	30 ग्राम
(viii) स्वच्छ एवं ताजा जल	आवश्यकतानुसार

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एक 400 कि० ग्रा० वाली गाय जो 6 लीटर दूध प्रतिदिन दे रही है। 6 माह से ग्याभिन है। अगस्त माह के लिए एक दिन का चारा दाना निकालो।
2. एक भैंस जिसका वजन 600 कि० ग्रा० है जो 10 लिटर दूध प्रतिदिन दे रही है, 6 माह से ग्याभिन है। दिसम्बर माह के एक दिन का आहार ज्ञात कीजिए।
3. 600 कि० ग्रा० वाले बैल का अक्टूबर माह के एक दिन का चारा-दाना निकालो।
4. 800 कि० ग्रा० वाले सांड (Bull) का अगस्त माह के एक दिन का आहार ज्ञात कीजिए।

5. एक साहीवाल बछिया जिसका वजन 400 कि. ग्रा. है । 7 माह से ग्याभिन है । फरवरी माह के एक दिन का चारा दाना निकालिए ।
6. एक बकरी जो एक लीटर दूध प्रतिदिन दे रही है । 7 माह से ग्याभिन है तो एक दिन का चारा-दाना निकालिए ।
7. एक जमुनापुरी बकरे का एक दिन का आहार ज्ञात करो जबकि उससे प्रजनन सेवा लिया जा रहा हो ।
8. एक भेड़ जो 4 लटीर दूध प्रतिदिन दे रही है । 6 माह से ग्याभिन है तो एक दिन का आहार ज्ञात कीजिए ।
9. एक गाय जिसका वजन 450 कि. ग्रा. है । 6 लीटर दूध प्रतिदिन दे रही है । 8 घण्टे के लिए चरने जाती है । सितम्बर माह के एक दिन का चारा-दाना ज्ञात कीजिए ।
10. 700 कि. ग्रा. वाली भैंस का नवम्बर माह के एक दिन का आहार ज्ञात करो जबकि वह 8 माह से ग्याभिन है ।
11. पशुओं को खिलाने के सामान्य सिद्धान्त क्या है ? विस्तार से वर्णन करो ।
12. विभिन्न महिनों में चारे की उपलब्धता की एक सूची बनाओ तथा चारे के सामने उपस्थित शुष्क पदार्थ का प्रतिशत मात्रा भी लिखो ।
13. गर्भवती पशुओं को दाना किस प्रकार दिया जाता है ? विस्तार पूर्वक लिखो ।
14. आहार से क्या समझते हो, कितने प्रकार के होते हैं ?
15. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखो—
    (अ) शुष्क पदार्थ
    (ब) बछड़े-बछियों का दाना
    (स) स्वास्थ्य का दाना
    (द) विभिन्न पशुओं को उनके उत्पादन का दाना
16. भेड़ व बकरियों के लिए आहार की गणना कैसे की जाती है ?

अध्याय 25

पशुओं का निवास स्थान

सामान्यता पशु मौसम के परिवर्तन की कठिनाइयों को बड़ी सरलता से सह लेते है । परन्तु इनसे अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पशुओं की इन कठिनाइयो में रक्षा की जावे । यदि हम पशुओं को अच्छा धारा-दाना देते है, परन्तु उनके रहने का अच्छा प्रबन्ध नही है तो पशुओं से अच्छे उत्पादन की आशा नही की जा सकती । इसलिए इनके रहने के लिए उचित आश्रम की व्यवस्था होना आवश्यक है । मकान का वातावरण स्वास्थ्यवर्द्धक हो और वहां पर सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हों । एक अच्छी पशुशाला में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए—

अच्छी पशुशाला की विशेषताएं

1. पशुशाला स्वच्छ एवं साफ-सुथरी हो ।
2. पशुशाला में हवा का आवागमन आसानी से हो ।
3. पशुशाला रोशनी युक्त हो ।
4. कीटाणुओ रहित हो ।
5. जंगली जानवरों से बचाव हो ।
6. गर्मी-सर्दी से बचाव हो ।
7. कोलाहल से दूर हो ।
8. ऊँचे स्थान पर हो ।
9. पशुशाला का स्थान अधिक हो ।
10. स्वच्छ जल की व्यवस्था हो ।
11. पशुशाला मे छोटे-छोटे बच्चों के टहलने के लिए जगह हो ।
12. दीवारें साफ एवं सफेदी की हुई हो ।
13. पशुशाला मे आवागमन आसान हो ।
14. सांड के लिए अलग प्रबन्ध हो ।
15. गर्भवती एवं ब्याने वाली गाय के लिए अलग प्रबन्ध हो ।
16. रोगी पशुओ को अलग रखने की सुविधा हो ।
17. पशुशाला मे सर्विस क्रेट की सुविधा हो ।
18. पशुशाला में गोबर-मूत्र एकत्रित न हो ।
19. फर्श पक्का तथा पीछे की ओर ढालू हो ।

पशुशाला की स्थिति (स्थान) का चुनाव

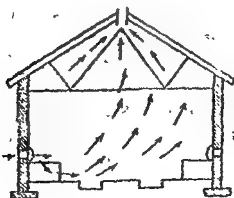
प्रत्येक पशुपालक चाहता है कि उसे पशुओं से अधिक से अधिक लाभ मिले और उसका व्यवसाय सफलता की ओर अग्रसर हो। इसके लिए आवश्यक है कि पशुशाला ऐसे स्थान पर स्थित हो, जहां से उत्पादन के विक्रय एवं चारे-दाने के क्रय की सुविधा हो तथा आवागमन के साधन उपलब्ध हों। अतः पशुशाला का निर्माण करने समय निम्न बातों का ध्यान रखकर स्थान का चुनाव करना चाहिए।

1. पशुशाला सड़क के आस-पास हो जिससे आवागमन की सुविधा हो।
2. ऐसा क्षेत्र चुनें जहां दूध एवं अन्य उत्पादन की मांग हो।
3. पशु चिकित्सा की सुविधाऐं उपलब्ध हो।
4. उस क्षेत्र में सस्ते एवं कुशल मजदूर मिल सकें।
5. बाजार निकट हो।
6. पानी का निकास आसानी से होता हो।
7. पीने का पानी काफी मात्रा में व आसानी से मिलता हो।
8. पशुशाला के आस-पास वातावरण साफ, खुला एवं शान्त हो।

पशुशाला की बनावट

भारत में अधिकतर पशु गांवों में पाले जाते हैं। जहां उन्हें गर्मी-सर्दी व वर्षा से बचाने के लिए बन्द कोठरी मे बांधा जाता है। अतः उत्पादन में वृद्धि करने के लिए पशु के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए पशुशाला का निर्माण कराना चाहिए। पशुशाला स्वच्छता एवं स्वास्थ्य के सिद्धान्त पर आधारित होनी चाहिए। इसके लिए पशुशाला में निम्न प्रबन्ध करने आवश्यक है—

1. हवा का आवागमन—पशुशाला में ताजी, स्वच्छ हवा काफी मात्रा में



चित्र सं. 53 (पशुशाला मे हवा की गति)

आनी चाहिए। यदि ताजी हवा का संचार नही होगा तो पशुशाला की हवा का संगठन बदल जावेगा। जो पशुओं के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। ताजी एव स्वच्छ हवा में 20·94 प्रतिशत ऑक्सीजन, 0·03 प्रतिशत कार्बन डाई-आक्साइड, 78·9 प्रतिशत नाइट्रोजन एवं 0·94 प्रतिशत अन्य गैसों का मिश्रण होता है। जब पशु श्वांस लेता है तो वह लगभग 4·5 भाग आक्सीजन प्रयोग कर लेता है और 16·44 प्रतिशत ऑक्सीजन, 79·09प्रतिशत नाईट्रोजन, 4·1 प्रतिशत कार्बन डाई-आक्साइड और 0·37 प्रतिशत अन्य गैसें बाहर निकालता है। यह मिश्रण ताजी हवा से हल्का होने के कारण ऊपर उठ जाता है। इसे बाहर निकालने के लिए दीवार में सुराख या रोशनदान बनाए जा सकते है। इसके स्थान पर ताजी हवा आने के लिए दावारो में नीचे भी सुराख रखे जा सकते हैं। (देखो चित्र सं. 53)

2. पशुशाला से फर्श :

पशुशाला में पक्का फर्श अच्छा रहता है क्योंकि कच्चे फर्श में गड्ढे पड़ जाते है और उसे साफ करना मुश्किल होता है। फर्श चिकना नही होना चाहिए। ऐसे फर्श पर पशु के पैर फिसल जाते हैं और पशु को चोट लगने का भय रहता है। फर्श पीछे की ओर ढालू होना चाहिए जिससे पशु का गोबर मूत्र पीछे बनी नाली मे आसानी से बह जावे। फर्श का ढाल 2 से 3 से. मी. का होना चाहिए।

3. पशुशाला से गोबर-मूत्र का निकास :

पशुशाला में पशुओं का गोबर-मूत्र बाहर निकालना भी अति आवश्यक है। इसके लिए पशु बांधने के स्थान के पीछे की ओर लगभग 60 से. मी. चौड़ी एवं 12·15 से. मी. गहरी नाली बना देते है जिससे पशुओ का गोबर-मूत्र तथा बिछावन आसानी से बाहर निकाला जा सकता है। इसका दूसरा लाभ यह है कि नाली द्वारा गोबर-मूत्र आसानी से एक स्थान पर एकत्रित करके खाद के रूप मे प्रयोग किया जा सकता है। गोबर-मूत्र को पशुशाला से बाहर निकालने से पशुशाला में सफाई रहती है, जो स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए एव पशुओ के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। क्योंकि गंदगी रहने से विभिन्न प्रकार के हानिकारक जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं जो पशुओं के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

4. पशुशाला का नक्शा (Design of Shed)

प्रत्येक पशुपालक चाहता है कि पशुशाला बनाने मे कम से कम व्यय हो और अधिक से अधिक पशु उसमें बांधे जा सकें। अतः पशुशाला बनाने से पूर्व उसका नक्शा बना लेना अति आवश्यक है। यदि पशुशाला पुरानी हो तो उसे तुड़वाकर नई बनवाने मे फिजूल खर्च न करके उसमे आवश्यक परिवर्तन ही कर देना चाहिए। नई पशुशाला दो प्रकार से बनाई जा सकती है:—

(1) एक पंक्ति वाली (Single row System)
(2) दो पंक्तियों वाली (Double row System)

(I) एक पंक्ति वाली पशुशाला :

चित्र में दिखाये अनुसार पशु एक ही पंक्ति में बाँधे जाते है। इस प्रकार की पशुशाला तभी बनानी चाहिये जबकि पशुओं की संख्या दस या इससे कम हो। अधिक पशु होने पर इसकी लम्बाई बढ़ जाती है और बहुत सा स्थान बेकार हो जाता है और ग्वाले को देखभाल में कठिनाई आती है।

पशुओं को चारा डालने का रास्ता	150 से० मी०
चारा डालने की नाँद	60 से० मी०
पशु के खड़े होने का स्थान	150 से० मी०
नाली	60 से० मी०
दूध निकालने एवं सफाई करने का रास्ता	150 से० मी०

चित्र सं० 54 (एक पंक्ति वाली पशुशाला का नक्शा)

(II) दो पंक्तियों वाली पशुशाला :

यदि पशुओं की संख्या दस से अधिक हो तो पशुओं को बाँधने के लिए इस विधि का प्रयोग करते है। इस विधि में पशुओं को दो पंक्तियों में बाँधते हैं। इससे स्थान की बचत होती है तथा पशुओं की देखभाल में भी आसानी रहती है। इस प्रकार की पशुशाला में पशु बाँधने के दो ढङ्ग है—

(अ) मुँह से मुँह (Face to Face System)
(ब) पूँछ से पूँछ (Tail to Tail System)

(अ) मुँह से मुँह विधि :

इस विधि से पशु एक दूसरे की तरफ आमने-सामने मुँह करके बाँधे जाते है। इसमें चारा डालने का एक ही रास्ता जो 150 से० मी० चौड़ा होता है। इसके दोनों तरफ 60 से 75 से० मी० चौड़ी चारा डालने की नाँद होती है। नाँद के बाद दोनों तरफ 150 से० मी० चौड़ा स्थान पशु बाँधने के लिए रखा जाता है। इसके बाद 60 से० मी० चौड़ी नाली दोनों तरफ होती है। नाली के बाद दोनों ओर

सफाई करने तथा दूध निकालने के लिए लगभग 150 से० मी० चौड़ा रास्ता रखा जाता है। इस प्रकार की पशुशाला की भीतर से चौड़ाई 10 मीटर होती है।

मुँह से मुँह विधि के लाभ :

1. पशुओं को चारा डालने में सुविधा रहती है और समय कम लगता है।
2. एक ही व्यक्ति सभी पशुओं की आसानी से देखभाल कर सकता है।
3. दूध निकालते समय अँधेरा नहीं रहता है।

मुँह से मुँह विधि के दोष :

1. एक पशु की श्वांस दूसरे पशु के मुँह से टकराती है और उस पशु के श्वांस के साथ भीतर चली जाती है जिससे यदि एक पशु रोगी है तो सामने वाला पशु भी रोगी हो जाता है।

2. सफाई में समय अधिक लगता है।

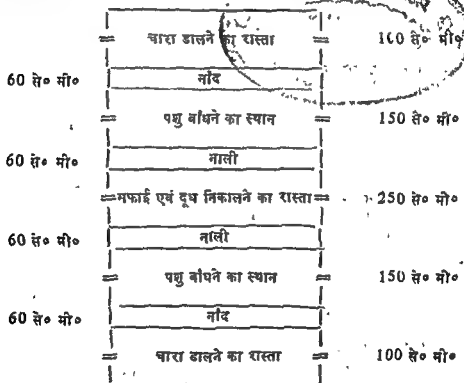
इन दोषों को देखते हुए इसे कम ही प्रयोग में लाया जाता है।

सफाई के लिए एवं दूध निकालने का रास्ता	150 से० मी०
नाली	60 से० मी०
पशु बांधने का रास्ता	150 से० मी०
नाँद	60 से० मी०
चारा डालने का रास्ता	150 से० मी०
नाँद	60 से० मी०
पशु बांधने का स्थान	150 से० मी०
नाली	60 से० मी०
सफाई एवं दूध निकालने का रास्ता	150 से० मी०

चित्र स० 55 (मुँह से मुँह विधि का नक्शा)

(ब) पूँछ से पूँछ विधि :

इस विधि में पशुओं का मुँह विपरीत दिशा में रखते हैं और पूँछ एक तरफ रखते है। पशुशाला के मध्य में 250 से० मी० चौड़ा रास्ता सफाई करने व दूध निकालने के लिए रखा जाता है। रास्ते के बाद दोनों ओर 60 सें० मी० चौड़ी नाली सफाई के लिए बनाई जाती है। नाली के बाद दोनों ओर पशु बांधने का स्थान 150 से० मी०, नाद 60-75 से० मी० चौड़ी और अन्त में 100 से० मी० चौड़ा रास्ता चारा डालने के लिए रखा जाता है। जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।



चित्र संख्या 56 (पूँछ से पूँछ विधि का नक्शा)

पूँछ से पूँछ विधि के लाभ—

1. पशुओं की श्वांस एक दूसरे को प्रभावित नहीं करती है।

2. सफाई में कम समय लगता है क्योंकि दोनों ओर की सफाई एक साथ हो जाती है।

दोष :

1. दूध निकालते समय अंधेरा रहता है।
2. चारा डालने में असुविधा हो सकती है।

तालिका सं० 42

मुँह से मुँह एवं पूँछ से पूँछ विधि की तुलना

क्र. सं.	मुँह से मुँह विधि	पूँछ से पूँछ विधि
1.	दूध दुहते समय रोशनी रहती है।	1. दूध दुहते समय अंधेरा रहता है।
2.	चारा डालने में असुविधा रहती।	2. चारा डालने में समय अधिक लगता है।
3.	सफाई करने में समय एवं श्रम अधिक लगता है।	3. सफाई करने में समय एवं श्रम कम लगता है।
4.	एक पशु की श्वांस दूसरे पशु को प्रभावित करती है जिससे एक रोगी पशु की बीमारी दूसरे को लग जाती है।	4. इस विधि में यह दोष नहीं है।

इस तुलनात्मक अध्ययन के बाद हम कह सकते है कि मुँह से मुँह विधि की अपेक्षा पूँछ से पूँछ विधि अच्छी रहती है।

5. बच्चों का बाड़ा :

साधारणतया बच्चों को भी पशुशाला के उसी भाग में बाँधा जाता है जहाँ अन्य पशु बाँधे जाते है। परन्तु उनके लिए अलग से पशुशाला होनी चाहिए। बच्चों के व्यायाम के लिए खुला स्थान होना आवश्यक है। इसके लिए खुले आंगन को लकड़ी के लठ्ठों से या कांटेदार तार से घेर कर एक बाड़ा बनाया जा सकता है। एक बाड़ा कम से कम 3×3 वर्ग मीटर क्षेत्रफल का होना चाहिए। यह बाड़ा पाँच बच्चो के लिए काफी रहता है। यदि बच्चे अधिक हो तो इसी अनुपात में स्थान बढ़ा देना चाहिए। आयु के अनुसार बच्चों के बाड़े अलग-अलग होने चाहिए ताकि वे एक दूसरे को किसी प्रकार की हानि न पहुँचा सकें। इसके लिए 3 माह तक की आयु के बच्चो का अलग, तीन से छः माह की आयु के बच्चो का अलग और इससे

बड़े बच्चों का अलग बाड़ा होना चाहिए। बच्चों का बाड़ा जहाँ तक हो सके पशुशाला के निकट होना चाहिए और बाड़े में ही पीने के पानी का प्रबन्ध होना अति आवश्यक है जिससे बच्चे इच्छानुसार पानी पी सकें।

6. सांड का निवास स्थान :

प्रत्येक डेयरी फार्म पर एक अच्छे सांड का होना आवश्यक है। इसके रहने के लिए भी पशुशाला में अलग प्रबन्ध होना चाहिए। एक सांड के लिए 4 × 3 वर्ग मीटर का अलग हवादार एवं स्वच्छ कमरा होना चाहिए। इसी कमरे में चारे, दाने, पानी आदि का भी उचित प्रबन्ध होना चाहिए। इसके अलावा सांड के व्यायाम के लिए लगभग 20 × 40 वर्ग मीटर क्षेत्र का व्यायाम प्रांगण होना चाहिए।

7. अन्य स्थान :

(अ) प्रसव शाला—पशुशाला में प्रसव शाला अलग से होनी चाहिए जहाँ पर गाय को प्रसव काल के समय रखा जाता है। प्रसव शाला का फर्श पक्का होना चाहिए, जिस पर पुआल बिछा दिया जाता है।

(ब) दोहन शाला—यदि सम्भव हो सके तो दोहन शाला अलग होनी चाहिए जहाँ पर पशु को ले जाकर उसका दूध निकाला जाता है। इसके होने का प्रमुख लाभ यह है कि इस शाला की सफाई भली प्रकार की जा सकती है। दूध में गोबर, मूत्र एवं चारे की बदबू नहीं भरती है। जो शुद्ध दूध उत्पादन का एक अङ्ग है। इस शाला का फर्श भी पक्का होना चाहिए।

(स) ब्यामिन पशुओं का स्थान—ब्यामिन पशुओं को भी अन्य पशुओं से अलग रखना चाहिए क्योंकि दूसरे पशु कई बार ब्यामिन पशु को हानि (चोट) पहुँचा देते हैं जो कई बार बहुत ही हानिकारक सिद्ध होती है। अतः इनके लिए अलग से पूर्ण प्रबन्ध होना चाहिए।

अतः पशुशाला के निर्माण में उपर्युक्त समस्त बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पशुशाला की स्थिति के बारे में अपने विचार प्रकट करिए तथा यह भी बताइए कि एक अच्छी पशुशाला में क्या-क्या विशेषतायें होनी चाहिए।
2. पशुशाला की बनावट कैसी होनी चाहिए ? एक पशुशाला का रेखाचित्र दो तथा उसमें आपस की सभी दूरियों को भी स्पष्ट कीजिए।

3. निम्नलिखित पशुओं के निवास हेतु अपने विचार प्रकट करिए—
   (अ) बछड़े-बछड़ियों हेतु।
   (ब) सांड के लिए।
   (स) ग्याभिन पशुओं हेतु।
4. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   (1) पूँछ से पूँछ पद्धति।
   (2) सिर से सिर पद्धति।
   (3) पशुशाला का फर्श।
   (4) दोहन शाला।

अध्याय 26

पशुशाला की सफाई

पशुओं से अधिक उत्पादन लेने के लिए उनका स्वास्थ्य अच्छा होना अति आवश्यक है। पशुओं के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये पशुशाला की सफाई करना जरूरी है। पशुशाला में पशुओं का गोबर-मूत्र फैला रहता है। इसे उठाकर खाद के गड्ढे में डालना चाहिये। पक्के फर्श को अच्छी तरह धोना चाहिये। यदि फर्श कच्चा हो तो उसे अच्छी तरह से झाड़ू से साफ करें। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो पशुओं के शरीर में लगने वाली जुएँ और कलीलियाँ (*Ticks*) फर्श में अपना घर बना लेंगी जो बाद में पशुओं का रक्त चूसेंगी।

हमारे यहाँ अधिकतर दो प्रकार की पशुशालाएँ बनाई जाती हैं—

1. पक्की पशुशालाएँ (वैज्ञानिक ढंग की)
2. कच्ची पशुशालाएँ (साधारण ढंग की)

पक्की पशुशाला की सफाई का ढंग :

इस प्रकार की पशुशाला का फर्श पक्का होता है। यह फर्श नाली की तरफ ढालू होता है जिससे समस्त गोबर मूत्र बहकर नाली में चला जाता है परन्तु फिर भी सारा गोबर मूत्र नाली में बहता है। ऐसी स्थिति में गोबर को उठाकर खाद के गड्ढे में पहुँचाया जाता है और फर्श को पानी से धोकर फिनाइल या लाल दवा मिले पानी से पुनः धोते हैं। इससे पशुशाला में उपस्थित सभी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार की सफाई प्रातः एवं सायं दिन में दो बार करनी चाहिए। सफाई करने के बाद पशुशाला के समस्त द्वार खोल देने चाहिए ताकि स्वच्छ हवा आ जा सके और सूर्य की धूप भी पहुँच सके।

पशुशाला की सफाई में चारे की नांद की सफाई करना भी सम्मिलित है। अतः नांद में बचा हुआ चारा निकाल कर उसकी सफाई करनी आवश्यक है क्योंकि नांद में भी कीट पतंगे अपना घर बना लेते हैं जो पशु को हानि पहुँचा सकते हैं।

कच्ची पशुशाला की सफाई करने का ढंग :

यदि पशुशाला कच्ची होती है तो हम उसे पानी से धो नहीं सकते हैं।

इसलिए पशुशाला से गोबर को एकत्रित करके खाद के गड्ढे में डाल देना चाहिए। यदि पशुओं के नीचे बिछावन बिछा है तो उसे भी उठाना चाहिए। नांद से बचा हुआ चारा उठाकर सारी पशुशाला में झाडू से सफाई कर देनी चाहिए। इसके बाद फिनाइल या लाल दवा का घोल बनाकर छिड़क देना चाहिए। जिससे पशुशाला में उपस्थित जीवाणु नष्ट हो जावें। कभी-कभी फर्श तथा दीवारों को गोबर मिली मिट्टी से लीप लेना चाहिए, ताकि कीट-पतंगे, जुएँ और कलीलियाँ दीवारों के छेदों में छुप न सकें। पशुशाला की सफाई दिन में दो बार प्रातः एवं सायं करनी चाहिए। सफाई करने के बाद बिछावन बिछा देना चाहिए।

जीवाणु, कीड़ों, जुओं और कलीलियों को मारने के लिए सफाई करने के बाद निम्न पदार्थ प्रयोग किये जा सकते हैं—

1. सोडियम कार्बोनेट का घोल
2. चूना (चूर्ण के रूप में)
3. लाल दवा का घोल (5%)
4. फिनाइल
5. फिनोल
6. लाईसोल
7. डीटोल
8. फार्मेलडीहाईड
9. बी. एच. सी. (5% चूर्ण के रूप में)
10. डी. डी. टी (5% चूर्ण के रूप में)

पशुशाला की सफाई करने से लाभ :

1. स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए सफाई आवश्यक है।
2. पशुओं के जुएँ और कलीलियाँ नहीं लगती है।
3. पशुओं की बीमारियों से रक्षा होती है।
4. पशुशाला के स्वच्छ वातावरण के कारण दुग्ध उत्पादन व कार्यक्षमता बढ़ती है।
5. सफाई से पशु का मन प्रसन्न रहता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पशुशाला की सफाई क्यों आवश्यक है? पशुशाला की सफाई कैसे करोगे?
2. कच्ची पशुशाला की सफाई कैसे की जाती है?
3. पशुशाला की सफाई करने से क्या-क्या लाभ होते हैं?

अध्याय 27

चारे की फसलें

(Fodder Crops)

(1) मक्का

1. जाति—विजय-गंगा।

2. बीज दर—30 किलो प्रति हेक्टर।

3. बुवाई—अप्रेल जून रबी की फसल के कटाई के बाद।

4. दूरी—पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25 सें.मी., एम. पी. चर लोबिया की एक पंक्ति के बाद।

5. उर्वरक—90 किलो नत्रजन और 60 किलो फास्फेट प्रति हेक्टर।

6. सिंचाई—8–10 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए।

7. कटाई का समय—मक्का फल आने के समय या लोबिया फूल आने के समय के बाद कटाई करनी चाहिए।

8. पौध सुरक्षा आहार मूल्य—मक्का डी. डी. पी. 10 प्रतिशत, टी.डी.एन. 26 प्रतिशत, लोबिया डी.सी.पी 25 प्रतिशत, टी. डी. एन. 140 प्रतिशत।

9. चारा संरक्षण—चारे का आचार।

10. उपज हरे चारे की आशातीत—हरे चारे की आशातीत 300 क्विटल प्रति हेक्टर है।

(2) चौंला (लोबिया)

1. जाति—रूसी जिएट इगफिएस 450 और 457

2. बीज दर—30 किलो प्रति हेक्टर।

3. बुवाई—अप्रेल–मई बरसीम की अन्तिम कटाई के बाद।

4. दूरी—25. से.मी. दूरी पर पंक्तियों की दूरी हाथी घास की पंक्तियों के बीच में दो पंक्तियाँ लगाकर।

5. उर्वरक—कुल 250–300 किलो नत्रजन डी. व 100 किलो फासफोरस प्रति हेक्टर 50560 किलो नत्रजन प्रति हेक्टर प्रत्येक कटाई के बाद।

6. सिंचाई—हाथी घास की तरह अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं।

7. कटाई का समय—पौध लगाने के तीन माह बाद उसकी कटाई के बाद 45 दिन के अन्तर पर 60 दिन के बाद केवल एक कटाई।

8 पौध सुरक्षा आहार मूल्य—रिफलान 10–20 किलो प्रति हेक्टर पौध लगाने के पहले मैलाथियान 0·05 प्रतिशत 500 मि. लीटर 01 हेक्टर (1 मि.ली. पानी या काबारील) 0·05 प्रतिशत 500 प्रतिशत हेक्टर एक किलो पानी में।

9. चारा सरक्षण—टी. डी. एन. 14·0 प्रतिशत प्रति हेक्टर।

10. उपज हरे चारे की आशातीत—100 क्विटल प्रति हेक्टर है।

(3) एम. पी. चरी

1. जाति—एम. पी. चरी, पुसाचर, मोठी, सुडान एस.एस.जी. 593 इगफिएस 178 व 985।

2. बीज दर ज्वार 25 किलो, लोबिया 30 किलो प्रति हेक्टर।

3. बुवाई—मार्च-अप्रेल (4 कटाई के लिए) (जुलाई दो कटाई के लिए)

4. दूरी—25 से.मी दूरी पर पंक्तियों से पंक्तियों की दूरी हाथी घास की पंक्तियों के बीच में दो पंक्तियां लगाकर।

5. उर्वरक—बुवाई समय 20 किलो नत्रजन और 80 किलो फासफेट और 50 किलो नत्रजन पहली सिंचाई व प्रत्येक कटाई के बाद।

6 सिंचाई—7–10 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए।

7. कटाई का समय—करीब 50 प्रतिशत फल आने के बाद कटाई करनी चाहिए।

8. पौध सुरक्षा आहार मूल्य—डी.सी.सी..चार-आठ प्रतिशत। टी.डी.एन. 150 प्रतिशत।

9. चारा संरक्षण—चारे का आचार।

10. उपज हरे चारे की आशातीत—400 क्विटल प्रति हेक्टर।

(4) ज्वार

1. जाति - एफ. एस. 277 ज्वार नं. 2।

2. बीज दर—10 से 15 किलो प्रति हेक्टर।

3. बुवाई—मार्च से जुलाई, अगस्त।

4. दूरी—25 से.मी. दूरी पर पंक्तियों से पंक्तियों की दूरी हाथी घास की पंक्तियों के बीच मे दो पंक्तियां लगाकर।

5. उर्वरक—100 किलो सुपरफासफेट प्रति हेक्टर।

6. सिंचाई—20 से 21 दिन अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए।

7. कटाई का समय—बोने के 60 एवम् 70 दिन के बाद कटाई करनी चाहिए।

8. पौध सुरक्षा ग्राहार मूल्य डी. सी. पी. 2 प्रतिशत टी. सी. एन. 14 प्रतिशत।

9. चारा संरक्षण—चारे का ग्राचार।

10. उपज हरे चारे की ग्राशातीत—80 से 140 क्विटल प्रति एकड़।

(5) बाजरा

1. जाति—बाजरा एच. बी. 1. एच. बी. 3।

2. बीज दर—10 किलो बाजरा प्रति हेक्टर।

3. बुवाई—मार्च-ग्रप्रेल।

4. दूरी—25. सें.मी. की दूरी पर बाजरा एवम् लोबिया पंक्तियों के बीच में दो पंक्तियों में।

5. उर्वरक—90 किलो नत्रजन ग्रौर 60 फासफेट प्रति हेक्टर।

6. सिंचाई—7 से 10 दिन के ग्रन्तर पर करनी चाहिए।

7. कटाई का समय—50 प्रतिशत फूल ग्राते समय डी.सी.पी. 10 टी.एन. व 14·0।

8. पौध सुरक्षा ग्राहार मूल्य—डी.सी.पी. बाजरा 1 0 प्रतिशत टी.डी.एन. बाजरा 14·0।

9. चारा संरक्षण—चारे का ग्राचार।

10. उपज हरे चारे की ग्राशातीत—350 से 400 क्विटल प्रति हेक्टर।

11. टिप्पणी—पंक्तियों में बुवाई करनी चाहिए।

(6) बरसीम

1. जाति—द्विगुण सूची, चतुगुण सूकी इगफिएस. 991

2. बीज दर—25 किलो प्रति हेक्टर।

3. बुवाई—ग्रक्टूबर के प्रथम से तृतीय सप्ताह तक।

4. दूरी—छिटकवां।

5. उर्वरक—20 किलो नत्रजन ग्रौर 80 किलो फासफोरस प्रति हेक्टर।

6. सिंचाई—8 से 10 दिन के ग्रन्तर पर करनी चाहिए।

7. कटाई का समय—पहली कटाई 50 से 60 दिन बाद। दूसरी कटाई पहली से 35–40 दिन बाद। तीसरी कटाई प्रथम कटाई के 20 दिन बाद। चौथी कटाई पहली कटाई के 30 दिन बाद।

8. पौध सुरक्षा ग्राहार मूल्य—डाईनोसेप ऐसीटेट 40 किलो प्रति हेक्टर पौधे जमने के बाद।

9. चारा संरक्षण—हेक्टर साइलेज शुष्क घास।

10 उपज हरे चारे की ग्राशातीत—100 किलो एक हेक्टयर।

11. टिप्पणी—बरसीम के बीज का निवेसन करना।

(7) रिजका

1. जाति—सिरसों टी-9।

2. बीज दर—8 किलो प्रति हेक्टर।

3. बुवाई—ग्रक्टूबर-नवम्बर।

4. दूरी—35 से.मी. दूरी पर छिटकवां।

5. उर्वरक—100 से 150 किलो प्रति एकड़ सुपर फास्फेट।

6. सिंचाई—बोने से एक माह तक 7 से 10 दिन के ग्रन्तर पर। बाद में 15 से 20 दिन के ग्रन्तर पर।

7. कटाई का समय बोने के 70–80 दिन बाद पहली कटाई बाद में 20–25 दिन के ग्रन्तर में।

8. पौध सुरक्षा ग्राहार मूल्य—20 किलो प्रति हेक्टर 40 किलो प्रति हेक्टर नत्रजन।

9. चारा संरक्षण—100 किलो हेक्टर दर से बी. एच. सी. डाल कर मिला देना चाहिए। सरमो बोने के एक माह बाद 2 मि.लीटर डीवेक्शन प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कना चाहिए। दूसरा छिड़काव 15–20 दिन बाद।

10 उपज हरे चारे की ग्राशातीत—150–250 क्विंटल प्रति एकड़।

(8) जई

1. जाति—कैन्ट, इगफि 2688 एस.।

2. बीज दर—100 किलो हेक्टर।

3. बुवाई—ग्रक्टूबर के तृतीय सप्ताह, मार्च व नवम्बर।

4. दूरी—25 से.मी.।

5. उर्वरक—60 किलो नत्रजन ग्रौर 50 किलो फासफेट प्रति हेक्टर बुवाई के समय ग्रौर 30 किलो नत्रजन प्रति हेक्टर पहली कटाई के बाद।

6. सिंचाई—पहली सिंचाई के 18–22 दिन के बाद व उसके बाद की सिंचाई 12–15 दिन के ग्रन्तर पर।

7. कटाई का समय—पहली कटाई 5 प्रतिशत फूल ग्राने पर व दूसरी 45 दिन के बाद।

8. पौध सुरक्षा ग्राहार मूल्य—एम.पी.पी.ए.। 75–10 किलो पौध जमने के लाइन रिन 5 किलो हेक्टर डी.सी. 1 फी 100 प्रति।

9. चारा संरक्षण—शुष्क घास चारा का प्राचार ।

10. उपज हरे चारे की प्राशातीत—550 क्विटल प्रति हेक्टर ।

(9) सरसों चाईनीज कैबेज

1. जाति—चाईनीज कैबेज ।

2. बीज दर—प्रावश्यकतानुसार ।

3. बुवाई—प्रक्टूबर के प्रथम सप्ताह से तृतीय सप्ताह तक ।

4. दूरी—छिटकवां (मिट्टी के साथ मिलाकर)

5. उर्वरक—20 किलो नत्रजन प्रौर 380 किलो फासफोरस प्रति हेक्टर ।

6. सिचाई—8–10 दिन के प्रन्तर पर करनी चाहिए ।

7. कटाई का समय—पहली कटाई 50–60 दिन के बाद, दूसरी कटाई 30 दिन बाद ।

8. पौध सुरक्षा प्राहार मूल्य—डाइनोसेब ऐसीटेट 4 किलो प्रति हेक्टर पौध जमने के बाद ।

9. चारा संरक्षण—हेक्टर साइलेज ।

10. उपज हरे चारे की प्राशातीत—हरा चारा 300–400 क्विटल प्रति हेक्टर बीज 7 से 9 क्विटल प्रति हेक्टर ।

(10) एन. बी. 21 (हाथी घास)

1. जाति—मास का बी. सन. बी. 25, एन.बी. 921 कामधे ।

2. बीज दर—33000 जड़दार बोरिया प्रति हेक्टर ।

3. बुग्राई—बरसीम के खेत मे बरसीम की तीसरी कटाई के बाद (फरवरी में)

4. दूरी—1 मि. ली. 30 से. मी. ।

5. उर्वरक—कुल 250–300 नत्रजन प्रति हेक्टर, 100 किलो फासफोरस प्रति हेक्टर । 50560 किलो नत्रजन प्रत्येक कटाई के बाद ।

6. सिचाई—ग्रीष्म ऋतु 12–15 दिन के प्रन्तर पर उसके बाद प्रावश्यकतानुसार ।

7. कटाई का समय—पौधे लगाने के ढाई से तीन माह बाद 45 दिन के प्रन्तर के बाद 70 दिन सिर्फ एक कटाई ।

8. पौध सुरक्षा प्राहार मूल्य—2–4 डी. एक किलो प्रति हेक्टर पौधे जमने के बाद मेलाथियान 10·5%500 मिलीलीटर प्रति हेक्टर (1 मि. ली. पानी में प्रथवा कावारील 0·05 मि.ली. प्रति हेक्टर एक किलो प्रति लीटर पानी मे) ।

10 उपज हरे चारे की प्राशातीत—100 किलो एक हेक्टयर।

11. टिप्पणी—वरसीम के बीज का निवेमन करना।

(7) रिजका

1. जाति—सिरसों टी-9।
2. बीज दर—8 किलो प्रति हेक्टर।
3. बुवाई—अक्टूबर-नवम्बर।
4. दूरी—35 से.मी. दूरी पर छिटकवां।
5. उर्वरक—100 से 150 किलो प्रति एकड़ सुपर फास्फेट।

6. सिंचाई—बोने से एक माह तक 7 से 10 दिन के अन्तर पर। बाद 15 से 20 दिन के अन्तर पर।

7. कटाई का समय बोने के 70-80 दिन बाद पहली कटाई बाद 20-25 दिन के अन्तर में।

8. पौध सुरक्षा आहार मूल्य—20 किलो प्रति हेक्टर 40 किलो प्रति हेक्टर नत्रजन।

9. चारा संरक्षण—100 किलो हेक्टर दर से बी. एच. सी. डाल कर मिला देना चाहिए। सरसों बोने के एक माह बाद 2 मि.लीटर डीवेक्शन प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कना चाहिए। दूसरा छिड़काव 15-20 दिन बाद।

10 उपज हरे चारे की आशातीत—150-250 क्विटल प्रति एकड़।

(8) जई

1. जाति—कैन्ट, इगफि 2688 एस.।
2. बीज दर—100 किलो हेक्टर।
3. बुवाई—अक्टूबर के तृतीय सप्ताह, मार्च व नवम्बर।
4. दूरी—25 से.मी.।

5. उर्वरक—60 किलो नत्रजन और 50 किलो फासफेट प्रति हेक्टर बुवाई के समय और 30 किलो नत्रजन प्रति हेक्टर पहली कटाई के बाद।

6. सिंचाई—पहली सिंचाई के 18-22 दिन के बाद व उसके बाद की सिंचाई 12-15 दिन के अन्तर पर।

7. कटाई का समय—पहली कटाई 5 प्रतिशत फूल आने पर व दूसरी 45 दिन के बाद।

8. पौध सुरक्षा आहार मूल्य—एम.पी.पी.ए. 1 75-10 किलो पौध जमने के लाइन रिन 5 किलो हेक्टर डी.सी. 1 फी 100 प्रति।

अध्याय 28

साईलेज
(Silage)

पशुओं के आहार मे हरे चारे का बहुत महत्त्व है। परन्तु उत्पादन एवं कार्य अधिक लेने के लिए पशुओं को हरा चारा देना आवश्यक है। परन्तु हरा चारा वर्ष के कुछ ही महिनों मे अच्छी प्रकार से मिलता है और कुछ माह बिलकुल भी नही मिलता। इन दिनों के लिए हरे चारे को रखने के लिए एक ही उपाय काम में लेते हैं कि हरे चारे को जब वह पूर्ण रूप से पक गया हो, काट कर गड्ढों में दबा देते हो और आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग में लेते हैं।

साइलेज की परिभाषा :

हरे चारे की प्राकृतिक रूप मे परिरक्षित करने की क्रिया को साईलेज बनाना कहते हैं और इस प्रकार परिरक्षित किए हुरे चारे को साइलेज कहते हैं।

साईलेज बनाने का सिद्धान्त

चारे को वायु शून्य स्थान में सुरक्षित रखकर साईलेज बनाया जाता है। प्राचीन समय में रोमन लोग हारे चारे को जमीन मे गड्ढे खोदकर सुरक्षित रखते थे। उसी सिद्धान्त पर आजकल साईलो बनाये जाते हैं।

जब हरे चारे का वायु शून्य गड्ढे मे भर देते हैं और हरे चारे में उपस्थित जीवाणु अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं वे जीवाणु हरे चारे में उपस्थित शक्कर को लैक्टिक अम्ल में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार हरे चारे में मीठी-मीठी महक आने लगती है। यदि गड्ढे में हवा का प्रवेश हो जावे तो हरा चारा खराब हो जाता है। स्वाद कसैला हो जाता है और चारे में फफूंदी लग जाती है।

साईलेज बनाने से लाभ

1. हरा चारा सालभर उपलब्ध रहता है।

2. हरे चारे के मौसम में जो हरा चारा अधिक होता है उसका साईलेज बनाकर सदुपयोग किया जा सकता है।

3. कम स्थान पर अधिक साइलेज रखा जा सकता है। देखा गया है कि एक क्विटल सूखा चारा जितनी जगह घेरता है उतने स्थान मे 10 क्विटल साईलेज रखा जा सकता है।

4. कम व्यय मे पौष्टिक आहार प्राप्त होता है।

9. चारा संरक्षण—टी. डी. एन. 14·00 प्रतिशत । साईलेज पशुओं क
आहार ।

10. उपज हरे चारे की आशातीत—13000 क्विटल एक हेक्टर ।

11. टिप्पणी विशेष—हाथी घास शीतकाल में सुषुप्त रहता है ।

विशेष—चारे की फसलों की अधिक जानकारी हेतु कृपया लेखक द्वारा लिखित पुस्तक "नूतन कृषि विज्ञान भाग–1" का अवलोकन करें ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बरसीम अथवा रिजका की खेती कैसे की जाती है ?
2. निम्न पर टिप्पणी लिखो—
   (i) मक्का की खेती (ii) हाथी घास (iii) लोबिया की खेती ।
3. एम. पी. चरी अथवा सरसों चाइनीज कैबेज की खेती का संक्षिप्त उल्लेख करो ।

अध्याय 28

साईलेज

(Silage)

पशुओं के आहार में हरे चारे का बहुत महत्व है। परन्तु उत्पादन एवं कार्य अधिक लेने के लिए पशुओं को हरा चारा देना आवश्यक है। परन्तु हरा चारा वर्ष के कुछ ही महिनों में अच्छी प्रकार से मिलता है और कुछ माह बिलकुल भी नहीं मिलता। इन दिनों के लिए हरे चारे को रखने के लिए एक ही उपाय काम में लेते हैं कि हरे चारे को जब वह पूर्ण रूप से पक गया हो, काट कर गड्ढों में दबा देते हों और आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग में लेते हैं।

साइलेज की परिभाषा :

हरे चारे को प्राकृतिक रूप में परिरक्षित करने की क्रिया को साईलेज बनाना कहते हैं और इस प्रकार परिरक्षित किए हुरे चारे को साइलेज कहते हैं।

साईलेज बनाने का सिद्धान्त

चारे को वायु शून्य स्थान में सुरक्षित रखकर साईलेज बनाया जाता है। प्राचीन समय में रोमन लोग हरे चारे को जमीन में गड्ढे खोदकर सुरक्षित रखते थे। उसी सिद्धान्त पर आजकल साईलो बनाये जाते हैं।

जब हरे चारे का वायु शून्य गड्ढे में भर देते हैं और हरे चारे में उपस्थित जीवाणु अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं वे जीवाणु हरे चारे में उपस्थित शक्कर को लैक्टिक अम्ल में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार हरे चारे में मीठी-मीठी महक आने लगती है। यदि गड्ढे में हवा का प्रवेश हो जावे तो हरा चारा खराब हो जाता है। स्वाद कसैला हो जाता है और चारे में फफूंदी लग जाती है।

साईलेज बनाने से लाभ

1. हरा चारा सालभर उपलब्ध रहता है।

2. हरे चारे के मौसम में जो हरा चारा अधिक होता है उसका साईलेज बनाकर सदुपयोग किया जा सकता है।

3. कम स्थान पर अधिक साइलेज रखा जा सकता है। देखा गया है कि एक क्विंटल सूखा चारा जितनी जगह घेरता है उतने स्थान में 10 क्विंटल साईलेज रखा जा सकता है।

4. कम व्यय में पौष्टिक आहार प्राप्त होता है।

5. पशुओं की पाचन शक्ति को बढ़ाता है।

6. पशुओं को साईलेज खिलाया जावे तो दान की मात्रा कम की जा सकती है।

7. साईलेज खाने में बहुत ही स्वादिष्ट होता है। इसलिए पशु इसे अच्छी तरह से खाते हैं।

8. साईलेज खिलाने से दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होती है।

9. साईलेज में समस्त पोषक तत्व पाए जाते हैं।

साईलेज बनाना :

साईलेज बनाने का कार्य अमेरिका में सन् 1875 में प्रारम्भ हुआ, परन्तु 1910 में इसका प्रचलन बढ़ गया। साईलेज बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के गड्ढे तैयार किए जाते हैं जिन्हें साईलो (Silo) कहते हैं।

साईलो बनाने से पूर्व उसके आकार, प्रकार एवं बनावट की जानकारी कर लेना आवश्यक है।

1. साईलो का आकार–पशुओं की संख्या पर निर्भर करता है। साईलो बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि साईलो का अधिक से अधिक व्यास 4–4½मीटर यदि साईलो गड्ढे नुमा बनाए हों तो उनकी गहराई 2½ मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए। लम्बाई एवं चौड़ाई पशु संख्या अनुसार रख सकते हैं।

2. साईलो के प्रकार—साईलो तीन प्रकार के बनाये जाते हैं—

(अ) गर्त साईलो
(ब) खाईदार साईलो
(स) बुर्ज साईलो

(अ) गर्त साईलो—भूमि में इच्छित नाप के गोल या चौकोर गड्ढे बना लिए जाते हैं। गोल गड्ढा चौकोर गड्ढे की अपेक्षा अच्छा रहता है क्योंकि गोल गड्ढे में वायु प्रवेश से बचाव हो सकता है तथा अच्छी प्रकार से बन्द भी किया जा सकता है। साधारणतया गड्ढा 2 मीटर व्यास का 3 मीटर गहराई वाला बनाया जाता है। यदि अधिक साईलेज बनाना हो तो गड्ढे की संख्या या आकार बढ़ा देना चाहिए। गड्ढे के अन्दर दिवारों पर प्लास्टर कर देना चाहिए ताकि नमी साईलेज तक न पहुँचे।

(ब) खाईदार साईलो—इस विधि में गड्ढों के स्थान पर लम्बी खाई बना देते हैं। खाई की गहराई 2½ मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए इसकी चौड़ाई ऊपर से 2½ मीटर तथा नीचे से 2 मीटर होनी चाहिए जिसमें हरे चारे को भरने तथा निकालने में सुविधा रहती है। खाई की लम्बाई आवश्यकतानुसार रख सकते हैं इस विधि में साईलो

बनाने का मुख्य लाभ है कि हरा चारा साईलों में दबा दबा कर भरा जा सकता है। साईलो के अन्दर की दीवारें व छत पक्की होनी चाहिए। छत ढ़ालू हो तो अच्छा रहता है। वर्षा वाले स्थानों पर या ऐसे स्थान जहां पानी भरना रहता है। गर्तसाईलो या खाईदार साईलो उपयुक्त नही रहते हैं।

(ख) बुर्ज साईलो (Tower Silo)—जहां पर पहली प्रकार के साईलो सफल नही होते हैं। वहां पर बुर्ज साईलो बनाए जाते हैं। बुर्ज साईलो गोलाकार, जमीन के ऊपर, ऊंचे टावर के आकार के बनाए जाते है। साधारणतया इनका व्यास 3 मीटर तथा ऊंचाई 9 मीटर रखी जाती है। इस प्रकार के बुर्ज में 25 टन चारा रखा जा सकता है। इस प्रकार के साईलो सबसे उपयुक्त रहते हैं।

3. साईलो बनाते समय ध्यान देने योग्य बातें—1 साईलो मजबूत बनाना चाहिए।

2. साईलो बनाने में लगाया गया सामान ऐसा हो जो साईलेज के गुणों को प्रभावित न करे।

3. साईलो का फर्श पक्का कंकरीट का बना हो।

4. साईलो के छत अवश्य लगानी चाहिए।

5. साईलो में हवा न आए जावे।

4. साईलेज बनाने के लिए उपयुक्त फसलें—हर प्रकार के हरे चारे का साईलेज बनाया जा सकता है परन्तु साईलेज बनाने के लिए दाल वाली एव बिना दाल वाली फसलो को मिलाकर प्रयोग में लाना चाहिए। सबसे अच्छा साईलेज अलफा घास अलफा और सोयाबीन मिलाकर बनाया जाता है। साईलेज बनाने के लिए मक्का, बाजरा, ज्वार, उर्द एवं दूसरी दाल वाली फसलें, गन्ने के ऊपरी भाग तथा अन्य खरपतवार एव लताएँ (जो पशु खाता हो) प्रयोग में लाई जा सकती हैं। फसल चुनाव करते समय ध्यान रखना चाहिए कि उसमें चीनी की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

5. चारे की कटाई— साईलेज बनाने के लिए फसल की कटाई उस समय करनी चाहिए जब उसमें दाने (बीज) बनने आरम्भ हो जावें। पौधा न तो अधिक हरा हो न ही अधिक सूखा होना चाहिए। पौधे अधिक हरे होने पर उनमें पानी की मात्रा अधिक होती है जिस कारण साईलेज खराब हो जाता है और अधिक सूखा चारा अधिक स्थान घेरता है।

फसल की कटाई करने के बाद पौधे के 1 से $1\frac{1}{2}$ सेमी. लम्बे टुकड़े चारा काटने की मशीन से काट लेते हैं।

6. साईलो भराई करना—साईलो में चारा भरने से पूर्व साईलो की दीवारों को देख लेना चाहिए कि उनमें नमी तो नही है।

5. पशुओं की पाचन शक्ति को बढ़ाता है।

6. पशुओं को साईलेज खिलाया जावे तो दान की मात्रा कम की जा सकती है।

7. साईलेज खाने में बहुत ही स्वादिष्ट होता है। इसलिए पशु इसे अच्छी तरह से खाते हैं।

8. साईलेज खिलाने से दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होती है।

9. साईलेज मे समस्त पोषक तत्त्व पाए जाते हैं।

साईलेज बनाना :

साईलेज बनाने का कार्य अमेरिका में सन् 1875 में आरम्भ हुआ, परन्तु 1910 में इसका प्रचलन बढ़ गया। साईलेज बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के गड्ढे तैयार किए जाते हैं जिन्हें साईलो (Silo) कहते हैं।

साईलो बनाने से पूर्व उसके आकार, प्रकार एवं बनावट की जानकारी कर लेना आवश्यक है।

1. साईलो का आकार–पशुओं की संख्या पर निर्भर करता है। साईलो बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि साईलो का अधिक से अधिक व्यास 4–4½मीटर यदि साईलो गड्ढे नुमा बनाए हों तो उनकी गहराई 2½ मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए। लम्बाई एवं चौड़ाई पशु संख्या अनुसार रख सकते हैं।

2. साईलो के प्रकार—साईलो तीन प्रकार के बनाये जाते है—

(अ) गर्त साईलो

(ब) खाईदार साईलो

(स) बुर्ज साईलो

(अ) गर्त साईलो—भूमि मे इच्छित नाप के गोल या चोकोर गड्ढे बना लिए जाते है। गोल गड्ढा चोकोर गड्ढे की अपेक्षा अच्छा रहता है क्योंकि गोल गड्ढे में वायु प्रवेश से बचाव हो सकता है तथा अच्छी प्रकार से बन्द भी किया जा सकता है। साधारणतया गड्ढा 2 मीटर व्यास का 3 मीटर गहराई वाला बनाया जाता है। यदि अधिक साईलेज बनाना हो तो गड्ढे को संख्या या आकार बढ़ा देना चाहिए। गड्ढे के अन्दर दिवारों पर प्लास्टर कर देना चाहिए ताकि नामी साईलेज तक न पहुंचे।

(ब) खाईदार साईलो—इस विधि में गड्ढों के स्थान पर लम्बी खाई बना देते हैं। खाई की गहराई 2½ मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए इसकी चौड़ाई ऊपर से 2½ मीटर तथा नीचे से 2 मीटर होनी चाहिए जिसमें हरे चारे को भरने तथा निकालने मे सुविधा रहती है। खाई की लम्बाई आवश्यकतानुसार रख सकते हैं इस विधि से साईलो

बनाने का मुख्य लाभ है कि हरा चारा साईलों में दबा दबा कर भरा जा सकता है। साईलो के अन्दर की दीवारें व छत पक्की होनी चाहिए। छत ढ़ालू हो तो अच्छा रहता है। वर्षा वाले स्थानों पर या ऐसे स्थान जहां पानी भरता रहता है। गर्तसाईलो या खाईदार साईलो उपयुक्त नही रहते हैं।

(ख) बुर्ज साईलो (Tower Silo)—जहां पर पहली प्रकार के साईलो सफल नही होते है। वहां पर बुर्ज साईलो बनाए जाते हैं। बुर्ज साईलो गोलाकार, जमीन के ऊपर, ऊंचे टावर के आकार के बनाए जाते हैं। साधारणतया इनका व्यास 3 मीटर तथा ऊंचाई 9 मीटर रखी जाती है। इस प्रकार के बुर्ज मे 25 टन चारा रखा जा सकता है। इस प्रकार के साईलो सबसे उपयुक्त रहते हैं।

3. साईलो बनाते समय ध्यान देने योग्य बातें—1 साईलो मजबूत बनाना चाहिए।

2. साईलो बनाने में लगाया गया सामान ऐसा हो जो साईलेज के गुणों को प्रभावित न करे।

3. साईलो का फर्श पक्का कंकरीट का बना हो।

4. साईलो के छत अवश्य लगानी चाहिए।

5. साईलो में हवा न आए जावे।

4. साईलेज बनाने के लिए उपयुक्त फसलें—हर प्रकार के हरे चारे का साईलेज बनाया जा सकता है परन्तु साईलेज बनाने के लिए दाल वाली एवं बिना दाल वाली फसलों को मिलाकर प्रयोग में लाना चाहिए। सबसे अच्छा साईलेज अलफा घास अलफा और सोयाबीन मिलाकर बनाया जाता है। साईलेज बनाने के लिए मक्का, बाजरा, ज्वार, उर्द एवं दूसरी दाल वाली फसलें, गन्ने के ऊपरी भाग तथा अन्य खरपतवार एवं लताएँ (जो पशु खाता हो) प्रयोग में लाई जा सकती हैं। फसल चुनाव करते समय ध्यान रखना चाहिए कि उसमें चीनी की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

5. चारे की कटाई— साईलेज बनाने के लिए फसल की कटाई उस समय करनी चाहिए जब उसमें दाने (बीज) बनने आरम्भ हो जावें। पौधा न तो अधिक हरा हो न ही अधिक सूखा होना चाहिए। पौधे अधिक हरे होने पर उनमें पानी की मात्रा अधिक होती है जिस कारण साईलेज खराब हो जाता है और अधिक सूखा चारा अधिक स्थान घेरता है।

फसल की कटाई करने के बाद पौधे के 1 से 1½ सेमी. लम्बे टुकड़े चारा काटने की मशीन से काट लेते हैं।

6. साईलो भराई करना—साईलो में चारा भरने से पूर्व साईलो की दीवारों को देख लेना चाहिए कि उनमें नमी तो नही है।

साईलो मे सबसे नीचे धान या गेहूँ का पुग्राल बिछा देना चाहिए। इसके साथ ही कुछ पुग्राल दीवारो के साथ भी लगा देना चाहिए। इसके उपरान्त हरे चारे को 5 से 10 से मी. मोटी परतों के रूप में बिछा कर दबाते रहते हैं। यदि गर्त साईलो बने हैं तो उन्हे भरकर 30 से.मी. मोटी मिट्टी की परत से ढ़क कर लीप देते है ताकि वर्षा का पानी अन्दर न जाने पावे। बुर्ज साईलो को भी भर कर ऊपर से अच्छी तरह बन्द कर देना चाहिए जिससे हवा एवं जल उसमें न जावे। आजकल बाजार मे साईलो बन्द करने के लिए साईलो केप्स भी उपलब्ध है जो प्लास्टिक की बनी होती हैं।

7. साईलो खोलना—जब हरे चारे की आवश्यकता होती है तब साईलो को खोलना चाहिए परन्तु साईलो बन्द करने के लिए कम से कम 15 दिन बाद ही खोलना उपयुक्त रहता है। यदि साईलो लगभग 3 माह बन्द रहे तो साईलेज का स्वाद अच्छा बन जाता है। साईलो खोलने के बाद चारे की पूर्ण एक पर्त निकाल लेनी चाहिए क्योकि आधी परत निकालने पर उसमे हवा का प्रवेश होने से उसका रग काला व स्वाद खराब हो जाता है। कभी-कभी फफूंदी भी लग जाती है जिसमे पशु खाते नही।

8. विभिन्न पशुओं के लिए साईलेज की मात्रा का निर्धारण—स्वस्थ पशुओ को साईलेज निम्न मात्रा मे खिलाया जा सकता है—

(1) भैंस—20 से 22 कि.ग्रा. प्रतिदिन
(2) गाय—16 से 18 „ „
(3) बैल—9 से 13 „ „
(4) बछड़े - 500 ग्रा. से 2 किग्रा. „
(5) मुर्गियाँ—50 से 100 ग्रा. „

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. साईलेज क्या है? इससे क्या-क्या लाभ होता है?
2. साईलेज बनाने की क्रिया का सविस्तार वर्णन करो।
3. साईलो कितने प्रकार का होता है? साईलेज बनाने के लिए फसलो में क्या-क्या गुण होना आवश्यक है?

अध्याय-1

सामान्य परिचय

भारत में फलों एवं सब्जियों का महत्त्व

भारत एक कृषि प्रधान देश होने के कारण इसका उत्थान और पतन कृषि पर निर्भर करता है। विभाजन के पूर्व हम अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते थे, लेकिन विभाजन होने से भारत पर एकदम ही अधिक जनसंख्या के भरण-पोषण का भार आ पड़ा। भारत अपनी प्रमुख आवश्यकताओं में से एक महत्वपूर्ण खाद्य समस्या को पूर्ण न कर सका। इस समस्या को सुलझाने के लिए देश में कई प्रकार की योजनायें चलाई गई और आज भी सफलतापूर्वक चलाई जा रही हैं।

कृषि साधारण रूप से एक ऐसा शब्द है जिसके अन्तर्गत बहुत से अन्य विषय तथा कार्य आ जाते है और जो आज के इस विज्ञान के युग में पूर्ण विषय कहलाने योग्य है, उनमें से उद्योग विज्ञान भी एक है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए मनुष्य के सन्तुलित भोजन में फलों का होना आवश्यक है। फलों एवं सब्जियों में अधिक पोषण तत्त्व पाये जाते हैं, जैसे विटामिन, लवण आदि।

राजस्थान शाकाहारियों का प्रदेश होने के कारण यहां के लोगों के लिए फलों एवं सब्जियों का होना आवश्यक है, परन्तु खेद की बात है कि राजस्थान में फलों एवं सब्जियों की खेती बहुत कम क्षेत्रफल में की जाती है। अतः इस ओर अधिक से अधिक ध्यान देकर फलों एवं सब्जियों की खेती का क्षेत्रफल अधिक बढाना चाहिए।

राजस्थान की भूमि और जलवायु अनेक प्रकार की होने के कारण यहां पर भिन्न-भिन्न प्रकार के फल एवं सब्जियां उगाई जा सकती हैं। जैसे ठंडी जलवायु के फल माउन्ट आबू और कुम्भलगढ़ की पहाड़ियों पर सफलतापूर्वक उगाये जा सकते हैं। आम—कोटा, भरतपुर, बांसवाड़ा और उदयपुर जिलों में खूब मिलता है। अनार—जोधपुर, बूंदी की, कटहल कोटा को, जामुन उदयपुर की, मौसमी, माल्टा, संतरा—श्री गंगानगर के, बेर—चौमूं (जयपुर) के प्रसिद्ध होते हैं। पपीता और नीबू आजकल लगभग पूरे राज्य में मिल जाते हैं।

कृषि विभाग एवं विकास विभाग के प्रयत्नों से लोगों का ध्यान इस ओर गया है। उनमें फलों एवं सब्जियों के प्रति प्रेम भाव उत्पन्न हुए हैं और इनके महत्त्व को समझने लगे हैं। राजस्थान में सिंचाई के साधन बढ़ने के साथ-साथ फलों एवं सब्जियों की खेती का क्षेत्रफल भी बढ़ रहा है। फलों एवं सब्जियों के पौधे तैयार करने के लिए निम्नलिखित स्थानों में सरकार द्वारा नर्सरी खोली गई, ताकि फलों एवं सब्जियों की खेती में आशातीत सफलता प्राप्त की जा सके—

(1) दुर्गापुरा (जयपुर)	(2) कोटा
(3) सादड़ी (पाली)	(4) माउण्ट आबू
(5) श्री गंगानगर	(6) कुम्भलगढ़ (उदयपुर)
(7) चोपासनी (जोधपुर)	(8) बूंदी
(9) सवाई माधोपुर	(10) झालावाड़
(11) चित्तौड़	(12) भीलवाड़ा
(13) अजमेर	(14) डूंगरपुर

इसके अतिरिक्त सब्जियों के बीज प्रमाण-केन्द्र स्थापित किये गये हैं। अच्छे किस्म के पौधों का वितरण, सब्जी एवं फलों की खेती के बारे में तकनीकी सलाह भी सरकार की तरफ से दी जा रही है।

फलों एवं तरकारियों का मानव आहार में महत्त्व

प्राचीन काल में भारतीय भोजन में प्रमुख स्थान अनाज और दालों को दिया जाता था, बाद में क्रमशः दूध और उससे बने पदार्थों पर, पश्चात् कहीं सब्जी और फलों का नाम मात्र को नम्बर आता था। परन्तु सभ्यता के बढ़ते हुए चरण ने चारों ओर प्रभाव दिखाते हुए भारतीयों के भोजन में परिवर्तन ला दिया। पिछले समय में जब फल और सब्जी खाना विलासिता की वस्तु समझा जाता था वहाँ अब फल और सब्जियाँ साधारण परिवार के आहार का एक आवश्यक अंग बन गई है।

यह निश्चित है कि मनुष्य का जीवन केवल कृषि पर ही निर्भर है और उसके भोजन में कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन्स, वसा, खनिज पदार्थ, विटामिन्स का उचित मात्रा में होना बहुत आवश्यक है। बिना इसके भोजन संतुलित भोजन नहीं कहलाता। सतुलित भोजन में किसी आवश्यक तत्त्व का अभाव होना रोग का कारण होता है, इसलिए संतुलित भोजन का होना हमारे स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक है और संतुलित भोजन में फलों एवं सब्जियों का योगदान महत्त्व रखता है। इनमें कई प्रकार के विटामिन पाये जाते हैं, जो अलग-अलग रोग को दूर करके स्वास्थ्य बनाने में योग देते है।

स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से आहार की विशेषताएँ भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि आहार की मात्रा। जन समूह की अस्वस्थता, भारत में एक बड़ी सीमा तक दोषयुक्त एवं पोषणहीन भोजन के कारण हैं। भारतीय भोजन में आहारित पोषक तत्त्वों की दीर्घकालिक अपर्याप्तता कुछ विशेष बीमारियों का कारण बनी रहती है जिन्हें डेफिशिएन्सी डिजीजेज के नाम से पुकारा जाता है, जैसे—बेरी-बेरी तथा सूखा रोग आदि। पोषक तत्त्वों की कमी मनुष्य की कार्य-क्षमता को भी कम कर देती हैं।

भोजन के पोषक तत्त्व—भोजन के पोषक तत्त्वों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जाता है—

(1) कार्बोहाइड्रेट—ये शरीर को ताप तथा शक्ति देते है। अन्न और कन्द शक्ति के सस्ते स्रोत हैं। इसके अभाव से दुर्बलता तथा शक्तिहीनता आती है।

साधारण रूप से हमारे भोजन में इसकी कमी नहीं होती है। फल हरी तरकारियाँ अंकुरित अनाज से इसकी पूर्ति हो सकती है।

(.) प्रोटीन—यह भोजन का एक अनिवार्य अंग है जो शरीर की वृद्धि तथा शरीर निर्माण और कोशिकाओं की टूट-फूट की मरम्मत के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त शरीर में विभिन्न प्रकार के हारमोन्स, पाचक रसों तथा अन्य तरल पदार्थों के निर्माण में भी प्रोटीन की आवश्यकता पड़ती है। इसके अभाव में शारीरिक वृद्धि में कमी, दुर्बलता, प्रजनन शक्ति में कमी, रक्त की कमी, हाथ पैरों में सूजन, मुँह में एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध आदि रोग हो जाते हैं। प्रोटीन की आवश्यकता दालों, हरी तरकारियों, सोयाबीन, तिल, मूँगफली, मेवे, मोटे अनाज आदि से पूरी की जा सकती है।

(3) वसा—इससे भी शक्ति तथा ताप प्राप्त होता है। ये कम मात्रा में होने पर भी अधिक शक्ति देते है। इनकी कमी से साधारण दुर्बलता आ जाती है। वसा की पूर्ति सभी वानस्पतिक तेल, सोयाबीन, बादाम, अखरोट आदि से कर सकते है। हमारे भोजन द्वारा प्राप्त कुल शक्ति का कम से कम एक प्रतिशत वसा से प्राप्त होना चाहिए।

(4) खनिज पदार्थ—शारीरिक रक्षा, हड्डियां, दांतो की मजबूती रक्त व नाना प्रकार के रसों के बनाने में खनिज पदार्थों का उपयोग होता है। खनिज पदार्थ में मुख्यतः फास्फोरस, लोहा, कैलसियम, आयोडीन आदि प्रमुख है। शरीर के आवश्यक कार्य, जैसे हृदय की धड़कन तथा मांस पेशियों की पुष्टि को नियमित रूप से चलाने में सहायता मिलती है। इसके अभाव में शरीर विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जाता है। कुछ खनिज पदार्थ निम्न है—

कैलसियम—इसकी कमी से बच्चों में सूखा रोग तथा औरतों में ओस्टियों-मलेशिया नामक रोग हो जाता है। कैलसियम की पूर्ति सोयाबीन, शलजम, लाल मिर्च, चौलाई, खरबूजा, अंजीर, संतरा, नीबू, टमाटर, फूलगोभी, गाजर, प्याज, मटर आदि से की जा सकती है।

लोहा—यह रक्त के लाल कणों का आवश्यक अंग है। इसकी कमी से गर्भिणी के शरीर में अनियमितता आ जाती है। शरीर अस्वस्थ रहता है, रक्त की कमी हो जाती है। लोहा फलों में उतनी ही मात्रा में पाया जाता है जितनी मात्रा में कैलसियम। नीबू, संतरा, टमाटर, खजूर आदि में लोहा अन्य फलों की अपेक्षा अधिक मात्रा में पाया जाता है। लोहा हरी सब्जियों में भी विशेष रूप हरी से पत्ती वाले साग, जैसे—शलजम, चौलाई, मेथी, पुदीना, पालक, मूली, सरसों का साग, बथुआ आदि में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

फास्फोरस—कैलसियम के योग से यह हड्डियों तथा दांतों के निर्माण में सहायक है। इसकी कमी से मांसपेशियों, स्नायुओं ग्रन्थियों तथा रक्त का कार्य नियमित रूप से नहीं हो पाता है। इसके लिये सूखी दाल, सेम के बीज, टमाटर, आलू, गाजर का सेवन करना चाहिये। फलों में अपेक्षाकृत फास्फोरस कम ही मिल पाता है।

आयोडीन—इसके अभाव में घेंघा नामक रोग हो जाता है। इसकी कमी की पूर्ति प्याज, लोंग तथा अदरक आदि से की जा सकती है।

शरीर के अवयवों के निर्माण एवं विकास के लिए उनके नियमित संचालन के लिए थोड़ी-थोड़ी मात्रा में कुछ अन्य खनिज पदार्थ, जैसे—मैग्नीशियम, तांबा, सल्फर, पोटेशियम आदि की भी आवश्यकता पड़ती है। ये सभी तत्त्व फलों एवं तरकारियों से प्राप्त हो जाते हैं।

(5) विटामिन्स—स्वास्थ्य रक्षा के दृष्टिकोण से इनका बड़ा महत्त्व है। ये कई प्रकार के होते हैं। इनके अभाव में स्वस्थ जीवन असम्भव-सा है। कुछ विटामिन्स का वर्णन इस प्रकार है—

तालिका सं. 43

क्र. सं.	विटामिन	महत्त्व एवं उपयोगिता	अभाव में होने वाली बीमारियाँ	साधन
1	'ए'	हड्डियों तथा दांतों के विकास, श्वसन अंग के सुचारु रूप से कार्य करने एवं शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक है।	रतौंधी, अन्य प्रमुख नेत्र रोग, बीमारी से बचने की क्षमता में कमी।	(केरोटीन के रूप में) गाजर, पपीता, आम, पके हुए फल एवं हरी तरकारियाँ।
2	'बी'	पाचक रसों का एक अवयव है। कार्बोहाइड्रेट से शक्ति प्राप्त करने में सहायक है। वृद्धि एवं प्रजनन के लिए अनिवार्य। भूख को बढ़ाती है नाड़ी तन्त्रों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। ये दीर्घायु करते हैं।	बेरीबेरी रोग हो जाता है। भार में कमी एवं ताप गिर जाता है। सिर-दर्द, अपचन, अस्थिरता, आँखों में जलन, रक्त की कमी, आदि रोग हो जाते हैं।	खमीर, सोयाबीन, सन्तरा, नारंगी, पात गोभी, मटर, नासपती सेम, केला, सेव, गाजर, बैंगन, प्याज, टमाटर, चुकन्दर आदि।

क्र. सं.	विटामिन	महत्त्व एवं उपयोगिता	अभाव में होने वाली बीमारियाँ	साधन
3	'सी'	रक्तवर्धक है, मसूड़ों, दाँतों तथा नरम हड्डियों की रक्षा करता है। हृदय, स्वास्थ्य विकास आदि में सहायक है।	स्कर्वी रोग, रक्त की कमी, मसूड़ों तथा दाँतों की दुर्बलता तथा घाव आदि देर से भरते हैं।	नीबू जाति के फल, गाजर, आलू, अमरूद, मटर पातगोभी, केला, आवला, पपीता, हरी तरकारियाँ, टमाटर, चुकन्दर आदि।
4	'डी'	हड्डियों तथा दाँतों के निर्माण तथा उनको स्वस्थ रखने में सहायक है।	सूखा रोग, ओस्टोमलेसिया रोग हो जाता है।	सूर्य की धूप से एवं वनस्पति जगत से भी कुछ मात्रा में उपलब्ध होता है।
5	'ई'	प्रजनन में सहायक।	प्रजनन शक्ति कमजोर हो जाती है। गर्भपात होता है।	पातगोभी, प्याज, वानस्पतिक तेल, मटर, अखुआ आये हुये बीज एवं हरी तरकारियाँ।
6	'जी'	बच्चों की शारीरिक वृद्धि एवं रोग अवरोधकता में उपयोगी।	पेलग्रा रोग होता।	केला, सेब, नारंगी, नासपाती, मटर, टमाटर, सतरा तथा हरी सब्जियाँ जैसे शलजम, चुकन्दर आदि।
7	'के'	रक्त जमाने में सहायता करता है, घाव जल्दी भरता है।	रक्त के थक्के नहीं बनते।	अखुआ खाए हुए बीज तथा हरी तरकारियाँ।

6. अम्ल—फलों एवं तरकारियों में कई प्रकार के अम्ल भी पाये जाते हैं, जो पाचन क्रिया में सहायक होते हैं। अम्ल क... मात्रा में सभी फलों में पाये जाते है। अम्लों से ... स्वाद ए... ...ो जाती है। इनसे पेक्टिन आदि भी मिलती ... आती ... े सहायक होती ... है। साथ ही शरीर से मल ... त... से रफेज अथवा वल्क भी मि... हुये आंतों की मांसपेशियों को ... में सहायक ...

फलों एवं तरकारियों से लाभ

फलों तथा तरकारियों के उपयोग से उपर्युक्त पोषक वर्गों की प्राप्ति के अतिरिक्त निम्न लाभ भी होते हैं —

1. ये सुपाच्य होती हैं।
2. इनका उपयोग शरीर में जल की पर्याप्त मात्रा बनाए रखने में सहायक होता है। जिससे मूत्र-विसर्जन में सुगमता होती है।
3. औषधि के रूप में भी इनका प्रयोग होता है।
4. इनके सेवन से भूख बढ़ती है।
5. ये विटामिन एवं खनिज के अच्छे स्रोत हैं।
6. पाचन ठीक होता है, क्योंकि इनसे पाचक रसों के स्राव में वृद्धि होती है।
7. इनसे शरीर में अम्ल-क्षार संतुलन बना रहता है।
8. इनमे कार्बनिक अम्ल पाये जाते हैं।
9. रफेज या अम्ल की अधिक मात्रा होने से भोजन का परिमाण बढ़ जाता है जिससे आंतो की संकुचित क्रिया बढ़ती है, फलस्वरूप कब्जीयत नहीं होने पाती।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फलों और सब्जियों का मानव आहार में महत्त्व लिखो।
(से. 1975-78, हायर से. 1977)
2. संतुलित आहार में फलों एवं सब्जियो की उपयोगिता पर लेख लिखो।
3. फलो एवं तरकारियो से हमे क्या-क्या लाभ मिल सकते हैं ? लिखो।
4. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो—
   (i) कार्बोहाईड्रेट शरीर को·······तथा·······प्रदान करता है।
   (ii) हड्डियों तथा दांतों की मजबूती के लिए··········पदार्थ आवश्यक है।
   (iii) स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से··········का बड़ा महत्त्व है।

अध्याय-3

सब्जी फसलों का चुनाव एवं सस्य योजना

कार्य आरम्भ करने के पहले उस कार्य की पूर्व योजना बनाना और उसके अनुसार कार्य करना ही सफलता की कुंजी है।

अतः सब्जी उत्पादन के लिये उपयुक्त सब्जियों का चुनाव, चुनी गई सब्जियों के फसल-चक्र बनाना और फसल-चक्रों के आधार पर सस्य-योजना बनाना आवश्यक है।

(क) फसल-चक्र

निश्चित खेत में निश्चित अवधि में चयनित फसलों को हेर-फेर कर उगाना फसल-चक्र कहलाता है।

(ख) सस्य योजना

किसी निश्चित प्रक्षेत्र में निश्चित अवधि में निश्चित फसल-चक्रों को अपनाना उस प्रक्षेत्र की सस्य योजना कहलाता है।

(ग) सस्य योजना की आवश्यकता और उपयोगिता

सस्य योजना सोच विचार के बाद बनानी चाहिये। योजना में त्रुटि रह जाना हानि का कारण बन सकती है। सस्य योजना बनाने का महत्व निम्नलिखित बातों से प्रकट होता है।

(1) विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ प्राप्त होती है।

(2) सब्जी आवश्यकतानुसार निश्चित क्षेत्र में उगायी जाती है।

(3) मौसम के अनुसार परिवार व बाजार की मांग वाली सब्जियां सस्य योजना में सम्मिलित करते हैं।

(4) अधिक पौष्टिक, ताजी सब्जियाँ नियमित रूप से प्राप्त होती है।

(5) अच्छी सस्य योजना से व्यय में बचत तथा आय में वृद्धि होती है।

(6) अच्छी सस्य योजना से भूमि की उर्वरा शक्ति और भौतिक गुणों में सुधार होता है।

(घ) सब्जी फसलों के चुनाव को प्रभावित करने वाले कारक

1. भूमि की किस्म और जलवायु का प्रकार।

2. घर, समाज और बाजार की मांग आवश्यकता, बाजार की दूरी तथा परिवहन की सुविधा।

3. बीज, खाद, उर्वरक, कीट व रोगनाशी दवाओं की उपलब्धता।

4. श्रमिक तथा यातायात की सुलभता।

5. सब्जियों को ठीक रखे रहने की अवधि एवं अन्य उपलब्ध सुविधाएं।

6. सब्जियों की अन्य उपयोग सम्बन्धी सुविधाएं।

7. प्रति हेक्टर उपज तथा लाभ की संभावना।

सब्जियों की सस्य योजना बनाने के लिए फसलों का चुनाव करने के बाद फसल-चक्र बनाने की आवश्यकता होती है।

(ङ) फसल-चक्रों का अवधि के अनुसार वर्गीकरण

फसल-चक्र अवधि के आधार पर निम्न प्रकार के होते हैं—

1. एक वर्षीय फसल-चक्र—ऐसे फसल-चक्र एक वर्ष की अवधि में पूरे हो जाते है। इनमें दो से चार तक फसलें एक खेत में उगाई जा सकती है।

(1)	भिण्डी (जून—जुलाई)	आलू (सितम्बर—अक्टूबर)	प्याज (दिसम्बर—जनवरी)	
(2)	लोबिया (जून—जुलाई)	आलू (दिसम्बर)	मूली (दिसम्बर)	प्याज (जनवरी—फरवरी)

2. द्वि-वर्षीय फसल-चक्र—ये फसल-चक्र दो वर्ष की अवधि में पूरे किए जाते हैं।

(1)	भिण्डी—आलू—प्याज ←—प्रथम वर्ष—→	खीरा—फूलगोभी—मूली ←—द्वितीय वर्ष—→
(2)	टिण्डा—मटर ←—प्रथम वर्ष—→	टमाटर—आलू—प्याज ←—द्वितीय वर्ष—→

इनके अतिरिक्त त्रि-वर्षीय फसल-चक्र भी बनाए जा सकते हैं।

(च) फसल चक्र बनाने के सिद्धान्त

1. गहरी जड़ वाली फसल के पश्चात् उथली जड़ वाली फसल को बोया जाता है। जैसे—आलू के बाद प्याज।

2. अधिक खाद चाहने वाली फसल के बाद कम खाद चाहने वाली फसल वोयी जाती है। जैसे—पत्ता गोभी के बाद पालक।
3. अधिक पानी चाहने वाली फसल के बाद कम पानी चाहने वाली फसल वोयी जाती है। जैसे—प्याज के बाद तुराई।
4. फलीदार फसल के बाद वेफलीदार फसल वोयी जाती है। जैसे-लोबिया के बाद फूलगोभी।
5. अधिक निराई-गुडाई चाहने वाली फसल के बाद कम निराई-गुड़ाई चाहने वाली फसल वोयी जाती है। जैसे—लहसुन के बाद बैंगन।
6. एक ही कुल की फसलो को लगातार एक ही क्यारी में नही उगाना चाहिए। जैसे-मिर्च, बैंगन, टमाटर आदि।

(छ) सस्य योजना को प्रभावित करने वाले कारक

1. **उपलब्ध भूमि का क्षेत्रफल एवं किस्म**—क्षेत्रफल के अनुसार क्यारियों/खेतों का आकार एवं संख्या तय की जा सकती है। भूमि की किस्म सब्जी की किस्मो के चुनाव को प्रभावित करती है।
2. **जलवायु**—सघन सस्य योजना सब्जी उत्पादन मे सफलतापूर्वक अपनायी जा सकती है। मौसम और जलवायु फसल-चक्र बनाने में प्रभाव डालते है। वेमौसम की सब्जियां उगाने के लिये वेजीटेबिल फौसिंग विधि का प्रयोग भी किया जा सकता है।
3. **खाद एवं सिंचाई की सुविधा**—खाद एवं पानी सब्जी उत्पादन के महत्वपूर्ण अंग है। पर्याप्त खाद एवं पानी की व्यवस्था होने पर सघन सस्य योजना वनायी जा सकती है।
4. **परिवार/समाज की रूचि एवं आवश्यकता**—अच्छी सस्य योजना में परिवार/समाज की रुचि, बाजार की मांग को भी ध्यान मे रखना आवश्यक है।
5. **पूर्ति एवं उपलब्ध सुविधाओं का प्रभाव**—सस्य योजना में ऐसी सब्जियां सम्मिलित करना लाभप्रद नही है। जो बाजार में सुविधापूर्वक सस्ती दरो पर उपलब्ध हो।

उपरोक्त वातों को ध्यान मे रखकर एक अच्छी सब्जी (चित्र क. 1) सस्य योजना बनायी जा सकती है। आगे उदाहरण के लिए एक गृह वाटिका को सब्जी सस्य योजना बनायी गयी है। इस गृह वाटिका में 12 क्यारियों की कल्पना है। प्रत्येक क्यारी का क्षेत्रफल 9.0 वर्ग मीटर है। और यह वाटिका 5-6 सदस्यों के परिवार के लिये सब्जी प्रदान कर सकती है। इसके लिये सस्य योजना वनाते समय निम्न विधि अपनायी जा सकती है।

1. फसलों का चुनाव—आलू, फूलगोभी, मटर, टमाटर, प्याज, भिण्डी, बैंगन, मूली, फराशबीन, सेम, गांठगोभी, पातगोभी, शिमला मिर्च, चौलाई, लोबिया, शलगम, ग्वार, सरसों, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, टिण्डा, लौकी, गाजर, अरवी, पालक, धनियां और मिर्च ।

2. फसल-चक्र बनाना - उपरोक्त चुनी गयी फसलों से निम्नलिखित फसल-चक्र निर्मित किये गये है । इन फसल-चक्रों में फसल की अवधि भी दर्शाई गयी है । ये सभी सब्जी सस्य चक्र एक वर्षीय है जिनको क्यारी/खेतों में प्रदेल बदल कर अपनाया जा सकता है ।

1.	शिमला मिर्च (जून–अगस्त)	आलू (सित.–नव.)	आलू (नव.–जन.)	प्याज (जन.–मई)
2.	अगेती फूलगोभी (अगस्त–अक्टू.)	मटर (अक्टू.–जन.)	भिण्डी (फर.–जून)	
3.	बैंगन (अग.–दिस.)	मूली (फली हेतु) (दिस.–फर.)	लोबिया (मार्च–जून)	
4.	फूलगोभी मुख्य (अक्टू.–जन.)	टमाटर (जन.–मई)	चौलाई (जुलाई–सित.	
5.	फराशबीन (सित.–दिस.)	गांठ गोभी (दिस.–फर.)	ग्वार (मार्च–जून)	
6.	गाजर (अक्टू.–दिस.)	खरबूजा (जन.–जून)	शलगम (अग.–सित.)	
7.	पालक + मिर्च (जून–जन.)	मूली (फर.–मार्च)	ककड़ी (मार्च–जून)	
8.	सरसों (अक्टू.–नव.)	मेथी (नव.–फर.)	सेम (मार्च–सित.)	
9.	अरवी (मार्च–जुलाई)	फूल गोभी (अग.–नव.)	पातगोभी (दिस.–मार्च)	
10.	लौकी (जून–अक्टू.)	धनिया+मिर्च (अक्टू.–फर.)	खीरा (फर.–जून)	
11.	भिण्डी (फर.–जून)	टमाटर (जुलाई–नव.)	आलू (दिस.–फर.)	
12.	टिण्डा) (जुन.–सित.)	मटर (सित.–दिस.)	प्याज (जन.–मई)	

ऊपर बनायी गयी बारह क्यारी वाली सस्य योजना के किसी भी फसल-चक्र को किसी भी क्यारी में अपनाया जा सकता है यह अच्छा होगा यदि सहारा चाहने वाली सब्जियाँ जैसे–सेम, ककड़ी आदि को वाटिका के किनारे-किनारे वाली क्यारियों में लगाया जाय जिससे उनको झाड़-झंखाड़ के ऊपर चढ़ाने में सुविधा रहे।

क्षेत्र के अनुसार सब्जी-सारणी

ऊपर बनायी गयी सस्य योजना के अनुसार हम देखते हैं कि विभिन्न सब्जियों को बोने के लिये निम्न क्षेत्रफल मिलता है। इस प्रकार इस फसल योजना में आलू तथा फूल गोभी को ज्यादा क्षेत्र में बोने का प्रावधान है क्योंकि इनकी खपत ज्यादा है तथा यह महंगी भी होती है।

क्रम संख्या	क्षेत्रफल वर्ग मीटर	फसलों के नाम
1.	27 वर्ग मीटर	आलू-फूल गोभी।
2.	18 वर्ग मीटर	प्याज, भिण्डी, मटर, टमाटर, मूली।
3.	9 वर्ग मीटर	बैंगन, अरबी, गाजर, पातगोभी–गांठगोभी, मेथी, सरसों, चौलाई, शलगम, मिर्च, शिमला, लोबिया, सेम, फरासबीन, ग्वार, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, लौकी, टिण्डा, मिर्च।
4.	6 वर्ग मीटर	धनियाँ, मिर्च, पालक।

अभ्यासार्थ-प्रश्न

1. निम्न की परिभाषा लिखिए—
   (अ) फसल चक्र।
   (ब) सस्य योजना।
2. फसल चक्र अवधि के अनुसार कौन-कौन प्रकार के होते हैं ?
3. फसल चक्रों का उदाहरण सहित वर्गीकरण लिखिए।
4. सस्य योजना को कौन-कौनसी बातें प्रभावित करती हैं ?
5. एक परिवार के पास 6 × 10 मीटर स्थान सब्जी वाटिका के लिए उपलब्ध है और पानी का साधन हाथ के नल के रूप में उपलब्ध है। परिवार के लिए प्रमुख सब्जियों की एक सस्य योजना बनाएँ।
6. उपरोक्त सस्य योजना के लिए चुनी गयी सब्जी फसलों का क्षेत्रफल लिखिए।

बीजों का चयन

सब्जियों का उत्पादन बढ़ाने हेतु कृषि की अन्य क्रियाओं के साथ-साथ उत्तम बीजों का चयन करना एक विशेष महत्व रखता है। भूमि, खाद, उर्वरक, सिंचाई एवं पादप रक्षण के सभी तरीकों का प्रयोग करने पर भी उत्तम बीजों के अभाव में उत्पादन बढ़ाना सम्भव नहीं है। देश की हरित क्रान्ति के लिए उन्नत बीजों की भूमिका से सभी परिचित है। सब्जियां अधिक उपज देने वाली, स्वादिष्ट और पौष्टिक तब होती हैं, जब तक उनके लिये उत्तम बीजों का उपयोग किया हो। इसलिए ऐसे उत्तम बीजों का चयन आवश्यक है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उत्तम बीज का तात्पर्य अच्छे, स्वस्थ और उन्नत बीज से है।

(क) उत्तम बीजों के लक्षण

1. बीज पूर्ण विकसित, परिपक्व, क्षतिरहित और भारी हो।
2. बीज शुद्ध हो जिसमें अन्य जातियों या खरपतवारों के बीजों का मिश्रण न हो।
3. बीजों में नमी की मात्रा लगभग 10 प्रतिशत से अधिक न हो।
4. बीजों की अंकुरण क्षमता सामान्यतः 70 प्रतिशत से अधिक हो।
5. बीज में किसी प्रकार की बीमारी एवं कीट न लगे हों।

(ख) उत्तम बीज प्राप्त करना

1. स्वयं तैयार करके

अच्छे कृषक अपने खेतो में शुद्ध जाति के एवं बड़े आकार के रोग रहित फलों को पकने हेतु पौधों पर ही छोड़ देते हैं तथा पूर्ण पकने पर उन्हें तोड़ कर बीज निकाल लेते हैं। उन्हें सुखाने के बाद साफ सूखे बन्द मुँह वाले बर्तनों में भर संग्रह कर लेते हैं। इस प्रकार लौकी, तुरई, टिण्डा, भिण्डी, मिर्च, टमाटर आदि के बीजों को स्वयं तैयार कर लेते है। किन्तु इसके लिये शुरुआत में अच्छी किस्म का बीज विश्वसनीय विक्रेता से एक बार खरीदना जरूरी होता है।

2. खरीदकर

बीज को देखकर उसकी किस्म एवं गुणों की जानकारी नहीं की जा सकती, अतः बीज खरीदते समय किसी विश्वसनीय

अथवा राष्ट्रीय बीज निगम या राज्य बीज निगम से ही खरीदना चाहिए। राजकीय फार्म, कृषि विश्वविद्यालय, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान से बीज खरीदे जा सकते हैं। इन स्थानों से उत्पादित बीज शुद्ध जाति के, स्वच्छ व प्रमाणित होते है जिनकी समस्त जानकारी (शुद्धता, स्वच्छता, अंकुरण क्षमता व उपचार) बीज के साथ-साथ प्राप्त होती है। इन निगमों की शाखाएं देश के विभिन्न स्थानों में हैं। (परिशिष्ट IX देखिये)

3. विश्वसनीय बीज उत्पादकों से

कुछ निजी बीज उत्पादक व्यवसायिक स्तर पर बीज उत्पादन कर रहे हैं। इन उत्पादकों से बीज प्राप्त किये जा सकते हैं, जिनके भी पते परिशिष्ट IX में दिये गये हैं।

(ग) अंकुरण क्षमता ज्ञात करना

किसी काच (पेट्री डिश) या चीनी मिट्टी की किनारेदार प्लेट में स्याही-सोख कागज रखकर उसे पानी से गीला कर लिया जाता है, तथा बीजों को गिनकर उन्हें प्लेट मे रखकर ऊपर से ढक देते है और प्लेट के कागज को गीला रखते है। कुछ दिनों बाद अंकुरित बीजों को गिनकर उगने का प्रतिशत निम्न सूत्र से ज्ञात कर लेते हैं।

$$\text{प्रतिशत अंकुरण} = \frac{\text{अंकुरित बीजों की संख्या}}{\text{बोए गए बीजों की संख्या}} \times 100$$

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उत्तम बीज की क्या विशेषताएं हैं?
2. प्रमाणित बीज प्राप्त करने के स्रोत क्या-क्या है?
3. उत्तम बीज की अंकुरण क्षमता से क्या तात्पर्य है?
4. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए—
   1. उत्तम बीज में......
   2. बीजोपचार के लिए ...... है।
5. उत्तम बीजों के महत्व को संक्षिप्त में लिखिये।

अध्याय-5

पौध घर तैयार करना और प्रतिरोपण

कई सब्जियों जैसे कि टमाटर, बैंगन, गोभी आदि की रोप पौध घर में तैयार की जाती हैं। और उन पौधों को खेतों में लगाया जाता है। पौध घर वह स्थान है जहां कीमती व छोटे बीज वाली फसलों के बीज बोकर पौध तैयार करते हैं। इन फसलों की विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। पौध घर में बीजों का अंकुरण अच्छा एवं अधिक होता है। पौध की देखभाल जैसे खाद व उर्वरक छिड़कना, बीज बोना, सिंचाई, निराई, दवाओं का छिड़काव आदि सुविधा से किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अधिक वर्षा लू, व कीटों के प्रकोप को भी आसानी से नियन्त्रित किया जा सकता है। पौध तैयार करने में कम भूमि की आवश्यकता होती है जिससे बाकी बचे खेतों की तैयारी करने के लिये अधिक अवसर मिल जाता है।

(क) पौध घर तैयार करने की विधि

पौध घर तैयार करने में मुख्य रूप से निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखते हैं।

1. पौध घर के लिये उपजाऊ जीवांश युक्त, तथा बलुई दोमट मिट्टी होनी चाहिए।
2. भूमि का धरातल ऊँचा हो, तथा सिंचाई के साधन पास हो।
3. पौध घर ऐसे स्थान पर हो जहां सूर्य की तेज रोशनी न पड़े।
4. पौध घर में विभिन्न प्रकार की फसलों के लिए अलग-अलग बीज शय्या तैयार करते है।
5. बीज शय्या का क्षेत्रफल अलग-अलग फसलों पर निर्भर करता है। प्रायः रोपे जाने वाले क्षेत्रफल का लगभग 1/80 भाग पौध घर के लिये प्रर्याप्त होता है। किन्तु एक हैक्टर में रोपाई के लिए कुछ शाकीय फसलों के लिये पौध घर का क्षेत्रफल निम्न प्रकार रखते हैं।

फसलें	पौध घर का क्षेत्रफल
1. गोभी वर्गीय फसलें	150 वर्ग मी.
2. टमाटर व बैंगन	60 वर्ग मी.
3. मिर्च	100 वर्ग मी.

(ख) बीज शय्या की तैयारी

1. **भूमि की तैयारी**—भूमि की 30 से.मी. गहरी जुताई या गुड़ाई कम से कम दो बार करनी चाहिए। जिससे मिट्टी में कड़ी पर्त न रहे। इसके बाद उस मिट्टी को भुरभुरी बना लेनी चाहिए। बीज शय्या को समतल बना लेना चाहिये। बीज-शय्या भूमि में बीज बोने के एक माह पूर्व 400 से 500 क्विंटल प्रति हैक्टर की दर से अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट की खाद मिला देना चाहिए।
2. **भूमि उपचार**—भूमि-गत कीटो से पौधों की सुरक्षा के लिये 5 प्रतिशत बी. एच. सी. या एल्ड्रिन पाउडर 20 से 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बीज शय्या की अन्तिम तैयारी के समय मिला दें। यदि सम्भव हो तो निर्जन्तुकरण के लिये एक भाग फार्मलीन 100 भाग पानी में मिलाकर 4–5 लीटर मिश्रण प्रतिवर्ग मीटर क्षेत्र में 1–5 से.मी. गहराई में देकर मिट्टी को उलट कर टाट से ढक देना चाहिए जिससे निकले गैस से कीट तथा कवकों को नष्ट किया जा सके।

(ग) पौध घर का विन्यास

आवश्यकता के अनुसार पौध घर मे बीज शय्या निम्न प्रकार तैयार की जा सकती है।

1. समतल रूप में

रबी तथा जायद की फसलों के लिये 100 से 120 से.मी. चौड़ी तथा 5 से 7 मीटर लम्बी अथवा लम्बाई सुविधानुसार रखकर बनाते हैं। अधिक चौड़ाई रखने पर उर्वरक छिड़कने, खरपतवार निकालने में असुविधा होती है। प्रत्येक दो क्यारियों के बीच 30 से.मी. चौड़ी नाली रखते हैं जो 45 से.मी. मुख्य नाली से मिलती है। इसका उपयोग जल- निकास, सिंचाई तथा निराई गुड़ाई आदि कार्यों में किया जाता है।

2. उठी हुई क्यारियाँ

वर्षा ऋतु में पौध तैयार करने के लिये 15 से 20 से.मी. ऊँची उठी हुई क्यारियां होती है। जिनका मध्य भाग कुछ उभरा हुआ हो जिसमे वर्षा का जल

ठहर न सके। बाकी सब क्रियाएँ समतल विधि की भांति क्यारियों के समान ही होती हैं।

3. गमलों व बक्सों में बीज बोकर पौध तैयार करना

अधिक कीमती बीजों को थोड़े क्षेत्र में रोपड़ के लिये बीजों को बोकर पौध तैयार की जाती है। इनमें 50 प्रतिशत सामान्य मिट्टी, 25 प्रतिशत बालू (महीन) तथा 25 प्रतिशत सड़ी गोबर या कम्पोस्ट की खाद प्रयोग में लाते हैं। बालू रेत निचली सतह में रखना चाहिये। शेष मिश्रण निर्जंतुकरण के बाद भर दिया जाता है।

4. बीज बोना

बीजों के उगने की क्षमता की जानकारी कर खराब बीजों को छांटने के बाद बीज बोने से पहले सेरेसन, थीरम आदि आरगेनों मरक्यूरिल (यौगिक) पारद-रसायन 3 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज में मिलाकर उपचारित कर पौध घर में 1 से 1·5 से.मी. गहराई में बीजों को बोते हैं।

बीजों को अधिकतर छिड़क कर बोते हैं परन्तु आधुनिक विधि में पंक्तियों में बोना उत्तम सिद्ध हुआ है। टेंक चलाना अनिवार्य है जिससे बीज मिट्टी में निश्चित गहराई तक पहुंच जाये। इसके बाद राख, महीन मिट्टी व बारीक गोबर की खाद के मिश्रण के आधा सेंटीमीटर मोटी पर्त से ढक देना चाहिये।

5. बीज बोने के बाद की देखभाल

1. सिंचाई -बोआई के बाद क्यारियों में हजारे द्वारा हल्की सिंचाई प्रातः या सायंकाल अंकुरण होने तक करते रहना चाहिए। अधिक तेज धूप और वर्षा से बचाव के लिए आवश्यतानुसार आच्छादन का प्रबन्ध करना चाहिये। पौधों को सहिष्णुत बनाने के लिये पौध निकालने के एक सप्ताह पूर्व सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए।
2. निराई-गुड़ाई—खरपतवारों को हाथों से निकाल देना चाहिये। हानिकारक कीटों व रोगों से बचाने के लिये कीट व रोगनाशक औषधियों को बुरकना व छिड़कना चाहिये तथा रोगी पौधों को पौध घर से निकालकर नष्ट कर देना चाहिये।

6. पौध प्रतिरोपण

पौधों को पौध घर से निकाल कर मुख्य खेत में लगाने की क्रिया को प्रतिरोपण कहते हैं। पौध लगभग 4 से 8 सप्ताह में रोपने योग्य हो जाती है। पौधों को निकालने के एक दिन पूर्व हल्की सिंचाई कर देते हैं। जिससे पौधों की जड़ों व तनों को कम से कम हानि पहुंचे। पौध को निकालकर जड़ों को गीली मिट्टी से ढक दें और यथा शीघ्र उन्हें खेत में प्रतिरोपित कर दें।

पौध को बीज शय्या में अधिक समय तक रखने से जड़ों व तनों को हानि पहुंचती है तथा उत्पादन कम हो जाता है।

पौध लगाने के लिये सायंकाल का समय उत्तम होता है क्योंकि रात्रि में सूर्य की धूप से बचाव हो जाता है और सिंचाई के लिये समय मिल जाता है। तैयार खेत में पौध को खुर्पी की सहायता से गड्ढा खोदकर उसमें रखकर जड़ के पास हाथों से मिट्टी को दबाते हुये रोप देते हैं। प्रतिरोपण का कार्य शीघ्र समाप्त करना चाहिये।

7. प्रतिरोपण के बाद की देखभाल

समय से सिंचाई तथा नष्ट हुए पौधों के स्थान पर नये पौधे लगाते रहना चाहिये। आवश्यकतानुसार फसल की निराई व कीट व्याधियों का उपचार करना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पौध घर से लिये कौन सी मिट्टी उत्तम है ? सामने कोष्टक में सही शब्द लिखिये—
   (अ) चिकनी (ब) सिलट
   (स) बालू (द) दोमट बालू ( )
2. बीज शय्या में सबसे अधिक मात्रा किस पदार्थ की होनी चाहिए ? कोष्टक में लिखिये—
   (अ) चूना (ब) जीवांश पदार्थ
   (स) बालू (द) चिकनी मिट्टी ( )
3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—
   (1) पौध घर सामान्यतः से रोपण क्षेत्र का..................भाग होता है।
   (2) पौध से बोई जाने वाली फसलों की पौध सामान्यतः..................से..................सप्ताह में तैयार हो जाती है।
4. नीचे दो समूह दिये है। प्रत्येक के सम्मुख रिक्त स्थान में सही समूह का क्रमांक लिखिये—
   प्रथम समूह — द्वितीय समूह
   (अ) वर्षा ऋतु का पौध घर — (1) समतल होता है।
   (ब) रबी फसल के लिये पौध घर — (2) भूमि सतह से उठा हुआ होता है। ( )
5. आदर्श पौध घर तैयार करने में गहरी खुदाई या जुताई क्यों आवश्यक है?
6. पौध घर में निर्जंतुकरण की क्रिया कैसे की जाती है ?
7. पौध घर के महत्व को संक्षेप में लिखिए।
8. उत्तम पौध घर बनाने के लिये किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

अध्याय—6

गृह वाटिका

महत्व

आज के विश्व में गृह उद्यानों का विकास जापान और अमेरिका की फसल व्यवस्था की देन है। वहां प्रायः अधिकांश दैनिक आवश्यकता की तरकारियां अपने गृह उद्यानों में ही लगा देते हैं। अमेरिका के कृषि आंकड़ों से पता चलता है कि सन् 1960 में वहां गृह उद्यानों से लगभग 750 करोड़ रुपये मूल्य की सब्जी उगाई गयी थी। यद्यपि ग्रामीण परम्परा में भी गृह उद्यानों की व्यवस्था अतीतकाल से चली आ रही है। जिसके प्रमाण हमें उपनिषद्, रामायण और महाभारत में अनेक स्थलों पर मिलते है। किन्तु उस व्यवस्था में चिकित्सा प्रमाण सम्बन्धी पौधे तथा सुगन्धित पेड़ पौधे उगाने पर विशेष ध्यान दिया जाता था। आज भी प्रत्येक ग्रामीण घर में तुलसी, गेन्दा, सदाबहार तथा अजूबा जैसे पौधों से सजा छोटा सा उद्यान मिलता है। किन्तु अभी तक उद्यान इतने व्यवस्थित नहीं हैं कि उनसे परिवार की मांग का अंश पूरा हो सके।

सब्जियां संन्तुलित आहार के लिए आवश्यक अवयव प्रदान करती है। सब्जियों में प्रोटीन, विटामिन्स, खनिज, लवण और रफेजेज प्राप्त होते हैं। पालक गाजर में विटामिन 'ए'। चुकन्दर, करेला, मिर्च, टमाटर और मेंथी, पालक में विटामिन 'सी' पाया जाता है। रफेजेज भी भोजन का आवश्यक अंग है जो कि अम्लीयता को नष्ट करता है और पाचन के अपाच्य अवयवों को शरीर से बाहर निकालने में सहायक है।

उद्यान कहां हो सकते हैं

गृह उद्यान का तात्पर्य उस वाटिका से होता है जो घर के निकट हो और जिससे प्रतिदिन की साक-भाजी तथा फल मिल सके।

ये उद्यान :—

1. घर के अहाते
2. घर के पीछे के मार्ग में
3. सरकारी दफ्तरों, क्लबों में
4. विद्यालयों में

4. चिकित्सालयों तथा जेलों आदि के साथ बनाये जा सकते हैं। इनमें अनेक आकार और विन्यास को कोई महत्त्व न देकर उनका प्रमुख उद्देश्य सब्जियों तथा फलों की प्राप्ति होती है।

गृह वाटिका के लिये कुछ आवश्यक बातें

1. निवास से निकट हो--

चूंकि गृह उद्यान में अतिरिक्त समय में कार्य किया जाता है इसलिए वह निवास के निकट होना चाहिए।

2. स्त्रियां और बच्चे कार्य कर सकें—

प्रायः अपने यहां स्त्रियों को कुछ समय मिल जाता है जिससे वे अपने समय का सदुपयोग कर अपने गृह उद्यान में कार्य कर सकती हैं जबकि स्थान निवास के पास हो।

3. सिंचाई की उचित व्यवस्था—

भारतवर्ष गर्म देश है, यहाँ तरकारियों को अधिक जल की आवश्यकता होती है। अतः उद्यान की सफलता के लिये यह वाञ्छनीय होता है कि सिंचाई के जल की अच्छी व्यवस्था हो, तो गृह उद्यान को घर के पास रखकर घरेलू कार्यों से बचे जल को तरकारियों के उपयोग में लाया जा सकता है। घाघ ने कहा है— 'तरकारी है तरकारी जामे पानी की अधिकारी।'

4. सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता —

अधिकांश साग-सब्जियां प्रकाश ही चाहती है। परन्तु मूली, गाजर, प्याज, लहसुन, अदरक, टमाटर, बैंगन, अरबी, हल्दी, पालक आदि कम सूर्य प्रकाश में भी अच्छी प्रकार चलती हैं। इसलिए दीवार के उत्तर में या उद्यान वृक्षों के साये में लगाकर लाभ उठाया जा सकता है।

5. लू से बचाव—

गृह उद्यान को लू से बचाने के लिए पश्चिम दिशा में सघन झाड़ी लगाई जा सकती है या केला आदि लगा सकते हैं।

6. रकबा —

उद्यान के लिए चुने गये स्थान का क्षेत्रफल ऐसा होना चाहिये कि उसमें ऋतु की प्रायः सभी सब्जियां उगाई जा सकें। व्यवस्थित अधिक भूमि होने पर सब्जियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे फलदार वृक्षों की भी व्यवस्था की जा सकती है, जो कम समय में फल देना आरम्भ कर दें तथा अधिक स्थान न घेरें।

गृह उद्यान का नियोजन

गृह उद्यान का नियोजन प्रयुक्त भूमि के आकार पर निर्भर करता है। इनके अतिरिक्त उसका ढाल अथवा उपयोग में लाई जाने वाली विधियाँ भी विचारणीय

होती हैं यदि क्षेत्र कम है। और कर्षण कार्य हाथों से ही किया जाना है तो क्यारियों को पास-पास तथा छोटा रखना चाहिये।

यदि भूमि की सुविधा हो तो यह निश्चित कर लेना चाहिए कि परिवार की आवश्यकता के लिए कितनी भूमि में गृह उद्यान प्रारम्भ किया जाये। उद्यान के लिये इस कथन को सदैव ध्यान रखना चाहिए 'बड़े किन्तु वीरान उद्यान की अपेक्षा छोटा किन्तु व्यवस्थित गृह उद्यान उत्तम होता है।'

उद्यान की उचित देख-रेख से कम भूमि में ही अधिक और उत्तम फसल ली जा सकती है। समान्यतः 6 व्यक्तियों के परिवार के लिए 1000 वर्ग मीटर अर्थात् $\frac{1}{10}$ हेक्टर भूमि की सिफारिश की जाती है, इसमें कुछ भाग खद्यायों के लिये रखा जाता है।

साधारणतः जहाँ तक सम्भव हो गृह वाटिका की आकृति आयताकार रखनी चाहियें (I) 150'×96' और (II) 75'×30 का बगीचा एक परिवार की सब्जी को पूरा कर सकता है।

हम यहाँ 6 व्यक्तियों के परिवार के लिए 300 वर्गमीटर क्षेत्र जो सभी दृष्टियों से उपयुक्त होगा, इसमें सब्जियों के साथ पोषक फलदार वृक्षों की भी व्यवस्था सम्भव होती है। फलदार पौधों तथा फँसने वाली तरकारियों को सदैव कतारों की ओर ही लगाना चाहिए जिससे ये दूसरे पेड़ पौधों की वृद्धि में बाधा न डाल सकें। शेष बची भूमि को बराबर हिस्से में बांटकर उसके बीच में रास्ते दे देने चाहियें। रास्ते की चौड़ाई अधिक से अधिक एक मीटर तक की रखी जा सकती है।

इसके बाद प्रत्येक भाग को छोटी-छोटी क्यारियों में बांट लेते हैं। इन क्यारियों का आकार लगभग 10 वर्गमीटर रहना चाहिए। इन्हीं क्यारियों में आवश्यकता की सब्जी उगायी जाती है।

विन्यास में निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं

विन्यास की कुछ आवश्यक बातें—

1. गृह उद्यान के चारों तरफ झाड़ी अथवा चहारदीवार की व्यवस्था हो।
2. बीच के मुख्य मार्ग की चौडाई 1/2 मीटर हो।
3. क्यारियों के बीच के रास्ते 1/2 मीटर से अधिक न हो।
4. सिंचाई की मुख्य नाली यदि हो सके तो पक्की ही रक्खी जाये या फिर रबड़ की नली से पानी दिया जाये।
5. मुख्य नाली यदि पक्की हो तो मुख्य मार्ग के किनारे-किनारे ही बनायी जाये।

6. सिंचाई की नालियाँ कुछ ऊँची हों जिससे कि क्यारियों में पानी अच्छी प्रकार पहुँच सके।

7. मुख्य मार्ग के किनारे छोटे-छोटे फलदार पौधे, जैसे पपीता लगाया जा सकता है। वैसे स्थायी पौधों को उद्यान में एक ओर ही लगाना चाहिये।

8. क्यारियाँ उत्तर-दक्षिण में लम्बी हों तथा तरकारियों को पूर्व-पश्चिम दिशा में ही बोया जाये, जिससे कि पौधों को अधिक प्रकाश मिल सके और निकाई गुड़ाई में सुविधा रहे। इसमें उनके गिरने का भय नहीं रहता है। क्योंकि हवा पंक्तियों के बीच से निकल जाती है।

9. बहुवर्षीय सब्जी जैसे असपरागस को एक ओर ही रखना चाहिए जिससे जुताई में असुविधा न हो।

10. शीघ्र उगने वाली सब्जियों को लम्बी पंक्तियों में एक साथ रखना चाहिये। और दूसरी फसल देर तक रहने वाली लेनी चाहिए।

11. यदि भूमि कम हो तो ऐसी योजना बनानी चाहिए जिससे एक ही क्षेत्र से खरीफ, रवि तथा जायद तीनों फसलों को लिया जा सके।

12. अधिक बढ़ने वाली फसलों को एक साथ पश्चिम अथवा उत्तर की दिशा में बोना चाहिए जिससे छोटे पौधों पर छाया न पड़े।

13. शीघ्र पकने वाली फसलों को मिलवाँ भी बोया जा सकता है जैसे आलू, गोभी की क्यारियों में चारों ओर मूली, सलाद तथा पालक।

14. गृह उद्यान की सफलता के लिए पहले पूरे वर्ष की योजना कागज पर बना लेनी चाहिए जिसमें प्रत्येक क्यारी का फसल चक्र भी निश्चित कर लिया जाये। इसमें प्रत्येक सब्जी का रकबा, आवश्यक बीज तथा उर्वरकों की मात्रा पूर्व ही विदित हो जायेगी।

15. योजना ऐसी हो कि ऋतु की सभी तरकारियाँ समय पर मिलती रहें। बगीचे में सब्जी उगाने के लिए निम्नलिखित फसल चक्र को अपनाना चाहिए—

तालिका संख्या 44 फसलचक्र

भिण्डी (जून-सितम्बर)	फ्रेन्चबीन (अक्टूबर-फरवरी)	लौकी (मार्च-मई)
मूली (जुलाई-अगस्त)	मटर (अक्टूबर-मार्च)	करेला (मार्च-जून)
लौकी (जो०-नवम्बर)	टमाटर (दिसम्बर-जून)	
आलू (अक्टूबर-दिसम्बर)	प्याज (जून-मई)	
गोभी (जून-नवम्बर)	प्याज (दिसम्बर-मई)	भिण्डी जून-सितम्बर)

खाद—

15 किलोग्राम गोबर की खाद 10 वर्ग मीटर की क्यारी बनाते समय देना चाहिए। बुआई या पौध लगाते समय 160 ग्राम अमोनियम सल्फेट व 160 ग्राम सुपरफास्फेट 10 वर्ग मीटर की क्यारी में दिया जाना उपयुक्त रहता है। इसी प्रकार बुआई के 4 सप्ताह बाद इसी प्रकार की क्यारी या क्षेत्र में खड़ी फसल में 16 ग्राम अमोनियम सल्फेट और दिया जाता है। वैसे कहा जाता है कि "गृह वाटिका के लिये अच्छा खाद उसके मालिक की पद धूल है।" निम्न तालिका में सब्जी की क्यारियों में उर्वरक प्रयोग करने की दर दी गई है।

तालिका सं० 45

दो सौ वर्ग फीट भूमि के सब्जी की क्यारियों में उर्वरक प्रयोग की दर

	प्रयोग किये जाने वाले उर्वरकों की मात्रा			
सब्जियों के नाम	नत्रजन		फासफोरस	पोटाश
खादों का नाम	अमोनियम सल्फेट या कैलसियम अमोनियम नाइट्रेट		सिंगल सुपर फासफेट	सल्फेट आॅफ पोटाश
देने का समय	पौध लगाते समय	टापड्रेसिंग	पौध लगाते समय	पौध लगाते समय
खरबूजा तरबूज करेला	आधी प्याली	—	आधी प्याली	$\frac{3}{4}$ प्याली
टिन्डा मली तोरई, लौकी				
शलगम गाजर चौंट	" "	$\frac{1}{2}$ प्याली	" "	" "
ग्वार लोबिया सेम	$\frac{1}{2}$ प्याली	—	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली
फूल गोभी बंद गोभी गांठ गोभी	" "	1 प्याली	$\frac{3}{4}$ प्याली	$\frac{3}{4}$ प्याली
टमाटर आलू	$\frac{1}{2}$ प्याली	2 प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली	1 प्याली
बैंगन मिर्च	1 प्याली	1 प्याली	2 प्याली	1 प्याली

लहसुन	1 प्याली	1 प्याली	2 प्याली	$\frac{3}{4}$ प्याली
प्याज	1 प्याली	——	1 प्याली	1 प्याली
मटर	1 प्याली	——	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली
भिन्डी	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली	$\frac{1}{2}$ प्याली

नोट—प्रत्येक सब्जी के प्लांट (दो सौ वर्ग फीट) में पौधे लगाने के 10-15 दिन पहले (उपरोक्त उर्वरकों के अतिरिक्त) 3 टोकरी गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट मिलाना जरूरी है।

गृह वाटिका के लिये यन्त्र व उनका खर्च :—

गृह वाटिका में निम्न यन्त्रों को खरीदने के लिए करीब 140–150 रुपये की आवश्यकता पड़ती है।

हैन्ड हो 2	मूल्य 20/- रु.	फावड़ा 2	मूल्य 25/- रु.
हैन्ड स्प्रेयर 1	मूल्य 25/- रु.	झारा 2	मूल्य 25/- रु.
हैन्ड डस्टर 1	मूल्य 25/- रु.	कुदाली 3	मूल्य 20/- रु.
कीट नाशक औषधि		8 रु.	

बहु वर्षीय पौधे :—

इसमें निम्न पौधे लगाये जा सकते हैं –

ड्रम स्टिक	एक पंक्ति
केला	पाँच
पपीता	पाँच
टेपिग्रोका	दो
सतवार	दो छोटी कतार

सब्जी उगाने की मासिक योजना :—

जनवरी—धनियां

फरवरी—भिन्डी, तोरई, अरबी, लौकी, पालक, बैंगन, मिर्च।

मार्च—टिन्डा, भिन्डी, पोदीना और उपरोक्त जो न बोई गई हो।

अप्रैल—भिन्डी

मई – भिन्डी, ककोरा, तोरई, मूली।

जून – खीरा, अदरक, हल्दी, करेला, तोरई, लौकी, सेम, मिर्च, पालक, चुकन्दर।

जुलाई—फूल गोभी, ग्वार, लौकि, भिन्डी, टमाटर, सेम, मिर्च, पालक, चुकन्दर।

अगस्त—फूल गोभी, ग्वार, लौकी, भिन्डी, टमाटर, मिर्च, चुकन्दर, मूली।

सितम्बर—सौंफ, पत्ता गोभी, पालक, गाँठ गोभी, आलू।

अक्टूबर—सरसों, सलाद, पुदीना, आलू, गाजर, शलजम, मूली, लहसुन, गाँठ गोभी।

नवम्बर — आलू, पत्ता गोभी, गांठ गोभी, मूली, मटर आदि ।
दिसम्बर—पालक, टमाटर, लौकी, करेला आलू ।

तालिका संख्या 46

गृह वाटिका के लिए ग्रीष्म ऋतु का चार्ट

क. सं.	सब्जी का नाम	बीज दर प्रति वर्ग मीटर	बोने का समय	पौधे से पौध की दूरी से.मी
1	अरवी	1–8 कि. ग्रा.	फरवरी–मार्च	40×30
2	लौकि	3–4 बीज प्रति थाला	फरवरी–जून	150×90
3	करेला	4–6 बीज प्रति थाला	" "	120×90
4	मिर्च	4 ग्राम	मार्च–जुलाई	60×30
5	परवल	4–6 रूट लेट प्रति थाला	" "	150×90
6	लोबिया	15 ग्राम	मार्च–जून	60×30
7	ग्वार	55 ग्राम	" "	60×30
8	बैंगन	6 ग्राम	फरवरी–जून	60×30
9	भिन्डी	30 ग्राम	" "	45×30
10	खरबूजा	4 ग्राम (4-6) बीज	जनवरी	150×90
11	तरबूजा	30 ग्राम	" "	150×120

तालिका संख्या 47

खरीफ या वर्षा ऋतु के मौसम की सब्जियाँ

क. सं.	सब्जि का नाम	बीज दर 9 वर्ग मिटर	बोने का समय	पौधे से पौधे की दूरी (सेन्टीमीटर में)
1	मिर्च	4 ग्राम	जून–जुलाई	60×45
2	सिमला मिर्च	4 ग्राम	(नर्सरी मे)	60×30

3	टमाटर	3 ग्रा.	नर्सरी मे	45×30
4	फ्रेंच बीन	55 ग्रा.	जून–जौ.	30×15
5	लोबिया	30 ग्रा.	जून–जौ.	60×15
6	ग्वार	30 ग्रा.	जून–जौ.	45×30
7	तोरई	4 बीज प्रति थाला	जून–जौ.	दीवार या
8	चचेंडा	" "	मार्च–जौ.	चाहर दीवारी " "
9	पेठा	" "	" "	240×120
10	करेला	" "	मार्च–जुलाई	120×90
11	सेम	" "	" "	120×90
12	चौलाई	15 ग्रा.	फरवरी–जुलाई	छिटकवा विधि से
13	पालक	100 ग्रा.	सितम्बर–फरवरी	" "

तालिका संख्या 48

रबी या शरद ऋतु के लिए सब्जियाँ

क्र. सं.	सब्जी का नाम	बीज दर 9 वर्ग मिटर	बोने का समय	पौधे से पौधे की दूरी (सेन्टीमिटर में
1	मटर	340 ग्राम	अक्टू.-नवम्बर	40×75
2	गाजर	15 ग्राम	अक्टू.-नवम्बर	15×15
3	चुकन्दर	30 ग्राम	अक्टू.-नवम्बर	30×15
4	सलजम	30 ग्राम	अक्टू.-दिसम्बर	30×15
5	आलू	1.5 ग्राम	अक्टू.-दिसम्बर	45×225
6	सलाद	15 ग्राम	अक्टू.-दिसम्बर	35×30

7	बन्द गोभी	3 ग्राम	सितम्बर-अक्टू.	45 × 30
8	गांठ गोभी	3 ग्राम	,, ,,	30 × 15
9	प्याज	30 ग्राम	,, ,,	15 × 10
10	टमाटर	4 ग्राम	,, ,,	60 × 15
11	टिन्डा	30 ग्राम	सितम्बर-अक्टू.	120 × 120
12	पालक	225 ग्राम	अक्टू.-दिसम्बर	15 × 15

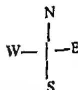
CROPPING SCHEME OF LAYOUT PLAN

S.No.	Plot No.	ROTATIONS
1.	1	Cauliflower, (July to Nov.), Raddish (Nov.-Dec.) and Onion (Dec.-Jund)
2.	2	Cauliflower (15 July no Dec.), Onion (Dec -June)
3.	3	Maize (June to Sept.), Potato (Oct.:Jan.) and Onion (Feb. to June).
4.	4,5	Brinjal + Palak (July to March) Bhindi (March-June)
5.	6,7	Tomato (Aug.-Jan.) Bottle gounred (Feb. to July).
6.	8	Kulfa (July to Sept.), Cauliflower (Oct.-Feb.) and Onion (Feb. to June).
7.	9, 10	Tinda (Feb.-Aug.), Peas (Sept.-Jan).
8.	11, 12	Bhindi (Jun-Sept.), Patato (Sept.-Des.) and Bottle gourd (Jan.-June).
9.	13,14	Brinjal (May to Sept.), Cabbage Mixed Lettuce (Oct. March) and Bhindi)April to June)
10.	15,16	Chillies (Feb.-Jan.), Tinda (Feb.-July).
11.	17,18	Tomato (Aug.Jan.), Tinda (Feb.-July).
12.	19	Palak (July to Dec.) Loki (Feb.-July).
13.	20,21	Cauliflower (Aug.-Oct.), Garlic (Nov.-Aprial), and Bhindi (April-Aug.)
14.	22,23	Tomato (Dec.-June), Bhindi (June-Oct.)
15.	24	Colcasia (July to Dec.), Karela (Jan.-June)
16.	25,26	Sweet Potato (July-Dec.), Kharbuza (Jan.-June).

MODEL LAYOUT PLAN OF A KITCHEN GARDEN

Size—96 × 75'

1. Size of Plot 8' × 16'
2. Roads 3'5'
3. Sub Roads 1'5'
4. Irrigational Channel 1·5'



KITCHEN	BUILDING		BATH ROOM
CITRUS	FLOWER BEDS / LAWN / FLOWER BEDS		CUCURBITS
FRUITS			NURSERY
GRAPES	GRAPES	PAPAYA	PAPAYA
SUB ROAD			ROAD
1	9	17	25
2	10	18	26
SUB ROAD			ROAD
3	11	19	27
4	12	20	28
SUB ROAD			ROAD
5	13	21	29
6	14	22	30
SUB ROAD			ROAD
7	15	23	31
8	16	24	COMPOST 32
SUB ROAD			ROAD

IRRIGATION CHANNEL (between columns 1–2 and 3–4); MAIN ROAD (between columns 2 and 3); HEDGE (west, east and south sides)

17.	27	Chaulai (May-Aug.), Carrot (Sept.-Jan.), and Brinjal (Feb.-May)
18.	28,29	Ridge gourd (June-Oct.), Peas (Oct.-Jan.), and Sponge gourd (Jan.-June)
19.	30,31	Soyabeans (April-August), Methi (Sept.-Nov.), and Beetroot (Nov.-Feb.)
20.	32	Ginger & Turmeric.

ANALYSIS CHART OF AVAILABILITY OF VEGETABLES (MONTHWISE)

S.No.	MONTH	CROP
1.	January	Potatoes, Tomato, Peas, Cabbage, Lettuce, Garlic, Beet root.
2.	February	Brinjal, Potato, Peas, Cabbage, Garlic, Tomato, Beet root.
3.	March	Onion, Brinjal, Loki, Cabbage, Potato, Garlic, Tomato, Karela, Kharbuza, S. Grourd.
4.	April	Onion, Bhindi, Loki, Tinda, Chillies, Garlic, Tomato, Karela, Kharbuza, Brinjal, S. Gourd.
5.	May	Onion, Bhindi, Loki, Tinda, Chillies, Tomato, Karela, Khurbuza, Brinjal, S. Gourd,
6.	June	Onion, Bhindi, Loki, Tinda, Chillies, Tomato, Karela, Khurbuza, Chulai, S. Gourd, Beans.
7.	July	Loki, Kulfa, Tinda, Bhirdi, Chillies, Brinjal Palak, Chaulai, S. Bean.
8.	August	Maize, Palak, Kulfa, Tinda, Bhindi, Brinjal, Chillies, Chaulai, S. Beans.
9.	Sept.	Cauliflowers, Maize, Palak, Brinjal, Rulfa, Bhindi, Coocasina, Torai.
10.	Oct.	Cauliflower, Palak, Brinjal, Tomato, Turnip, Bhindi, Colocasin, Torai, Methi.
11.	Nove.	Cauliflower, Brinjal, Tomato, peas, Potato, Letuce, Turnip, Palak, Colocasia, S. Potato, Methi.
12	Dec.	Raddish, Cauliflower, Potato, Brinjal, Peas, Tomato, Cabbage, Lettuce, Palak, Coleccasia, Sweet Potato, Carrot.

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गृह वाटिका का क्या तात्पर्य है तथा गृह–वाटिका लगाते समय किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए।

2. गृह वाटिका के लिए किन-किन यंत्रों की आवश्यकता होगी।

3. वर्षभर का सब्जी उगाने की मासिक योजना तैयार करें।

4. गृह वाटिका का रेखांकित चित्र बनाये।

———

अध्याय-7

सब्जियों में अनुसंधान की नयी दिशाऐं

शालाओं में समाजोपयोगी उत्पादन कार्य के विषय के अन्तर्गत भारत में उगायी जाने वाली विभिन्न सब्जियों के बारे में आवश्यक जानकारी पिछले भागों में दी गयी है। किन्तु आज के वैज्ञानिक युग में सब्जी उत्पादन में तकनिकी तथा अन्य विभिन्न पहलुओं पर विभिन्न प्रकार के अनुसंधान हो रहे है। अनुसधान से प्राप्त ज्ञान का उपयोग करके हर व्यक्ति अपना शुद्ध लाभ बढ़ा सकता है। इसलिये अध्यापकों को तथा छात्रों को इनके अनुसंधान में रुचि तथा आस्था रखनी चाहिये और सब्जी फसलों के अनुसंधान मे क्या प्रगति हो रही है इसकी जानकारी रखना अत्यन्त आवश्यक है। इस पाठ में इसी का उल्लेख किया गया है।

अन्य फसलों के साथ साथ सब्जियों की फसलों में भी अपने देश मे बहुत समय से अनुसंधान चल रहा है, किन्तु उसमे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही अधिक गति आ पायी है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद मे 1950 मे उद्यान विभाग की तथा 1970 में सब्जी विभाग की अलग अलग रूप मे स्थापित होने से सब्जियों के अनुसंधान मे वास्तविक गति आई है। इनके साथ-साथ राज्यों मे स्थापित कृषि विश्वविद्यालयों मे भी सब्जियो पर अनुसंधान हो रहा है। इन सभी जगहों पर अनुसंधान के मुख्य बिन्दु निम्न प्रकार हैं।

1. सब्जियों की नयी किस्मों का विकास—

नयी किस्मों का विकास सब्जियो की प्रति हेक्टर उपज वृद्धि के लिये तथा उनमें अपेक्षित गुणों के विकास के लिये किया जाता है। यह क्रिया कई तरीको से की जाती है। उदाहरण के लिए परदेसों से उन्नत बीज लाकरा, चयन विधि अपनाकर, संकर विधि द्वारा, उत्परिवर्तन द्वारा (म्यूटेशन) तथा इरेडियेशन द्वारा भारत में सभी सब्जियों की अनेकानेक सुधारित किस्मे तैयार करने का प्रयास चल रहा है। नई किस्मे तैयार करते समय जिन बातों पर ध्यान दिया जाता है उनमे से कुछ निम्न प्रकार की हैं :—

(क) प्रति हेक्टर ज्यादा उपज देने वाली किस्में:—

इस प्रकार की नयी किस्मों के उगाने से प्रति किलो उत्पादन लागत कम आती है। अतः काश्तकार इन किस्मों को उगाना पसन्द करते हैं जैसे बैंगन की पूसा पर्पल लोग उन्नत किस्म उतना ही प्रति हेक्टर खर्च करने पर देसी किस्मों से प्रति हेक्टर लगभग .0 प्रतिशत ज्यादा उपज देती है।

(ख) जल्दी पकने वाली किस्में—

ऐसी नयी किस्मों को उगाने में न केवल उन सब्जियों का शीघ्र उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है बल्कि उचित फसल चक्र अपनाया भी जा सकता है तथा एक साल में 2 की जगह 3 या 4 फसलें भी उगाई जा सकती है। उदाहरण के लिये फ्रेंच बीन की नयी किस्म पूसा पार्वती 45-50 दिनों में ही पक जाती है। इसके कारण भिण्डी-फ्रेंच बीन-आलू—प्याज का एक वर्ष में 4 फसलीय फसल-चक्र अपनाया जा सकता है। ऐसे ही अन्य सब्जियां की जल्दी पकने वाली कुछ किस्में तैयार हो गई है तथा और भी नई किस्में तैयार करने का प्रयत्न हो रहा है।

(ग) कीट बीमारी तथा नेमेटोड रोधक किस्में—

कीट नाशक दवाइयां इस्तेमाल करने की बजाय कीट, बीमारी तथा नेमेटोड रोधक किस्मे उगाना देश के तथा काश्तकारों के हित में है। ऐसी किस्मे लगाने में निम्न लाभ होते हैं।

(1) दवाइयो पर खर्च-कम होता है। (2) सब्जियों के साथ भोजन द्वारा शरीर में दवा के अवशेष जाने के कारण होने वाली हानि टल जाती है। (3) उपयोगी कीटों का नाश नही होता है। (4) वातावरण दूषित नही होता है। (5) फसल के निश्चित उपज आने की सम्भावना बढ़ जाती है।

इस दृष्टि से कीट तथा रोग प्रतिबन्धक जीन्स को पहचानना तथा उनको प्रचलित अधिक पैदावार देने वाली किस्मो में संकरण द्वारा प्रतिस्थापित करके उन्नत किस्मे तैयार करने का काम बड़े पैमाने पर चल रहा है। उदाहरण के लिए भिण्डी की नई किस्म पूसा सावनी जो कि पीला मोजेक रोधक किस्म है, तथा टमाटर में पूसा-120 जो कि निमेटोड रोधक किस्म है, इसी प्रकार तैयार की गई है। इस तरह से टमाटर में पत्ती मुडना, मुरझाना (विल्ट), पत्ता गोभी में गलन, मिर्च में माहू आदि के लिये अवरोधक किस्मे तैयार करने के लिए अनुसधान चल रहा है।

(घ) निर्यात होने वाली सब्जियों की किस्में: —

प्याज आलू आदि निर्यात होने वाली सब्जियों में परिवहन के दौरान गुणो

में कभी न हो तथा सड़न न हो यादि के लिये अनुसंधान करके उचित किस्मों का विकास किया जा रहा है। शीत गृहों में भण्डारण के लिये तथा सब्जियों को परिरक्षित करने के लिये उचित किस्मों का निर्माण किया जा रहा है। जैसे प्याज के निर्जलीकरण के लिये सफेद फ्लेट पूसा 131, पूसा सफेद गोल 106 किस्में विकसित की गई हैं।

(न) व्यापारिक संकर किस्में:—

संकर बीज का उपयोग करके सभी सब्जियों का प्रति हेक्टर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है यह बात सब को मालूम है। लेकिन उनकी कौन सी किस्मों का संकर करने से ज्यादा उपज देने वाली एफ-1 किस्म तैयार करना उचित है, यह तय करने के लिये काफी मात्रा में प्रयोग-शाला में तथा खेतों में प्रयोग करने पड़ते है। यह काम खर्चीला होता है तथा इसके लिये गहन शास्त्रीय ज्ञान तथा तकनीक की आवश्यकता है। यह काम भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद तथा कृषि विश्वविद्यालयों के चल रहा है। बैंगन, भिण्डी, गाजर, खीरा, गोभी, आदि फसलों में ऐसी संकर किस्मों के लिये उचित पैतृक कुलों का संशोधन करके संकरित किस्मों का विकास किया गया है। टमाटर प्याज आदि में भी इस तरह का संशोधन भिन्न-भिन्न अवस्था में है और टमाटर की कर्नाटक हाइब्रिड, बैंगन की विजय, मिर्च का चमत्कार आदि संकर किस्में काश्तकारों तक पहुंच भी चुकी हैं।

ऊपर दिये हुए सभी प्रकार के अनुसंधान के बाद भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद तथा कृषि विश्वविद्यालयों में अनेक सुधारित किस्में काश्तकारों के लिये विकसित की गयी हैं। इनमें से कई किस्में आम तौर पर इस्तेमाल होने लगी हैं जिनमें निम्न प्रमुख है—

(अ) करेला : पूसा दो मौसमी।
(ब) बैंगन : पूसा पर्पल लौंग पूसा पर्पल राउण्ड, पूसा क्रान्ति।
(स) फूल गोभी : पूसा स्नोबॉल-1 एवं पूसा स्नोबाल-2, पूसा दीपाली।
(द) प्याज : पूसा रेड, पूसा व्हाइट फ्लैट, पूसा व्हाइट राउण्ड।
(य) मटर : पूसा अरकेल।
(ड) पालक : पूसा ज्योति।
(व) लौकी : पूसा प्रोलिफिक लौंग, पूसा मेघदूत, पूसा मंजरी।
(च) खीरा : पूसा संयोग।
(छ) फेंच-बीन: पन्त अनुपम।
(ज) खरबूजा : दुर्गापुरा मधु, पंजाब सुनहरी।

(झ) ककड़ी : लखनऊ लोंग ।

(ट) भिण्डी : पूसा सावनी, पंजाब पदमिनी ।

2. उपज तथा गुण वृद्धि के लिये तकनीकों का विकास करना—

नई किस्में विकसित करने के अलावा नये तकनीको का विकास करके भी सब्जियो में प्रति हेक्टर उपज तथा गुणो की वृद्धि की जा सकती है । इन तकनीकों का अपने खेतो पर उपयोग करके काश्तकार लाभ उठा सकता है । अनुसंधान द्वारा ऐसे कुछ तकनीक विकसित हुये है उनमें से कुछ निम्न है—

(क) उचित सस्य चक्र अपना कर सब्जियों की सघनता बढ़ाना:—

इससे प्रति हेक्टर कुल उपज तथा शुद्ध लाभ बढ़ाया जा सकता है। उदाहरण के लिये मटर-पालक-टमाटर और भिण्डी का एक वर्षीय चार फसलीय फसल-चक्र अपना कर प्रति हेक्टर 843.7 क्विंटल उपज प्राप्त की जा सकती है जिससे प्रति हेक्टर/10,530/- रुपया शुद्ध लाभ हो सकता है ।

(ख) सब्जियो में फोर्सिंग की तकनीक को अपनाकर उपज बढ़ाना—

वसन्त ऋतु मे लगने वाली सब्जियों के उत्पादन को जल्दी बाजार में लाकर ज्यादा लाभ कमाने के लिये जल्दी बोना पड़ता है । किन्तु उस समय सर्दी के कारण अंकुरण कम होता है । इसके लिये कई तरीके निकाले गए हैं । उदाहरण के लिये अधिक दूरी पर बोई जाने वाली सब्जियो (जैसे लौकी, खरबूजा, तुरई आदि) के बीजों को थैलियों मे मिट्टी भरकर तथा बीज बोकर, घर के भीतर गरम जगह रखकर उगाया जाता है । वातावरण मे उचित तापमान आने के बाद उचित समय पर इन थैलियों को चीरा देकर खेतों मे प्रतिस्थापित किया जाता है। इसके अलावा बीजों के जमाव को प्रभावित करने के लिए बोए हुए खेत के ऊपर प्लास्टिक की शीट को बिछा देते है जिससे बीज के जमाव के लिए उचित तापमान हो जाता है। इस प्रकार सर्दी के मौसम मे भी जब बीज का अंकुरण नहीं होता है और उनको उगने के लिए बाध्य किया जाता है इसको व्हिजीटेबिल फोर्सिंग कहते है ।

(ग) सब्जी की उचित अन्तर फसल का चुनाव कर उपज बढ़ाना:—

अधिक दूरी पर बोई जाने वाली फसलों की बीच वाली जगह के लिये

उचित अन्तर फसल (इन्टर क्रोप) का चुनाव करने के लिये अनुसंधान हो रहे हैं जैसे केवल गन्ना मे जहाँ प्रति हैक्टर 5160 रु. शुद्ध लाभ होता है वहाँ गन्ने मे पालक को अन्तर फसल लगाकर शुद्ध लाभ 10818/- तथा गन्ने के बीच मे गाजर लगाकर प्रति हेक्टर 11558/- का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

(3) सब्जियों की उपज बढ़ाने के कुछ अन्य कारकों का अध्ययन कर तकनीकी विकास करना—

उपज वृद्धि के कारकों का अध्ययन करके तथा कृषि क्रियाओं मे उनका उचित उपयोग करके उत्पादन बढ़ाने के लिये अनेक तरीकों पर अनुसंधान चल रहा है। इनमें निम्न प्रमुख हैं—

(क) हार्मोन्स का प्रयोग कर उपज बढ़ाना—

कुष्मांड कुल की सब्जियों में नर तथा मादा फूल अलग-अलग होने के कारण तथा निषेचन उचित न होने के कारण अच्छी फसल नही होती है। इस कमी को दूर करने के लिये हार्मोन्स के प्रयोगो से सम्बन्धित अनुसंधान हो रहा है। जैसे ऐसा देखा गया है कि खीरे में इथ्रेल-200 का प्रयोग करके प्रति बेल चार गुना उपज बढ़ाई जा सकती है।

(ख) वृद्धि नियामिक रसायनों का प्रयोग कर उपज बढ़ाना—

इसी तरह कुछ वृद्धि नियामिक रसायनों का इस्तेमाल करके उपज वृद्धि के प्रयत्न किये जा रहे हैं। जैसे बैंगन में 2.4-डी का, 2.5पी. एम. पी. का घोल इस्तेमाल करके उपज में डेढ़ गुनी वृद्धि की जा सकती है। इसके अलावा अन्य सब्जियो मे भी उचित रसायनों का इस्तेमाल करके उपज बढाने के लिये अनुसंधान चल रहा है। इनमें आई. टी. टी., एन. टी. ए., टीबा आदि ओगजिन तथा जिब्रेलिन, माइको टायनिने, इथिलीन आदि रसायनों की मात्रा के बारे में प्रयोग चल रहे है। तथा इन रसायनों का प्रयोग किन सब्जियो में कितनी मात्रा मे तथा कब-कब करने से प्रति हेक्टर अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है इस पर अनुसंधान चल रहा है।

(ग) सब्जियों को क्रांतिक समय पर सिंचाई कर उपज बढ़ाना—

फसल की सिंचाई के लिये कुछ क्रांतिक काल होती है। उस समय

भूमि मे नमी अपर्याप्त होने पर उपज मे काफी कमी आती है। अतः हर एक फसल के लिये ऐसा क्रांतिक काल ज्ञात करने का प्रयास चल रहा है, जिससे कि उस समय सिचाई करके उपज बढ़ाई जा सकती है। उदाहरण के लिये प्याज में कन्द बनने की अवस्था, आलू में भूस्तरी (स्टोलन) बनने की अवस्था तथा उसकी दीर्घीकरण की क्रांतिक अवस्था में सिंचाई करने से उपज में काफी वृद्धि होती है।

(प) बैक्टीरियल कल्चर का प्रयोग कर उपज बढ़ाना

फलीदार सब्जियो के उत्पादन बढ़ाने में राइजोबियम कल्चर का महत्व है, यह सबको मालूम है। किन्तु देखा गया है कि राइजोबियम की उचित जाति का चयन करने से उपज मे ज्यादा बढोतरी होती है। हर एक फसल के लिये राइजोबियम कल्चर की उचित जाति पहचानने के लिये अनुसंधान चल रहा है। जैसे-मटर के लिये राइजोबियम कल्चर की पी-2, पी-12 किस्मो का उपयोग करके 8'-200 प्रतिशत उपज बढ़ने के उदाहरण मिले हैं। एजेटोबेक्टर का उपयोग करके टमाटर तथा गोभी की फसलों मे क्रमशः 19 तथा 28 प्रतिशत उपज बढाई जा सकती है। सब्जियो के खेतो मे जहा जीवांश खाद का अधिक उपयोग होता है और भूमि की उपजाऊ शक्ति ज्यादा रहती है। वहाँ एजेटोबैक्टर का कल्चर ज्यादा उपयुक्त सिद्ध हुआ है। ऐसा भी देखा गया है कि एजेटोबैक्टर का प्रयोग करने से टमाटर मे विटामिन 'सी' की मात्रा बढ़ जाती है, इसी प्रकार फास्फोबेक्टरिन कल्चर के बारे में भी अनुसंधान चल रहा है।

इसके अलावा लवणीय भूमि मे सब्जियो के उत्पादन का उपयुक्त तकनीक का विकास करना, शुष्क प्रदेशो मे नमी को सुरक्षित करने के लिये सब्जियों के खेतों में पानी भरे घड़ो को गाड़कर उपयोग करना, ड्रिप सिचाई का सब्जियों मे प्रयोग करने के तरीको का अनुसंधान, उपयुक्त खरपतवार नाशको का प्रयोग, भूमि मे सूक्ष्म तत्वों की कमी की पहचान करना तथा उनकी खेतो में पूर्ति के लिये उपयुक्त मात्रा तथा देने के तरीके तय करना आदि विषयो मे अनुसंधान बड़े पैमाने पर चल रहा है।

4. सब्जियों के बीज उत्पादन के लिये समुचित तकनीकों का विकास करना—

इसके लिये निम्न तरह का अनुसंधान हो रहा है—

(क) शीतोष्ण जलवायु में सब्जियों के बीजों के उत्पादन की तकनीक का विकास—

शीतोष्ण जलवायु की सब्जियों के बीजों के लिये हमें काफी मात्रा में परदेशी चलन (फोरेन एक्सचेंज) खर्च करना पड़ता था क्योंकि अपने देश में इन बीजों का उत्पादन नहीं होता था। किन्तु कुल्लू वहेली में बीजो के उत्पादन का उपकेन्द्र स्थापित करके तथा वहां अनुसंधान करके शीतोष्ण जलवायु की सब्जियों के बीज तैयार करने के तकनीकों का विकास कर कुछ सब्जियों के बीजो का उत्पादन हो रहा है।

(ख) संकरित बीजों के उत्पादन के तकनीक का विकास करना—

संकरित बीज से उपज वृद्धि होती है किन्तु बोने के लिए एफ-1 बीज हर साल नया लेना पड़ता है। अतः काश्तकारों को हर साल बड़े पैमाने पर संकरित बीजों की जरूरत होती है। इसलिए राष्ट्रीय बीज निगम एफ-1 बीज तैयार करने के काम के लिये पंजीकृत बीज निर्माताओं की बड़े पैमाने पर सहायता लेता है। किन्तु इन निर्माताओं के पास पर्याप्त मात्रा में तकनीकी ज्ञान नहीं रहता। अतः हर सब्जी के संकर बीज तैयार करने के लिये समुचित आसान तरीकों का विकास का काम चल रहा है जिसका उपयोग कर पंजीकृत बीज निर्माता अपने खेतों में एफ-1 संकर बीज आसानी से तैयार कर सकेंगे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सब्जी फसलों की नई किस्में किन-किन विधियों द्वारा तैयार की जाती है ?
2. कुष्माण्ड कुल के सब्जियों का प्रति हेक्टर उपज बढ़ाने के नये तरीके बताइए।

3. एफ–1 अवस्था का संकरित बीज निम्न में से ज्यादातर कहाँ पैदा करते हैं ?
   (अ) कृषि विश्व विद्यालय
   (ब) भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
   (स) पंजीकृत बीज निर्माता
   (द) राष्ट्रीय बीज निगम
4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—
   (क) गन्ने में.................अन्तर फसल बोने से ज्यादा लाभ होता है।
   (ख) प्याज की.................किस्में निर्जलीकरण के लिये अच्छी होती हैं।
5. कीट या बीमारी रोधक किस्में तैयार की जाती है।
6. सब्जियों में बेक्टिरियल कल्चर का उपयोग से क्या लाभ होता है ?
7. सब्जियों की फसल में प्रयोग की जाने वाले हारमोन्स तथा वृद्धि नियामक रसायनों की सूची बनाइए।

अध्याय–59

शाक शस्यों के लिए महत्वपूर्ण कृषि संकाय

जलवायु—विभिन्न शाक शस्यों की खेती के लिए बुआई के समय के अनुसार निम्न प्रकार की जलवायु उपयुक्त मानी जाती है—

1. खरीफ की फसलों के लिए—खरीफ की फसलों के लिए गर्मतर जलवायु उपयुक्त मानी जाती है। इनकी वृद्धि के लिए 70°F से 60°F ताप की आवश्यकता होती है।

2. रबी की फसलों के लिए ठण्डी जलवायु उपयुक्त मानी जाती है। इनकी वृद्धि के लिए अनुकूलतम ताप 60°F से 70°F के बीच होना चाहिये। न्यूनतम ताप 40°F से कम नहीं होनी चाहिए। इससे कम ताप पर पौधों की वृद्धि रुक जाती है। पाला इनके लिए हानिकारक होता है।

3. जायद की फसलों के लिए गर्म जलवायु उपयुक्त मानी जाती है। वर्षा ऋतु में उगायी जाने वाली सब्जियां, ग्रीष्म ऋतु में भी उगाई जाती हैं। जैसे—तुरई, लौकी, करेला, पेठा या कद्दू, भिण्डी इत्यादि। इनकी खेती के लिए गर्म तथा गर्मतर जलवायु उपयुक्त मानी जाती है। अधिकतम ताप 110°F से अधिक नहीं होनी चाहिए।

उपयुक्त भूमि—अलग-अलग सब्जियों की खेती के लिये अलग-अलग प्रकार की भूमि उपयुक्त मानी जाती है। गाजर, मूली, शलगम, चुकन्दर एवं शकरकन्द जैसी सब्जियों की खेती के लिए रेतीली दोमट भूमि उपयुक्त मानी जाती है। गोभी वर्गीय कद्दू कुल, तने वाली एवं हरी पत्तियों वाली सब्जियों की खेती के लिए दोमट व दोमट मटियार भूमि उपयुक्त मानी जाती है।

खेती के लिए भूमि में निम्नलिखित विशेषतायें और होनी चाहिए—

(1) भूमि समतल होनी चाहिए।

(2) भूमि में कंकड़-पत्थर तथा स्थाई खरपतवार जैसे कांस नहीं होनी चाहिए।

(3) भूमि में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) उप मृदा कठोर या पथरीली नहीं होनी चाहिए ।

(5) भूमि में अत्यधिक क्षारीयता या अम्लीयता नहीं होनी चाहिए ।

भूमि की तैयारी—भूमि की तैयारी का अर्थ भूमि को इस योग्य बनाना, जिससे बीजों का अंकुरण पौधों की वृद्धि के लिए उपयुक्त वातावरण एवं भूमि में होने वाली विभिन्न उपयोगी क्रियायें सुचारु रूप में चल सकें । इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भूमि की तैयारी निम्न प्रकार से करनी चाहिये—

(1) पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिये, ताकि भूमि में उगे हुए मौसमी खरपतवार मिट्टी में दब कर सड़-गल जायें तथा स्थाई घास जैसे—दूब घास, मोथा घास (Cyproas) चुन कर खेत से बाहर निकाला जा सके ।

(2) दो से तीन जुताई या इससे अधिक जुताइयां (समय भूमि की किस्म तथा फसल की किस्म के अनुसार) देशी हल से करनी चाहिए ।'

(3) जुताई के समय अथवा प्रत्येक जुताई के बाद खेत में पड़े हुए खरपतवार तथा कंकड़-पत्थर को चुनकर खेत से बाहर निकाल देना चाहिये । यदि खेत में दूब घास की अधिकता हो तो हैंड हो, हैरो या सिंह पटेला की सहायता से खेत से बाहर घास को निकाला जा सकता है । कांस जैसे घास को नष्ट करने के लिए 'रूटर' या ट्रैक्टर द्वारा डिस्क से जुताई कर देनी चाहिये ।

(4) बुआई अथवा रोपाई से एक डेढ़ माह पूर्व खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह सडी हुई गोबर या कूड़े-कर्कट की खाद खेत में समान रूप से फैला कर, जुताई करके मिट्टी में मिला देनी चाहिये ।

(5) भूमि को समतल करने के लिए आवश्यकतानुसार पाटा या सुहागा चलाना चाहिए।

(6) यदि फसल की बुवाई नालियों में जैसे—(अरवी, गन्ना, कद्दू कुल सब्जियां) मेडों पर मूली, आलू, शकरकन्द, आदि क्यारियों में । फूल गोभी, पात गोभी, बैंगन, टमाटर, पालक, मिर्च आदि करनी है, तो उसके अनुसार तैयार खेत में निश्चित दूरी पर मेड़, नालियां या क्यारियां बना लेनी चाहिए ।

(7) भूमि मे दीमक की अधिकता हो तो 20 से 25 किलोग्राम बी. एच. सी. अथवा एल्ड्रीन चूर्ण अन्तिम जुताई के समय भूमि में बुरक कर मिला देनी चाहिए ।

बुआई का समय—1. खरीफ की सब्जियां—जून-जौलाई ।
2. रबी की सब्जियां—सितम्बर से नवम्बर ।
3. जायद की सब्जियां—जनवरी से मार्च ।

नोट—खरीफ में बोई जाने वाली सब्जियों की बुआई जायद में भी प्रायः की जाती है। जैसे-लौकी; तोरी, करेला, कद्दू, भिण्डी इत्यादि।

तालिका सं० 49

बीज की मात्रा

सब्जियों के नाम	बीज की मात्रा प्रति हेक्टर
फूल गोभी, पात गोभी, टमाटर बैंगन	375 ग्राम से 750 ग्राम
गांठ गोभी, मिर्च	1 किलो ग्राम से 1·5 कि. ग्राम
शलगम, कद्दू, लौकी, तोरी तथा टिंडा	3·5 कि. ग्राम से 6 कि. ग्राम
प्याज, करेला, गाजर	6 से 8 किलोग्राम
सेम, मूली, भिन्डी (वर्षाती)	8 से 12 किलोग्राम
धनिया, भिन्डी (ग्रीष्म ऋतु)	18 से 20 किलोग्राम
पालक, मेथी	20 से 30 किलोग्राम
मटर	60 से 80 किलोग्राम
लहसुन, अरबी	3·5 से 5 क्विण्टल
अदरक	10 से 20 क्विण्टल

बुआई का तरीका—बुआई कार्य को निम्न भागों में बांटा जा सकता है—

(1) बीजों को सीधे खेत में बोकर (Direct Sowing) इसके अन्तर्गत निम्नलिखित विधियां प्रचलित हैं—

1. **छिटकवां विधि**—इस विधि से पालक, मेथी, धनियां, गाजर, मूली, शलगम इत्यादि सब्जियों की बुआई की जाती है।
2. **सीधी लाइनों में**—भिन्डी, मटर, धनियां, पालक, मेथी इत्यादि की बुआई की जाती है।
3. **मेडों या डोलियों पर**—इस विधि का उपयोग आलू, मूली, शकरकन्द सब्जियों की बुआई नालियों में करते हैं।
4. **नालियों में बुआई करना**—लौकी, तोरी, करेला, कद्दू, टिन्डा आदि सब्जियों की बुआई नालियों में करते हैं।
5. **डिबलर द्वारा**—भिन्डी, मटर, सेम आदि की बुआई डिबलर द्वारा चोव कर करते हैं।

(2) **पौध तैयार करके रोपाई करना**—(Transplanting method)-इस विधि से फूल गोभी, पात गोभी, गांठ गोभी, टमाटर, बैंगन, मिर्च तथा प्याज की बुआई करते हैं।

खाद एवं उर्वरक—सब्जियों की अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक कार्बनिक खादों का उपयोग करना चाहिए। गोबर या कूड़े-करकट की अच्छी तरह सड़ी हुई खाद जिसमें कंकड़-पत्थर या लकड़ी के टुकड़े न हों, 15

से 25 टन प्रति हेक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए। फलीदार सब्जियों में कम खाद की आवश्यकता होती है। फलीदार सब्जियों के उत्पादन के लिये 8 से 10 टन गोबर की खाद प्रति हेक्टर तथा 200 से 350 किलोग्राम सुपर फास्फेट प्रति हेक्टर की दर से देना चाहिये। नत्रजनयुक्त उर्वरक देने की कोई आवश्यकता नहीं। इस प्रकार हरि पत्तियों वाली सब्जियों को गोबर या कम्पोस्ट की खाद के अतिरिक्त नत्रजन युक्त उर्वरक की अधिक आवश्यकता होती है।

सिंचाई—सब्जियों की खेती के लिए सिंचाई की नियमित व्यवस्था होनी चाहिए। दो सिंचाइयों के बीच का अन्तर भूमि की किस्म, मौसम, सब्जी की किस्म पर निर्भर करता है। सामान्य रूप से वर्षा ऋतु में वर्षा के अभाव में तथा ग्रीष्म-ऋतु में 5 से 7 दिनों के अन्तर पर सिंचाई करते हैं। शरद ऋतु में 12 से 15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करना चाहिये। फूल व फल लगाने के समय सिंचाई की नियमित व्यवस्था होनी चाहिये।

निकाई-गुड़ाई सामान्यतया विभिन्न सब्जी की फसल में कम से कम दो निकाई-गुड़ाई अवश्य कर देना चाहिये। पहली निकाई-गुड़ाई बुआई अथवा रोपाई के 20 से 25 दिन बाद तथा दूसरी निकाई-गुड़ाई पुनः 15 दिन बाद कर देनी चाहिए। खरपतवार की अधिकता होने पर दो से अधिक निकाई-गुड़ाई भी की जा सकती है।

सब्जियों की तोड़ाई या खुदाई—फूलगोभी, पातगोभी, गाठ गोभी आदि की तोड़ाई पूर्ण विकसित हो जाने पर किन्तु बिखरने से पहले करना चाहिये व मिर्च की तोड़ाई कच्ची तथा पकी हुई दोनों अवस्थाओं में करते है। बैंगन, तोरी करेला, लौकी, टिण्डा, भिण्डी आदि की तोड़ाई कच्ची व मुलायम अवस्था में करनी चाहिये। गाजर, मूली, शलजम की खुदाई पूर्ण विकसित किन्तु मुलायम अवस्थाओं में ही करते हैं। मटर, सेम, लोकिया आदि फलीदार सब्जियों की तोड़ाई कच्ची अवस्था में किन्तु बीजों के पूर्ण विकसित हो जाने पर ही करना चाहिये।

रोग एवं कीट नियन्त्रण –

तालिका सं० 50

सब्जियों के प्रमुख रोग एवं उनके नियन्त्रण के उपाय निम्नलिखित हैं—

क्रम सं. रोग	इस रोग से प्रभावित होने वाली सब्जियों के नाम	उपचार
1. एन्थ्रेक्नोज	कद्दू, लौकी, तोरी करेला, टिण्डा, सेम।	(i) फल चक्र द्वारा (ii) खेत को खर-पतवार रहित करके। (iii) बीजों को बुआई से पूर्व एग्रोसिन (जी. एन.) से उपचार कर लेना चाहिये।

क्रम सं. रोग	इस रोग से प्रभावित होने वाली सब्जियों के नाम	उपचार
1. अर्ली 2. ब्लाइट	टमाटर, बैंगन, मिर्च गाजर, अरवी इत्यादि।	बोर्डो मिश्रण (4 : 4 : 50) का छिड़काव करना चाहिए।
3. लेट ब्लाइट	टमाटर, बैंगन, मिर्च।	बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें।
4. कंडुआ (स्मट)	प्याज, लहसुन।	बुआई से पूर्व बीजों को एरेसेन या टेरसान से उपचारित कर लेना चाहिये।
5. गांठें बनने की बीमारी	धनियां।	थायरम 250 ग्राम प्रति 100 किलो बीज की दर से तथा मिट्टी में 20 किलो प्रति हैक्टर की दर से मिलायें।
6. जड़ गलन	अदरक, अरवी।	जिनेब 1·5 किलो, 1000 लीटर पानी में घोलकर एक हैक्टर क्षेत्रफल में छिड़कें।
7. क्लब रोट	फूल गोभी, पातगोभी, गांठ गोभी व शकर-कंद	1. ऐसा फसल-चक्र अपनायें जिसमें क्रूसी-फेरी (सरसों) कुल का कोई अन्य पौधा न हो। 2. हल्की क्षारीय भूमि में ये फसलें बोयें।
8. डाउनी मिल्ड्यू (मृदु रोमिल रोग)	कद्दू कुल की सभी सब्जियां तथा मटर, प्याज, लहसुन, पालक व सेम।	जायनेब 1·3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें या फाइटोलॉन क्यू-परामार, ब्लूकॉपर व ब्लाइटॉक्स ·05 में से किसी एक का 0·3% का घोल छिड़कें।
9. पाउडरी मिल्ड्यू (चूर्णी फफूंदी)	भिण्डी, मटर, सेम, धनियां, लहसुन, पालक आदि।	1. गंधक का चूर्ण 25 किलो प्रति हैक्टर भुरकाव करें। 2. घुलनशील गंधक या केरोथेन का 0·1% का घोल छिड़कें। 3. वेन-लेट 1 कि. प्रति 750 लीटर पानी में घोलकर छिड़कें।
10. पर्ण दाग	कद्दू कुल की सभी सब्जियां पालक, गाजर तथा अदरक।	ब्लाइटॉक्स–50 का छिड़काव करें। मात्रा—2·5 किलो 900 लीटर पानी में घोलकर एक हैक्टर क्षेत्रफल में छिड़कें।

11.	पद गलन	गोभीवर्गीय सब्जियों व पालक।	बीजों को बोने से पूर्व गर्म पानी (50° से. पर उपचारित कर) तथा एग्रोसिनया सिरेसेन से उपचारित करें।
12.	पीत शिरा मोजैक	भिण्डी।	रोग रोधी किस्म 'पूसा सावनी' बोयें।
13.	ब्लैक रॉट	फूल गोभी, पात गोभी,	बीजों को उपचारित करके बोयें।
14.	मोल्या रोग निमैटोड	टमाटर, बैंगन, मिर्च, भिण्डी, सेम।	1·30 लीटर निमेगॉन प्रति हैक्टर सिंचाई के पानी के साथ मिलायें।
15.	मोजैक	टमाटर बैंगन, मिर्च मटर, सेम, मूली व कद्दू कुल की सब्जियां।	रोग रोधी किस्में बोयें।
16.	विल्ट या उकठा	टमाटर, बैंगन, मिर्च, धनियां।	रोग रोधी किस्में बोयें।

तालिका सं० 51

फलों एवं सब्जियों के प्रमुख कीट एवं उनका नियन्त्रण

क्रम संख्या	कीटों के नाम	हानि पहुँचाने की प्रकृति	नियन्त्रण के लिए उपयोगी कीटनाशक विष
1.	दीमक, सफेद गिडार कुबरा, गुजिया, जड़ों को हानि पहुँचाने वाले मिलीबग।	भूमि में रहकर फसलों को हानि पहुँचाते हैं।	बी. एच. सी. एल्ड्रिन, हैप्टाक्लोरवटोक्साकेन आदि कीट नाशक विष प्रयोग करना चाहिये।
2.	टिड्डा, गिडार, रोयेंदार गिडार, चने की सूंडी बीटिल तथा अन्य काटने, कुतरने व चबाने वाले कीट।	फसलों की पत्तियों, मुलायम तने व शाखाओं को काट व कुतर कर हानि पहुँचाते हैं।	थायोडान, सेविन मैलाथियान सुमेथियान डाईजिनोन, फोलीडाल, मेटासिड, लेबासिड, मेटा सिडकाम्बी आदि संपर्क आमाशयी विष का उपयोग करना चाहिये।
3.	माहू तेला (जैसिड़) सफेद मक्खी, मिलीबा पाइरिला, थ्रिप्स, हरा मच्छर आदि।	रस चूस कर हानि पहुँचाने वाले कीट।	नुवाक्रॉन–4, मेटासिस्टाक्स, इकाटिन, रोगर, एन्थियों, फासड्रिन, डिमाक्रोन, टेमिक 10जी, डायासिस्टान इत्यादि चाहिये।

नोट-- सब्जियों व फलों के लिए उन कीटनाशक विषों का प्रयोग कीट नियन्त्रण के लिए करना चाहिए। जिनका विषैला प्रभाव शीघ्र समाप्त हो जाये तथा जो मनुष्य के लिए हानिकारक न हो। जैसे मैलाथियान, सोविन, एन्थियों, सेवियोल, थायोडीन इत्यादि मनुष्य के लिए कम हानिकारक होते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बुवाई के समय के अनुसार विभिन्न सब्जियों के लिए उपयुक्त मौसम का उल्लेख करो।
2. अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए भूमि की तैयारी तथा भूमि की सामान्य विशेषतायें लिखो।
3. गोबर व कम्पोस्ट की खाद कब और कैसे मिलायें ?
4. सब्जियों की फसलों में दो सिंचाई के बीच का अन्तर किन आधारों पर करें।
5. सब्जियों के प्रमुख रोग एवं उनके नियन्त्रण के उपाय संक्षेप में लिखिए।
6. कीटों के नियन्त्रण हेतु उपयुक्त कीटनाशक विष का चुनाव कैसे करते हैं ?

अध्याय-9

उद्यान

उद्यान के लिए स्थान का चुनाव

प्रत्येक फल उत्पादन के लिए अपने बाग की योजना बनाने की अति आवश्यकता है, क्योंकि यदि वे विशेष प्रकार के फल उगाना चाहते हैं तो उस स्थान की जलवायु वहाँ की भूमि में सफलतापूर्वक फल उगाये जा सकते है या नहीं, क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रकार की फसलों को भिन्न-भिन्न प्रकार के तापक्रम, भूमि चाहिए। किसी फल को दोमट कृषि अच्छी होती है, किसी फल को मटियार भूमि ठीक होती है। यही कारण है कि अफगानिस्तान और कश्मीर में अंगूर और सेव के कितने ही बाग देखे जा सकते हैं, उतने अन्य प्रदेशों में नहीं।

स्थान निर्धारित करने के लिए परिस्थितियों पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए, क्योंकि उद्यान की सफलता स्थान के उचित चुनाव पर काफी हद तक निर्भर करती है अन्यथा आज की भूल कल के लिए अभिशाप बन जाती है। अतः बाग लगाने के पूर्व निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

1. **पौधे का चुनाव**—फलों का चुनाव जिनके पौधे बाग में लगाना है, यह देख लेना आवश्यक हो जाता है कि इस भूमि में कौन-कौन से फल हो सकते है। ऐसे फलों की उस क्षेत्र में आवश्यकता है कि नहीं, अर्थात् बाजार मांग कैसी है। अन्यथा सब कुछ होते हुए भी यदि बाजार मांग नहीं है तो अधिक लाभ होने की संभावना कम ही रहती है। सर्वप्रथम फलों का चुनाव बाजार-मांग पर ही निर्भर करता है, बाद में भूमि, जलवायु आदि का ध्यान रखा जाता है कि अमुक फल उस भूमि अथवा जलवायु में सफल हो सकता है कि नहीं। जिस स्थान पर हम बाग लगाने का इरादा कर रहे है वहाँ की जलवायु में पैदा होने वाले फल उस स्थिति तथा भूमि पर हो सकेंगे अथवा नहीं।

2. **भूमि**—साधारणतया दोमट या बलुई-दोमट भूमि प्रत्येक फलों की खेती के लिए उपयुक्त रहती है। चूना एवं जीवांश पदार्थ की उपस्थिति फलों में मिठास आता है। भूमि में जल-निकास का प्रबन्ध होना अति आवश्यक है, अन्यथा पौधों के बढ़वार पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। मिट्टी के अन्दर कोई कड़ी पर्त अथवा चट्टान की तह नहीं होनी चाहिए और न हो भूमि में अम्लता अथवा क्षारीयपन हो। भूमि गहरी होनी चाहिए ताकि वायु एवं प्रकाश का संचार हो सके। भूमि ही बागवानी का आधार है, अतः उचित चुनाव आवश्यक है।

3 जलवायु—गर्मी, प्रकाश, नमी, आर्द्रता, ताप, वायु का दबाव तथा इसकी गति एवं वर्षा आदि बातों के मेल से जो प्रभाव उत्पन्न होता है, उसे जलवायु कहते हैं। जिस जलवायु में जो पौधे अच्छी तरह पनप सकते हैं उसी जलवायु में उगाना चाहिए। क्योंकि ठंडी जलवायु वाले पौधे गर्म जलवायु वाले प्रदेशों में सफलतापूर्वक नहीं उगाये जा सकते। जलवायु के आधार पर फलों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया गया है।

(i) समशीतोष्ण फल (Temperate)

(ii) गर्म समशीतोष्ण फल (Sub-tropical)

(iii) उष्ण फल (Tropical)

अतः उस स्थान की जलवायु के अनुसार ही उन फलों का चुनाव करना चाहिए जो वहां उगाये जाने वाले हैं।

4. भूमितल—ऐसी भूमि जो समतल नहीं है, उद्यान के लिए उपयुक्त नहीं होती है, क्योंकि असमतल भूमि में कृषि-क्रियाएँ करने में कठिनाई होती है। साथ ही जल-निकास की समस्या पैदा हो जाती है। इन कठिनाइयों के अलावा सिंचाई, निरीक्षण, आवागमन आदि में असुविधा होती है। अतः भूमि का तल समतल होना ही चाहिए।

5. सिंचाई एवं जल निकास—पानी ही जीवन का आधार है। जहाँ वर्षा की कमी होती है, वहां कृत्रिम रूप से पानी का प्रबन्ध किया जाता है। पानी का साधन ऐसा होना चाहिए कि जिससे वर्ष भर बाग में पानी दिया जा सके। पौधों की वानस्पतिक वृद्धि एवं फल-उत्पादन के लिए पानी अत्यन्त आवश्यक है, अतः सिंचाई के साधन बाग के समीप ही होना चाहिए। सिंचाई का पानी मीठा, उपयुक्त मात्रा में एवं समय पर उपलब्ध होना जरूरी है। जल-निकास का अपना उतना ही महत्व है जितना कि सिंचाई का है। क्योंकि इसके अभाव में पौधे गलने-सड़ने लगेंगे और फल उत्पादक को हानि उठानी पड़ सकती है। अतः सिंचाई के साथ-साथ जल-निकास का प्रबन्ध भी होना अति आवश्यक है।

6. खाद—भूमि का चुनाव करते समय यह भी देखना आवश्यक है कि पौधे के लिए सभी आवश्यक तत्व उस भूमि में मौजूद है अथवा नहीं। यदि ऐसा नहीं है, तो भूमि की उर्वरा शक्ति फल के अनुरूप बनाने के लिए खाद डालनी पड़ेगी ताकि पौधों का बढ़वार समुचित रूप से हो सके। फलों के बीच-बीच में कुछ दाल वाली फसलों का प्रयोग किया जाय ताकि भूमि की उर्वरा शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाय।

7. श्रम की उपलब्धता—उद्यान से अधिकतम लाभ इस बात पर निर्भर करता है कि कितने सस्ते एवं दक्षता-प्राप्त मजदूर बाग में कार्य करते हैं। सस्ते से सस्ते श्रमिक रखने का प्रयत्न करने के साथ-साथ यह भी ध्यान में रखना चाहिए

कि बाग का कार्य खराब न हो पाये। नगरों के निकट रहने वाले श्रमिक खेत तथा बाग के कार्यों को उतनी निपुणता से नहीं कर सकते, जितने कौशल से ग्रामीण श्रमिक इस कार्य को करने में समर्थ होते हैं। अतः भूमि ऐसे स्थान पर होनी चाहिए जहाँ श्रम सस्ता तथा निपुण हो।

8. भूमि का मूल्य—सर्वविदित है कि नगरों के आसपास भूमि की कीमत अधिक रहती है। अपेक्षाकृत गाँवों के समीप में। अतः भूमि खरीदते समय यथा-संभव यह ध्यान रखना चाहिए कि ली जाने वाली भूमि का मूल्य बहुत अधिक न हो।

9. बाजार तथा यातायात की सुविधाएँ—बाग से अधिकतम लाभ केवल अधिक उत्पत्ति होने पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि उत्पादित वस्तु का क्रय-विक्रय उचित दाम पर हुआ है कि नहीं। शहर के नजदीक यदि बाग है तो उत्पन्न हुआ फल जल्दी ही बिक जाता है, जिससे फल कम मात्रा में खराब होता है। बाग तथा नगर के बीच आवागमन के उचित तथा सरल-साधनों का होना आवश्यक है। बाग सड़क के किनारे होना चाहिए। यदि यातायात की अच्छी सुविधा है तो फलों की बिक्री भी आसानी से तथा समय पर हो सकती है, जिससे फल खराब होने की संभावना कम हो जाती है। अतः बाजार में फलों की माग, उचित क्रय-विक्रय की सुविधा तथा यातायात की अच्छी सुविधा आवश्यक है।

10. स्थिति—बाग जंगलों के पास नहीं होना चाहिए, अन्यथा जंगली जानवरों से काफी क्षति हो सकती है अथवा रखवाली में काफी खर्च करना पड़ेगा। आम के बाग ईंट के भट्टों के पास नहीं होने चाहिए। इससे आम के बाग अच्छी तरह प्रभावित होते है और उत्पादन बहुत ही कम हो पाता है।

बाग के आसपास के रहने वाले व्यक्ति सभ्य हों, चोर तथा बदमाश न हों अन्यथा हानि होने की संभावना रहती है। बाग ऐसी आबादी के पास होना चाहिए जिनसे उद्यान कार्य में सहायता हो सके।

अभ्यासार्थ प्रश्न

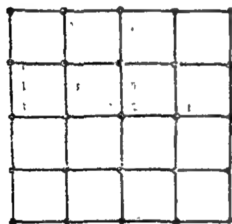
1. अनार व केला का बाग लगाने के लिए क्रमशः स्थान का चुनाव करते समय किन-किन बातों को ध्यान में रखेंगे संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

2. आम का बाग ईंट के भट्टे से 500 मीटर से कम दूरी पर लगाने से
   (अ) आम के वृक्ष सूख जाते हैं।
   (ब) आम की पत्तियां झड़ जाती हैं।
   (स) आम के फलों पर काले धब्बे पड़ जाते हैं।
   (द) आम के वृक्ष पर अधिक फल लगते हैं। ( )

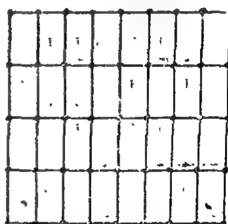
बाग लगाने के तरीके

बाग में पौधे लगाने के पूर्व एक योजना तैयार कर लेनी चाहिए। उस योजना में पौधे की स्थिति तय कर दी जाती है। बाग में भिन्न-भिन्न समय पर फल-फूल देने वाले पौधे भी एक साथ नहीं लगाये जाते, क्योंकि इससे फल की तोड़ाई-सिंचाई आदि में कठिनाई होती है। बाग में वृक्षों के उपयुक्त विकास और कृषि कार्यों में सुविधा होते हुये अधिकाधिक फल उगाये जा सकें। इस दृष्टिकोण से बाग लगाने के कई तरीके अपनाये जाते हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

1. **वर्गाकार**—इसमें वृक्षों से बनने वाली आकृति लम्बाई और चौड़ाई दोनों में बराबर होता है और एक रेखा दूसरे से समकोण बनाती हुई चलती है। इस तरह चार वृक्षों से एक वर्ग बन जाता है, इसलिए यह वर्गाकार विधि कहलाती है।



चित्र — वर्गाकार

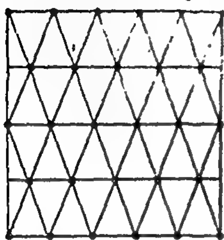


चित्र — आयताकार

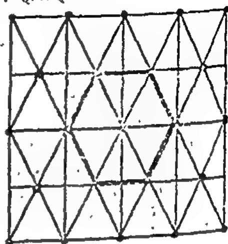
2. **आयताकार**—इसमें आकृति लम्बाई-चौड़ाई बराबर नहीं होती है। वृक्ष से वृक्ष की दूरी, पंक्ति से पंक्ति की दूरी की अपेक्षा कम होती। अर्थात् कतारों की वास्तविक दूरी अधिक होती है। इससे जुताई-गुड़ाई आदि क्रियाओं में अधिक सरलता होती है।

3. **त्रिभुजाकार**—इसमें, त्रिभुज के तीनों कोणों पर पौधे लगते हैं। कतार एवं पौधों की दूरी वर्गाकार के अनुसार होती है। परन्तु दूसरी कतार में पौधे पहली

कतार के पौधे के बीच (मध्य) लगायी जाती है। इसे समद्विबाहु त्रिभुज विधि भी कहते हैं क्योंकि इसमें दो भुजायें समान होती हैं।



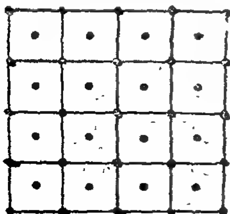
चित्र 59 त्रिभुजाकार



चित्र 60 षट्भुजाकार

4. षट्भुजाकार—इसे समत्रिबाहु त्रिभुज विधि भी कहते हैं। इसमें वृक्ष समत्रिबाहु त्रिभुज के तीनों कोणों पर लगाये जाते हैं। इस विधि में वृक्षों की आपस की दूरी सदैव एक-सी रहती है। वर्गाकार की अपेक्षा 15 प्रतिशत अधिक वृक्ष लगते हैं। अतः महँगी जमीन में इस विधि का अधिक प्रयोग होता है।

5. पूरक—वर्गाकार पद्धति से पौधे लगाकर यदि प्रत्येक वर्ग के बीच में एक पौधा और लगा दिया जाय तो वह पूरक पद्धति हो जाती है यद्यपि पौधे अधिक लगते है, पर पौधो के बीच का स्थान बहुत कम रह जाता है। इसीलिए बीच का पौधा अधिकतर अस्थायी पौधा होता है।

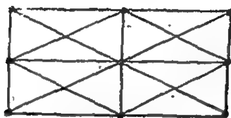


चित्र 61 पूरक



चित्र 62 कन्टूर

6. कन्टूर विधि—यह विधि 4 ° से अधिक ढाल वाले स्थानों में अपनायी जाती है। इस विधि से समान ऊँचाई वाले स्थानों को मिलती हुई एक रेखा खींच कर निश्चित दूरी पर पौधे लगाते हैं। इस रेखा के समानान्तर निश्चित दूरी पर एक खूंटी लगाकर समान ऊँचाई वाले स्थानों को मिलाती हुई दूसरी रेखा खींचकर समान दूरी पर वृक्षारोपण करते हैं। इसी प्रकार अन्य रेखायें खींचकर वृक्षारोपण करते हैं।



चित्र 63 ताराविधि

7. तारा विधि - यह तरीका त्रिकोण है, परन्तु पौधों का फासला अधिक बढ़ाकर कतारों की दूरी कम कर दी जाती है। इस विधि से कम भूमि पर अधिक पौधे लगाये जा सकते है। पौधे लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पौधों को फैलने के लिए चारों तरफ काफी मात्रा में एक-सी भूमि मिल सके ताकि पौधे के फैलने में रुकावट न पड़ सके। एक हेक्टर भूमि में 425 पौधे लग सकते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बाग लगाने की विभिन्न विधियों का सचित्र वर्णन करो।
2. बाग लगाने की सबसे अच्छी विधि कौनसी है और क्यों ?
3. पहाड़ी इलाके में बाग लगाने की कौनसी विधि अपनायी जा सकती है ? कारण सहित उत्तर की पुष्टि करो।
4. प्रत्येक दिशा से प्रत्येक पौधे के बीच की दूरी..............विधि में बराबर होती है—
   (अ) वर्गाकार। (ब) आयताकार।
   (स) त्रिभुजाकार। (द) षट्भुजाकार।
   (य) पूरक विधि ( )

—

अध्याय-11

वृक्षारोपण

1. पौधे लगाने के लिए गड्ढों की तैयारी—पौधे लगाने के लिए पौधे की अवस्था को देखना चाहिए। पौधा जितना छोटा होगा उसकी जड़ें छोटी और कोमल होंगी, इसलिए शुरू में जड़ों को फैलने के लिए ऐसी मिट्टी होनी चाहिए, जो काफी नरम, भुरभुरी और ऊपजाऊ हो। आम जैसे पेड़ के लिए 90 × 60 × 90 से.मी. आकार के गड्ढे तथा छोटे वृक्षों के लिए जैसे नीबू आदि के लिए गड्ढों का आकार 60 × 60 × 60 से.मी. रखा जाता है।

गड्ढों को पौध लगाने से 2-3 माह पूर्व ही खोद लेना चाहिए जिससे धूप व हवा के लगने से हानिकारक कीड़ों का संहार हो सके। गड्ढा भरने के लिए एक भाग गोबर अथवा कम्पोस्ट की खाद और चार भाग मिट्टी के मिश्रण के साथ 200 ग्राम बी. एच. सी का प्रयोग करना चाहिए। कच्ची खाद का कदापि प्रयोग नहीं करना चाहिए, अन्यथा दीमक लगने का अंदेशा रहता है। खाद और मिट्टी का मिश्रण दबा-दबा कर भरना चाहिए जो कि सतह से 15 से 20 से. मी. की ऊँचाई तक हो। हल्की भूमि में गड्ढे उथले (कम गहरे) रखे जा सकते हैं।

2. पौधों की एक दूसरे की दूरी – पौधों को पास-पास लगाना ठीक नहीं है। प्रत्येक पौधे के चारों ओर फलने-फूलने के लिए उचित भूमि होनी चाहिए। निकट अथवा घने पौधे लगाने से हवा तथा रोशनी अन्दर प्रवेश नहीं हो सकती, जिससे फल चारों ओर की शाखाओं पर बराबर नहीं लगते। प्रत्येक किस्म के पौधों को लगाने का फासला उनकी किस्मों पर निर्भर रहता है। फल-वृक्ष की उचित दूरी निम्न सारणी में दिखाई गई है।

तालिका संख्या-52
फल-वृक्षों की उचित दूरी

फल का नाम	कतार की दूरी	वृक्ष की दूरी
1. आम	9.19	9.12
2. अमरूद	5.8	5.8
3. केला	2.5	2.5
4. पपीता	2.5	2.5

5. अंगूर	2·5–5.0	2·5–3·0
6. अनार	3·5–6.0	3·0
7. नीबू प्रजाति		
(अ) संतरा	5·5	5.5
(ब) माल्टा	5·0	5·0
(स) ग्रेपफ्रूट	6·0	6·0

3. पौध लगाने का समय—पौधे लगाने के समय के अनुसार पौधों को दो भागों में बांटा गया है—

(अ) पतझड़ वाले (डेसीडुअस)—ये वे पौधे होते हैं जिनकी पत्तियाँ जाड़ों के दिनों में गिर जाती है। जैसे आड़ू, सेब, नासपती, अलूचा आदि। इनको जनवरी में लगाना चाहिए।

(ब) बिना पतझड़ वाले (नॉन डसीडुअस)—इन पौधों को जुलाई में लगाते हैं इसके बाद शरद अथवा बसंत ऋतु में भी लगा सकते हैं। इन पौधो की पत्तियाँ पूरी तरह से नही झड़ पाती। गमलों में उगे हुए पौधों को प्रत्येक ऋतु में लगा सकते हैं। उदाहरण—आम, अमरूद, लीची, संतरा आदि।

4. पौधे लगाना—पौधों को गड्ढे में लगाते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखने से अधिक सफलता मिलने की सम्भावना रहती है—

1. पौधों की जड़ों के ऊपर लगे टाट, फूस आदि को सर्वप्रथम सावधानी से अलग कर देना चाहिए।
2. पौधों को गड्ढे के ठीक बीचों-बीच में लगाना चाहिए।
3. पौधों को उचित गहराई पर लगाना चाहिए। यदि अधिक गहरा लगा दिया तो जड़े गलने की संभावना रहती हैं। यदि ज्यादा उथला लगा दिया है तो जड़ों की मिट्टी कटाव से नष्ट हो जाती है।
4. गड्ढा ऐसा होना चाहिए कि जड़ें चारों ओर बराबर फैल सकें।
5. पौधे को बिल्कुल सीधा तथा खड़ा लगाना चाहिए ताकि उनकी जड़ें स्वाभाविक दशा में रह सकें।
6. पौधा लगाने के बाद गड्ढों में मिट्टी को ठीक-ठीक दबा देनी चाहिए ताकि गड्ढे की मिट्टी पौधे वाली मिट्टी से मिल सके। साथ ही वायु अन्दर प्रवेश न कर सके।
7. पौध को शाम के समय अथवा कम धूप (बदली) वाले दिन में लगाना चाहिए।
8. पौध लगाने के तुरन्त बाद ही हजारे से सिंचाई कर देनी चाहिए।
9. पौध लगाने के बाद शाखाओं का $\frac{1}{3}$ या $\frac{1}{2}$ भाग आवश्यकतानुसार काट देना चाहिए ताकि उसका आकार नहीं बिगड़े।

10. पौधे कतारों में एक सीध में रहें ताकि बाग के अन्दर निकाई-गुड़ाई करना सुलभ हो सके और बाग के अन्दर वाला रिक्त भाग प्रयोग में लाया जा सके।

11. यदि पौधे बाहर से मंगाये तो हार्डनिंग की क्रिया के बाद ही रोपना चाहिए।

12. पौध लगाने के बाद तेज धूप अथवा शुष्क हवा से बचाने का प्रबन्ध करना चाहिए। इस समय तेज धूप व लू अधिक हानि पहुँचाती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वृक्षारोपण के लिए गड्ढे कब और कैसे तथा किस आकार के तैयार करने चाहिए ? गड्ढों की भराई करते समय किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए।
2. पौधों को गड्ढों में लगाते समय किन-किन बातों को ध्यान में रखें।
3. पतझड़ वाले पौधों की रोपाई करनी चाहिए—
   (अ) जनवरी-फरवरी,
   (ब) मई-जून,
   (स) सितम्बर-अक्टूबर,
   (द) वर्ष भर। ( )

पौधे खरीदते समय ध्यान देने योग्य बातें

उद्यान लगाने के लिए अच्छे पौधों का होना अत्यन्त ही आवश्यक है। अच्छे पौधों के लिए यह आवश्यक है वे अच्छी किस्म के और पूर्ण स्वस्थ हो। पौधों को खरीदते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. नर्सरी में पौधे स्वयं ही चुनना चाहिए।
2. विश्वासपात्र नर्सरी से ही पौधे खरीदे जायं।
3. रोपड़ भली भांति जुड़ा होना चाहिए अन्यथा हवा से टूटने का भय रहता है।
4. रोपड़ या चश्मा अच्छी किस्म के अच्छे पेड से होना चाहिए।
5. पौधे बीमारी तथा कीड़ों से रहित होने चाहिए।
6. पौधा नर्सरी में एक या दो बार बदला जा चुका होना चाहिए इससे दुबारा लगाने पर हानि कम पहुंचती है।
7. पौधा स्वस्थ एवं मजबूत होना चाहिए।
8. पौधे की आयु 1–1½ वर्ष से अधिक नहो होनी चाहिए।

पौधों को नर्सरी से उठाना—यदि पौधे स्वयं के बाग की नर्सरी में तैयार किये गये हों, तो उन्हें बहुत सावधानी से उठाना चाहिए। 10-12 से. मी. व्यास लेकर पौधे को केन्द्र मानकर मिट्टी को खोदना चाहिए और लगभग 3-3·5 से.मी. की गहराई तक खोदते जाते है। फिर नीचे से पौधे को मिट्टी सहित उठा लेते है। किनारे के अस्थानिक मूल भी काट देना चाहिए।

बाहर से मंगाये हुये पौधे—बाहर से मंगाये हुये पौधों की देखभाल पहले से करनी चाहिए। उनको पहले पानी से सींच देना चाहिए, यदि पानी कम होने के कारण पत्ते मुरझा रहे हों तो नीचे से कुछ पत्तों को छोड़कर तोड़ देना चाहिए जिससे कि उत्स्वेदन कम हो।

यदि पौधा लगाने का क्षेत्र पूर्ण रूप से तैयार हो तो वहीं पर मंगाये हुये पौधों को लगा देना चाहिए. अन्यथा किसी छायादार ठंडे स्थान में छोटे-छोटे गड्ढे खोदकर इन पौधों को लगा देना चाहिए। पुनः जब क्षेत्र तैयार हो जाय तो इनको इस स्थान से निकाल कर लगा देना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फलों के पौधे खरीदते समय किन-किन बातों का ध्यान में रखना चाहिए?
2. पौधों को नर्सरी से किस प्रकार निकालेंगे तथा बाहर से मंगाये हुए पौधे को किस प्रकार प्रतिरोपित करेंगे?

अध्याय–13

फलों के पौधों की नर्सरी तैयार करना

फलों का बगीचा लगाने के लिए स्थान का चुनाव करने के अध्याय में जो बातें बताई हैं उन्ही के आधार पर नर्सरी के स्थान का चुनाव कर लेना चाहिए। स्थान का चुनाव करने के पश्चात् स्थान, भूमि एवं जलवायु का ध्यान रखते हुये हमें एक सूची बना लेनी चाहिए कि नर्सरी में कौन-कौन से फलों के पौधे तैयार करने हैं। कुछ फलों के पौधे तो वे होंगे जो बीज द्वारा आसानी से मातृ वृक्ष से बगैर खास अन्तर के तैयार किये जा सकते हैं। जैसे पपीता, फालसा, नीबू इत्यादि। कुछ फलों के वे पौधे होंगे जो बीज द्वारा तैयार न किये जाकर प्रायः वानस्पतिक प्रसारण द्वारा तैयार किये जाते हैं। कलमी पौधे तैयार करने के लिए मातृ वृक्षों को नर्सरी में लगाना आवश्यक है। जैसे मौसमी, सन्तरा, माल्टा, नीबू, कलमी आम इत्यादि। अतः सर्व प्रथम हमें अपनी सूची के अनुसार किसी प्रोजनी नर्सरी या राजकीय नर्सरी में अच्छे पौधों से तैयार किये गये पौधों को छांटकर नर्सरी में लगाना चाहिए। फलों के बीज भी हमें जहां तक सम्भव हो इसी प्रोजनी नर्सरी से ही मंगवाने चाहिए। यदि प्रोजनी नर्सरी से बीज प्राप्त न हो सके तो जो पौधे नीरोग हों खूब फूलते फलते हो फल स्वाद व रूप रंग में अच्छे हों उनसे पके हुए फल लेकर बीज निकाल लेना चाहिए।

बीज बरसात में बोना अच्छा रहता है। किन्तु फरवरी, मार्च में भी बो सकते हैं। भूमि को अच्छी तरह भुरभुरी बनाकर सड़ा गोबर का खाद मिला देना चाहिए। क्यारियां तीन फुट के लगभग चौड़ी व आवश्यकतानुसार लम्बी बना सकते हैं, बीज बोने के पश्चात् झारे से पानी देना चाहिए और जब पौधे निकल आवें धोरे से पानी शुरू कर देना चाहिए। यदि दीमक लगने की सम्भावना हो तो आम के अध्याय में बताये गये उपचारों का प्रयोग करना चाहिए। जब पौधे तीन चार इंच ऊंचे हो जावें तो दूसरे स्थान पर बदल देना चाहिए। दूरी फल विशेष पर निर्भर करती है।

पपीते के पौधों को जब वे तीन चार इंच ऊंचे हो जावें छोटे गमलों में बदल देना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया और पौधों को थोड़ी दूरी पर भी ले जाना हुआ तो पौधे प्रायः रास्ते में ही मर जाते हैं। या लगाने के पश्चात् मरने की प्रतिशत अधिक होगी, गमले लगभग डेढ़ दो रुपये सैंकड़ा के हिसाब से बनवाये जा सकते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रमुख फलों के पौधे तैयार करने की विभिन्न विधियों के नाम लिखिए।
2. नर्सरी में फलों के बीजों की बुआई किस समय करते हैं तथा पौधे किस आयु में स्थायी स्थान पर लगाने योग्य हो जाते है ?

पौधों को नर्सरी से बाहर भेजना तथा मँगवाना

बगीचा लगाने के लिए अधिकांश पौधे बाहर से ही मंगवाये जाते है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने में काफी सावधानी रखने की आवश्यकता है। थोड़ी सी लापरवाही से ही पौधे नष्ट हो जाते हैं। पौधे मगवाने से पहले उनके लगाने का समय मालूम होना चाहिए। गड्ढे इत्यादि पहले से ही खोदकर तैयार रखने चाहिए ताकि पौधे आते ही जल्दी मे लगाये जा सकें।

(1) जमीन से पौधे निकालना—यदि क्यारियों की जमीन सूखी और सख्त है तो पौधे निकालने से पहले हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए इससे मिट्टी मुलायम हो जाती है और पौधों की पींड अच्छी तरह निकल आती है। सूखी मिट्टी खोदने से पोड नहीं बनती है और जड़ों को हानि पहुंचाती है जब मिट्टी खोखले और खुरपी चलने योग्य हो जावे तो पौधों के चारों तरफ से मिट्टी को गहरा काटकर पौधे सहित पींड को निकाल लेते हैं। पोड़ उतनी ही बड़ी खोदनी चाहिए जितना पौधों की जड़ों का फैलाव हो। आमतौर पर एक या दो साल तक के बदले हुए पौधों की पींड 4 से 6 इंच चौड़ी और 6 से 9 इंच गहरी खोदनी चाहिए इससे जड़े कम से कम कटती है। इस तरह पौधे निकाल कर छाया में रख देना चाहिए। कलिकोय या रोपण किये हुए पौधों के बीजू पौधे के यदि कोई शाखा निकली हो या बीमार, सूखी टेढी-मेढी शाखायें हो तो उनको काट देनी चाहिये। पोड को घास या जुट्टी में लपेट कर मूंज की रस्सी से बांध देना चाहिए इससे पोड़ व जड़ो की हानी नहीं होती है।

(2) पौधे भेजने का तरीका—पैक करने की टोकरियां मध्यम आकार की दो से $2\frac{1}{2}$ फुट चौड़ी तथा 9 इंच से 1 फुट गहरी होनी चाहिए। टोकरियो का पेंदा तथा ऊपरी भाग एक सा होना चाहिए ताकि पौधे अधिक संख्या में आ सकें। अधिक बड़ी टोकरियां अधिक वजनी होती है जिससे टोकरियों को उठाते समय पौधों को हानि होने की सम्भावना रहती है। टोकरी के तले मे सूखी पत्तियों या घास की दो-तीन इंच मोटी तह बिछा देनी चाहिये ताकि सफर मे झटका लगने से पौधों को हानि न पहुंचे। इस तह के ऊपर जुट्टी मे बधे पौधों को तथा अच्छी तरह टोकरी में जमाना चाहिए। टोकरी मे पौधों के चारों ओर बीच के खाली स्थानों मे घास या सूखी पत्तियां ऊपर तक भर देते हैं ताकि पौधों को रास्ते में

किसी प्रकार की हानि न पहुंचे। टोकरियों के मुंह पर मूंज अथवा किसी और रस्सी से जाल गूंथ देना चाहिए ताकि रास्ते में पौधे टोकरी से बाहर न निकल सकें। पौधों के चारो तरफ और ऊपर से बांस की खपच्चियां बांध देनी चाहिए। ऐसा करने से पौधों की कोमल शाखाएं टूट नहीं पाती है। इस प्रकार पौधो को टोकरियों में सावधानी से पैक कर देना चाहिए रेल द्वारा पौधों को भेजने से पहले पानी देना आवश्यक है। पानी झारे से देना चाहिए अथवा सबसे अच्छा तरीका यह है कि टोकरियो को ही आधी गहराई तक दो-तीन मिनिट पानी में डुबोकर निकाल लिया जावें।

फल विकास को बढ़ावा देने के लिए रेलवे बोर्ड ने कुछ फलों के पौधे चौथाई और कुछ फलो के पौधे आधे किराये पर भेजने का फैसला कर रखा है और पौधे खराब न हो इसलिए इनके यातायात को प्राथमिकता दी जाती है। यदि अधिक पौधे कही पर भेजने हों और सड़क अच्छी हो तो ट्रक द्वारा भी भेजे जा सकते है।

(3) **सफर के पश्चात् पौधों की देखरेख**—बाहर से मंगाये हुए पौधों की विशेष देख-रेख की आवश्यकता होती है। पौधो के प्राप्त होते ही सावधानी से टोकरियों को खोलकर एक-एक पौधे को निकाल कर छाया में रख देना चाहिए। धूप मे पौधे रखने से मुरझा जावेंगे। पौधों के हानि पहुंचे हुए भागो को टूटी हुई शाखाओं को काट कर हल्का सा पानी झारे से देना चाहिए। पौधों को एक दूसरे के ऊपर रखने से गर्मी पैदा हो जावेगी और कुछ पौधे नष्ट हो जावेंगे अतः पौधो को अधिक पास नही रखना चाहिए। यदि पौधे लगाने के लिए खेत तैयार न हो तो सब को एक क्यारी मे लगा देना चाहिए। नर्सरी से पौधो को निकालने के पश्चात् जितना जल्दी सम्भव हो खेत में लगा देना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बाहर भेजने के लिए पौधे किस प्रकार तैयार करेंगे? संक्षिप्त विधि लिखो।
2. बाहर से मंगाये हुए पौधो की प्रतिरोपण से पूर्व देखभाल करने को विधि लिखो।

पौध लगाने के पश्चात् शुरू की देख भाल

पौधे लगाने के पश्चात् दो तीन वर्ष तक निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(1) सिंचाई—पौधे वर्षा ऋतु में लगाये गये हैं तो पानी देने की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु दस-पन्द्रह दिन लगातार वर्षा न हो तो पानी देना चाहिए। पौधे लगाने से एक महीने तक तो तीसरे या चौथे दिन पानी देते रहना चाहिए। दूसरे महीने से 6 महीने तक हफ्ते में एक बार सिंचाई करनी चाहिए। वर्षा समाप्त होने पर वर्षा में लगाये गये पौधों को भी 6 माह तक उपरोक्त अन्तर से पानी देते रहना चाहिए। 6 माह से 2 साल तक नवम्बर से फरवरी तक 15 दिन में, मार्च-अप्रेल में 10 दिन में और मई-जून में हर 6–7 दिन पर पानी देते रहना चाहिए।

(2) निकाई-गुड़ाई—प्रथम 6 माह तक सप्ताह में एक बार और 6 माह से 2 साल तक महीने में एक बार निकाई-गुड़ाई करना चाहिए। किन्तु यदि बरसात में आवश्यकता हो तो महीने में 3 बार निकाई-गुड़ाई करनी चाहिए।

(3) पाले से बचाव—

1. पाला पड़ने का भय हो तो सिंचाई करनी चाहिए।
2. पाला पड़ने का जिस दिन भय हो धुआं करनी चाहिए।
3. पाला सहन करने वाली किस्में उगानी चाहिए।
4. जब अधिक सर्दी पड़ने लगे तो घास फूस की टाटियों को पूर्व दिशा में खुला रखते हुए पौधों के चारों तरफ लगा देना चाहिए।
5. बाग के दक्षिण-पश्चिम एवं उत्तर-पश्चिम ठंडी हवाओं के बाहर की रोकथाम के लिए वायु-वृत्त लगाना चाहिए।
6. घास फूस की टटरी बनाकर किशोर पौधों को ढक देना चाहिए।
7. वायु मशीन का प्रयोग करना चाहिए। ये मशीन अपने बड़े पंखों से उद्यान का तापक्रम बढ़ा देते हैं।
8. ब्रूक के अनुसार प्रति हेक्टर 60–130 हीटर जलाकर उद्यान का तापक्रम 20 से 30% अधिक कर सकते हैं।
9. पाला संरक्षण की एक आधुनिकतम विधि इनफ्रा-रेड विकिरण है जिससे

कम सिचाई के पौधे बचाये जा सकते हैं। इनका प्रयोग बड़े बागों में नहीं होता, क्योंकि विकिरण से पूरा उद्यान गर्म नहीं किया जा सकता।

10. उद्यान में वृक्षों के बीच कवर क्रापिंग करके भी गर्म रखा जा सकता है। और कुछ सीमा तक पाले से बचाया जा सकता है।

(4) तेज धूप व लू से बचाव—

1. पौधों को दक्षिण-पश्चिम मानसूनो झुका कर लगाया जाये।
2. बाग के दक्षिण-पश्चिम एवं उत्तर-पश्चिम में वायु वृत लगायी जाये।
3. गर्मियों में जब लू चलना शुरू हो, घास फूस की टाटियों को पूर्व दिशा की ओर खुला रखते हुए पौधे के चारों तरफ लगा देना चाहिये।
4. पेड़ों के तनों पर सफेदी कर दो जाय जिससे उन पर गर्मी का असर कम पड़े।
5. कुछ स्थानो पर मिट्टी या कच्चे ईंटों की दीवाल खड़ी कर दी जाती है ताकि पौधों को अधिक धूप न लग सके।
6. पौधों को कुछ समय के अन्तर पर सिंचाई करते रहने से भी अधिक ताप से उनकी रक्षा होती है।

(5) बीजू पौधे पर शाखाओं का फूटना—कलमी पौधे पर बीजू पौधों से शाखायें फूट जाती हैं, इन्हें समय-समय काटते रहना चाहिए अन्यथा सायन कमजोर हो जायेगा।

(6) काट-छांट—समय-समय पर पेड़ का ढाचा मजबूत बनाने और प्रत्येक शाखा को पूर्ण रूप से रोशनी और हवा मिलती रहने के लिए काट-छाट करते रहना चाहिए।

7. खाद—प्रत्येक पौधों को प्रतिवर्ष किस्म के अनुसार खाद देते रहना चाहिए। फसल विशेष के लिए सम्बन्धित अध्याय एवं फल वृक्षों को खाद वाले अध्याय में विस्तार पूर्वक बताई गई है।

(8) कीड़े मकोड़ों से बचाव—

1. कीट नाशक दवाओं का प्रयोग करना चाहिए।
2. नीम की खली प्रयोग करना चाहिए।
3. अच्छी सड़ी हुई खादो का प्रयोग करना चाहिए।
4. सल्फर और कार्बनडाई सल्फाइड की धूनी देनी चाहिए।
5. फसल चक्र का प्रयोग करना चाहिए।
6. प्रति रोधी फसलों को उगाना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फल वृक्षों को पाले से बचाने के लिए क्या-क्या उपाय कर सकते हैं।
2. फल वृक्षों पर आंधी व गर्म हवाओं का क्या प्रभाव पड़ता है ? इनके प्रभाव से बचाने के उपाय सुझाइये।
3. बाग में खाद देने का समय लिखो।
4. पपीते के पौधे को प्रति वर्ष..........किलो गोबर खाद देते हैं—
   (अ) 1 किलो।
   (ब) 10 किलो।
   (स) 30 किलो।
   (द) 100 किलो। ( )

अध्याय-16

फल वृक्षों को खाद

अच्छी बागवानी के लिए जरूरी है कि फलो के पेड़ पौधों को सही मात्रा मे, सही समय पर खाद उर्वरक दिया जाय। वृक्षों की बढ़वार एवं फसल मे आवश्यक तत्व वाले खाद, समुचित मात्रा मे उपयुक्त समय पर, सही-सही तरीको से देने पर निर्भर करते है। अग्रांकित तालिका द्वारा फल-वृक्षों के लिए हर वर्ष दिये जाने वाले खाद उर्वरकों की मात्रा व उन्हे देने का समय बताया गया है।

आगे दी गई तालिका से पता चलता है कि फल-वृक्षों को खाद देने मे कुछ विशेषताएं अपनानी पड़ेंगी। ऐसा इसलिए है कि—

1. एक बार रोपाई के बाद फल-वृक्ष उसी स्थान पर कई वर्षों तक लगे रहते हैं।
2. जबकि साधारण फसलो की जड़ें धरातल के पास ही रहती है, फल वृक्षों की जड़ें तो एक फुट से अधिक गहराई पर ही होती है।
3. फल-वृक्ष अपने तने मे शर्करा पदार्थ एकत्र करते है।
4. ये शुरू से 3 से 5 वर्ष तक तो केवल बढ़ते ही है और बाद मे फूलते-फलते है।
5. फल-वृक्षो मे प्रतिवर्ष सुषुप्तावस्था, बढ़वार एवं फलने के दिन लगभग नियत से होते है।

इन सब कारणो से उपरोक्त तालिका मे बताई गई खाद की मात्राओ और उन्हे देने के समय की चर्चा मे इन बातो का ध्यान रखा गया है कि—

1. फल-वृक्षों को उर्वरको के अलावा खादो की भी काफी मात्रा दी जाय ताकि मिट्टी में काफी मात्रा में जीवांश पहुंचे व उनकी रचना व दशा सुधरी रहे ताकि इससे पेड़ो को काफी समय तक सब भोज्य तत्व धीरे-धीरे मिलते रहे। अतः गोबर, मेंगनी की खाद, कम्पोस्ट, पत्ती की खाद, मुर्गियो व पक्षियों बीट, खलियां, पड्डी व चूरा आदि पेड पौधो को खूब देना चाहिए।
2. क्योकि उर्वरक शीघ्र व काफी मात्रा मे भोज्य तत्व देते है अतः उन्हे पेड़ों की वृद्धि एवं फूलने के समय से ठीक पहले दिये जाय। जो फल-वृक्ष वर्ष मे एक से अधिक बार फलते हैं उनसे एक ही बार फल लेना चाहिए और खाद उर्वरक उसी समय के पूर्व लगावें जिस मौसम की फसल लेना हो।

तालिका नं. 53 फल वृक्षों की खाद

फल-वृक्ष व उनके लिये खाद उर्वरक	उर्वरक मात्रा जो रोपाई के बाद प्रति पेड़ देनी है (किलो ग्राम में)					प्रति वर्ष देने का समय
	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	चतुर्थ वर्ष	पंचम वर्ष व भविष्य	
1	2	3	4	5	6	7
1 आम						
गोबर की खाद	20.00	40.00	60.00	80.00	100.00	
सुपरफास्फेट या हड्डी का चूरा	0.25	0.50	0.75	4.00	1.25	जनवरी माह में दें।
पोटेशियम सल्फेट	—	—	—	0.25	0.25	
अमोनियम सल्फेट	0.50	1.00	1.50	2.00	2.50	आधी मात्रा जनवरी में व आधी अप्रेल में दें।
2. अमरूद						
गोबर की खाद	20.00	40.00	60.00	80.00	100.00	
हड्डी का चूरा	0.25	0.50	0.75	1.00	1.25	अम्बे बहार फसल के लिए जनवरी में, व मृगबहार लेने पर जून में दें।
पोटेशियम सल्फेट	—	—		0.25	0.25	
यूरिया	0.25	0.50	0.75	1·00	1.25	
जस्ता-मिश्रण (इसके घोल से पूरे पेड़ की तराई करें)	—	—	—	0.5 किलो जिंक सल्फेट 0.25 किलो बुझा चूना 75 लीटर पानी		आधी मात्रा खाद के साथ व शेष जून (अम्बे बहार) या सितम्बर मृगबहार में फरवरी एवं जुलाई माह में पेड़ों पर फुहारिये।
3. अंगूर						
गोबर की खाद	20.00	40.00	60.00	80.00	100.00	
हड्डी का चूरा या सुपरफास्फेट	0.50	1.00	1.50	2.00	2.50	
पोटेशियम सल्फेट	—	0.25	0.25	0.50	0.50	जनवरी माह में दें।
अमोनियम सल्फेट	0.25	0.50	0.75	1.00	1.25	आधी मात्रा जनवरी में व आधी अप्रेल में दें।
4. माल्टा, मौसम्बी व सन्तरा						
गोबर की खाद	20.00	40.00	60.00	80.00	100.00	
हड्डी का चूरा या सुपरफास्फेट	0.50	1,00	1.50	2.00	2.50	
खली (नीम अथवा एरन्ड की)	0.50	1.00	1.50	2.00	2.50	जनवरी माह में दें।
पोटेशियम सल्फेट	—	—	0.25	0.25	0.50	

अमोनियम सल्फेट	0.25	0.50	0,75	1.00	1.15	आधी मात्रा अप्रैल में व आधी जून में दें ।
लेशतत्व मिश्रण: (इसका घोल बनाकर उससे पूरे पेड़ की तराई करे)	—	—	—	0.5 कि. जिंक सल्फेट 0.3 कि. नीला थोथा 0.2 कि. मैंगनीज सल्फेट 0.2 कि. मैग्नेशियम सल्फेट 0.1 कि. बोरेक्स 1.2 कि. फैरस सल्फेट 0.9 कि. बुझा हुआ चूना 97.6 लीटर पानी		फरवरी एवं जुलाई में पेड़ों पर फुहारिये ।
5. नीबू						
गोबर की खाद	10.00	20.00	30.00	40.00	50.00	जनवरी माह में ।
हड्डी का चूरा या सुपरफास्फेट	0.50	1.00	1.50	2.00	2.50	आधी मात्रा अप्रैल में व आधी जून में
अमोनियम सल्फेट	0.25	0.50	0.75	1.00	1.25	
6. अनार						
गोबर की खाद	10.00	20.00	30.00	40.09	50.00	अम्बे बहार फसल के लिए जनवरी में, व मृग बहार लेने पर जून में दें ।
हड्डी का चूरा या सुपरफास्फेट	—	0.25	0.25	0.50	0.50	आधी मात्रा जनवरी में आधी जून
अमोनियम सल्फेट	0.25	0.56	0.75	1.00	1.26	(अम्बे बहार) या सितम्बर (मृग बहार) में
7. पपीता						
गोबर की खाद	30.00	20.00	30.00	—	—	
सुपरफास्फेट	0.75	0.75	0.75	—	—	जुलाई-अगस्त में दें ।
अमोनियम सल्फेट	0.25	0.25	0.25	—	—	अक्टूबर में दें ।
8. केला						
गोबर की खाद	20.00	20.00	30.00	—	—	जून माह में दें ।
खली की खाद	1.50	.50	1.50	—	—	
अमोनियम सल्फेट	0.50	0.50	0.50	—	—	एक भाग जुलाई में दूसरा भाग अगस्त में व तीसरा भाग सितम्बर में दें ।

3. दिये जाने वाले खाद-उर्वरक व उसकी मात्रा—फसल, उसके पेड़ों की आयु एवं मिट्टी पर निर्भर करती है। अतः पेड़ों की आयु के साथ-साथ खादों की मात्रा भी प्रतिवर्ष तब तक बढ़ाई जाय जब तक कि ये बढ़वार पूरी कर फलने न लग जाय। बाद में हर वर्ष खादों की वही मात्रा देते रहें।

उपर्युक्त तालिका में बताई गई खाद-उर्वरकों की मात्राएँ अनुसंधान अनुभव पर ही आधारित हैं, अतः इनका पालन कर किसान लाभान्वित ही होंगे।

रोपाई से पहले क्या करें—

पीछे दी गई तालिका में केवल एक साल और उसके बाद की उम्र के वृक्षों को दिये जाने वाले खादों की ही चर्चा की गई है, किन्तु पौधों की रोपाई के समय भी मिट्टी को तैयार कर कुछ खाद अवश्य देना होता है।

रोपाई के 1-2 माह पूर्व एक-एक मीटर बड़े व गहरे गड्ढे खोद लें। खुदाई करते समय ऊपर के आधा मीटर की मिट्टी एक तरफ से शेष आधा मीटर की मिट्टी दूसरी तरफ रखें और 20-30 दिन तक धूप में तपने दें। बाद में ऊपर वाली मिट्टी से एक किलो हड्डी का चूरा 10 किलो खाद व एक मुट्ठी एल्ड्रीन 5% दवा मिलाकर, गड्ढे में भर दें। बाद में गड्ढों की भराई कर लें ताकि मिट्टी जम जाय।

रोपाई के एक माह पहले ही गड्ढों की भराई कर लें। बाद में जमी हुई मिट्टी में छोटी-छोटी सी जगहें बना रोप दें।

रोपाई के बाद खाद कैसे दें—

रोपाई के बाद हर पौधे के तने के चारों ओर 6-6 इन्च दूर तक इतनी मिट्टी चढ़ा दें कि थाले में दिया गया खाद व पानी पौधे के तने को न छुए।

थालों में खरपतवार निकाल कर पूरी सफाई रखें।

जैसे-जैसे वृक्ष बढ़े उसके थावले के घेरे को बढ़ाते जायं। हमेशा थाला इतना बड़ा हो जितना बड़ा घेरा पेड़ की शाखाओं से बनता हो। पेड़ के तने के साथ लम्बी ऊँची मिट्टी, जिसमें खाद पानी नहीं देना होता है, उसका घेरा भी बढ़ाते जायं ताकि पेड़ के पूर्ण विकास तक उसके तने के चारों ओर करीब दो फीट चौड़ी मिट्टी जमा हो जाय।

जब वृक्ष पूरे विकसित हो जायेंगे तो विभिन्न वृक्षों के थाले बढ़कर एक दूसरे से सट जायेंगे। इस समय इन थालों को आपस में नालियों से जोड़ दें, ताकि सिंचाई में सुविधा हो।

थालों की खुदाई कर खादों को इस प्रकार मिट्टी के साथ मिलावें कि वे भोजन लेने वाली पतली जड़ों के नजदीक रहें। किन्तु ऐसा करते समय सावधानी रखें कि कहीं ये कोमल जड़ न कट जायं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फल वृक्षों को खाद देने से पूर्व किन-किन बातों का ध्यान रखा जाता है ?
2. आम, अमरूद और अंगूर में प्रथम से पांच वर्ष तक विभिन्न खादों की मात्र तालिका बनाकर लिखें ।
3. रोपाई से पहले और रोपाई के बाद खाद कैसे दें, संक्षेप में लिखें ।
4. निम्नांकित फलों के वृक्षों में खाद की मात्रा लिखें ।
   नीबू, अनार, पपीता

अध्याय-17

सिंचाई

भूमि में नमी की कमी होने पर कृत्रिम रूप से पौधों को पानी देना सिंचाई करना कहलाता है।

सिंचाई की आवश्यकता—निम्नलिखित परिस्थितियों में सिंचाई की आवश्यकता होती है—

1. पौधों की कोशिकाओं में, लगभग 90 प्रतिशत पानी पाया जाता है। कोशिकाओं में परासरणी दाब (Osmatic pressure) बनाये रखता है। अतः भूमि में नमी की कमी होने पर सिंचाई की आवश्यकता होती है।

2. पेड़-पौधे अपना भोजन घोल के रूप में भूमि से ग्रहण करते हैं। पर्याप्त मात्रा में सुचारु रूप से अपना भोजन ग्रहण कर सकें, इसके लिए भूमि में नमी की कमी होने पर सिंचाई की आवश्यकता होती है।

3. पौधे अपनी पत्तियों द्वारा पानी वाष्पीकृत करते रहते हैं। इसकी पूर्ति के लिए भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। नमी की कमी होने पर पौधे मुर्झा जाते हैं। अतः भूमि में नमी की कमी होने पर पौधों को मुर्झाने से बचाने के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है।

4. अधिक उपज प्राप्त करने के लिए अधिक मात्रा में खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग के साथ-साथ सिंचाई की आवश्यकता होती है।
5. अतिरिक्त मौसम में फसलें उगाने के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है।
6. बीजों की बुवाई के लिए भूमि में नमी के अभाव में बुआई से पूर्व सिंचाई की आवश्यकता होती है।

7. भूपरिष्करण क्रियाओं के लिए भूमि में नमी की कमी होने पर सिंचाई की आवश्यकता है।

8. भूमि में हानिकारक नमकों का जमाव होने पर, जिप्सम मिलाकर नमकों को समाप्त करने के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है।

9. पानी पौधे के हरे भागों में पहुँच कर प्रकाश की उपस्थिति में कार्बनडाई-

कार्बनडाइआक्साइड के साथ मिलकर कार्बोहाइड्रेट्स का निर्माण करते हैं। अतः भूमि में नमी की कमी होने पर सिंचाई की आवश्यकता होती है।

बाग में सिंचाई की प्रमुख विधियाँ—फल-वृक्षों की सिंचाई के लिए निम्नलिखित प्रमुख विधियाँ अपनायी जाती हैं—



चित्र सं. 64

(1) सीधी नालियों द्वारा (Straight channel method)—इस विधि में सिंचाई करने के लिए बाग के एक सिरे पर सिंचाई की प्रमुख नाली बनाते हैं। इस नाली से वृक्षों की प्रत्येक लाइन के साथ सिंचाई की नाली बना देते हैं। पानी इन नालियों में चलाने पर प्रत्येक वृक्ष तक पहुँच जाता है।

लाभ—(1) सिंचाई जल की बचत होती है।

(2) केले के पौधों को गहरी नाली बनाकर पर्याप्त पानी दिया जा सकता है।

(3) सिंचाई करते समय देख-रेख करनी पड़ती है।

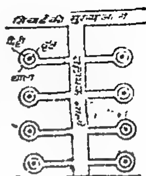
हानि—(1) मृदा कटाव अधिक होता है।

(2) प्रत्येक लाइन के अन्तिम पौधों को कम पानी मिल पाता है।

(3) प्रारम्भ के पौधों का खाद बहकर नष्ट हो जाता है।

(4) सिंचाई के पानी के द्वारा रोगों का प्रसार भी सम्भव है।

(3) **अंगूठी के आकार के थाले द्वारा (Ring System)**—इस विधि से सिंचाई करने के लिए वृक्ष के तने के चारों ओर कुछ ऊंचाई तक मिट्टी चढ़ा देते हैं। पुनः उसके चारों ओर वृक्ष के आकार के अनुसार गोल थाले बना देते हैं। इन थालों को सिंचाई की सहायक नालियों से जोड़ देते है।



चित्र सं. 66

लाभ—(1) पौधों का तना सीधे पानी के सम्पर्क में नहीं आने पाता।

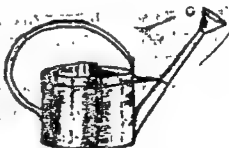
(2) सिंचाई जल ह्रास नहीं होता।

(3) प्रत्येक पौधे को दिये गये खाद व उर्वरक बह कर नष्ट नहीं होने पाते।

(4) मृदा कटाव न्यूनतम होता है।

हानि—इस विधि से सिंचाई करने के लिए थाले बनाते समय तथा सिंचाई करते समय अपेक्षाकृत अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

(4) छिड़काव विधि—बाग में सिंचाई की इस विधि का उपयोग नर्सरी, फलों की क्यारियों, गमलों, तथा हरियाली के क्षेत्र में सिंचाई के लिए करते हैं। सिंचाई के लिए हजारे या फव्वारे का उपयोग करते है।



चित्र सं. 76

लाभ—(1) पानी का ह्रास नाम मात्र का होता है।

(2) पौधों को आवश्यकतानुसार पानी दिया जा सकता है।

(3) मृदा का कटाव नहीं होने पाता।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बाग में सिंचाई की प्रमुख विधियाँ कौन-कौन सी हैं ? सचित्र वर्णन करो।
2. पौध घर की सिंचाई के लिए सबसे अच्छी विधि कौन-सी है और क्यों ?
3. संक्षिप्त उत्तर दो—
   (i) पौधों की कोशिकाओं मे कितना प्रतिशत जल पाया जाता है ?
   (ii) प्रकाश संश्लेषण भोजन की क्रिया में पौधा किस गैस का उपयोग करता है ?
   (iii) पौधे अपना भोजन किस रूप में ग्रहण करते हैं ?
   (iv) पपीते के बाग में सिंचाई की कौन-सी विधि उपयुक्त है ?
   (v) केले की सिंचाई के लिए कौन-सी विधि अपनानी चाहिए ?

अध्याय–18

कृन्तन

(PRUNING)

बागवानी का मुख्य उद्देश्य फल उगाना है। पौधों की समस्त शक्तियां अधिक तथा अच्छे फलों को उत्पत्ति में व्यय होनी चाहिए। अतः फल वृक्ष पर बेकार टहनियाँ सूखी, कमजोर, रोगी एवं पुरानी अनावश्यक टहनियों को काट देना चाहिये हवा तथा प्रकाश के उचित संचार हेतु वृक्ष के प्रत्येक भाग तक कृन्तन आवश्यक है। वैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि जिस प्रकार वृक्ष की वृद्धि के लिए जल की मात्रा, उपयुक्त खाद आदि आवश्यक होती है उसी प्रकार पौधों की कटाई-छंटाई भी आवश्यक होती है। परन्तु यह सभी वृक्षों की छटाई को कृन्तन कहते हैं।

उद्देश्य एवं लाभ—वृक्षों के कृन्तन से उत्पादक को कई लाभ होते हैं—

1. वृक्ष सुदृढ़ होता है ताकि वह फल आने के समय उन्हें सम्भालने में सफल हो सके।
2. पौधे सुडौल तथा सुन्दर बन जाते है।
3. उपज प्रति वृक्ष अधिक मिलती है।
4. पौधे के प्रत्येक भाग तक हवा एवं प्रकाश पहुँच जाता है जिनसे वे भोजन अधिक पा लेते हैं।
5. सूखी एवं बीमार तथा कीट ग्रस्त शाखाएँ अलग हो जाती हैं।
6. फलों को तोड़ने तथा दवाइयाँ छिड़कने में आसानी हो जाती है।
7. कम क्षेत्रफल में अधिक पौधे लगाये जा सकते हैं।
8. कृन्तन करने के बाद फूल और फल अधिक सुन्दर तथा बड़े आते हैं।

कृन्तन के प्रकार—शाखाओं की छंटाई दो प्रकार से की जाती है—

(1) पौधो की प्रारम्भिक कृन्तन

(2) फल वृक्षों की कृन्तन

(1) पौधों की प्रारम्भिक कृन्तन—भविष्य में अच्छे फल वृक्ष प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पौधों की कटाई-छंटाई का शुरू से ही ध्यान रखा जाय

जिससे फल वृक्ष आगे चलकर सुन्दर, स्वस्थ एवं सुडौल आकृति के बन जाय। प्रारम्भिक छंटाई को तीन भागों में विभाजित किया गया है।

(1) पुच्छाकार (Pyramid Shaped)—इस प्रकार कृन्तन में मध्य तने को बढ़ने दिया जाता है। भूमि से 25–30 से.मी. तने को छोड़ दिया जाता है और बाकी चारों ओर शाखायें बढ़ने दी जाती हैं जिनकी लम्बाई नीचे से ऊपर की ओर कम होती है। शाखाओं के बीच का अन्तर 0·3-0·4 मीटर रखते हैं। इस विधि से कृन्तन करने में जब पौधा फल वृक्ष बनता है तो दवा छिड़कने एवं फल तोड़ने में कठिनाई होती है, साथ ही नीचे के शाखाओं पर छाया रहने के कारण फल बड़े और चमकीले प्राप्त नहीं हो पाते।

(2) गुलदान का आकार (Vase Shaped)—शुरू से ही पौधे को इस प्रकार काटा जाता है कि आगे चलकर गुलदान की आकृति में बदल जाय। पौधे का रोपते समय जमीन से 5–6 मीटर छोड़ शेष पौधे के तने को काट दिया जाता है। केवल 2–5 शाखायें सिरे की ओर छोड़ देते हैं और इन पर निकलने वाली सभी शाखाओं को केवल दो को छोड़कर काट देते हैं। इसी तरह अगले वर्ष भी कृन्तन की जाती है। इस प्रकार कृन्तन करने से पौधे घने, सुन्दर तथा छतरी के आकार के बन जाते हैं। इस विधि से लाभ यह है कि प्रकाश पौधे के प्रत्येक भाग तक पहुंच जाता है लेकिन पौधे कुछ कमजोर हो जाते हैं जिससे शाखायें टूटने का डर रहता है।

(3) रूपान्तरित गुलदान का आकार (Modified Vase Shaped)—यह विधि उपर्युक्त दोनों विधियों का सम्मिश्रण है। तने की छंटाई पहली-विधि से तथा शाखाओं की छंटाई दूसरी रीति से करते हैं। यह कृन्तन करने की सर्वोत्तम विधि है। इस विधि का प्रयोग शुरू से करना चाहिए।

(2) वृक्षों की छटाई—बड़े वृक्षों की कटाई वैसे तो कम ही की जाती है फिर भी निम्नलिखित बातों का ध्यान रखकर कृन्तन-कार्य करें तो लाभ मिल सकता है।—

1. बराबर हरे-भरे रहने वाले वृक्षों की छंटाई फल तोड़ने के बाद की जाती है। उनमें वे ही डालियां काटी जाती हैं जिनमें पिछले वर्ष फल निकलने होते हैं ताकि उनसे नई टहनियाँ निकल सकें।
2. सूखी टूटी, बीमार एवं कमजोर शाखा को काट देना चाहिए।
3. शाखाओं को इस प्रकार काटना चाहिए ताकि वृक्ष के प्रत्येक भाग में वायु एवं प्रकाश का संचार ठीक प्रकार से हो सके।
4. आपस में मिल रही शाखाओं को काट देना चाहिए।
5. कृन्तन-कार्य उसी समय करना चाहिए जबकि शाखायें या टहनियाँ सुषुप्तावस्था में हों। अन्यथा सैप (*Sap*) का बहाव होने से वृक्ष क्षतिग्रस्त हो जाता है।

6. जब फल वृक्ष पर फल न लगते हों तो कृन्तन आवश्यक है।
7. वृक्ष की यदि वृद्धि रुकी हुई हो तो कृन्तन करना चाहिए।
8. वानस्पतिक वृद्धि यदि आवश्यकता से अधिक हो गई हो जिससे फल न लग रहे हों तो कृन्तन करके वानस्पतिक वृद्धि पर नियन्त्रण किया जा सकता है।
9. कटाव सीधा एवं चिकना करना चाहिए ताकि कटाव शीघ्र भर जाय अन्यथा कटाव मे सड़ाव शुरू हो जाता है और बीमारी पैदा करने वाली फफूंदी का आक्रमण हो जाता है।
10. अतः कटाव के शीघ्र ही बोर्डो पेस्ट लगा देना चाहिए जिससे बीमारी आदि का भय दूर हो जाता है।

जड़ों की छंटाई (Root Pruning)

जड़ों से पत्तियों को और पत्तियों से जड़ों को लाभ है अर्थात् इन्हीं दोनो की क्रियाशीलता से वृक्ष का जीवन स्थिर रहता है। यदि वृक्ष की जड का कुछ भाग काट दिया जाता है तो जड़ की शोषण शक्ति मे कमी आ जाती है। इससे वृक्ष के आकार मे कमी आ जाती है। जब वृक्ष ऊपर से स्वस्थ सुन्दर दिखाई देता है लेकिन फल या तो उन पर लगता नही अथवा बहुत ही कम लगता है। यह स्थिति पौधे मे नाइट्रोजन की अधिक मात्रा उपलब्ध होने से होती है। अतः नाइट्रोजन की मात्रा मे कमी करने के लिऐ जडों की छंटाई की जाती है ताकि पौधो में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा बढ जाय और वृक्ष फल उत्पन्न कर सके। वृक्ष की उत्पादन शक्ति पर कार्बोहाइड्रेट और नाइट्रोजन का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है और छंटाई से कार्बोहाइड्रेट तथा नाइट्रोजन का गहरा सम्बन्ध है। जब तक वृक्ष में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक नही होगी तब तक उपयुक्त मात्रा मे फल प्राप्त नही होगा। अतः नाइट्रोजन की मात्रा कम करने हेतु जड़ों की छंटाई भी की जाती है। नीबू प्रजाति के पौधो मे प्रति वर्ष मोटी जड़ो पर लगे हुए आवश्यक झकड़ा जडो की छंटाई करते हैं।

विधि—वृक्ष के चारो ओर जमीन पर 40-60 से.मी. चौड़ी तथा 60 से 75 से.मी. गहरी नाली बनायी जाती है और जडो को कुछ समय के लिए खोलकर रखना पडता है। इसमे नमी समाप्त हो जाती है। साथ ही अन्य हानिकारक कीड़े-मकोड़े जो भूमि के अन्दर जड़ो के निकट होगे वे भी मर जाते हैं और जड़ो को आवश्यकतानुसार काट देते है। मोटी जड़ों को भूलकर भी नही काटनी चाहिए। नालियों को 15-20 दिन तेज धूप लगने देते हैं और बाद मे आवश्यक मात्रा मे खाद व मिट्टी का मिश्रण भरकर सिंचाई कर देते हैं। जड़ो की छंटाई का कार्य अधिकतर फूल आने से पूर्व कर देते हैं।

लाभ–1. फूल तथा फल अधिक प्राप्त होते हैं। 2. फल अधिक गुण वाले एवं बड़े प्राप्त होते हैं। 3. फूल नही गिरने पाते। 4. छोटे फल भी गिरने से बच जाते हैं। 5. जड़ों की संख्या एवं फैलाव मे कमी आने पर पेड़ अधिक भोजन

सीमित घेरे से ले सकता है। 6. वृक्षों में कार्बोहाइड्रेट और नाइट्रोजन की मात्रा सन्तुलित एवं नियन्त्रित होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फल-वृक्षों की कटाई-छंटाई की प्रमुख विधियां कौन-कौन सी हैं? किन्हीं दो विधियों का संक्षिप्त वर्णन करो।
2. कटाई-छटाई के लिए किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए? कटाई-छंटाई के लिए प्रयोग किए जाने वाले किन्हीं दो औजारों के नाम लिखो।
3. जड़ों की छंटाई करते समय....नहीं काटनी चाहिए—
   (अ) रेशेदार जड़ों को। (ब) मोटी जड़ों को।
   (स) रोगी जड़ों को। (द) उथली जड़ों को। ( )

अध्याय-19

फलों को तोड़ना एवं बेचना

फलों की तोड़ाई और उनके विक्रय का उद्यान विज्ञान में काफी महत्व है। व्यापार के लिए इन्हें समय पर तोड़ना और बाजार में उपस्थित करना आवश्यक होता है। हमारे देश में अधिकांश फल-उत्पादक फल के वितरण में दोषपूर्ण ढंग से काम लेने से लाभ का उचित अंश नहीं प्राप्त कर पाते। यदि फल संरक्षण की कुछ विधियां भी उत्पादक को मालूम हों तो वह इस ज्ञान से काफी लाभ उठा सकता है। अतः एक सफल उत्पादक को वितरण के समस्त गुण-अवगुण का ज्ञान होना चाहिए। वितरण में फल की तोड़ाई, फल की ग्रेडिंग, पैकिंग दूर के बाजारों में माल भेजना और विक्रय करना आदि बातें सम्मिलित हैं।

फलों को तोड़ना—फलों को तोड़ते समय कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है जिसमें मुख्य तोड़ने का समय और तोड़ने की विधियां हैं। साथ ही बाजार की उद्यान से कितनी दूरी है, इसका भी ख्याल रखा जाता है। अतः यदि अधिक दूरी पर फल भेजना हो तो फल अधपके तोड़े जाएं ताकि फल अपने गंतव्य स्थान तक पहुंचते-पहुंचते अच्छी तरह पक जाए। कुशल माली को यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक फल कितने समय में पक जायेगा, अतः वह उसी के अनुसार फलों की तुड़ाई करेगा।

फल तोड़ने की क्रिया निम्नलिखित तरीकों से कर सकते हैं—1. हाथ से फल तोड़ना 2. सीढ़ियों का प्रयोग करके 3. फ्रूटपिकर (फल तोड़ने वाला जाली एवं डण्डे) का प्रयोग करके 4. डण्डों अथवा कंकड़-पत्थर से मारकर 5. वृक्ष के ऊपर चढ़कर 6. शाखाओं को हिला करके।

फल चाहे जिस विधि से भी तोड़ा जाय लेकिन फल किसी प्रकार खराब नहीं होना चाहिए। चौथा, पांचवा तरीका तो फल तोड़ने के लिए कदापि प्रयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि उससे—

1. फलों को खरोंच लग जायेगा।

2. फल को चोट लगेगी एवं फल फट जायेगा।

फलों को छांटना—फल तोड़ने के बाद फलों की छंटाई की जाती है। सड़े, गले, बीमार, कीटग्रस्त तथा आहत फलों को अलग-अलग करने को छटनी (Sorting) कहते हैं अथवा छंटनी वह क्रिया है जिसमे सड़े-गले, चोट खाये हुए, क्षतिग्रस्त, अधिक पके हुए तथा कच्चे व बदशक्ल फलों को छाँटकर अलग-अलग किया जाता है। यदि यह क्रिया न की जाय तो अच्छे फल भी इनके सम्पर्क में आने से खराब हो जाते हैं।

फलों का वर्गीकरण—फलों के रंग, रूप, आकार, गुण तथा परिमाण (भार) के आधार पर फलो के श्रेणी-विभाजन का वर्गीकरण कहते हैं। फलो की ग्रेडिंग हाथ से ही की जाती है लेकिन अब इस वैज्ञानिक-युग में मशीनो की सहायता से ग्रेडिंग का काम लिया जाता है। इस क्रिया से निम्नलिखित लाभ होते है—

(1) खराब फल अलग होने से अच्छे फल नष्ट होने से बच जाते है।

(2) सुन्दर रूप, रंग, बड़े आकार के कारण फलो का दाम अधिक मिलता है।

जो फल स्वस्थ, सुन्दर, सुडोल एवं परिमाण में अच्छे होते हैं उन पर सरकार की तरफ से 'एगमार्क' की छाप लगा दी जाती है। इस प्रकार ऐसे माल का बाजार मे दाम अच्छा मिलता है।

फलो की पैकिंग—दूषित पैकिंग करने से उत्पादक को लाभ के बदले हानि उठानी पड़ जाती है, क्योंकि पैकिंग खराब होने से फल रास्ते मे क्षतिग्रस्त हो जाते है जिससे उनका दाम अच्छा नही मिल पाता। फलों को बाहर भेजने के लिए सुन्दर, आकर्षक और मजबूत पैकिंग निम्न प्रकार से किया जाता है—

(1) बांस तथा अरहर की टोकरी में—फलो की आवश्यकतानुसार टोकरियों का आकार बनाया जाता है। फलो की तहो के बीच-बीच मे घास-फूंस की तह लगा दी जाती है जिससे यातायात के दौरान हिल-डुल न सके अन्यथा रगड़ खाने से फलों मे खरोंच आ जायेगी एवं उनकी चमक आदि समाप्त हो जायेगी।

(2) चीड़ के हल्के बाक्सो में—उपर्युक्त विधि से यह विधि अच्छी है क्योंकि मजबूत होने के कारण इसमें फल अधिक समय तक अच्छे बने रहते है। इन बाक्सों का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि इनमें वायु का प्रवेश भली-भांति हो सके। फलों को कागज आदि मे लपेटकर इस प्रकार रखते है कि आपस मे न टकरायें। कागज फलों की नमी लेते हैं जिससे फल सड़ने से बच जाता है।

पेटियों को बन्द करने के बाद उसे आकर्षक बनाने के साथ-साथ उद्यानकार का नाम, पता आदि सुन्दर अक्षरों से अंकित होना चाहिए।

फलों को बाहर भेजना—फल एक स्थान से दूसरे स्थान तक रेल, ट्रक तथा बसों में भेजे जाते हैं। शहरों तक गांवों से ताजा फल आते हैं। वे अधिकतर बैल-गाड़ियों द्वारा पहुँचाये जाते हैं। देश में परिवहन सुविधा का अभाव होने के कारण फल रास्ते मे ही अधिकतर खराब हो जाते हैं। अतः विक्रेता को हानि होती है।

सरकार को चाहिए कि फलों को बाहर भेजने के लिए यातायात की अधिक सुविधा प्रदान करें। उद्यानकार को पैकिंग की आधुनिक शिक्षा का प्रबन्ध करें। रेलगाड़ियां में प्रशीतन-यान की सुविधा उपलब्ध करें। साथ ही बागवानों को अपना संगठन बनाना चाहिए।

फल का विक्रय—फल का सफल उत्पादन व वितरण में काफी सतर्कता की आवश्यकता पड़ती है। फलों का विक्रय उत्पादक के लाभ की मुख्य जड़ है। यदि विक्रय बुद्धिमानी के साथ किया जाय तो उत्पादक को अधिक लाभ मिल सकता है, किन्तु थोड़ी सी असावधानी से उत्पादक को भारी हानि हो सकती है। भारत में सबसे अधिक प्रचलित विधि ठेकेदारी है। ये ठेकेदार उद्यान का पूरा ठेका ले लेते हैं। ठेका लेने के बाद ये फल की रखवाली, तोड़ने, रख-रखाव, पैकिंग, माल भेजना आदि कार्यों के जिम्मेदार हो जाते हैं। उत्पादक एक निश्चित रकम लेकर उद्यान की रखवाली से विक्रय तक के सारे झंझटों से मुक्ति पा जाता है, लेकिन उसमें बाग के मालिकों को निम्न हानियाँ हो जाती हैं—

(1) उद्यान की उचित देखभाल नहीं हो पाती। (2) उपज का वास्तविक दाम नहीं मिलता। (3) ठेकेदार पैसा देने में कभी-कभी आनाकानी करता है।

उत्पादक उस स्थिति मे काफी लाभ कमा सकता है, जबकि वह अपने फल को सुरक्षित रखकर बाजार का अध्ययन करे और जब बाजार का ढंग अच्छा हो अर्थात् पूर्ति की अपेक्षा मांग बढ़ जाय और मूल्यों की दर ऊँची हो जाय तब अपना माल बेचें। सहकारिता के सिद्धान्त पर यह अधिक सफल हो सकता है, यदि कई उद्यानकार आपस में मिलकर कोई विकसित ढग निकालें।

फल बेचने के तरीके—(1) शहर के निकट मण्डी भेजकर। (2) सिर पर रखकर फेरी लगाकर स्वय बेचना। (3) आढ़तियों को देकर। (4) फलों को पैक करके दूर के स्थानों में भेजकर। (5) बाग में छोटे-छोटे खरीददारों को देकर।

इस प्रकार उत्पादक को न तो अच्छा लाभ मिलता है और न उपभोक्ता को अच्छी सामग्री, क्योंकि दोनों के बीच मे कई कड़ियाँ होती है जो अधिकतम लाभ प्राप्त करते हैं। अतः उत्पादकों को अपना एक संगठन बनाना चाहिए ताकि उनके श्रम का उचित मूल्य मिल सके। फल विकास समिति का निर्माण होना चाहिए ताकि समय-समय पर फल उत्पादकों को विक्रय सम्बन्धी सूचना देती रहे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फलो के तोड़ने के प्रमुख तरीके कौन से है ? उनमे से एक उत्तम विधि का वर्णन करो। यह भी स्पष्ट करो कि यह विधि उत्तम क्यों है।
2. फलों को बाहर भेजने के लिए पैकिंग की विधियाँ लिखो।
3. ठेका देकर फलों की बिक्री करने की विधि अच्छी नहीं है, क्योंकि—
   (अ) बाग की देखभाल ठीक नहीं हो पाती।
   (ब) उपज का वास्तविक लाभ नहीं मिलता।
   (स) उपर्युक्त सभी। ( )

अध्याय-20

फलोद्यान की अनुत्पादकता तथा उसे दूर करने के उपाय

फल वृक्षों, शाकों एवं फसलों की खेती अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती है। अधिकतम उत्पादन तथा अत्यधिक लाभ प्राप्त करने के लिए फल, शाक एवं फसल उत्पादन को प्रभावित करने वाले समस्त कारक अनुकूल होने चाहिए अर्थात् एक अनुभवी एवं सफल उत्पादक को उन सभी परिस्थितियों का ज्ञान होना चाहिए, जिन परिस्थितियों में एक फलोद्यान अनुत्पादक हो सकता है।

फलोद्यान की अनुत्पादकता का कारण—फलोद्यान निम्नलिखित कारणों से अनुत्पादक हो सकता है—

1. **प्रतिकूल मौसम**—प्रत्येक वनस्पति की वृद्धि के साथ-साथ फलन या उत्पादन क्रिया सभी परिस्थितियों की अनुकूलता के साथ-साथ मौसम की अनुकूल परिस्थितियों से विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। भिन्न-भिन्न फल-वृक्ष अलग-अलग जलवायु में उत्पादक होते है। यदि फलोद्यान के फलन के समय आँधी-तूफान, लू अथवा ओला, पाला, धुंध का प्रकोप रहे तो इन विपरीत मौसम की परिस्थितियों में फलोद्यान अनुत्पादक हो सकता है।

2. **अनुपयुक्त भूमि**—फलोद्यान के लिए कंकरीली-पथरीली एवं कठोर तहों वाली भूमि अनुपयुक्त मानी जाती है। क्योंकि कंकरीली-पथरीली अथवा ऐसी भूमि जिनकी निचली तहें कठोर हैं, उनमे छोटे फलो के पौधो की मुलायम जड़ें पूर्ण विकसित नहीं हो पाती। परिणामस्वरूप फल-वृक्ष की अधिकता होते हुए भी उस पर फल नहीं लग पाते।

3. **भूमि में पोषक तत्त्वों की न्यूनता एवं खाद की उचित व्यवस्था का न होना**—भूमि मे पोषक तत्त्वों की न्यूनता के साथ-साथ यदि उसकी पूर्ति खाद एवं उर्वरकों से नहीं की गई तो फलोद्यान स्वतः ही अनुत्पादक बन जाता है क्योंकि भूमि मे पोषक तत्त्वो की कमी होने पर फल वृक्ष की वानस्पतिक वृद्धि अधूरी रह जाती है और फलन नहीं हो पाता।

4. **मृदा जल की न्यूनता तथा उचित प्रबन्ध न होना**—भूमि मे नमी की

कमी होने पर पौधे अपना भोजन पर्याप्त मात्रा में ग्रहण नहीं कर सकते। क्योंकि पौधों की जड़ें भूमि से पोषक तत्वों को घोल में ग्रहण करती हैं। इसलिए पौधों की पूर्ण वृद्धि के लिए भूमि में पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा होने के साथ-साथ पर्याप्त नमी भी होनी चाहिए। भूमि में नमी तथा सिंचाई की कोई व्यवस्था न होने पर फलन क्रिया प्रभावित होती है और फलोद्यान अनुत्पादक हो जाते हैं।

5. मृदा का विकारयुक्त होना—भूमि में अम्लीयता अथवा क्षारीयता के बढ़ जाने पर फल वृक्षों की वानस्पतिक वृद्धि मंद पड़ जायेगी अथवा अम्ल या क्षार की प्रगाढ़ता अधिक होने पर पूर्णतया रुक जाएगी। परिणामस्वरूप फलोद्यान अनुत्पादक हो सकते हैं।

6. घटिया किस्म के फल वृक्षों का होना—फलोद्यान में लगाए गये फल वृक्षों की किस्म यदि घटिया है तो ऐसे फलोद्यान में बहुत कम उत्पादन मिलेगा। कुछ परिस्थितियों में फलोद्यान अनुत्पादक भी हो जाते है। जैसे, केले की जंगली किस्म होने पर केले के बाग से कोई उत्पादन नहीं मिलता।

7. फल वृक्षों के बीच की दूरी अत्यन्त कम होना—बाग लगाते समय यदि फल वृक्षों के बीच की दूरी का ध्यान नहीं रखा गया और उनके बीच में बहुत कम दूरी रखी गयी तो ऐसी अवस्था में जब फल वृक्ष बड़े होते है तो बाग बहुत घना बन जाता है। वृक्षों को फैलने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं मिल पाता जिससे फल वृक्ष के हर भाग को पर्याप्त प्रकाश नहीं मिल पाता और फलन बहुत कम हो पाता है। फलोद्यान धीरे-धीरे अनुत्पादक बन जाता है।

8. पर्याप्त प्रकाश का न मिलना—फलोद्यान के आस-पास ऊँचे मकान या ऊँचे छायादार वृक्षों के होने पर फल वृक्षों को सूर्य का पर्याप्त प्रकाश नहीं मिल पाता। फलस्वरूप प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बहुत कम हो पाती है। फल वृक्ष केवल ऊँचाई में बढ़ता चला जाता है। परिणामस्वरूप फलोद्यान अनुत्पादक हो जाता है।

9. रोग एवं कीटों का आक्रमण होने पर नियन्त्रण की उचित व्यवस्था का न होना—रोग एवं कीटों का आक्रमण होने की स्थिति में यदि उनके नियन्त्रण की उचित व्यवस्था नहीं की गई, तो फल वृक्षों की वानस्पतिक वृद्धि रुक जाती है, एवं फलन क्रिया नहीं हो पाती। जैसे नीबू प्रजाति में उल्टा सूखा रोग के लग जाने पर नियन्त्रण के अभाव में फल वृक्ष सूख कर नष्ट हो जाता है। आम में फूल लगने के समय बरुंया का आक्रमण होने पर फल नहीं लगने पाता।

10. परोपजीवी पौधों का आक्रमण—अमरबेल (Cusenta) एवं बादा (Loranthus) जैसे परोपकारी पौधों का आक्रमण हो जाने पर फल वृक्षों की वानस्पतिक वृद्धि रुक जाती है और फलोद्यान अनुत्पादक हो जाता है।

11. उचित देख-रेख का अभाव— फलोद्यान की सफलता आवश्यक कटाई-छंटाई व निकाई-गुड़ाई पर भी निर्भर करती है। कई ऐसे फल वृक्ष हैं जिनमें नियमित कटाई-छंटाई के बिना फलोद्यान अनुत्पादक बन सकते हैं। जैसे अंगूर में शाखाओं की कटाई-छंटाई तथा नीबू प्रजाति के फल वृक्षों में पौधों की छंटाई। इसी प्रकार फलोद्यान को उत्पादक बनाये रखने के लिए समय समय पर अनावश्यक खरपतवार को निकालना तथा गुड़ाई करना भी आवश्यक है।

12. फल वृक्षों की आयु अधिक होने पर—प्रत्येक फल वृक्ष एक निश्चित आयु तक भली प्रकार फल दे सकता है। जैसे माल्टा, मौसमी आदि 20 वर्ष की आयु तक फल दे सकते हैं। आयु अधिक हो जाने पर अर्थात् फलोद्यान के पुराने हो जाने पर फलोद्यान स्वतः ही अनुत्पादक हो जाते हैं।

13. अन्य परिस्थितियां—(i) फल वृक्षों की डालियों को अनावश्यक रूप से तथा भारी मात्रा में कटाई-छंटाई कर देने पर भी फलोद्यान अनुत्पादक हो सकते हैं। (ii) फलोद्यान में अधिक समय तक पानी भरे रहने पर (विशेष रूप से फूल लगने के समय) भी फलोद्यान अनुत्पादक हो सकते हैं। (iii) आम के बाग के निकट ईंट का भट्ठा होने पर आम का बाग अनुत्पादक बन जाता है।

फलोद्यान को उत्पादक बनाने के उपाय

फलोद्यान को उत्पादक बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय करना चाहिए—

1. मौसम की प्रतिकूल परिस्थितियों से सुरक्षा का प्रबन्ध—आंधी-तूफान व गर्म हवाओं से सुरक्षा के लिए फलोद्यान के चारों ओर वायुरोधी वृक्ष लगाना चाहिए। इसी प्रकार पाला पड़ने की संभावना होने पर सिंचाई या धुंआ करना चाहिए।

2. वृक्षारोपण से पूर्व पर्याप्त गहराई तक गड्ढे खोदकर, उसमें से कंकड़, पत्थर को चुन कर बाहर निकाल देना चाहिए। गड्ढे में उपजाऊ मिट्टी तथा खाद मिलाकर भर देना चाहिए।

3. फलोद्यान में सदैव उन्नत किस्म के फलों के पौधे लगायें।

4. वृक्षारोपण करते समय वृक्षों के बीच की दूरी (पौधे से पौधे व लाइन से लाइन) पर्याप्त रखें।

5. फलोद्यान में नियमित रूप से प्रति वर्ष पर्याप्त मात्रा में खाद एवं उर्वरक दें। खाद देने का कार्य वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य करें। आवश्यकता पड़ने पर वर्ष में दो बार भी खाद दिया जा सकता है।

6. बाग में सिंचाई की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। विशेष रूप से फलन के समय सिंचाई की उचित व्यवस्था होने पर फलन अच्छी होती है।

7. बाग में आवश्यकतानुसार समय-समय पर कटाई-छंटाई एवं निकाई-गुड़ाई करते रहना चाहिए।

8. बाग सदैव खुले स्थान पर लगाना चाहिए। बाग के आस-पास ऊँचे छायादार वृक्ष या मकान नहीं होना चाहिए।

9. बाग में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिये।

10. रोग एवं कीटों का आक्रमण होने पर उनके नियन्त्रण का समुचित प्रबन्ध करना चाहिये।

11. अमर बेल व बांदा जैसे परजीवी पौधों को फलवृक्षों पर नहीं पनपने देना चाहिये।

12. फल वृक्षों की आयु अधिक हो जाने पर नये फलों के पौधे प्रतिरोपित कर नया फलोद्यान विकसित कर लेना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फलोद्यान की अनुत्पादकता के कारण तथा उनके निवारण के उपाय लिखिये।
2. फलोद्यान किन-किन परिस्थितियों में अनुत्पादक हो सकता है ? कारण सहित उत्तर की पुष्टि करो।

अध्याय-21

फलों के पौधों को विपरीत मौसम की दशाओं और शत्रुओं से रक्षा

फलों के पौधों को विपरीत मौसम की दशाओं एवं शत्रुओं से बचने के लिए उन सभी परिस्थितियों व शत्रुओं की जानकारी करनी पड़ेगी, जिनसे हमारे फलोद्यान को हानि पहुँचती है। फलों के पौधों को निम्नलिखित प्रमुख विपरीत मौसम की दशाओं से हानि पहुँचती है—1. गर्म हवायें, आंधी व तूफान। 2. पाला। 3. ओला।

1. गर्म हवायें,

झुलस कर रख देती हैं

डालियाँ (शाखायें) टूट

झोंके से उखड़ जाता है। फल लगना प्रारम्भ होने पर अथवा फल लगे होने पर आंधी-तूफान के चलने से फूल व फल भारी मात्रा में झड़ जाते हैं। इसी प्रकार फल वृक्षों को आंधी तूफान व गर्म हवाओं से बहुत अधिक हानि पहुँचती है। इनके प्रभावों से फल वृक्षों की रक्षा हेतु निम्न उपाय करने चाहिए—

वायुरोधी वृक्ष लगाकर—बाग के तीन ओर ऐसे वृक्ष लगाने चाहिए जो तेज हवाओं के प्रभाव को सह सकें। वायुरोधी वृक्ष के रूप में बीजू, आम महुआ, शीशम, जंगल जलेबी, जैसे मजबूत ऊँचे बढ़ने वाले वृक्षों को लगाना चाहिए। वायुरोधी वृक्ष अपनी ऊँचाई के 5 से 6 गुना ऊँचाई तक के वायु के प्रभाव से फल वृक्षों की रक्षा करते हैं। वायुरोधी वृक्षों के लगे होने पर गर्म या ठंडी हवाओं का प्रभाव भी फल वृक्षों पर नहीं पड़ने पाता। वायुरोधी वृक्षों के लगाने का कार्य फल वृक्षों के रोपण के समय ही करना चाहिए। वायुरोधी वृक्ष फल वृक्षों से पर्याप्त दूरी पर लगाना चाहिये, ताकि फल वृक्षों की वृद्धि व फलन पर वायुरोधी वृक्षों का कोई बुरा प्रभाव न पड़े।

2. पाला—शरद ऋतु में विशेष रूप से दिसम्बर-जनवरी के महिने में रात्रि के समय धरातल तथा उसके आस-पास की वस्तुओं का ताप 00 से. तक पहुँच जाने पर धरातल के निकट के वायुमण्डल में उपस्थित वाष्प पानी की बूंद में न बदल कर बर्फ के रूप में जम जाती है।

पाले के प्रभाव से पपीता, अंगूर, केला आदि अत्यधिक प्रभावित होते है। पाला अधिक मात्रा में पड़ने पर दूसरे सभी फल वृक्ष इससे प्रभावित होते हैं। पाले के प्रभाव से फल वृक्षों की पत्तियां, मुलायम शाखायें तथा पपीते जैसे फलों का सम्पूर्ण पौधा ही नष्ट हो जाता है।

पाले के प्रभाव से फल वृक्षों को बचाने के निम्नलिखित उपाय करने चाहिये—

1. पाले की सम्भावना होने पर बाग में सिंचाई कर देनी चाहिए। 2. बाग में फूस जला कर जगह-जगह धुआं कर देना चाहिए। 3. फलों के छोटे पौध क्षेत्र में लगे पौधों को पाले के प्रभाव से बचाने के लिए पाला पड़ने के मौसम से पूर्व ही सरकण्डे अथवा सूखी घास से छाया कर देनी चाहिए।

3. ओला—ओला प्रायः फरवरी तथा उसके आगे के महिनों में पड़ता है। इन्हीं महिनों में आम, आलू बुखारा, सेब, नासपाति, संतरा आदि में फूल व फल लगते हैं। फल लगने के मौसम में ओला पड़ने पर भारी मात्रा में फूल व फल झड़ जाते हैं। ओला प्रायः अचानक ही पड़ता है। इसलिए अभी तक ओले के प्रभाव से फल वृक्षों, शाकों एवं फसलों की रक्षा का कोई विशेष उपाय नहीं ढूंढा जा सका है।

फल वृक्षों के शत्रु तथा उनसे रक्षा के उपाय—फल वृक्षों अथवा फलोद्यान को हानि पहुंचाने वाले प्रमुख शत्रु निम्नलिखित हैं—

1. कीट एवं व्याधियां। 2. जंगली जानवर। 3. चिड़ियां। 4. राहगीर एवं चोर।

1. कीट व व्याधियां—फल वृक्ष को हानि पहुंचाने वाली अनेकों कीट व्याधियां हैं जिनमें दीमक, फलों की मक्खी, चेपा आदि कीटों से फल वृक्षों को काफी हानि पहुंचती है। कीट एवं व्याधियों से फल वृक्षों को बचाने के लिए निम्नलिखित सामान्य उपाय किए जा सकते हैं—

1. बाग में खरपतवार को नहीं उगने देना चाहिए।

2. फल वृक्षों के तने के चारों ओर धरातल से 75 से 90 से. मी. ऊँचाई तक बोर्डोपेस्ट या तारकोल का लेप कर देना चाहिए। इससे दीमक नहीं लगने पाती।

3. व्याधियों एवं कीटों से बचने के लिए आवश्यकतानुसार कवकनाशक व कीट नाशक दवाओं का छिड़काव करना चाहिए।

2. जंगली जानवर—गिलहरी, गीदड़, साही, नील गाय एवं हाथी भी हमारे फल वृक्षों को हानि पहुंचाते हैं। हाथी विशेष रूप से केले के बाग को विशेष हानि पहुंचाता है। इन से फल वृक्षों की रक्षा के लिए अग्रलिखित उपाय करने चाहिए—

1. बाग के चारों ओर कांटेदार तार या बाड़ लगाना चाहिए।

2. बाग के चारों ओर दीवार बनाकर भी रक्षा की जा सकती है परन्तु यह तरीका मंहगा पड़ता है।

3. पटाखे या टीन बजाकर जानवरों को भगाया जा सकता है।

3. चिड़ियाँ—मोर, तोता, बुलबुल, जैसी अनेकों चिड़ियाँ फलों को काट-कर या खा कर हानि पहुँचाती है। इनमें तोता सभी फलों को काट व कुतर कर हानि पहुँचाता है। चिड़ियों से फल वृक्षों की रक्षा के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं—

1. फल वृक्षों के ऊपर जाल फैला कर।

2. बाग में टीन या अन्य किसी साधन से आवाज करके।

3. सीमित क्षेत्र पर बड़े फलों के ऊपर पॉलिथीन या कपड़े की थैली लगा कर। जैसे, अनार में।

4. राहगीर एवं चोर—फल वृक्षों की भारी मात्रा में हानि पहुँचाने वाले ये प्रमुख शत्रु है। यदि बाग किसी चालू रास्ते के किनारे है तो रास्ते चलते कोई भी आदमी मौका देखकर फलों को तोड़ सकता है। कभी-कभी चोर उचक्के भी बाग से फलों को तोड़ कर डालियो को काट कर भी हानि पहुँचाते हैं। इनसे बाग की सुरक्षा के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए—

होनी चाहिए।

2. ए। 3. रखवाली के लिए पालतू कुत्ते का सहारा भी लिया जा सकता है। 4. बाग चालू रास्ते के निकट नही लगाना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फल वृक्षों की विपरीत मौसम की दशाओं और शत्रुओं से रक्षा के क्या उपाय किए जा सकते है ? लिखिए।
2. निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए—
   (अ) वायुरोधी वृक्ष। (ब) पाला। (स) कीट-व्याधियों से बाग की रक्षा।

अध्याय-22

प्रसारण

साधारणतया प्रकृति में बढ़ाव कोशाओं के विभाजन के फलस्वरूप होता है। कोशा जीवित अवस्था में अपने सदृश कोशा तैयार करने के लिए विभाजित होता है। प्राणियों में प्राणी बनने की क्रिया दो कोशों के एक खास तरह से मिलने के बाद विभाजन होता है। इस तरीके को लिंगी प्रजनन कहते हैं; इसी क्रिया द्वारा बीज का निर्माण होता है। इस बीज में इस तरह का या इससे मिलता-जुलता प्राणी छिपा रहता है जो समय या अनुकूल दशायें पाने के बाद विकसित होता है।

इस तरह प्रकृति में विशेष रूप में पौधों को पैदा करने के दो तरीके है—

(1) बीज द्वारा (लिंगी प्रजनन या यूर्धी प्रजनन)

(2) पौधे के किसी भाग से जैसे जड़, तना, पत्ती द्वारा (अलिंगी प्रजनन या वनस्पति प्रजनन)

लिंगी प्रजनन—लिंगी प्रजनन दो प्रकार से होता है—

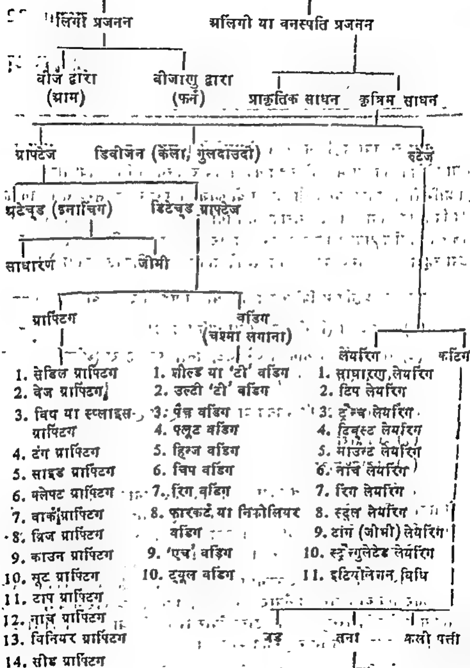
(1) बीज द्वारा

(2) बीजाणु द्वारा

लिंगी प्रजनन में नर व मादा कोशायें मिलकर विभाजन प्रारम्भ करती हैं। कोशाओं के मिलने से बीज बनता है और बीज से पूरा पौधा तैयार होता है। जैसे आम की गुठली से आम का पौधा तैयार हो जायेगा। इसी प्रकार फर्न में बीजाणुओं द्वारा नया पौधा तैयार हो जाता है।

बीज द्वारा पौधे तैयार करना एक पुराना और प्रचलित तरीका है और अधिकतर पौधे बीज द्वारा ही तैयार किए जाते हैं। ये पौधे आकार में बड़े, स्वस्थ और सुदृढ़ होते हैं, परन्तु फल बीज द्वारा तैयार किये पौधे प्राप्त करने की दृष्टि से यह पौधे पूर्ण रूप से उत्तम नहीं माने जाते हैं।

अच्छे बीज का चयन—नये पौधे प्राप्त करने के लिए अच्छे बीज का चुनाव करना चाहिये। अतः वृक्ष से बीज प्राप्त किया जाये वह स्वस्थ हो और मजबूत


प्रसारण
लिंगी प्रजनन
अलिंगी या वनस्पति प्रजनन
बीज द्वारा (आम)
बीजाणु द्वारा (फर्न)
प्राकृतिक साधन
कृत्रिम साधन
ग्राफ्टेज
डिवीजन (केला, गुलदाउदी)
कटेज
अटेच्ड (इनार्चिंग)
डिटेच्ड ग्राफ्टेज
साधारण
जीभी
ग्राफ्टिंग
बडिंग (चश्मा लगाना)
लेयरिंग
कटिंग
1. सेडिल ग्राफ्टिंग
2. वेज ग्राफ्टिंग
3. विप या स्प्लाइस-ग्राफ्टिंग
4. टंग ग्राफ्टिंग
5. साइड ग्राफ्टिंग
6. प्लेपट ग्राफ्टिंग
7. वार्क ग्राफ्टिंग
8. ब्रिज ग्राफ्टिंग
9. काउन ग्राफ्टिंग
10. सूट ग्राफ्टिंग
11. टाप ग्राफ्टिंग
12. नाव ग्राफ्टिंग
13. विनियर ग्राफ्टिंग
14. सीड ग्राफ्टिंग
1. शील्ड या 'टी' बडिंग
2. उल्टी 'टी' बडिंग
3. पैच बडिंग
4. फ्लूट बडिंग
5. हिन्ज बडिंग
6. चिप बडिंग
7. रिंग बडिंग
8. फारकर्ट या निकोलियर बडिंग
9. 'एच' बडिंग
10. ट्यूब बडिंग
1. साधारण लेयरिंग
2. टिप लेयरिंग
3. ट्रेन्च लेयरिंग
4. ट्विस्ट लेयरिंग
5. माउन्ड लेयरिंग
6. नॉच लेयरिंग
7. रिंग लेयरिंग
8. स्टूल लेयरिंग
9. टांग (जीभी) लेयरिंग
10. स्ट्रेन्गुलेटेड लेयरिंग
11. इटियोलिंगन विधि
जड़
तना
कली पत्ती
मुलायम लकड़ी
अर्द्ध मुलायम लकड़ी
कठोर लकड़ी

हो सके। साथ ही उस वृक्ष में जाति सम्बन्धी कुछ खास गुण उपस्थित हों, इन मापदण्डों पर बीज का चयन करना चाहिये।

अच्छे बीज की परिभाषा निम्न प्रकार है—

"पूर्णरूपेण पके फल से प्राप्त किया गया हो या बीज का स्वयं ही फल रूप में हो, वह भी वृक्ष पर भली भांति पक चुका हो।"

बीज का परीक्षण—यदि किसी कारणवश बीज के बारे में अविश्वास हो, तो उगते हुए अंकुरण प्रतिशत देख लेना चाहिये। बीज कितने समय बाद तक अंकुरण कर सकता है यह उसकी वायेबिलिटी कहलाती है। यह भिन्न-भिन्न बीजों की अलग-अलग होती है। एक वर्षीय पौधों के बीजों में 6–12 माह तक अंकुरण करने की शक्ति रहती है। बहुत-सी सब्जियों के बीज 2–10 साल तक अंकुरण कर सकते हैं। आम का बीज 2 माह के बाद ठीक से अंकुरण नहीं कर सकता।

बीज को सुरक्षित रखना—फल पकने पर रंग में परिवर्तन होकर सूख जाते हैं। गूदेदार फल तो पकने पर बीज गिर जाते हैं। सूखे फलों से बीज निकाल कर 2–3 दिन धूप में सुखाने के बाद वायुरोधक शीशियों में बन्द कर देते है। गूदेदार फलों के बीज को निकाल कर, धोकर साफ करने के बाद छाया में सुखाकर धूप में सुखाकर वायुरोधक शीशियों में अथवा पोलीथीन के थैलों में रखते है ताकि बीजों को कीड़े, नमी तथा।

बीज बोना—बीज

1. गमलों में या नांद में
2. लकड़ी के बक्सों में (फ्लैट्स)
3. समतल या ऊंची नर्सरी में

बीज किस स्थान में बोया जाय और किस तरह बोया जाय, यह सब बातें उसकी किस्म, मौसम, भूमि की दशा व अन्य बातों पर निर्भर है।

बीज बोने के लिए सदैव अच्छी भुरभुरी मिट्टी प्रयोग में लानी चाहिये। बीज को बोने के लिए निम्न मिश्रण काम में लेते हैं—

1. बाग की मिट्टी एक भाग
2. गोबर की खाद $\frac{1}{2}$ भाग
3. पत्ती की खाद $\frac{1}{3}$ भाग
4. बालू + बारीक कोयला $\frac{1}{8}$ भाग

बीज बोने के बाद कुछ भुरभुरी मिट्टी, पिसा हुआ कोयला व पत्ती की सड़ी हुई खाद मिलाकर ऊपर से भुरक देना चाहिये। बीज की आकृति के अनुसार ही उसे गहरा बोते हैं अर्थात् बड़े बीजों को गहरा बोते हैं और महीन बीजों को ऊपर ही छिटककर थोड़ा सा ढक देते है। जो बीज देर से उगते हैं उन्हें 24–36 घण्टे पूर्व पानी में भिगोकर बोते हैं या जहाँ बोये जाते हैं उनकी मिट्टी को नम रखने के लिए

लगातार पानी देते रहते हैं। अधिक पानी या तेज धूप में बचाने के लिए छायादार जगह में रखना अथवा गमलों को आवश्यकतानुसार ढक देना चाहिये। बीज द्वारा पौधे तैयार होते हैं उन्हें मूलवृन्त (स्कंध) कहते हैं।

बीजों द्वारा प्रसारण की विशेषतायें—

1. इनसे एक साथ कई पौधे तैयार हो सकते हैं।
2. इनसे वृक्ष देर से फलना प्रारम्भ करते हैं।
3. वृक्ष अधिक बड़े व फैलने वाले होते हैं।
4. बीजों द्वारा प्रसार अधिक दूर स्थानों के लिए सम्भव है।
5. वृक्षों की आयु अधिक होती है।
6. कुछ फलों के बीज इतने छोटे पाये जाते हैं कि उनसे पौधा उत्पन्न करना कठिन होता है।
7. कभी-कभी बीजू वृक्ष से फल की नई किस्म विकसित हो जाती है।
8. अधिकतर मूलवृन्त (स्कंध) इसी विधि से तैयार किये जाते हैं।
9. यह विधि सबसे सस्ती एवं सरल है, क्योंकि यह प्राकृतिक क्रिया है।
10. बीज से बनने वाले वृक्ष तेज हवाओं के झोंकों, कीड़े-मकोड़े तथा बीमारियों आदि के आक्रमण को भली-भांति सहन कर लेते हैं।

अलिंगी प्रजनन—प्रसारण की इस रीति में पौधों के वनस्पति भाग तना, पत्ती, जड़, कली (बड) आदि पौधे तैयार करने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं।

वानस्पतिक (अलिंगी) प्रसारण की आवश्यकता अथवा लाभ

1. इस तरह तैयार किये गये पौधे पूर्ण तरह से अपने मातृ पौधे से मिलते हैं।
2. इस विधि से तैयार किये गये पौधे विभिन्न वातावरण सहने के योग्य होते हैं।
3. एक वृक्ष जो आंधी से गिर गया हो उसे इस विधि से फिर शीघ्र तैयार कर सकते हैं।
4. इसके द्वारा घटिया किस्म को अच्छी किस्म में कर सकते हैं।
5. खास गुणों वाले पौधों के गुणों का ह्रास नहीं होने पाता।
6. बहुत से पौधे बीज पैदा करने में असमर्थ होते हैं। उनको तैयार करना एक समस्या होती है, इस तरह के पौधे वानस्पतिक विधि से तैयार किये जाते हैं। जैसे—केला।
7. इस तरीके द्वारा एक से अधिक जातियाँ एक ही पौधे पर उगाई जा सकती हैं।

8. बहुत से स्थानों की मिट्टी में कोई खास जाति के पौधे नहीं उग पाते है ऐसी दशा में उस तरह का पौधा तैयार करने के लिए किसी दूसरी जाति का पौधा उगाकर उस पर न होने वाले पौधो का क्राफ्ट (craft) लगाकर तैयार करते हैं।

9. वानस्पतिक विधि द्वारा तैयार किये गये पौधों पर फलन बीज द्वारा तैयार किये गये पौधों की अपेक्षा शीघ्र होता है।

10. बहुत से पौधे में बीमारी शीघ्र लगने का डर रहता है परन्तु किसी विशेष बीजू पौधे पर दूसरी तरह की जाति लगाने से बीमारी नही लगती देखी गई है।

11. इस तरह से तैयार पौधों पर फल एक समय पकते है, इससे अधिक समय रखवाली आदि के लिए खर्चा नही करना पड़ता।

12. इस रीति से पौधे तैयार करने मे उनके दुर्गुण, जैसे पौधे में काटों का होना समाप्त हो जाते हैं।

13. बीज द्वारा तैयार किये गये पौधे स्थान घेरते हैं तथा यह आकार में बड़े होने के कारण फलों की तुड़ाई तथा अन्य कार्यों मे कठिनाई उत्पन्न करते हैं। इन सभी कठिनाइयों से बचने के लिए वानस्पतिक विधि द्वारा पौधे तैयार किये जाते हैं, ये पौधे आकार में छोटे तथा नाटे होते है। जिन पर हर तरह के बाग सम्बन्धी कार्य आसानी से सम्पन्न हो सकते है।

वानस्पतिक प्रसार के तरीके—वानस्पतिक प्रसारण को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है—

(i) प्राकृतिक साधन द्वारा (ii) कृत्रिम साधन द्वारा

(i) प्राकृतिक साधन द्वारा—वानस्पतिक प्रसारण प्राकृतिक रूप से पौधों में होता है। जिससे एक पौधे से बहुत से पौधे तैयार हो जाते हैं। स्ट्राबेरी तथा दूब, घास ये भूमि की नमी के कारण गाठों से जड़ें निकलकर जमीन में घुस जाती है और तने के जगह-जगह टूटने अथवा सूखने से नये पौधे तैयार हो जाते है। अनन्नास की फलिया फल पर होती है और इस तरह स्वयं ही गिरकर पौधे बन जाते हैं। पथर-चट्टा की पत्तियां अपने आप गिरकर कई पौधे बनाती हैं और इसी भांति बिगोनिया पत्ती मे पौधे तैयार होते है।

(ii) कृत्रिम साधन द्वारा—वानस्पतिक प्रसारण कृत्रिम साधनो द्वारा निम्न तीन विधियों द्वारा होता है—

(1) छड़ द्वारा (स्टेज) (2) विभाजन द्वारा (डिवीजन)
(3) कलम द्वारा (ग्राफ्टेज)

1. स्टेज—इसमें प्रथम विधि जड़ द्वारा पौधे तैयार करने की है। इसमे प्रजनन मातृ वृक्ष की जड़ों या तनों की सहायता से होता है। इसमें पौधे का कोई भी

भाग तने का टुकड़ा, पत्ती या इसका टुकड़ा, जड़ आदि को उपयुक्त सहायता देते हुए इस पर जड़ विकसित करते हैं। इसके बाद इसका तना भी विकसित हो जाता है और पूरा पौधा तैयार हो जाता है। यह क्रिया कटेज कहलाती है। कटेज को निम्न दो भागों में विभाजित किया जाता है—

1. कटेज (अ) स्टेम कटिंग
   (i) मुलायम लकड़ी वाले
   (ii) अर्द्ध मुलायम लकड़ी वाले
   (iii) कठोर लकड़ी वाले
   (ब) रूट कटिंग
   (स) लीफ कटिंग
   (द) कली (बड) कटिंग
2. लेयरिंग—(अ) भूमिगत दाब
   (ब) वायीव या गुट्टी।

1. कटेज—पौधों का वानस्पतिक प्रजनन उसके जड़, तना अथवा पत्ती को काटकर किया जाता है।

(अ) स्टेम कटिंग—पौधे तैयार करने के इस तरीके से पौधे की किसी शाखा का टुकड़ा लेकर विशेष रूप से तैयार की गई क्यारी में मिट्टी से उसका कुछ भाग दबा देते हैं। इस तरह कुछ समय में इस तने के टुकड़े से जड़ें विकसित होकर नया पौधा बन जाता है।

कलम काटने का तरीका—कलम करने के लिए पौधों से शाखायें भिन्न-भिन्न आयु की ली जाती हैं। कुछ पौधों की नई अथवा हरी शाखायें जल्दी लगती है। कुछ पौधों की अधपकी अथवा हरे-भूरे रंग की जल्द लगती है और कुछ बिलकुल पकी अथवा भूरे रंग की शाखायें शीघ्र लगती हैं।

भूमि के निकट वाली शाखाओं की कलमों से तन्दुरुस्त तथा अधिक फैलने वाले पौधे तैयार होते है और उनमें फूल व फल देर से आते है। परन्तु ऊपर वाली शाखाओं से तैयार किये हुये पौधों में फूल व फल जल्द पैदा होते हैं और बहुधा एक ही साल में फूल आ जाते हैं। नई शाखा से अधिक फैलने वाले पौधे तैयार होते हैं और उनमें फूल भी देर तक रहते हैं।

प्रत्येक एक कलम में कम से कम चार गाँठें अवश्य रहें और लगभग 15 से. मी. लम्बी काटी जायें। कटाव दो प्रकार में किया जाता है—

(i) ऊपर के सिरे को सीधा और नीचे के सीरे को तिरछा काटते हैं।

(ii) ऊपर के सिरे को तिरछा और नीचे के सिरे को सीधा काटते हैं।

पत्तियाँ तोड़ने की कोई खास आवश्यकता नहीं होती परन्तु यदि पत्तियाँ अधिक हों तो कुछ तोड़ सकते है। कटाव करते समय नीचे वाला भाग गाँठ के ठीक

नीचे काटा जाता है किन्तु ऊपर वाला गांठ के 3–5 से. मी. ऊपर से काटने पर अच्छा होता है।

कलम लगाने का समय—कलमें अधिकतर वर्षा ऋतु में लगाई जाती हैं क्योंकि वायु में नमी एवं ताप अधिक होता है। पतझड़ वाले फल-वृक्षों की कलमें जनवरी-फरवरी में लगाई जाती हैं।

कलम लगाने का तरीका – पहली प्रकार काटी गई कलमों को जमीन से 40 डिग्री कोण पर 2/3 भाग जमीन में 1/3 भाग जमीन के ऊपर रखकर गाड़ा जाता है तथा दूसरी प्रकार से काटी गई कलमें अधिकतर सीधा गाड़ते हैं। कलम गाड़ते समय कटाव को हमेशा उत्तर दिशा में रखते हैं ताकि सूर्य की किरणों से बचाव हो सके और कलमें शुष्क एवं मरने न पावें। कलमें जब जमीन में गाड़ते हैं तो यह ध्यान रखना चाहिए कि ऊपर का कटाव सीधा दिखलाई न दे अर्थात् तिरछा रहे ताकि वर्षा ऋतु में पानी कलमों पर न रुके अन्यथा फंगस आदि लगने का भय रहता है। ऊपर वाले सिरे को सीधा करने पर जब तिरछे 4-5 डिग्री पर भूमि में लगाते हैं, कटाव ढालू हो जाता है। जिससे पानी की बूंदें उस पर नहीं ठहर पाती।

कलम लगाने के बाद हल्की सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है। कुछ समय बाद कलिकायें फूट जाती हैं और शाखायें निकल आती हैं। कटाव में मेखला के ऊपर कैंकस बड़ा होता है तो जड़ों के निकलने में देरी हो जाती है, ऐसी अवस्था में लगाने के पहले कलम का थोड़ा हिस्सा काट कर अलग कर दिया जाता है।



चित्र–68 कलम लगाना

आजकल जड़ो के शीघ्र विकास के लिये अनेक रासायनिक औषधियां का प्रचलन चल पड़ा है। इनके प्रयोग से कटिंग से जड़ें बहुत शीघ्र निकल आती हैं। ऐसी औषधियों में फिनायल-एसिटिक, इण्डोल-एसिटिक और नेपथलीन-एसिटिक आदि है। इनके अतिरिक्त ब्यूटर्स इस्ट का भी जड़ पैदा करने के लिए प्रयोग किया जाता है, जो कि विटामिन 'सी' का अच्छा साधन है।

इन दवाओं के प्रयोग का ढंग यह होता है कि कटाव के नीचे वाला सिरा रासायनिक पदार्थों के साधारण घोल में लगभग 24 घण्टे तक डुबाया जाता है। यह घोल ·01 प्रतिशत का हो तो अधिक अच्छा होता है। दूसरा तरीका सिंचाई के साथ धूल के रूप में घोल देना है। इससे ये पानी में घुलकर कटिंग को लाभ पहुंचाती है।

स्टेम कटिंग के प्रकार—यह निम्न तीन प्रकार का होता है—

(1) मुलायम लकड़ी वाले–इसमें बहुत कोमल स्वभाव के पौधे की, मुलायम

पहली शाखायें प्रयोग में लाई जाती हैं। अधिकतर छाया के नीचे पनपने वाले पौधे की पहली शाखायें प्रयोग में लाई जाती हैं। ये शाखायें कोमल, लचकीली और रसभरी है। इनमें पौध तैयार करते समय विशेष ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि अधिक ताप तथा पानी की कमी से यह सूखने लग जाती है। इस विधि से जिरेनियम, पिटूनियम आदि के पौधे तैयार किये जाते हैं।

(ii) अर्द्ध मुलायम लकड़ी वाले—इस विधि में वृक्ष और झाड़ियों की एक मौसम पुरानी शाख प्रयोग में लाई जाती है। 7·15 से. मी. लम्बी शाखा लेते हुये जिसमें कि आँखें (कली) विकसित अवस्था में चुनना चाहिये। इस तरह की कटिंग लेते समय एक बात और ध्यान में रखना चाहिये कि उसी शाखा में कलम ली जाये जो कि वृद्धि की अवस्था में हो। इन कलमों को तैयार की गई क्यारी में लगा देना चाहिये। इस विधि से अधिकतर वेरीज के पौधे तैयार किये जाते हैं।

(iii) कठोर (कड़ी) लकड़ी वाले—इस विधि में पौधे की परिपक्व शाखा जो अधिक पुरानी न हो लेते हुये पौधे तैयार किए जाते है। पूर्ण वृक्षों से पौधे तैयार करने के लिए कलम तब ली जायेगी जब वे सुषुप्तावस्था में होते हैं। इसके लिए एक साल पुरानी शाख को चुनते हुये 10 से 30 से. मी. लम्बी शाख के टुकड़े को लेते हैं। कलम काटते समय यह ध्यान रखा जाता है कि ऊपर का कटाव आँख से थोड़ा ऊपर और नीचे का कटाव आँख से थोड़ा नीचे किया जाता है। इस कटी हुई कलमों को तैयार क्यारियों में आधा भाग मिट्टी में दबाते हुये लगा देते हैं।

सदाबहार वृक्षों में कलम द्वारा पौधे तैयार करने के लिये 10 से 20 से.मी. लम्बी कलम एक साल पुरानी शाखा से लेते हैं। इस तरह से नीबू, मयूर आदि के पौधे तैयार किये जाते है। इसके बाद लगभग सभी पत्तियों को हटा देते हैं। अन्यथा पत्तियाँ रहने से कलम का अधिकाश पानी उत्स्वेदन क्रिया द्वारा नष्ट हो जाता है।

कलमें लगाने से लाभ—

1. फल जल्दी प्राप्त होने लगते है।
2. पौधा कम समय में तैयार हो जाता है।
3. उत्पन्न पौधे में पैतृक गुण विद्यमान रहते हैं।
4. पौधे नीचे तथा कम फैलने वाले तैयार होते है।

(ब) रुट कटिंग—जैसा कि नाम से ही विदित है, ये पौधों की उन जड़ों से तैयार की जाती है जिनमें एक पौधा तैयार करने की शक्ति रहती है। कुछ पौधे जो शीघ्र जड़ पैदा कर देते हैं उन्हें इसी प्रकार तैयार किया जाता है। नासपाती, अंगूर, वेर आदि इसी विधि द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। इस विधि के प्रयोग का ढंग यह है कि जड़ का कटाव 5 से 25 से. मी. लम्बा और लगभग ·6 से ·8 से.मी. मोटा लिया जाता है और इन्हें भूमि में पृथ्वी के समानान्तर रख दिया जाता है।

इनके रखने का ढंग यह होता है कि ऊपरी सिरा स्तर भूमि के धरातल से थोड़ा ऊपर निकाला जाता है। इस प्रकार रखने से कटाव में एडवेन्टिशस कलियाँ निकलने लगती हैं और भूमि या बालू में प्रवेश कर जाती हैं। नया अंकुर निकलने के बाद कुछ समय बाद इसे स्थानान्तरण कर लिया जाता है। शकरकंद, अमरूद व शीशम आदि में इस प्रकार प्रजनन कर सकते हैं।

(स) लीफ कटिंग—बहुत से पौधों को उनकी पत्ती द्वारा बढ़ा सकते हैं, जैसे पथरचटा व बिगोनिया आदि। पथरचटा की पत्ती का किनारा कटा-फटा होता है और प्रत्येक कटाव पर एक अनियमित (एडवेन्टिशस) कली होती है। जब पत्तियाँ भूमि पर गिर जाती हैं तो नमी के कारण प्रत्येक कटाव से जड़ें निकलकर नीचे चली जाती हैं और नई शाखायें ऊपर की ओर बढ़ती हैं। पुरानी पत्ती सड़ जाती है और उससे कई पौधे तैयार हो जाते हैं, जिनको अलग-अलग करके लगा दिया जाता है।

बिगोनिया की पत्ती की नसों को काटकर डंडी सहित बालू में लगा देते हैं। कटे हुए स्थान से जड़ें तथा नई शाखायें निकलती है, जिनको अलहदा करके लगा देते हैं। इस प्रकार एक पत्ती से 3 या 4 पौधे तैयार हो जाते है।

(द) बड़ कटिंग—पौधों को बड़ी सुगमता से कली द्वारा बढ़ा सकते है। लाहौर आदि स्थानों में अंगूर के पौधे इसी रीति से तैयार करते है। इंगलैण्ड में नीबू की जाति के पौधे, गुलाब व कमेलिया आदि इसी तरीके से बढ़ाते हैं। भारतवर्ष में यह तरीका भली भांति सफल हुआ है। गोरखपुर (यू. पी.) में गुलाब, नीबू, नारंगी व चकोतरा आदि के पौधे इसी रीति से तैयार किये गये हैं।

एक नई गुदेदार शाखा काट ली जाय जिस पर तन्दुरुस्त पत्ती तथा कलियाँ हों। कली के लगभग 1·25 से. मी. ऊपर से 1·25 से. मी. नीचे तक लकड़ी का लगभग चौथाई भाग लेते हुये चाकू से काटकर कली को निकाल लिया जाता है। यह ध्यान रहे कि पत्ती न टूटने पावे, वरना कली नहीं लगेगी।

कलियों को इस प्रकार निकालकर बालू में लगा देते हैं, परन्तु यह ध्यान रहे कि वे दब न जायं बल्कि थोड़ा-सा हिस्सा दिखाई देता रहे। बालू नम रखने के लिए आवश्यकतानुसार पानी देते रहते है और शीशे की प्लेट से ढक देते है।

लगभग 3 सप्ताह में जड़ें निकल आती है और कली से शाखा बनने लगती हैं। इसके बाद इन पौधो को बालू निकाल कर बालू और बालू खाद के मिश्रण में लगा देते है और बढ़ने पर गमलों में अलग-अलग कर देते है। इस रीति से पौधे तैयार करने में बड़ा समय लगता है, और लगभग 6 माह में 25 से 30 से. मी. ऊँचे पौधे तैयार होते हैं।

2. दाब लगाना (लेयरिंग)—वनस्पतिक प्रजनन की यह विधि कटाव-विधि (कटिंग) से केवल थोड़ा अन्तर रखती है। इसमें जड़ शाखाओं के काटने के बाद नहीं

निकलती, बल्कि ये जड़ निकलने के बाद काटी जाती हैं। इनमें वृक्ष की शाखा या टहनी भूमि पर झुका कर मिट्टी या किसी अन्य विधि से दबा दी जाती है। कुछ समय बाद तक उपर्युक्त परिस्थितियों में रखने से शाखा से जड़ें निकल आती हैं और तब इसे मातृ वृक्ष से काट कर पृथक कर दिया जाता है। यदि शाखा काफी ऊपर होती है जिसे भूमि पर झुकाना सम्भव नहीं होता तो गमलों को ऊपर रखने का प्रबन्ध किया जाता है जिससे मृदा ऊपर पहुँचाई जा सके। इस तरह लेयरिंग दो प्रकार का होता है—

(अ) भूमिगत (ब) वायीव (गूटी)

(अ) भूमिगत—भूमिगत दाब उसे कहते हैं जब शाखा या किसी टहनी को भूमि की सतह पर मिट्टी के अन्दर दबाते है। शाखा या टहनी को भूमि के अन्दर दबाने की कई विधियां है—

(i) साधारण—पौधा तैयार करने का यह तरीका बहुत आसान है। इसमे पौधे की बढ़ती नई शाखा का ऊपरी सिरा छोड़ते हुए बीच में मिट्टी मे दाब देते हैं। जड़ें अच्छी तरह निकल जाने पर तैयार पौधो को मातृ वृक्ष से काट कर अलग कर दिया जाता है। (चित्र सं. 69 देखो).



चित्र–69



चित्र–70

(ii) टिप लेयरिंग—पौधा तैयार करने का यह तरीका पहले से मिलता-जुलता है। इसमें शाख का ऊपरी सिरा मिट्टी मे दबाया जाता है। करीब 8 से 10 से. मी. गहरा दबाने पर थोड़े समय मे जड़ें निकल आती हैं। इसके बाद पौधा तैयार हो जाने पर उसको काट कर अलग कर दिया जाता है। (चित्र सं. 70 देखो)।

(iii) ट्रेन्च लेयरिंग—इस तरीके से एक ही शाख से एक बार में कई पौधे तैयार हो जाते हैं। जिस शाखा से पौधे तैयार करने हों उनके नीचे एक लम्बी, लगभग 15 से. मी. गहरी नली खोद ली जाती है। इसमें शाख को जगह-जगह पर छल्ला काटकर या छल्ला बनाकर मिट्टी में दाब देते है। इसके बाद पौधे तैयार हो जाने पर काट कर अलग कर देते हैं। (चित्र सं. 71 देखो)

(iv) ट्विस्ट लेयरिंग—इस तरीके में शाखा को साधारण तरीके से दबाया जाता है। जिस तरह दूसरी विधियों में छल्ला या नॉच बना देते है उसी प्रकार इस विधि मे शाखा को मोड़ देते हैं जिससे शाखा की छाल के टिस्यू टूट जाते हैं और यहाँ पर कार्बोहाइड्रेट्स तथा आक्सीजन इकट्ठे हो जाने पर तेजी से जड़ों का विकास होता है । पौधे तैयार हो जाने पर काटकर दूसरे स्थान पर लगा दिये जाते हैं। (चित्र सं. 72 देखें)



चित्र—72

(v) माउण्ड लेयरिंग—पौधे तैयार करने का यह तरीका काफी सरल है। इस विधि द्वारा किसी झाड़ीनुमा पौधे से एक साथ कई पौधे तैयार किये जा सकते हैं। शाखाओं को झुकाने आदि की जरूरत नही पड़ती, जिन पौधों की शाखायें आसानी से नही झुक पाती उनके लिये यह तरीका बहुत अच्छा है। इसके लिए पौधे की पुरानी शाखाओं की अपेक्षा नई शाखायें पौधे तैयार करने मे अधिक सफल होती हैं। अतः जब किसी झाड़ी से पौधे तैयार करने हों उनमें से पहले नई शाखायें निकाल लेनी चाहिए और फिर इन पर अन्दर की ओर से मिट्टी डालनी चाहिए। मिट्टी डालते समय घनी शाखाओं को दूर कर देना चाहिए जिससे कि जड़ें निकल कर अच्छी तरह फैल सकें। थोड़े समय बाद मिट्टी सावधानीपूर्वक हटाते हुए पौधों को काट कर अलग कर देना चाहिए। (चित्र सं. 73 देखो)



चित्र—73



चित्र—74

(vi) नॉच लेयरिंग—इस तरीके मे शाखा का वह भाग जो भूमि में दबाया जाता है, उसमें नीचे की ओर चाकू से उल्टी V आकार का भाग काटकर अलग कर

देते हैं। इसमें छाल के साथ थोड़ा सा भाग लकड़ी का भी काटा जाता है और बाद में मिट्टी में दबा दिया जाता है। (चित्र सं. 74 देखो)

(vii) रिंग लेयरिंग—इस तरीके में जड़ें शीघ्र निकलती है। इसमें गाठ के नीचे 1·25 से. मी. से 3·75 से. मी. तक छिलका चारों ओर से निकाल कर मिट्टी में दबा देते हैं। लेकिन अधिक सफलता 1·5 से. मी. के आकार का छल्ला काटने से मिली है। (चित्र सं. 75 देखो)



चित्र —75



चित्र—76

(viii) स्टूल लेयरिंग—वसंत ऋतु के पहले ही पौधे को भूमि के निकट तक छांट देते है। बाद मे जो नई शाखायें नीचे से निकलती हैं उन्हे मिट्टी डालकर चारों ओर से ढक देते है। थोड़े दिनो में जब इनसे जड़े निकल आती है तो पौधे से काट कर अलग कर लेते है। नासपाती में ऐसा ही करते है।

(ix) टंग लेयरिंग—एक शाखा मे सबसे अच्छी गाठ छांट ली जाती है। उसके नीचे की तरफ लकड़ी को 2 से. मी. लम्बा और मोटाई मे लगभग आधा नीचे से ऊपर की ओर जीभ के आकार सा काट देते है। जीभ और शाखा के बीच मे एक लकड़ी का टुकड़ा रख देते है। ताकि दोनों मिलने न पावें। 5 से 7 से.मी. मिट्टी हटाकर कटे हुए भाग को जमीन की तरफ रखते हुए उस पर मिट्टी डाल कर दबा देना चाहिए। यदि उठाने का भय हो तो लकड़ी की खूंटी से दबा दिया जाता है। आवश्यकतानुसार पानी देते रहते है। 3–4 सप्ताह मे जीभ से जड़े निकलना प्रारम्भ हो जाती है और बाद मे पौधे को काटकर अलग कर दिया जाता है। (चित्र सं. 76 देखो)

(x) स्ट्रैन्गुलेटेड विधि—लेयरिंग के इस तरीके मे शाखा को अन्य तरीकों की तरह काट न देकर तार मे लकड़ी को इस तरह कस देते हैं कि छाल अच्छी तरह कस जाती है। जिससे पत्तियों द्वारा निर्मित खाद्य पदार्थ रुक जाता है और यहां से जड़ें शीघ्र निकलना शुरू हो जाती है। बाद में पौधे को काट कर अलग कर दि

उसे 40 डिग्री का कोण बनाते हुए पृथ्वी पर रख दिया जाता है। जब पौधा इस प्रकार स्थिर हो जाता है
कर गाड़ दिया जाता है
ज्यों कलियां फटती जाती
जाते हैं तो मिट्टी छिड़कने की क्रिया बंद कर दी जाती है। इस समय तक मिट्टी की तह 15 से 20 से.मी. गहरी हो जाती है। प्रांकुर निकलने पर जड़ें भी निकलती हैं। जब ये कुछ बड़ी हो जाती हैं तो पूरा नया पौधा अलग कर लिया जाता है। इस नये पौधे के निकलने में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि शाखा के अन्य नये पौधे क्षतिग्रस्त न हों, ताकि उनसे अन्य नये पौधे अधिक दिनों तक लिये जाते रहें। नये पौधे को वांछित स्थान पर लगा दिया जाता है। यह विधि ट्रेन्च विधि से काफी मिलती है।

दाब लगाने का समय—दाब साल के किसी भी समय में लगाया जा सकता है। परन्तु अधिकतर वसंत ऋतु या वर्षा ऋतु में दाब लगाया जाता है क्योंकि इस समय अधिक सफलता प्राप्त होती है। फरवरी-मार्च या जून से अगस्त।

(ब) वायवीय या अंटा या गूटी (एयर लेयरिंग)—यह लेयरिंग का सुधरा हुआ रूप है। क्योंकि पिछले तरीकों में पौधे की शाख जब भूमि के पास होगी तभी लेयरिंग हो सकती है। परन्तु यदि पौधे की शाख ऊंचाई पर है तब पिछली विधियों से पौधा तैयार नहीं हो सकता, अतः इस तरह की समस्या के लिये गूटी उपयुक्त है।

इस विधि में जड़ें पैदा करने वाला माध्यम शाख तक ले जाते है और किसी कपड़े या अन्य पदार्थ की सहायता से उसको शाख पर स्थित रहने देते है। जड़ें निकलने देने के लिए सबसे अधिक आवश्यक दशा उपयुक्त नमी है। यह पानी देकर पूरी करते रहते हैं। इस विधि का प्रयोग मार्च-अप्रेल से सितम्बर-अक्टूबर तक कर सकते हैं। वैसे पानी की कमी में वर्षा ऋतु ठीक है।

शाखा का चुनाव—एक वर्ष की स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट शाखा चुननी चाहिये। शाखा अधिक पुरानी नहीं होनी चाहिए। शाखा की मोटाई अंगूठे के बराबर होनी चाहिये। शाखा पर छल्ले के आकार की छाल हटा देते है। छल्ले की लम्बाई 3–5 से.मी. तथा चौड़ाई 2 से. मी. से अधिक नही रखते है।

गूटी लगाना—शाखा या टहनी के सिरे से 20 से 30 से.मी. दूर छल्ले की आकृति की छाल को निकालते है। छल्ला बनाने के लिये पहला कटाव फूली हुई कलिका के पास और दूसरा कटाव लगभग पास वाली कलिका के पास बडिंग नाइफ से लगाकर छाल को ढीला करके निकाल देते है। छाल को अलग करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि लकड़ी की हानि न पहुंचने पावे। साथ ही छाल को अच्छी तरह हटाते हैं ताकि छाल पुनः उस स्थान पर न पनप सके। (चित्र सं. 77 देखें)

नहीं विकसित हो पाती। अतः गूटी की मिट्टी भीगी रखने के लिये उसके ऊपर किसी मिट्टी के बर्तन में पानी रख देते हैं। बर्तन की पेंदी में एक छोटा छिद्र रखते हैं जिसकी सहायता से पानी रिस-रिस कर गूटी पर आता रहता है। मिट्टी की जगह काई बांधने से पानी की बार-बार जरूरत नहीं पड़ती है। इसके ऊपर मोमजामा (पोलीथीन) बांधने से नमी वाष्प द्वारा नहीं उड़ पाती है।

8–10 सप्ताह बाद जड़ें टाट या पोलीथीन के बाहर निकल आती है। जब जड़ें अच्छी तरह विकसित हो जाती हैं तो काटकर पौधा अलग कर लेते है और छाया में रखते हैं। सीधे धूप में ले जाने से प्रभावित होकर सूख अथवा मुरझा जाता है। अतः छाया से धीरे-धीरे धूप दिखाना चाहिये। इस क्रिया को हार्डनेंग कहते हैं। पौधे को आवश्यकतानुसार सुबह-शाम पानी देना चाहिए। गूटी के पौधे 3 माह में तैयार हो जाते हैं।

(2) विभाजन (डिवीजन) द्वारा - बहुत से झाड़ीनुमा तथा बहुवार्षिक पौधे ऐसे हैं जिनके तने से अनेक जड़वाली शाखायें जमीन के निकट से निकलती हैं, जैसे गुलदाउदी। इन पौधों को सुगमता से विभाजित करके कई पौधे तैयार कर सकते हैं। पौधे को जमीन अथवा गमले से निकाल कर शाखाओं (पुत्तियों) को जड़ सहित अलग-अलग करके लगा देने से प्रत्येक शाखा से एक पौधा बन जाता है। अगर पौधे बढ़ाने का विचार न भी हो, तब भी इन पत्तियों को निकालकर नई जमीन में लगा देना जरूरी है, ताकि पौधा कमजोर न हो पावे। केला और गुलतसबी (केन्ना) को भी विभाजित करके लगाते हैं अर्थात् पुत्तियां को पैतृक तने से जड़ सहित काट कर अलग करके तैयार की हुई भूमि में लगा देते हैं।

(3) प्रापटेज—यह विधि दो प्रकार से की जाती है—

1. एटेच्ड प्रापटेज—इसे इनार्चिंग भी कहते हैं। इसमें शाखा पैतृक वृक्ष से अलग नहीं की जाती जबकि मूलवृन्त तथा शाखा में जुड़ाव हो रहा हो। यह दो प्रकार का होता है। 1. साधारण 2. जीभी।

2 डिटेच्ड प्रापटेज—यह दो प्रकार का होता है। पहला ग्राफिटग और दूसरा बडिंग। दोनों ही प्रकार में साख पैतृक वृक्ष से अलग करके मूलवृन्त पर मिलाया जाता है।

1. (अ) साधारण इनार्चिंग—इस विधि में सायन शाखा मातृ-वृक्ष में लगी होती है। यह सम्बन्ध तब तक पृथक् नहीं किया जाता जब तक कि मूलवृन्त और शाख (सायन) का जोड़ पूर्ण न हो जाय। मूलवृन्त (रुट स्टाक) के लिए पौधा एक अलग गमले में तैयार किया जाता है और तब वह कलम लगाने योग्य हो जाता है तो उसे शाख (सायन) के निकट लाया जाता है। यदि सायन शाखा अधिक ऊंचाई पर होती है तो मूलवृन्त वाले पौधे गमले सहित मचान पर रखे जाते है ताकि सायन शाखा सफलतापूर्वक प्राप्त कर ली जाय। गमले रखने में इस बात की सावधानी रखी जाती है कि उनके हिलने डुलने या गिरने का भय न रहे। गमले



चित्र—77

(1) जड़ देने वाला माध्यम—इसके लिये कई तरह के माध्यम प्रयोग में लाये जाते है। परन्तु विशेष रूप से तैयार की गई मिट्टी तथा काई (मॉस) अधिक प्रचलित है। साधारण रूप से यह क्रिया सम्पन्न करने के लिये निम्न पदार्थ प्रयोग में लाये जाते है।

(अ)

1. तालाब की चिकनी मिट्टी	—	10 भाग
2. अण्डी की खली	—	1 भाग
3. बालू	—	1 भाग
4. चिथड़े	—	आवश्यकतानुसार

अथवा निम्न में से किसी एक का प्रयोग करते हैं—

(ब)

1. मिट्टी (2 भाग बाग की +1 भाग पत्ती की खाद)
2. स्फेगनम मॉस (काई)
3. स्टरलाइट
4. वर्मी कोलाइट
5. परलाइट

अभी हाल में ही दलदल में उगने वाली काई और स्टोन नामक पदार्थ का मिश्रण लगाकर बिना मिट्टी के सहारे और बिना सिंचाई किये ही जड़ उत्पन्न करने की विधि खोज निकाली गई है।

भाग अ और भाग ब मे बताये गये मिश्रण मे आवश्यकतानुसार पानी मिलाकर अच्छी तरह गूंथते हैं और उपयुक्त मात्रा मे काटी गई शाखा के स्थान के आस-पास लगभग 5 से. मी. ऊपर एवं नीचे लपेट देते हैं और फिर चोकोर टाट के टुकड़े को चारों ओर लपेट कर सुतली से बांध देते हैं। यह क्रिया वर्षा ऋतु मे करने से पानी खूब प्राप्त होता रहता है परन्तु दूसरी ऋतु मे करने से इनको पानी देने का इन्तजाम करना होता है जिससे मिट्टी सूखने न पावे। क्योंकि मिट्टी सूखने पर जड़ें ठीक से

नहीं विकसित हो पाती। अतः गूटी की मिट्टी भीगी रखने के लिये उसके ऊपर किसी मिट्टी के वर्तन में पानी रख देते हैं। वर्तन की पेंदी मे एक छोटा छिद्र रखते हैं जिसकी सहायता से पानी रिस-रिस कर गूटी पर आता रहता है। मिट्टी की जगह काई बांधने से पानी की बार-बार जरूरत नहीं पड़ती है। इसके ऊपर मोमजामा (पोलीथीन) बांधने से नमी वाष्प द्वारा नहीं उड़ पाती है।

8–10 सप्ताह बाद जड़ें टाट या पोलीथीन के बाहर निकल आती है। जब जड़ें अच्छी तरह विकसित हो जाती हैं तो काटकर पौधा अलग कर लेते हैं और छाया में रखते हैं। सीधे धूप मे ले जाने से प्रभावित होकर सूख अथवा मुरझा जाता है। अतः छाया से धीरे-धीरे धूप दिखाना चाहिये। इन क्रिया को हार्डनेज कहते हैं। पौधे को आवश्यकतानुसार सुबह-शाम पानी देना चाहिए। गूटी के पौधे 3 माह में तैयार हो जाते है।

(2) **विभाजन (डिवीजन) द्वारा** बहुत से झाड़ीनुमा तथा बहुवार्षिक पौधे ऐसे हैं जिनके तने से अनेक जड़वाली शाखायें जमीन के निकट से निकलती हैं, जैसे गुलदाउदी। इन पौधों को सुगमता से विभाजित करके कई पौधे तैयार कर सकते हैं। पौधे को जमीन अथवा गमले से निकाल कर शाखाओं (पुत्तियों) को जड़ सहित अलग-अलग करके लगा देने से प्रत्येक शाखा से एक पौधा बन जाता है। अगर पौधे बढ़ाने का विचार न भी हो, तब भी इन पत्तियों को निकालकर नई जमीन में लगा देना जरूरी है, ताकि पौधा कमजोर न हो पावे। केला और गुलतसवी (केना) को भी विभाजित करके लगाते हैं अर्थात् पुत्तियों को पैतृक तने से जड़ सहित काट कर अलग करके तैयार की हुई भूमि में लगा देते हैं।

(3) **ग्राफ्टेज**—यह विधि दो प्रकार से की जाती है—

1. **एटेच्ड ग्राफ्टेज**—इसे इनार्चिंग भी कहते हैं। इसमें शाखा पैतृक वृक्ष से अलग नहीं की जाती जबकि मूलवृन्त तथा शाखा मे जुड़ाव हो रहा हो। यह दो प्रकार का होता है। 1. साधारण 2. जीभी।

2. **डिटेज्ड ग्राफ्टेज**—यह दो प्रकार का होता है। पहला ग्राफ्टिंग और दूसरा बडिंग। दोनों ही प्रकार मे साख पैतृक वृक्ष से अलग करके मूलवृन्त पर मिलाया जाता है।

1. (अ) **साधारण इनार्चिंग**—इस विधि मे सायन शाखा मातृ-वृक्ष मे लगी होती है। यह सम्बन्ध तब तक पृथक् नही किया जाता जब तक कि मूलवृन्त और शाख (सायन) का जोड़ पूर्ण न हो जाय। मूलवृन्त (रुट स्टॉक) के लिए पौधा एक अलग गमले मे तैयार किया जाता है और तब वह कलम लगाने योग्य हो जाता है तो उसे शाख (सायन) के निकट लाया जाता है। यदि सायन शाखा अधिक ऊंचाई पर होती है तो मूलवृन्त वाले पौधे गमले सहित मचान पर रखे जाते हैं ताकि सायन शाखा सफलतापूर्वक प्राप्त कर ली जाय। गमले रखने मे इस बात की सावधानी रखी जाती है कि उनके हिलने डुलने या गिरने का भय न रहे। गमले



चित्र—77

(1) *जड़ देने वाला माध्यम*—इसके लिये कई तरह के माध्यम प्रयोग में लाये जाते है । परन्तु विशेष रूप से तैयार की गई मिट्टी तथा काई (मॉस) अधिक प्रचलित है । साधारण रूप से यह क्रिया सम्पन्न करने के लिये निम्न पदार्थ प्रयोग मे लाये जाते है ।

(अ)

1. तालाब की चिकनी मिट्टी	—	10 भाग
2. अण्डी की खली	—	1 भाग
3. बालू	—	1 भाग
4. चियडे	—	आवश्यकतानुसार

अथवा निम्न मे से किसी एक का प्रयोग करते हैं—

(ब)

1. मिट्टी (2 भाग बाग की +1 भाग पत्ती की खाद)
2. स्फेगनम मॉस (काई)
3. स्टरलाइट
4. वर्मी कोलाइट
5. परलाइट

अभी हाल में ही दलदल में उगने वाली काई और स्टोन नामक पदार्थ का मिश्रण लगाकर बिना मिट्टी के सहारे और बिना सिंचाई किये ही जड़ उत्पन्न करने की विधि खोज निकाली गई है ।

भाग अ और भाग ब मे बताये गये मिश्रण मे आवश्यकतानुसार पानी मिलाकर अच्छी तरह गूंथते हैं और उपयुक्त मात्रा मे काटी गई शाखा के स्थान के आसपास लगभग 5 से. मी. ऊपर एवं नीचे लपेट देते हैं और फिर चौकोर टाट के टुकड़े को चारों ओर लपेट कर सुतली से बांध देते हैं । यह क्रिया वर्षा ऋतु मे करने से पानी खूब प्राप्त होता रहता है परन्तु दूसरी ऋतु मे करने से इनको पानी देने का इन्तजाम करना होता है जिससे मिट्टी सूखने न पावे । क्योंकि मिट्टी सूखने पर जड़ें ठीक से

नहीं विकसित हो पाती। अतः गूटी की मिट्टी भीगी रखने के लिये उसके ऊपर किसी मिट्टी के बर्तन में पानी रख देते हैं। बर्तन की पेंदी में एक छोटा छिद्र रखते हैं जिसकी सहायता से पानी रिस-रिस कर गूटी पर आता रहता है। मिट्टी की जगह काई बांधने से पानी की बार-बार जरूरत नहीं पड़ती है। इसके ऊपर मोमजामा (पोलीथीन) बांधने से नमी वाष्प द्वारा नहीं उड़ पाती है।

8–10 सप्ताह बाद जड़ें टाट या पोलीथीन के बाहर निकल आती है। जब जड़ें अच्छी तरह विकसित हो जाती हैं तो काटकर पौधा अलग कर लेते है और छाया में रखते हैं। सीधे धूप में ले जाने से प्रभावित होकर सूख अथवा मुरझा जाता है। अतः छाया से धीरे-धीरे धूप दिखाना चाहिये। इस क्रिया को हार्डनेज कहते हैं। पौधे को आवश्यकतानुसार सुबह-शाम पानी देना चाहिए। गूटी के पौधे 3 माह में तैयार हो जाते हैं।

(2) **विभाजन (डिवीजन) द्वारा** - बहुत से झाड़ीनुमा तथा बहुवार्षिक पौधे ऐसे हैं जिनके तने से अनेक जड़वाली शाखायें जमीन के निकट से निकलती हैं, जैसे गुलदाउदी। इन पौधों को सुगमता से विभाजित करके कई पौधे तैयार कर सकते हैं। पौधे को जमीन अथवा गमले से निकाल कर शाखाओं (पुत्तियों) को जड़ सहित अलग-अलग करके लगा देने से प्रत्येक शाखा से एक पौधा बन जाता है। अगर पौधे बढ़ाने का विचार न भी हो, तब भी इन पत्तियों को निकालकर नई जमीन में लगा देना जरूरी है, ताकि पौधा कमजोर न हो पावे। केला और गुलतसबी (केना) को भी विभाजित करके लगाते हैं अर्थात् पुत्तियों को पैतृक तने से जड़ सहित काट कर अलग करके तैयार की हुई भूमि में लगा देते हैं।

(3) **प्रापटेज**—यह विधि दो प्रकार से की जाती है—

1. **एटेइड प्रापटेज**—इसे इनार्चिंग भी कहते हैं। इसमें शाखा पैतृक वृक्ष से अलग नहीं की जाती जबकि मूलवृन्त तथा शाखा में जुड़ाव हो रहा हो। यह दो प्रकार का होता है। 1. साधारण 2. जीभी।

2 **डिटेज्ड प्रापटेज**—यह दो प्रकार का होता है। पहला ग्राफ्टिंग और दूसरा बडिंग। दोनों ही प्रकार में साख पैतृक वृक्ष से अलग करके मूलवृन्त पर मिलाया जाता है।

1. (अ) **साधारण इनार्चिंग**—इस विधि में सायन शाखा मातृ-वृक्ष में लगी होती है। यह सम्बन्ध तब तक पृथक् नहीं किया जाता जब तक कि मूलवृन्त और शाख (सायन) का जोड़ पूर्ण न हो जाय। मूलवृन्त (रुट स्टॉक) के लिए पौधा एक अलग गमले में तैयार किया जाता है और तब वह कलम लगाने योग्य हो जाता है तो उसे शाख (सायन) के निकट लाया जाता है। यदि सायन शाखा अधिक ऊंचाई पर होती है तो मूलवृन्त वाले पौधे गमले सहित मचान पर रखे जाते हैं ताकि सायन शाखा सफलतापूर्वक प्राप्त कर ली जाय। गमले रखने में इस बात की सावधानी रखी जाती है कि उनके हिलने डुलने या गिरने का भय न रहे। गमले

को सावधानी से रखने के बाद सायन और रुट स्टाक में 5-7 से मी. लम्बा लकड़ी तक छूते हुए कटाव बना लिया जाता है ताकि उन्हें आपस में जोड़ने में आसानी हो।

कटाव के बाद दोनों को इस प्रकार मिलाते हैं कि दोनो की कैम्बियम तहें एक-दूसरे से मिल जायं। इसके लिए रुट-स्टाक और सायन की मोटाई समान होनी आवश्यक है। इन्हें आपस में मिलाने के बाद रस्सी, चिथड़े या मोम के कपड़े (पोलीथीन) से बांध देते हैं। ग्राफ्टिंग वेक्स से रिक्त स्थानों को भर दिया जाता है जिससे हवा अन्दर प्रवेश न कर सके।

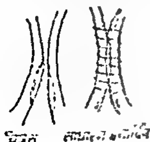
ग्राफ्टिंग वेक्स में 1·8 कि. ग्रा. विरोजा, 100 ग्राम मोम, 500 ग्राम टैलो, 500 ग्राम अलसी का तेल तथा थोड़ा काजल लेकर गर्म करते हैं। जब यह मिश्रण गर्म होकर पिघल जाय तो पानी में डाल देते हैं। जब हल्का पीला रंग हो जाय तो पानी से निकालकर काम में लेते हैं।

रुट स्टाक एवं सायन 2-3 माह बाद जुड़ जाते हैं तो शाख को धीरे से अलग करते हैं। सायन जोड़ के 2·5 से 5 से.मी. तक नीचे से काटी जाती है। उसे काटने के बाद स्टाक के जोड़ के ऊपर वाला भाग भी काट कर निकाल दिया जाता है। यह पौधा स्थायी रूप से यथा-स्थान में लगाने योग्य हो जाता है। (चित्र सं० 78 देखें)।

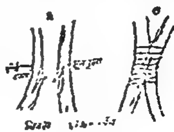
पौधों का चुनाव—पौधों की शाखा जिन पर इनार्चिंग करनी हो स्वस्थ एवं निरोग होने चाहिये। सायन की मोटाई 2-3 से.मी. से अधिक नहीं होनी चाहिए। साथ ही शाखाओं की उम्र न अधिक हो न कम। सायन और रुट-स्टाक दोनों की मोटाई समान होनी चाहिए।

इनार्चिंग करने का समय—ठंडी जलवायु वाले पौधों पर ग्राफ्टिंग के लिए सर्वोत्तम जनवरी, फरवरी तथा गर्म क्षेत्रों के लिए जुलाई से सितम्बर का महीना रहता है।

2. (ब) टंग इनार्चिंग—यह विधि जीभ के आकार के कटाव के ही कारण जीभ विधि कही जाती है। इसमें सायन में एक खूंटी बना ली जाती है और रुट-स्टाक से ठीक उसके विरुद्ध प्रकार का कटाव बनाया जाता है, ताकि दोनों का जोड़ ठीक बैठ जाय। जोड़ बन जाने के बाद बांधने की कोई अधिक आवश्यकता नहीं



चित्र—78



चित्र—79

रह जाती क्योंकि इनका अन्तर्निवेश इस प्रकार होता है कि ये निकलने नहीं पाती किन्तु मोम या मिट्टी-गोवर का मिश्रण अवश्य लपेट दिया जाता है। यह विधि व्यापारिक ढंग पर नहीं प्रयोग की जाती। (देखो चित्र मं० 79)

3. (स) ग्राफ्टिंग—इसमें इनार्चिंग से थोडा अन्तर है। इसमें सायन को पैतृक वृक्ष से अलग करके मूलवृन्त (रुट-स्टाक) पर मिलाया जाता है। एक अच्छे किस्म के पौधे की शाखा को जंगली किस्म के तने (स्टाक) पर बांधना भेंट कलम या बांध कलम (ग्राफ्टिंग) कहलाता है। स्टाक का जंगली किस्म का अथवा मजबूत होना जरूरी है, ताकि वह अच्छी सायन भली-भांति पाल सके। ग्राफ्टिंग एक ही जाति के पौधों पर कर सकते हैं।

रुट-स्टाक का चुनाव—रुट-स्टॉक पौधे का वह भाग है जिस पर पूरा वृक्ष तैयार करने के लिए सायन लगाई जाती है। यह जंगली किस्म का होता है। रुट-स्टाक (मूलवृन्त) का चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये—

1. रुट-स्टाक स्वस्थ एवं निरोग हो।
2. बीमारी प्रतिरोधक होना चाहिए।
3. सैप बहती हुई दशा में होनी चाहिए।
4. अधिक पुराना नही होना चाहिए।
5. मोटाई समान होनी चाहिए।
6. टहनी गोल हो, गड्ढे आदि नही होने चाहिए।

सायन का चुनाव—सायन पौधों का वह भाग है जो अच्छी किस्म का होता है। पूरा वृक्ष तैयार करने के लिए स्टाक पर लगाया जाता है। इससे पूरा पौधा जंगली किस्म का होते हुए अच्छी किस्म का बन जाता है। सायन (शाख) का चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये—

1. सायन अच्छी किस्म की होनी चाहिए।
2. सायन स्वस्थ एवं निरोग हो।
3. बीमारी प्रतिरोधक भी होना चाहिए।
4. टहनी गोल होनी चाहिए।
5. टहनी सीधी व चिकनी तथा बिना गड्ढे की हो।
6. टहनी पर छिलका पूरी तरह हो।
7. सायन की मोटाई बिल्कुल मूलवृन्त की टहनी की मोटाई के बराबर होनी चाहिए जो 2–3 से. मी. से अधिक नही होनी चाहिये।

ग्राफ्टिंग से लाभ—ग्राफ्टिंग करने के निम्नलिखित लाभ है—

1. जंगली तथा देशी पौधे जो अच्छी किस्म का बना सकते हैं।
2. नाटे व सुडौल पौधे तैयार कर सकते हैं।
3. पौधे जल्दी फल देने लगते हैं।

4. इच्छानुसार फल पैदा कर सकते हैं।
5. बीज रहित फल पैदा करने वाले फल वृक्षों को सफल एवं सरलता से पैदा किया जा सकता है।
6. अच्छी किस्म के पौधों को स्वस्थ एवं मजबूत बना सकते हैं जिसमें वे भूमि की खराबी, पानी की कमी तथा ज्यादती को भुगमतापूर्वक सहन कर सके।
7. फलो की पैदावार बढा सकते है।
8. पौधे दूसरे तरीकों से तैयार न होने पर ग्राफ्टिंग से जल्दी तैयार हो जाते हैं।
9. जो वृक्ष अधिक आयु का हो या तेज आँधी से गिर गया हो उसको सिर विहीन (हैड बैंक) करके पेकवन्द लगा सकते हैं।

ग्राफ्टिंग के किस्म- - मूलवृन्त (रुट-स्टाक) व शाख (सायन) पर विभिन्न आकृति के कटाव के किए जाते हैं जिनको विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। इसका विवरण निम्न प्रकार है —

1. सेडिल ग्राफ्टिंग—यह पौधे तैयार करने का बहुत आसान तरीका है। इसमें समान मोटाई के रुट-स्टाक और सायन लेते है और रुट-स्टाक को भूमि से निश्चित ऊँचाई से पूरी तरह से जमीन के समानान्तर काट देते हैं फिर इसमें 2-2.5 सेमी. की निचाई से दोनों तरफ से, बराबर दूरी से नीचे से ऊपर की ओर काट लगाते हुये ऊपर की ओर तने के बीच पर मिला देते हैं। इस तरह एक नुकीला सा भाग बन जाता है। अब सायन की टहनी लेकर अन्दर की ओर में उल्टी v या स्टाक पर काटे गये नुकीले भाग के बराबर का भाग काटकर निकाल देते हैं और इसको स्टाक पर रखकर भली प्रकार स्थित कर देते है और फिर ग्राफ्टिंग टेप से बाँध देते हैं। इस रीति से दो–तीन माह मे पौधा तैयार हो जाता है।

(देखें चित्र सं. 80)



चित्र 80. सैडिल भेंट कलम



चित्र 81. वेज ग्राफ्टिंग

2. वेज ग्राफ्टिंग—यह विधि ऊपर दी गई विधि से ठीक विपरीत है। इसमें भी बराबर मोटाई के स्टाक और सायन लेते है। स्टाक की पहले भूमि के समानान्तर काट देते है फिर इसके दोनों किनारों की तरफ से चाकू या आरी द्वारा ऊपर से नीचे

की ओर काट लगाते हुये लगभग 2–2·5 से.मी. की गहराई पर तने के बीच में मिला देते हैं और इस तरह v जैसे आकार का हिस्सा काटकर निकाल देते है। अब सायन की टहनी लेकर उल्टी v के आकार (खूंटी जैसा) ऐसा कटाव करते हैं कि स्टाक में अच्छी तरह फिट हो सके। कटाव के स्टाक के कटे हुए भाग पर फिट कर देते हैं फिर बंधाई कर दी जाती है। (चित्र सं. 81)

3. विप स्प्लाइस ग्राफ्टिंग—इस तरीके को विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग रूप दिया है। कुछ ने विप और टंग ग्राफ्टिंग को एक माना है, परन्तु कुछ इस तरह की ग्राफ्टिंग को दूसरा रूप देते हैं। स्टाक व सायन को समान मोटाई का लेते हुए पहले स्टाक को भूमि में निश्चित ऊँचाई से भूमि से समानान्तर काट लगाकर व काटकर अलग करते हैं। इसके बाद एक किनारे से ऊपर की ओर से नीचे की ओर तिरछा काट लगाते है इसी तरह का काट सायन पर भी लगाते हैं और फिर दोनों को मिलाकर ग्राफ्टिंग टेप से बाध देते हैं। (चित्र सं. 82)

4. टंग ग्राफ्टिंग पौधे तैयार करने की यह रीति कुछ कठिन है। इसमें भी समान मोटाई के स्टाक और सायन लेते है। पहले स्टाक को निश्चित ऊँचाई से एक किनारे से तिरछा काट लगाते हुए काट देते हैं। इसके बाद ऊपरी किनारे पर चाकू रखकर थोड़ी निचाई तक अन्दर की ओर गहरा काट लगाकर पहले लगाये कट पर मिला देते हैं। इस तरह एक पतली-सी चिप (लकड़ी का टुकड़ा) काट कर निकाल देते हैं। इसी तरह से कट साइन पर इस प्रकार लगाते है ताकि दोनो एक दूसरे पर अच्छी तरह फिट हो सकें, बाद में ग्राफ्टिंग टेप से बाध देते हैं। (चित्र सं. 83)


चित्र–82


चित्र–83 टंग ग्राफ्टिंग

5. साइड ग्राफ्टिंग—इस विधि में पौधे के तने पर किसी भी स्थान पर एक किनारे से ऊपर की ओर से काट लगाते हुये नीचे को लगभग 3–3·5 सेमी. की लम्बाई तक लाते है, इसकी मोटाई 5–6 से.मी. रखते है फिर उस स्थान पर जहाँ तक नीचे कटाव समाप्त होता है। भूमि के समानान्तर काट कर पहले वाले काट में मिला देते है इस चिप को निकाल कर फेंक देते है। अब सायन की उपर्युक्त

मोटाई की शाख लेकर उस पर इस तरह का काट लगाकर बनाते हैं कि यह स्टाक पर अच्छी तरह फिट हो जाए। इसके बाद ग्राफ्टिंग टेप से बाध देते हैं। पौधा तैयार होने पर स्टाक का ऊपरी भाग जोड के ठीक ऊपर से काटकर अलग कर दिया जाता है और तैयार पौधा छायादार स्थान पर नर्सरी मे लगा देते हैं।

नोट— इसमें सायन का आकार खूंटा जैसा होता है जो स्टाक मे 200 डिग्री का कोण बनाते हुए अन्तर्निवेशित कर देते है।

6. क्लेपट बनाना—ग्राफ्टिंग की यह विधि अन्य विधियों से कठिन है क्योंकि इसके खाने के लिए बहुत कुशल हाथो की जरूरत होती है। इसमें स्टाक व सायन की मोटाई कैसी भी हो सकती है, परन्तु सायन पतला रखने मे आसानी रहती है। सर्वप्रथम स्टाक को भूमि से 23–25 से.मी. की ऊँचाई पर भूमि के समानान्तर काट देते है फिर इसके बीच की करीब 5 सेमी. या 7 से मी. चौडी और 1·75 से 2·5 सेमी. की गहराई की चिप (लकड़ी का हिस्सा) निकाल देते हैं। यह कार्य बहुत सावधानी से किया जाता है। पहले स्टाक पर निशान लगा लेते है इसके बाद काटते है इसको काटने के लिए विशेष प्रकार का औजार होता है। जिसे 'क्लीवर' कहते है। इसके बाद सायन की दो पतली शाखाओं को लेकर उनके किनारे काट कर v जैसी शक्ल बना देते हैं (जैसा कि बीज ग्राफ्टिंग मे बनाया गया था) फिर स्टाक के काटे गए भाग मे दोनों किनारो पर लगा देते है। इसके बाद ग्राफ्टिंग मोम से बन्द कर देते हैं।

7. बार्क ग्राफ्टिंग—यह विधि कुछ ठीक है परन्तु क्लेपट ग्राफ्टिंग मे आसान है। इसमें भी स्टाक को भूमि से कुछ ऊँचाई पर काट दिया जाता है इसके बाद तने की छाल मे ऊपर से नीचे की ओर सीधा काट लगा देते हैं। इसके बाद इधर-उधर की छाल को चाकू से सुधरे भाग से तने मे ढीला कर लेते है परन्तु छाल को काटकर अलग नही करते उसी मे जुड़ा रहने देते है। इसके बाद सायन की पतली शाख लेकर उसको पतली जीभ जैसी निकली हुई बना लेते हैं। इसके एक बार मे दो या तीन छाल के नीचे लगा देते हैं। इसके बाद किनारे से बांध कर ग्रेफ्टिंग मोम लगा देते है।

8. ब्रिज ग्राफ्टिंग—इस विधि से बीमारी से हुये खराब तनों की मरम्मत की जाती है, कई तरह के कीड़े तथा और भी बीमारियां तने की छाल को नष्ट कर देते है। इससे तने की लकड़ी खुल जाती है इसको ढकने के लिए ब्रिज ग्राफ्टिंग का प्रयोग होता है। यह विधि काफी सरल है। पहले तने की छाल को अच्छी तरह साफ कर लेते हैं और सायन शाख की पतली शाखायें लेकर दोनों किनारो पर खूंटी जैसी आकार बनाते है। इनकी लम्बाई छाल के खुले स्थान के ऊपर आधारित रहती है, पुन: छाल मे इसके लिए समान कट इस प्रकार लगाते है कि ये सायन अच्छी तरह फिट हो सके, बाद मे कलमों को दबा देते हैं और

आवश्यकतानुसार मोम लगा दिया जाता है। धीरे-धीरे छाल बढ़कर पूरे खुले भाग को ढक लेती है।

9. क्राउन ग्राफ्टिंग—तने को क्लेफ्ट ग्राफ्टिंग के अनुसार काटते है और चोटी से नीचे की ओर छिलके को लगभग 15 से मी. एक तेज चाकू से चीरकर दोनों हिस्सों को धीरे-धीरे अलग करते हैं। सायन की पत्तियाँ तोड़कर उसे वेज की शक्ल में काटकर लकड़ी और छिलके के बीच में सटाकर बांध दिया और मिट्टी तथा गोबर मिलाकर ऊपर लगा दिया जाता है। धूप व अधिक हवा से बचाने के लिए एक घास का ढक्कन बनाकर तने के ऊपर रख दिया जाता है। रोशनी के लिए उत्तर की ओर थोड़ा-सा खोल देते हैं। यदि तना बड़ा है तो सायन भी लगा सकते है। इस तरीके से काफी पुराने व खराब तनों को अच्छी किस्म का बना सकते है। यह वार्क ग्राफ्टिंग से मिलता-जुलता है।

10. रूट ग्राफ्टिंग –इस तरीके में एक 10 से 15 सेमी की सायन को पूरी जड़ पर अथवा उसके एक हिस्से पर बांधते हैं। ठंडे स्थानों में ही इस रीति से सेव तथा नासपाती पर ग्राफ्टिंग किया जाता है। पौधो की पत्तियाँ झड़ जाने पर जड़ को खोल देते हैं और सायन को छीलकर या टंग ग्राफ्टिंग की तरह काटकर बांध देते हैं।

11. टाप ग्राफ्टिंग—टाप ग्राफ्टिंग, क्लेफ्ट ग्राफ्टिंग तथा क्राउन ग्राफ्टिंग आदि ऐसे मौसम में करने चाहिए जबकि कलियाँ सोई हुई (डॉरमेंट) दशा में हों या उगना शुरू कर रही हों अर्थात् जनवरी से मार्च तक।

टाप ग्राफ्टिंग से फल के वृक्ष को एक किस्म से दूसरे किस्म का बना सकते हैं। पेड़ की शाखाओं को जमीन से इतनी ऊँचाई पर काटना चाहिए कि 7 से 10 से मी. मोटी डालियाँ कट जाय जिसमे नई शाखायें (सायन) लगाई जा सकें। सायन की मोटी डालियों में भी लगा सकते है परन्तु पतली शाखाओं में काटने से फल जल्दी आ जाता है।

12. नॉच ग्राफ्टिंग—यह विधि वर्ष के किसी भी समय की जा सकती है। इसमें तना चीरा नहीं जाता, परन्तु सायन के जुड़ने में अधिक समय लगता है। चाकू व छोटी आरी की सहायता से तने में दो या तीन 2·5 से 3 सेमी. लम्बे तिकोने खांचे इस प्रकार बनाये जाते है कि वह लगभग तने के बीच तक पहुँच जाय। सायन को भी इसी तरह तिकोने शक्ल का काट कर उसमे सटाकर बांध देते हैं अथवा कील से जोड़कर मोम आदि लगा देते है।

13. विनियर ग्राफ्टिंग—यह एक आधुनिक विधि है। यह इनार्चिंग और अन्य ग्राफ्टिंग विधियों की अपेक्षा अधिक सरल व सफल विधि है। 2–3 वर्ष में पौधा फल देने योग्य बन जाता है। इस विधि द्वारा शुद्धता सौ प्रतिशत तक प्राप्त होती है। सन् 1962 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने इस विधि का प्रयोग



चित्र–84

सफलतापूर्वक किया था। साथ ही पश्चिमी बंगाल में कृष्णनगर स्थान पर इस विधि का प्रयोग सफलतापूर्वक किया था। इसमें शाख (सायन) को दूर-दूर भेजा जा सकता है। अन्य ग्राफ्टिंग में फर्क यह है कि सायन के लिए पूरे पौधे की जरूरत नहीं पड़ती। केवल 10-15 सेमी. सायन की टहनी की आवश्यकता होती है।

मूलवृन्त के पौधे की तैयारी—इस विधि में सबसे पहले मूलवृन्त की विशेष तैयारी करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ, आम में यदि विनियर ग्राफ्टिंग करनी है तो मूलवृन्त निम्न प्रकार तैयार किया जाता है—

1. आम की गुठली को अच्छी प्रकार से तैयार किये गए खेत में 20 से 30 सेमी. की दूरी पर लगाया जाता है।
2. पत्तियों की खाद देकर भूमि को अधिक भुरभुरी एवं उपजाऊ बनाया जाता है।
3. जब पौधे की उम्र 12–14 माह हो जाय तो पौधे के एक तरफ 20–22 सेमी. गहरी नाली बनाई जाती है।
4. बाद में पौधे की मुख्य जड़ (टाप रूट) को नीचे से इस प्रकार काटा जाता है कि पौधे के ऊपर बुरा असर न पड़े। बगल वाली जड़ों को फैलने दिया जाता है ताकि स्थानान्तरण करते समय मुख्य जड़ अधिक बड़ा होने से असुविधा न उत्पन्न करे।
5. खुदी हुई नाली को बाद में मिट्टी से भर दिया जाता है और एक माह तक आवश्यकतानुसार पानी देते रहते हैं।
6. जड़ काटने के एक माह बाद पौधों का गमले में स्थानान्तरण किया जाता है। स्थानान्तरण करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि मातृ-मिट्टी (मदर-स्वायल) पौधे से थोड़ा लगा रहना चाहिये।

मूलवृन्त (रुट-स्टाक) का चुनाव—जब पौधे उपर्युक्त विधि से तैयार हो जाता है तो मूलवृन्त का चुनाव किया जाता है। चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखते है—

1. मूलवृन्त की मोटाई पेंशल के आकार की हो।
2. मूलवृन्त की उम्र 1 से 1½ वर्ष की होनी चाहिए।
3. मूलवृन्त रोग रहित एवं स्वस्थ हो।

शाख (सायन) का चुनाव—मूलवृन्त जैसा सायन का भी चुनाव आवश्यक हो जाता है। इसके लिए निम्न बातों को देखते हैं—

1. मूलवृन्त के आकार की शाख की टहनी हो।
2. सायन की लम्बाई 10–15 सेमी. से अधिक न हो।
3. सायन की उम्र 3 माह से 6 माह की हो। एक वर्ष तक की उम्र का सायन भी प्रयोग हो सकता है।
4. सायन के लिए सबसे ऊपर वाली शाखायें प्रयोग की जायें।

5. सायन का रंग हरा अथवा हल्का हरा होना चाहिए।
6. सायन में जो आँखें हों वे 10-15 दिन में फूटने वाले हों, ऐसी सायन को 7–10 दिन पहले ही काट लेना चाहिये।

ग्राफ्टिंग करना—जब मूलवृन्त और सायन का चुनाव हो जाये तो ग्राफ्टिंग चाकू से कटाव किया जाता है। मूलवृन्त को जमीन से 15-20से.मी. दूर 5 से.मी. लम्बा एक तिरछा कटाव लगाते हैं, इसके निचले छोर पर उसी प्रकार टेढ़ी एक गहरी कटाव देकर छिलके और लकड़ी को हटा दिया जाता है।

सायन में भी इस प्रकार कटाव करते हैं कि मूलवृन्त के कटाव में भली-भांति बैठ जाय। कटाव करते समय यह जरूरी है कि कैम्बियम पर्त भी कट जाय ताकि जोड़ मजबूत बन सके। ग्राफ्टिंग करते समय बड़ी सावधानी की जरूरत है क्योंकि यदि गहरा कटाव लग गया तो जुड़ाव होना मुश्किल है।

मूलवृन्त और सायन को जोड़कर पोलीथीन पेपर या केले के रेशे से अच्छी प्रकार बाँध देना चाहिये। ग्राफ्टिंग मोम से रिक्त स्थान को भर देना चाहिये। एक दो माह में जब सायन की कलिकायें फूटने लगें तो जोड़ के ऊपर से मूलवृन्त के तने को काट देना चाहिये।

स्थानान्तरण—जब नये पौधे की उम्र 12 माह की हो जाय तो स्थानान्तरण के योग्य समझना चाहिए। इस अवस्था में नई-नई पत्तियाँ निकलना शुरू हो जाती हैं। साथ ही जोड़ काफी मजबूत हो जाता है।

इस प्रकार आधुनिक ग्राफ्टिंग (विनियर ग्राफ्टिंग) की जाती है।

(ब) कलिकायन (बडिंग) करना—इसे चश्मा लगाना भी कहते हैं। चश्मा बाँधने की यह विधि ग्राफ्टिंग विधि में ही सम्मिलित की जाती है। इस विधि में शाखा से आँखें या कलियाँ (बड्स) निकाल ली जाती है और फिर इन्हें दूसरे चुने हुए पौधों में अन्तर्निवेशित कर दिया जाता है। कलियाँ सायन की गांठ से इस प्रकार निकाल ली जाती हैं कि उनके साथ बहुत थोड़ा सा छिलका या लकड़ी भी चली आती है। यह कली रुट स्टाक के दो गाठों के बीच के भाग में लगा दी जाती है।

चश्मा लगाने के लिए एक अच्छी जाति की कली (सायन) को जंगली किस्म के तने (स्टाक) पर बाँधते हैं। इस रीति से पौधे सिर्फ तैयार ही नहीं किये जाते, बल्कि एक किस्म के पौधों को दूसरी किस्म का बना सकते है।

चश्मा लगाते समय ध्यान देने योग्य बातें—चश्मा लगाते समय निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

1. जहाँ तक हो सके नई कलियाँ लेनी चाहिए यानि 9 मास से अधिक आयु की कदापि न हो। सिर्फ पत्ती की कली प्रयोग करते है। क्योंकि फूल की कली फूलकर सूख जाती है। इसकी पहचान यह है, पत्ती वाली कलियाँ सदैव छोटी तथा नुकीली होती है।

2. कली को तने पर तेज धूप से बचाने के लिये उत्तर की ओर लगाना चाहिए। तने को छाया में होने पर चाहे जिधर बांध सकते हैं।
3. चश्मा भूमि के जितना निकट बांधा जाय उतना अच्छा है, पर 30 से.मी. से ज्यादा ऊंचा बांधने में सफलता बहुत कम होती है।
4. चश्मा पौधे की किसी एक शाखा पर बांध सकते हैं। यदि चश्मा बांधने वाली शाखा के अतिरिक्त सब डालियाँ काट दी जायें, परन्तु बीज बोकर या कटिंग लगाकर तने (स्टाक) तैयार करना ही ठीक होता है। बीज से 1½ वर्ष में तने तैयार हो जाते हैं। उन्हें मुस्तकिल जगह में लगाकर चश्मा बांधना चाहिये।
5. चश्मा बांधने से पूर्व यह देख लेना चाहिये कि तना स्वस्थ तथा बांधने योग्य है या नहीं। यदि उसका छिलका आसानी से अलग हो जाय तो ठीक समझना चाहिए और यदि फट जाय तो चश्मा कदापि नहीं करना चाहिए।
6. चश्मा चाहे जिस रीति से किया जाय, परन्तु यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि तने व कली के कैम्बियम लेयर जो लकड़ी व छिलके के बीच में होते हैं, आपस में मिल जायें ताकि दोनों जुड़ सकें।
7. कलियाँ तन्दुरुस्त व अच्छी जाति के पौधे से लेनी चाहिए। शाखा के सबसे ऊपर की तथा सबसे नीचे की कलियाँ न हों।
8. तना (स्टाक) व कली वाली शाखा (सायन) लगभग एक ही मोटाई व रंग के होने से चश्मा जल्द लगता है बिलकुल नई शाखाओं से, जो एकाएक नीचे से उग पड़ती हैं, कली (सायन) न लेनी चाहिए।

चश्मा लगाने का समय

चश्मा साल में हर समय बांध सकते हैं, परन्तु यह ख्याल रखना चाहिये कि जब छिलका आसानी से अलग हो जाय तो सफलता अधिक होती है। इसलिये बसन्त ऋतु के पूर्व जनवरी–फरवरी में और जुलाई से लेकर अक्तूबर तक बांध सकते हैं।

भिन्न-भिन्न पौधों के चश्मे एक ही समय में नहीं बांधे जाते। संतरा आदि में फरवरी व जुलाई में चश्मा बांधते हैं और गुलाब में जनवरी तथा अक्तूबर में करना चाहिये।

कलिकायन करने का तरीका—मूलवृन्त पर विभिन्न प्रकार के घर (मैटिक्स) बनाये जाते हैं। इन घरों की आकृति के आधार पर ही कलिकायन के तरीकों को दिया गया है। इनके विवरण निम्न प्रकार हैं—

1. शील्ड अथवा 'टी' बडिंग—इसे शील्ड बडिंग इसलिये कहते हैं कि कली जब सायन से निकाल दी जाती है तो यह शील्ड (ढाल) आकार से बहुत कुछ

मिलती जुलती है और 'टी' बडिंग इसलिए कहते हैं कि जब दोनों कटाव स्टाक में अन्तर्निवेशित हो जाते हैं तो इनका आकार अंग्रेजी अक्षर 'टी' आकार का हो जाता है। यह विधि व्यापारिक दृष्टिकोण से नीबू जाति के फलों में अधिकांश रूप में प्रयोग की जाती है।

मूलवृन्त को जमीन मे 15–20 से.मी. छोड़कर एक भूमि के समानान्तर 1·5 से.मी. लम्बा कटाव सिर्फ छाल मे लगाते है। दूसरा कट इसी कटाव के मध्य को छूता हुआ 2·5 से.मी. लम्बा लम्बवत् कटाव देते हैं। यह कटाव केवल छिलके पर होता है, लकड़ी पर नहीं। यह कटाव स्टाक के किसी चिकने स्थान पर बनाया जाता है।

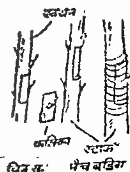
सायन शाखा मे अच्छी स्वस्थ कली चुनकर 1·25 से.मी. नीचे से कटाव प्रारम्भ किया जाता है और गहराई से लेते हुए कटाव इस प्रकार पूरा किया जाता है कि वह कली के 1·25 से.मी. ऊपर तक जाय। कली के पार्श्व से भी कटाव करके सायनशाखा के साथ कली बाहर निकाल ली जाती है। कभी लकड़ी सहित निकालते हैं। इस कली के टुकड़े से लकड़ी को हटाकर मूलवृन्त पर बने घर (सैल्मन) मे इस प्रकार रखते हैं कि आँख का अंकुरित भाग (पेडिसिल) ऊपर की ओर रहे। इसके बाद प्लास्टिक या केले के शीर्ष को इस प्रकार बांध देते है कि कली की आँख न ढकने पावे। 15–20 दिनों मे कली से प्रांकुर निकल आते हैं। प्रांकुर निकलने पर तने का ऊपरी सिरा काटकर पृथक कर दिया जाता है तथा धीरे-धीरे हार्डनिंग करके यथास्थान पर पौध रोप दी जाती है।



चित्र सं. 85

2. उल्टी 'टी' बडिंग—यह विधि उपर्युक्त विधि से बिल्कुल मिलती है। केवल अन्तर इतना है कि मूलवृन्त मे जो कटाव किया जाता है। यह सीधे T के स्थान पर उल्टी '⊥' के आकार का किया जाता है। शेष कार्य समान हैं।

3. पैंच बडिंग—यह विधि शील्ड बडिंग से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। थोड़ा अन्तर यही होता है कि छिलका, जिसमें कली होती है, आयताकार होता है, स्टाक में कटाव करने के स्थान पर उसी आकार का छिलका काट दिया जाता है और उसी स्थान पर कली लगा दी जाती है। शाखा पर छिलका हटाने का स्थान बनाने के लिए दो समानान्तर कटाव 1·8 से 2·5 से.मी. की दूरी पर बना लिये जाते हैं। फिर 2·5 से.मी.



चित्र सं. 86

की लम्बाई पर इनमें लम्बवत कटाव किये जाते हैं। इस प्रकार स्टाक पर आयताकार या वर्गाकार पैंच बन जाता है। ठीक इसी प्रकार का कटाव सायन पर भी करते है, और कली निकाल ली जाती है। यह प्रयोग वर्ष के किसी भी समय किया जा सकता है जबकि छाल सरलतापूर्वक निकल सके। कली निकालते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके नीचे का छिलका न कटने पावे। बाद मे दोनों को जोड़ दिया जाता है। चश्में के बदन पर स्टाक के ऊपर का भाग काटकर मोम लगा देना चाहिए।

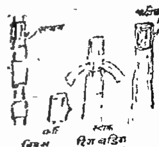
4. पफूट बडिंग—यह तरीका बिल्कुल पैंच बडिंग की तरह है। फर्क केवल इतना है कि स्टाक का लगभग 2·5 से.मी. छिलका एक गांठ पर पीछे से चीरकर चारों ओर से निकाल लिया जाता है, और उसी के बराबर चश्मा निकाल कर उस पर बांध देते हैं।

5. हिन्ज बडिंग—पैंच बडिंग के अलावा यह तरीका तब काम में लाते है जबकि स्टाक का छिलका कली के छिलके की H की शक्लें का चीर लेते है और पैंच बडिंग की तरह चश्मा (कली) निकालकर छिलके के अन्दर डाल कर बाध देते है। यह तरीका काफी अच्छा है, परन्तु ठीक न बांधने तथा देखभाल न करने पर चश्मा बहुधा जुड़ता नही।

6. चिप बडिंग—कुछ पौधों (अंगूर आदि) का छिलका चश्मा बाधने के समय में आसानी से जल्दी नही अलग होता? ऐसी हालत मे चिप बडिंग करते है। अधिक सफलता प्राप्त करने के लिए अंगूर की पकी हुई अथवा हरी-भरी शाखा से चश्मा लेना चाहिए। तने से एक गाठ पर, लगभग 2·5 से.मी. लम्बा टुकड़ा, कुछ लकड़ी व छिलके को लेते हुए काट लेते है और नाप व शक्ल का एक चश्मा काटकर बांध देते हैं।

चश्मा आसानी से बाधने के लिए पहले शाखा को गांठ के नीचे काटकर फिर चश्मे को चाकू द्वारा ऊपर से नीचे की ओर काट देते है। चश्मा भूमि के निकट बांधते है और तुरन्त ही 7 से मी नम मिट्टी से ढक देते है। रेशा या घास द्वारा बांध देना चाहिए। चिप बडिंग अंगूर के अलावा और किसी पौधो मे अच्छी तरह सफल नही होती।

7. रिंग बडिंग—यह विधि पैंच बडिंग से इसलिए अन्तर रखती है कि इनमे स्टाक के पौध से छिलका मोटाई के चारो ओर से हटाया जाता है। यह कटाव भूमि के धरातल से लगभग 30 से.मी. की ऊँचाई पर किया जाता है। स्टाक मे गाठ के 1·25 से.मी. ऊपर और 1·25 से. मी. नीचे दो समानान्तर छाल पर चीरा लगाया जाता है। बाद मे एक लम्बवत् चीरा लगाकर दोनों समानान्तर चीरा से मिला देते है और



सावधानी से केवल छिलका हटा दिया जाता है। इसी प्रकार उतनी ही मोटी शाखा से 2·5 से.मी. लम्बी उपर्युक्त चश्मा विधि द्वारा उतार कर स्टाक पर बिठाकर बांध देते हैं। चश्में के लिए जो लम्बवत् चीरा लगाया जाय वह कली के पीछे से लगाकर दोनों समानान्तर चीरा से मिलाया जाता है। बाधने के बाद रिक्त स्थान को मोम से भर देते हैं। यह तरीका उन्ही पौधो में किया जाता है। जिनका छिलका मोटा हो और खींचने पर आसानी से निकल आता हो। चश्मे के जुड़ने मे अधिक समय लगता है और सफलता भी कम मिलती है जैसे—बेर।

8. फारकर्ट विधि— चश्मे लगाने की यह नवीनतम विधि है। आम के उद्यान में इसे अधिकतर प्रयोग करते हैं। यह विधि पैंच विधि से अधिक साम्य रखती है। यह विधि जुलाई-अगस्त मे की जाती है क्योकि इस समय उपयुक्त नमी और तापक्रम बना रहता है, इससे तनों में सैप का बहाव बड़ी तीव्र गति से होता है। इससे चश्मे शीघ्रता से जुड़ते हैं।

स्टाक की मोटाई 1.25 से.मी. जिसकी आयु 1 वर्ष हो का चुनाव करते है और इसमे आयताकार कटाव करते है। यह कटाव धरातल से 10-15 से. मी. ऊपर करते हैं। यह कटाव चिकने एवं समान धरातल पर करते है। स्टाक पर आयताकार चिन्ह बनाकर केवल तीन किनारे ही काटे जाते है। नीचे वाली बडी लकीर (आधार वाली) केवल चिन्ह मात्र रह जाता है, वास्तव मे इसे काटते नहीं। कटाव पूर्ण करने के बाद छाल को पकड कर नीचे की ओर खीचते हैं जब तक निचले चिन्ह तक पहुंच जाय, यहाँ छाल लटकती हुई अवस्था मे पड़ी रहती है।

एक वर्ष से अधिक आयु की सायन जिसमें कलियाँ उभरी हुई और हृष्ट-पुष्ट हों का चुनाव करते हैं। जिस सायन शाखा से कली निकाली जाती है उसे बड-स्टिक या बड-उड़ कहते हैं। कली के लिए कटाव स्टाक पर किये गये कटाव से थोड़ा सा छोटा आकार का रखते हैं ताकि अन्तर्निवेश मे सुविधा हो। स्टाक के कटाव मे कली सावधानी के साथ रख दी जाती है, बाद मे लटकती हुई छाल ऊपर उठाकर अपने स्थान पर लाई जाती है जिसमे कली भीतर ढक जाती है। अब कली और छाल दोनों बाध दिये जाते है। बाधने मे मोम का कपड़ा प्रयोग करते हैं क्योंकि यह जल रोधक होती है जिससे वर्षा का पानी जोड़ के भीतर नही प्रवेश कर पाता है।

3–4 सप्ताह बाद कली की अवस्था का निरीक्षण किया जाता है। यदि हरी है तो जोड सफल माना जाता है क्योंकि यह स्टाक की लकड़ी से मिलकर कैम्बियम बना सकती है, तथा कली ताजी दिखलायी देती है। बाद मे स्टाक का लटकता हुआ छिलका काट कर अलग कर दिया जाता है और मोम के कपड़े से बंधाई कर दी जाती है। यह बंधाई इस प्रकार की जाती है कि सुकुमार कली के विकास में कोई व्यवधान न प्रस्तुत हो।

की लम्बाई पर इनमें लम्बवत कटाव किये जाते हैं। इस प्रकार स्टाक पर आयताकार या वर्गाकार पैच बन जाता है। ठीक इसी प्रकार का कटाव सायन पर भी करते है, और कली निकाल ली जाती है। यह प्रयोग वर्ष के किसी भी समय किया जा सकता है जबकि छाल सरलतापूर्वक निकल सके। कली निकालते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके नीचे का छिलका न कटने पावे। बाद मे दोनो को जोड़ दिया जाता है। चश्मे के बढ़न पर स्टाक के ऊपर का भाग काटकर मोम लगा देना चाहिए।

4. पफूट बडिंग—यह तरीका बिल्कुल पैच बडिंग की तरह है। फर्क केवल इतना है कि स्टाक का लगभग 2·5 से.मी. छिलका एक गाठ पर पौधे से चीरकर चारों ओर से निकाल लिया जाता है, और उसी के बराबर चश्मा निकाल कर उस पर बांध देते हैं।

5. हिन्ज बडिंग—पैच बडिंग के अलावा यह तरीका तब काम में लाते है जबकि स्टाक का छिलका कली के छिलके की H की शक्लें का चीर लेते हैं और पैच बडिंग की तरह चश्मा (कली) निकालकर छिलके के अन्दर डाल कर बाध देते है। यह तरीका काफी अच्छा है, परन्तु ठीक न बाधने तथा देखभाल न करने पर चश्मा बहुधा जुड़ता नही।

6. चिप बडिंग—कुछ पौधो (अंगूर आदि) का छिलका चश्मा बाधने के समय मे आसानी से जल्दी नही अलग होता ? ऐसी हालत मे चिप बडिंग करते हैं। अधिक सफलता प्राप्त करने के लिए अंगूर की पकी हुई अथवा हरी-भरी शाखा से चश्मा लेना चाहिए। तने से एक गाठ पर, लगभग 2·5 से.मी. लम्बा टुकड़ा, कुछ लकड़ी व छिलके को लेते हुए काट लेते हैं और नाप व शक्ल का एक चश्मा काटकर बांध देते हैं।

चश्मा आसानी से बांधने के लिए पहले शाखा को गाठ के नीचे काटकर फिर चश्मे को चाकू द्वारा ऊपर से नीचे की ओर काट देते है। चश्मा भूमि के निकट बांधते है और तुरन्त ही 7 से मी नम मिट्टी से ढक देते है। रेशा या घास द्वारा बांध देना चाहिए। चिप बडिंग अंगूर के अलावा और किसी पौधो मे अच्छी तरह सफल नही होती।



7. रिंग बडिंग—यह विधि पैच बडिंग से इसलिए अन्तर रखती है कि इसमे स्टाक के पौध से छिलका मोटाई के चारो ओर से हटाया जाता है। यह कटाव भूमि के धरातल से लगभग 30 से.मी. की ऊँचाई पर किया जाता है। स्टाक मे गाठ के 1·25 से.मी. ऊपर और 1·25 से. मी. नीचे दो समानान्तर छाल पर चीरा लगाया जाता है। बाद मे एक लम्बवत् चीरा लगाकर दोनो समानान्तर चीरा से मिला देते है और

सावधानी से केवल छिलका हटा दिया जाता है। इसी प्रकार उतनी ही मोटी शाखा से 2·5 से.मी. लम्बी उपर्युक्त चश्मा विधि द्वारा उतार कर स्टाक पर बिठाकर बांध देते हैं। चश्में के लिए जो लम्बवत् चीरा लगाया जाय वह कली के पीछे से लगाकर दोनों समानान्तर चीरा से मिलाया जाता है। बाधने के बाद रिक्त स्थान को मोम से भर देते हैं। यह तरीका उन्हीं पौधों में किया जाता है। जिनका छिलका मोटा हो और खींचने पर आसानी से निकल आता हो। चश्मे के जुड़ने में अधिक समय लगता है और सफलता भी कम मिलती है जैसे—बेर।

8. फारकर्ट विधि – चश्मे लगाने की यह नवीनतम विधि है। आम के उद्यान में इसे अधिकतर प्रयोग करते हैं। यह विधि पैच विधि से अधिक साम्य रखती है। यह विधि जुलाई-अगस्त में की जाती है क्योंकि इस समय उपयुक्त नमी और तापक्रम बना रहता है, इससे तनों में सैप का बहाव बड़ी तीव्र गति से होता है। इससे चश्में शीघ्रता से जुड़ते हैं।

स्टाक की मोटाई 1.25 से.मी. जिसकी आयु 1 वर्ष हो का चुनाव करते हैं और इसमें आयताकार कटाव करते हैं। यह कटाव धरातल से 10-15 से. मी. ऊपर करते हैं। यह कटाव चिकने एवं समान धरातल पर करते हैं। स्टाक पर आयताकार चिन्ह बनाकर केवल तीन किनारे ही काटे जाते है। नीचे वाली बड़ी लकीर (आधार वाली) केवल चिन्ह मात्र रह जाता है, वास्तव में इसे काटते नहीं। कटाव पूर्ण करने के बाद छाल को पकड़ कर नीचे की ओर खींचते हैं जब तक निचले चिन्ह तक पहुंच जाय, यहीं छाल लटकती हुई अवस्था में पड़ी रहती है।

एक वर्ष से अधिक आयु की सायन जिसमें कलियाँ उभरी हुई और हृष्ट-पुष्ट हों का चुनाव करते हैं। जिस सायन शाखा से कली निकाली जाती है उसे बड़-स्टिक या बड-उड़ कहते है। कली के लिए कटाव स्टाक पर किये गये कटाव से थोड़ा सा छोटा आकार का रखते हैं ताकि अन्तर्निवेश में सुविधा हो। स्टाक के कटाव में कली सावधानी के साथ रख दी जाती है, बाद में लटकती हुई छाल ऊपर उठाकर अपने स्थान पर लाई जाती है जिसमें कली भीतर ढक जाती है। अब कली और छाल दोनों बाध दिये जाते है। बाधने में मोम का कपड़ा प्रयोग करते हैं क्योंकि यह जल रोधक होती है जिससे वर्षा का पानी जोड़ के भीतर नहीं प्रवेश कर पाता है।

3–4 सप्ताह बाद कली की अवस्था का निरीक्षण किया जाता है। यदि हरी है तो जोड़ सफल माना जाता है क्योंकि यह स्टाक की लकड़ी से मिलकर कैंम्बियम बना सकती है, तथा कली ताजी दिखलायी देती है। बाद में स्टाक का लटकता हुआ छिलका काट कर अलग कर दिया जाता है और मोम के कपड़े से बंधाई कर दी जाती है। यह बंधाई इस प्रकार की जाती है कि सुकुमार कली के विकास में कोई व्यवधान न प्रस्तुत हो।



चश्मा लगाने के लगभग 40 दिनों के बाद कली में प्राकुर निकलना प्रारम्भ हो जाता है। जब प्राकुर निकल आवे तो जोड़ के ऊपर का स्टाक काटकर फेंक दिया जाता है। एक वर्ष बाद पौधा अपने स्थाई स्थान में लगाने योग्य हो जाता है अर्थात् जुलाई-अगस्त में की गई चश्म से पौधा दूसरे मानसून में उद्यान में लगाने लायक हो जाता है। इस एक वर्ष के भीतर पौधे की आवश्यकतानुसार सिंचाई एवं देखभाल करना आवश्यक होता है।

चित्र–88

6. अन्य विधियां—इन विधियों के अतिरिक्त कुछ अन्य विधियाँ भी प्रयोग में लाई जाती है। जैसे H बडिंग ट्यूब बडिंग आदि 'H' बडिंग उस समय प्रयोग की जाती है जबकि सायन का छिलका स्टाक की अपेक्षा कम मोटा होता है। यह छिल्ला बडिंग से कुछ मिलता-जुलता है।

वर्धी प्रवर्धन (वानस्पतिक प्रसारण) से लाभ—

वर्धी प्रवर्धन के निम्नलिखित प्रमुख लाभ हैं:—

1. ऐसे फलों, बहुवार्षिक फूलों, झाड़ियों आदि के नये पौधे तैयार किए जा सकते हैं, जिन पर फल व बीज नहीं लगते। जैसे केला, चांदनी, रातरानी आदि।
2. प्रसारण द्वारा तैयार किये गये पौधे शीघ्र फूल व फल देना प्रारम्भ कर देते हैं। जैसे—आम का कलमी पौधा 5 वर्ष तथा बीजू पौधा 7 वर्ष में फल देना प्रारम्भ करता है।
3. प्रसारण द्वारा तैयार किए गये पौधे बीजू पौधों की अपेक्षा छोटे होते है। इससे—
   (अ) कलमी पौधे बीजू पौधों की अपेक्षा संख्या में अधिक लगते है।
   (ब) कटाई-छंटाई, रोग एवं कीट नियन्त्रण तथा फलों के तोड़ने में कठिनाई नहीं होती।
4. प्रसारण द्वारा तैयार किये गये पौधों में मातृ पौधे के गुण पूर्ण रूप से विद्यमान रहते है।
5. कलमी पौधों से बड़े आकार एवं बढ़िया किस्म के फल प्राप्त होते हैं।
6. प्रसारण द्वारा कम समय में अधिक से अधिक बढ़िया किस्म के पौधे तैयार किये जा सकते हैं।
7. प्रसारण की विधियों द्वारा एक ही पौधे से दो या उससे अधिक किस्म के फल-फूल प्राप्त किए जा सकते है। जैसे—आम की 2-N-1 किस्म।
8. प्रसारण द्वारा सफलतापूर्वक घटिया किस्म के फल वृक्ष को बढ़िया किस्म के फल-वृक्ष में बदला जा सकता है। जैसे जंगली बेर को छल्लाकार (रिंग) कलिकायन द्वारा अच्छे किस्म में बदलना

9. प्रसारण द्वारा पुराने फल वृक्षों को शीर्ष भेंट कलम द्वारा नये फल वृक्षों द्वारा बदला जा सकता है ।

10. प्रसारण द्वारा तैयार किये गये पौधो पर बीजू पौधों की अपेक्षा तेज हवाओं का प्रभाव कम पड़ता है ।

हानि—

1. प्रवर्धन द्वारा तैयार किये फलों के पौधे बीजू पौधों की अपेक्षा कम समय तक फल देते हैं ।
2. प्रसारण द्वारा तैयार किए गये पौधे बीजू पौधों की अपेक्षा कुछ कमजोर होते है ।
3. वर्धी प्रवर्धन द्वारा सामान्य व्यक्ति सफलतापूर्वक नये पौधे नहीं तैयार कर सकते ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वर्धी प्रवर्धन की विभिन्न विधियों के नाम लिखो ।
2. जड़े उत्पन्न कर (By Rootage) तथा ग्राफ्टेज (By Graftage) द्वारा नये पौधे तैयार करने की विधि में अन्तर स्पष्ट करो ।
3. निम्नांकित फलो मे कौन-सी प्रसारण विधि अपनाओगे ? आम, अमरूद, संतरा, केला, अंगूर ।
4. निम्न पर टिप्पणी लिखो –
   (1) वर्धी प्रवर्धन से कोई चार लाभ
   (2) इनार्चिंग
   (3) गूटी
   (4) लेयरिंग

अध्याय-23

फल परिरक्षण
(Fruit Preservation)

फल परिरक्षण के उद्देश्य

फलों एवं शाकों का संतुलित आहार में महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारे देश के अधिकतर नागरिकों के आहार का स्तर निम्न कोटि का है, जबकि अनेकों फलों एवं सब्जियों का उत्पादन उस मौसम की आवश्यकता से अधिक हो जाता है। यदि इस अतिरिक्त उत्पादन को सुरक्षित रूप से संग्रह कर लिया जाए तो आहार में फलों व सब्जियों का समावेश कराया जा सकता है। फलों एवं शाकों के परिरक्षण के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य हैं—

उद्देश्य—(1) फलों एवं सब्जियों के अतिरिक्त उत्पादन को नष्ट होने से बचाना। (2) उत्पादन का अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करना। (3) सामान्य नागरिकों को अतिरिक्त मौसम में कम कीमत पर फलों व सब्जियों को उपलब्ध कराना। (4) शाकाहारियों के लिए संतुलित आहार की पूर्ति करना। (5) युद्धकाल में जवानों को अधिक से अधिक फल एवं सब्जियाँ तथा उनसे बने पदार्थों को उपलब्ध कराना, ताकि उनकी कार्यक्षमता बनी रहे। (6) बेरोजगारों को रोजगार दिलाना (7) राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना। (8) परिरक्षित फलों एवं शाकों को विदेशों में भेजकर अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त करना।

फल परिरक्षण की आवश्यकता

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए फल परिरक्षण की निम्नलिखित आवश्यकतायें हैं—

(1) अतिरिक्त उत्पादन को नष्ट होने से बचाने की आवश्यकता—हमारे देश के विभिन्न भागों में विभिन्न फलों एवं सब्जियों की उपज अधिक होती है। जैसे—आम, अमरूद, अंगूर, बेर, सन्तरा, माल्टा, मौसमी, आलू, टमाटर, फूल गोभी, बैंगन इत्यादि। फल व सब्जियों को वायुमण्डल के ताप पर उनमें बिना किसी परिवर्तन के सामान्य परिस्थितियों में अधिक दिनों तक ठीक दशा में नहीं रक्खा जा सकता। (शुष्क फलों को छोड़कर)। इसलिए फलों एवं शाकों को परिरक्षित करना आवश्यक है ताकि अतिरिक्त उत्पादन को नष्ट होने से बचाया जा सके।

(2) फलों एवं सब्जियों के उत्पादन का अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए फल परिरक्षण की आवश्यकता—विभिन्न फलों एवं सब्जियों का उत्पादन अधिक होने पर उस मौसम में एवं उस क्षेत्र के बाजारों मे अर्थशास्त्र के नियमानुसार मांग मे पूर्ति अधिक होने के कारण कीमत घट जाती है। सन् 1962 मे पूर्वी उत्तर प्रदेश में आम की उपज इतनी अधिक हुई थी कि बाजारों मे उसकी बिक्री नहीं हो पा रही थी। कच्चा माल होने के कारण उपज का बहुत भारी भाग गल-सड़कर खराब हो गया। इसी प्रकार दूसरे फल एवं सब्जियाँ जिस समय खेतों या बाग में तैयार होती हैं, उस समय उनका बाजार भाव गिर जाने के कारण लाभ बहुत कम मिल पाता है।

यदि अतिरिक्त उत्पादन को परिरक्षित करके अतिरिक्त मौसम में बेचा जाये तो अधिक मूल्य पर बिकेगा और वास्तविक लाभ ज्यादा मिलेगा।

(3) अतिरिक्त मौसम मे विभिन्न फल एवं सब्जियाँ उपलब्ध हो सके, इसके लिए फल परिरक्षण आवश्यक है।

(4) सामान्य नागरिकों को कम कीमत पर फल एवं सब्जियाँ उपलब्ध कराने के लिए फल परिरक्षण की आवश्यकता—जब फलों एवं सब्जियों के अतिरिक्त उत्पादन को परिरक्षित कर प्रत्येक मौसम मे विभिन्न फलों व सब्जियों की बिक्री बाजार में होगी, तो उस मौसम में किसी भी फल एवं सब्जी की कीमत बढ़ने नहीं पायेगी जिससे सामान्य नागरिक भी फलों व सब्जियों को खरीद सकेगा।

(5) बेरोजगारी दूर करने के लिए फल परिरक्षण की आवश्यकता—फल एवं शाक परिरक्षण व्यवसाय चलाने के लिए विभिन्न स्तर पर प्रशिक्षित व अप्रशिक्षित मजदूर, कारीगरों व संचालकों की आवश्यकता होगी। इससे कच्चे माल (फलों एवं सब्जियों) के उत्पादन से लेकर फलों एवं सब्जियों से विभिन्न परिरक्षित पदार्थ तैयार करने में अनेकों बेरोजगारों को रोजगार मिलेगा क्योंकि हमारे देश मे अभी तक विभिन्न प्रकार के फल परिरक्षण केन्द्रों की संख्या बहुत कम है। साथ ही फलों एवं शाकों के उत्पादन की ओर भी लोगों का ध्यान बहुत कम है।

(6) सामान्य नागरिकों के आहार को सन्तुलित बनाने की आवश्यकता—हमारे देश की अधिकतर जनता गांवों में रहती है। गांव में रहने वाली जनसंख्या का भी अधिक से अधिक भाग मजदूरों का है। कड़ी मेहनत के बाद भी वे अपने परिवार के लिए रूखी-सूखी रोटी जुटा पाते हैं, जबकि शरीर की सन्तुलित वृद्धि के लिए सन्तुलित आहार का होना आवश्यक है। यही कारण है कि गरीब जनता सन्तुलित आहार न मिलने के कारण अनेकों रोगों का शिकार बनती है तथा उनकी कार्यक्षमता भी घटती जा रही है। अतः इस कमी को दूर करने के लिए फलों एवं सब्जियों के उत्पादन को परिरक्षित कर अधिक से अधिक नागरिकों को उपलब्ध कराया जाये।

(7) राष्ट्रीय आय के स्रोतों को बढ़ाने की आवश्यकता—फल परिरक्षण कार्य को व्यावसायिक रूप देने पर परिरक्षित फलों, शाकों एवं फल पदार्थों का उत्पादन बढ़ेगा जिससे इस व्यवसाय को चलाने वाले लोगों की आय बढ़ेगी और साथ ही राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होगी।

(8) अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा के अर्जन की आवश्यकता—भारतवर्ष प्रतिवर्ष आम, संतरा, माल्टा, मौसमी, केला, अनन्नास, बेर तथा अनेकों शुष्क फल विदेशों को भेज कर विदेशी मुद्रा प्राप्त करता है। यदि इन फलों को परिरक्षित करके भेजा जाय तो अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है।

(9) फलों एवं शाकों के परिवहन व्यय को कम करने तथा ह्रास को रोकने की आवश्यकता—रसदार व गूदेदार फल व सब्जियों को बाहर भेजने के लिए उनकी पैकिंग पर अधिक व्यय करना पड़ता है। इसके बाद में निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने तक बहुत से फल व सब्जियाँ यातायात के दौरान दबकर एवं गल-सड़ कर नष्ट हो जाती है। यदि फलों एवं शाकों को परिरक्षित करके भेजा जाय तो यातायात के दौरान होने वाले व्यय तथा ह्रास को कम किया जा सकता है।

फल परिरक्षण की विधियाँ

फलों एवं शाकों के परिरक्षण का कार्य विभिन्न विधियों से किया जाता है। फल परिरक्षण की विभिन्न विधियों मे इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है कि फलों एवं शाकों के पौष्टिक गुण, स्वाद एवं प्राकृतिक सुगन्ध (Flavour) बनी रहे। यह तभी सम्भव हो सकता है, जबकि फल परिरक्षण के सिद्धान्तों का मूलतः पालन किया जाय। फलो, शाकों एवं फल पदार्थों को इस प्रकार परिरक्षित किया जाय, जिससे उन पर कवक, जीवाणु अथवा खमीर क्रियाशील न हो सके तथा इनमे कोई रासायनिक प्रतिक्रिया न होने पाये। फल परिरक्षण की विभिन्न विधियाँ प्रचलित हैं जिनको दो भागो मे बाँटा जा सकता है—

(क) अस्थायी विधियाँ (ख) स्थायी विधियाँ।

(क) अस्थायी विधियाँ—फल एवं शाक परिरक्षण की ऐसी समस्त विधियाँ जिनके द्वारा फलो एवं शाको को कुछ दिनो से लेकर कुछ महीनो तक परिरक्षित किया जा सकता है। ऐसी समस्त विधियाँ अस्थायी परिरक्षण की विधियों के अन्तर्गत आती हैं। ऐसी कुछ प्रमुख एवं प्रचलित अस्थायी विधियाँ निम्नलिखित है—

1. फ्रीज में रख कर— इस विधि द्वारा घरेलू आवश्यकता के अनुसार फलो एवं शाकों को सीमित मात्रा मे कुछ दिनो के लिए परिरक्षित किया जाता है।

2. शीत भण्डारों में रखकर— इस विधि के अन्तर्गत फलों एवं शाकों को बड़े पैमाने पर बिना किसी परिवर्तन के कुछ महीनों तक परिरक्षित किया जाता है। शीत भण्डारों का तापक्रम इतना कम रखा जाता है ताकि फलों में कोई एन्जाइम एवं जीवाणु सक्रिय न होने पायें।

3. बर्फ के रूप में जमाकर—इस विधि से फलों के रस को कुल्फी के रूप में जमाकर कुछ दिनों तक परिरक्षित किया जा सकता है।

4. सल्फर डाइ ग्राक्साइड (SO_2) व (CO_2) कार्बन डाइ ऑक्साइड की उपस्थिति में भी फलों एवं शाकों को परिरक्षित किया जा सकता है। CO_2 का उपयोग फलों के रस को परिरक्षित करने के लिए किया जाता है। SO_2 के हल्के घोल (0·5%) से फलों एवं शाकों को उपचारित करके भी परिरक्षित किया जा सकता है।

5. सामान्य परिरक्षण पदार्थों द्वारा—नमक, चीनी, सिरका एवं मसाले के थोड़ी मात्रा के साथ फलों एवं शाकों का अस्थायी परिरक्षण किया जा सकता है।

6. पाश्चुरीकरण द्वारा—शाकों को 74° से.ग्रे. ताप पर अथवा फलों एवं शाकों की किस्म के अनुसार एक निश्चित ताप पर लगभग 30 मिनिट तक गर्म पानी में रखने के पश्चात् परिरक्षित किया जा सकता है। यह विधि फलों के रस को परिरक्षित करने के लिए अधिकतर प्रयोग की जाती है।

(ख) स्थायी विधियाँ—ये निम्न हैं—

1. जीवाणु विहीनीकरण क्रिया (Sterilization)—इस विधि के अन्तर्गत फलों एवं शाकों को जीवाणु रहित डिब्बों में भरकर, वायु रहित करके, 100° से.ग्रे. ताप पर लगभग 30 मिनिट तक खट्टे फलों को तथा 115° से.ग्रे. ताप पर कम खट्टे फलों को 30 से 60 मिनिट तक गर्म करके जीवाणु रहित करते हैं।

2. अन्तः जीवाणु विहीनीकरण क्रिया (Intermitent sterilization)—जीवाणु विहीनीकरण क्रिया में फलों एवं शाकों पर उपस्थित जीवाणु पूर्णतया नष्ट नहीं हो पाते। इसलिए जीवाणु विहीनीकरण क्रिया को थोड़े-थोड़े समय के अन्तर पर कई बार दोहराया जाता है। फलस्वरूप फलों एवं शाकों को अधिक समय तक परिरक्षित किया जा सकता है।

3. सुखा कर (Drying)— फलों एवं शाकों के परिरक्षण का यह तरीका प्राचीन तथा अत्यधिक प्रचलित तरीका है। इस विधि के अन्तर्गत फलों एवं शाकों को साबुत अथवा छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर वातावरण के ताप पर धीरे-धीरे नमी रहित करते है। सिद्धान्ततः जब शुष्क पदार्थ की मात्रा 70 प्रतिशत से अधिक हो तो फलों में शाकों में कोई भी सूक्ष्म जीव सक्रिय नहीं हो पाता। सुखाये गये शाकों एवं फलों को पोलीथीन की थैलियों या डिब्बों में भरकर परिरक्षित कर

4. नमी रहित करके—इस विधि के अन्तर्गत फलों एवं शाकों को निश्चित आकार के टुकड़ों में काटकर किस्म के अनुसार 55° सेमी. से 70° सेमी. ताप पर एक निश्चित अवधि तक सुखावक (Dehydrator) में सुखाते हैं।

5. डिब्बा बन्दी करके—फलों एवं शाकों को जीवाणु रहित डिब्बों या बोतलों में चीनी अथवा नमक के घोल की उपस्थिति में भरकर भी काफी लम्बे समय तक परिरक्षित किया जा सकता है।

6. अधिक मात्रा में परिरक्षण पदार्थों का उपयोग करके—चीनी, नमक, सिरका, मसाला, सरसों का तेल एवं रासायनिक परिरक्षण पदार्थों, मेटा बाइ सल्फाइट का उपयोग करके फलों एवं शाकों को विभिन्न फल पदार्थों के रूप में लम्बे समय तक परिरक्षित किया जा सकता है; जैसे—जैम, जैली, मुरब्बा, अचार, चटनी एवं पानक आदि।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फल परिरक्षण की आवश्यकता पर लेख लिखो।
2. फल परिरक्षण के प्रमुख उद्देश्य क्या-क्या हैं ? संक्षिप्त वर्णन करो।
3. फल परिरक्षण की प्रमुख विधियां कौन-कौनसी हैं ? संक्षिप्त वर्णन करो।

————

फलों एवं शाकों के बिगड़ने के कारण

फल एवं सब्जियाँ एक कच्चा माल मानी जाती हैं क्योंकि इनको साधारण परिस्थितियों में सुरक्षित नहीं रक्खा जा सकता। अधिकतर फल एवं सब्जियाँ गूदेदार, रसदार या अत्यधिक मुलायम होती हैं जिससे फल एवं सब्जियाँ शीघ्र खराब हो सकती हैं। फलों एवं शाकों के बिगड़ने के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

(1) भौतिक कारण।

(2) रासायनिक कारण।

(3) जैविक कारण।

(1) भौतिक कारण—फलों एवं सब्जियों के बिगड़ने के निम्नलिखित प्रमुख भौतिक कारण हो सकते हैं—

(i) अधिक नमी के कारण—अधिक वर्षा या सिंचाई के फलस्वरूप बहुत से फल एवं सब्जियाँ सड़-गल जाती हैं अथवा फट कर खराब हो जाती हैं। जैसे-अनार, अंगूर, टमाटर इत्यादि। फलों एवं शाकों में अधिक नमी के कारण सड़ने-गलने की क्रिया भी तेजी से होती है।

(ii) अत्यधिक ताप के कारण—फलों एवं शाकों में नमी की मात्रा अधिक होती है। वातावरण में ताप के बढ़ने पर इनमें विभिन्न रासायनिक क्रियायें हो जाती हैं जिससे फलों व सब्जियों में [illegible] होने लगती है और फल व सब्जियाँ खाने योग्य नहीं रह जातीं।

(iii) फलों व सब्जियों को [illegible] उन पर घाव बनना या फलों व सब्जियों का फट-फट जाना होता है।

(iv) फलों व सब्जियों पर [illegible] दबाव पड़ना।

(v) बाहर [illegible] फलों व सब्जियों की [illegible] कारण भी खराब हो सकती हैं।

(2) रासायनिक कारण—फलों एवं शाकों की [illegible] ताप परिवर्तन या [illegible] क्रियाओं के फलस्वरूप [illegible] हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख [illegible] हैं—

(1) अल्कोहल का विकास (Alchohalic development)—अधिक नमी तथा ताप की उपस्थिति में विशेष रूप से रसदार फल एवं सब्जियों में शराब की तरह बदबू आने लगती है। ऐसा परिवर्तन उस समय विशेष रूप से होता है। जब फलों व सब्जियों को शीत भण्डारों से निकालने के बाद कई दिनों तक रखा जाता है अथवा वृक्ष या पौधे से तोड़ने के बाद कई दिनों तक ढेर में पड़ा रह जाता है। इस रासायनिक क्रिया में कार्बोहाइड्रेट अल्कोहल के रूप में बदल जाता है।

(ii) खटास का बढ़ना (Acidic development)—फल व सब्जियों के अधिक पक जाने (प्राकृतिक या कृत्रिम विधि से पकाने की क्रिया) के कारण ऐसे फल व सब्जिया जिनमें प्रोटीन की प्रचुरता होती है। पेक्टिन–पेक्टिक अम्ल में बदलने लगता है। जिससे फल व सब्जियां खराब होने लगती है।

(3) जैविक कारण—फलों एवं सब्जियों के बिगड़ने के जैविक कारकों का सबसे अधिक हाथ है। जो खेत से लेकर भण्डारों तक हानि पहुंचाते हैं। जैविक कारणों में कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित है—

(i) यीस्ट (Yeast) या खमीर द्वारा—खमीर एक अत्यन्त सूक्ष्म एक कोशीय, गोल या अण्डाकार वनस्पतिया है। ये अधिक नमी, ताप तथा शर्करा की उपस्थिति में क्रियाशील होती है। फलों एवं शाकों में नमी की अधिकता के साथ प्रायः शर्करा भी पाया जाता है। खमीर के प्रभाव से शर्करा शीघ्र खमीरी कृत होकर अल्कोहल के रूप में बदल जाता है। फलस्वरूप फल व सब्जियां खाने योग्य नही रह जाती।

(ii) मोल्ड (Moulds) द्वारा—विभिन्न खाद्य पदार्थों जैसे–डबल रोटी, चटनी, आचार आदि पर सफेद, हरे या नीले रंग की रुई के रेशे के समान रचना देखने को मिलती है। इन्हें (Mould) या फफूंदी कहते हैं। इनके प्रत्येक सूत्र में फलों व सब्जियों—जिनमें पानी की अधिकता होती है, उनकी कोशिकाओं में प्रवेश कर सूत्रों का जाल-सा बना लेती है। कुछ समय बाद इनके अग्रभाग पर काले, नारंगी अन्य रंगों के धूल के कण के समान बीजाणु (Spores) उत्पन्न हो जाते हैं। इन्हीं बीजाणुओं द्वारा इनका प्रसार होता है। इनके आक्रमण के फलस्वरूप फल व सब्जिया तथा उनसे बने पदार्थ खाने योग्य नही रह जाते।

(iii) जीवाणु (Bacteria) द्वारा—जीवाणु भी सूक्ष्म एक कोशीय वनस्पतियां है। जो विभिन्न आकार-प्रकार की होती हैं। जीवाणु प्रायः हर जगह उपस्थित रहते है। अनुकूल परिस्थितियों में विखण्डन क्रिया के फलस्वरूप इनकी संख्या में तेजी से वृद्धि होती है। फलों व सब्जियों के कटे-फटे या दबे होने पर इनका आक्रमण शीघ्र हो पाता है। इनके आक्रमण के फलस्वरूप फल, सब्जियां

या उनसे बने पदार्थों में सड़ने-गलने की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जिससे फल व सब्जियाँ खाने योग्य नहीं रह जाती।

इनके अतिरिक्त विभिन्न कीट, अन्य फफूंदी, चूहे तथा बड़े जानवर जैसे लोमड़ी, गीदड़ आदि भी फलों एवं सब्जियों को खराब करते हैं, जिससे फल व सब्जियाँ खाने योग्य नहीं रह जातीं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फलों एवं शाकों के बिगड़ने के प्रमुख कारण कौन-कौन से है ? संक्षिप्त वर्णन करो।
2. निम्नलिखित का फलों एवं शाकों पर क्या प्रभाव पड़ता है—
   (अ) जीवाणु
   (ब) खमीर
   (स) मोल्ड।

अध्याय—25

फलों एवं शाकों की डिब्बा बन्दी

(Canning of Friuts & Vegetables)

फल परिरक्षण का यह भी एक महत्वपूर्ण तरीका है। डिब्बा बन्दी द्वारा फलों एवं शाकों को परिरक्षित कर अतिरिक्त मौसम में फलों एवं शाकों की कमी को पूरा किया जा सकता है।

डिब्बा बन्दी के लिए ताजे एवं स्वस्थ फल उपयुक्त माने जाते हैं। फल पके हुए किन्तु अधिक पके हुए नहीं होने चाहिए, जैसे—टमाटर, सब्जियां हरी, ताजी, कच्ची, किन्तु पूर्ण विकसित होनी चाहिए, जैसे—मटर, सेम आदि।

फलों एवं शाकों की छंटाई तथा श्रेणी विभाजन—सड़े, गले, रोगी एवं कीट लगे हुए तथा कटे-फटे एवं दबे हुए फलों एवं शाकों को चुनकर अलग कर देते है। तत्पश्चात फलों एवं शाकों के रंग, आकार किस्म आदि के आधार पर श्रेणी विभाजन का कार्य करते है। श्रेणी विभाजन का कार्य विभिन्न उपकरणों की सहायता से करते हैं।

चुने हुए फलों एवं शाकों को धोना—चुने हुए फलों को साफ ठण्डे पानी अथवा गर्म पानी में धो लेते है। शाकों को 1% पोटेशियम परमैगनेट के घोल में धोना अच्छा रहता है।

ब्लांचिंग (Blanching)—डिब्बा बन्दी के लिए चुने गये फलों एवं शाकों को उबलते हुए पानी में थोड़े समय के लिए रखकर तुरन्त ठण्डे पानी में डालने की क्रिया को ब्लांचिंग कहते है। अलग-अलग फलों एवं शाकों को 2 से 5 मिनिट तक उबलते हुए पानी में रखते है। ब्लांचिंग क्रिया के निम्नलिखित प्रमुख लाभ हैं—

(1) इस क्रिया के फलस्वरूप फलों एवं शाकों की अच्छी सफाई हो जाती है तथा कुछ अंश में वाह्य सतह पर उपस्थित हानिकारक जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं। (2) छिलका ढीला हो जाने के कारण डिब्बों की भराई में सुविधा रहती है। (3) ब्लांचिंग क्रिया के फलस्वरूप फलों एवं शाकों की ऊतकों से वायु बाहर निकल जाती है। (4) इस क्रिया के फलस्वरूप फलों एवं शाकों में एन्जाइम्स अक्रियाशील हो जाते हैं, जिससे परिरक्षित फलों एवं शाकों का रंग नहीं बदलने पाता।

(5) इस क्रिया के फलस्वरूप पीलिंग के समय उत्पन्न कुस्वाद दूर हो जाता है तथा उनमें अच्छी खुशबू आने लगती है।

डिब्बों की भराई (Filling)—जीवाणु रहित, जंग रहित एवं नमी रहित साफ डिब्बों में ब्लांचिंग क्रिया के पश्चात फलों एवं शाकों की भराई करते हैं। प्रयोग शाला या गृह अनुमाप पर डिब्बों की भराई हाथ से करते हैं, जबकि बड़े पैमाने पर डिब्बों की भराई मशीनों से करते हैं।

डिब्बों में चीनी का शर्बत या नमक का घोल भरना - फलों के डिब्बों में चीनी का शर्बत तथा शाकों के डिब्बों में नमक का घोल भरते हैं। खट्टे किस्म के फलों में मीठे फलों की अपेक्षा गाढ़ा शर्बत (Syrup) भरते हैं। शर्बत या नमक का घोल डिब्बों में भरने का मुख्य उद्देश्य डिब्बों में बन्द फलों एवं शाकों के स्वाद को अच्छा बनाये रखना है। डिब्बों में नमक या चीनी का घोल 175° फा. से 180° फा. पर भरना चाहिए। डिब्बों में घोल भरते समय डिब्बे के ऊपरी भाग में 3 से 5 मि. मीटर खाली जगह छोड़ना चाहिए ताकि ढक्कन लगाने में कठिनाई न हो। नमक का घोल 1 से 2% का डिब्बों में भरने के काम में लाते हैं।

ढक्कन लगाना (Lidding)—डिब्बों की भराई के बाद क्लींचिंग मशीन द्वारा डिब्बों के ऊपरी भाग में ढक्कन लगा दिया जाता है। अब डिब्बा पूर्णरूप से बन्द हो जाता है। इस समय डिब्बे की पेंदी में एक बारीक सुराख कर देते हैं। जिससे वायु निष्कासन क्रिया कराते हैं।

वायु निष्कासन क्रिया (Exhausting)—डिब्बों की भराई तथा ढक्कन लगाने के बाद सभी डिब्बों को गर्म पानी के टैंक में 180° से 190°F ताप पर अलग-अलग फलों एवं शाकों की किस्म के अनुसार 5 से 25 मिनिट तक रखते हैं। इस क्रिया के फलस्वरूप डिब्बों में उपस्थित वायु गर्म होकर आयतन के फलस्वरूप बारीक छिद्र से डिब्बों से बाहर निकल जाती है।

सील करना (Sealing)—वायु निष्कासन क्रिया के तुरन्त बाद डिब्बों को पूर्णरूप से सील कर देना चाहिए, ताकि डिब्बों के अन्दर पुनः वायु प्रवेश न करने पाये तथा फल एवं शाक, जो डिब्बों में भरे गये हैं, पूर्ण रूप से परिरक्षित हो सके।

संग्रह (Storage)—फलों एवं शाकों से भरे हुए डिब्बों को ठण्डे शुष्क स्थान पर संग्रहीत करना चाहिए। बाजार में भेजने से कम से कम एक माह पूर्व डिब्बों की जाँच कर लेनी चाहिये।

सेम की डिब्बा बन्दी—कच्चे पूर्ण विकसित सेम की फलियों को लेकर 2·5 सेमी. लम्बे टुकड़ों में काट लेते हैं। ब्लांचिंग क्रिया के पश्चात जीवाणु रहित डिब्बों

में भर कर ऊपर से 2% का नमक का घोल (Brine solution) भर देते हैं। ढक्कन लगाने के पश्चात वायु निष्कासन क्रिया कराकर अन्तिम रूप से डिब्बों को सील करके शुष्क ठण्डे स्थानो मे संग्रहीत कर लेते हैं।

मटर की डिब्बा बन्दी—पूर्ण विकसित, हरी एवं स्वस्थ मटर की फलियां लेकर, फलियो के दाने अलग कर लेते है। इन दानो को साफ पानी से धो लेते हैं।

मटर के दानों के आकार के अनुसार इनका श्रेणी विभाजन अलग-अलग आकार के छिद्र की छालनो से करते हैं। श्रेणी विभाजन के पश्चात् 2 से 5 मिनिट तक ब्लांचिग क्रिया कराकर दानो को जीवाणु रहित साफ डिब्बों मे भर देते हैं। ऊपर 12 ग्राम नमक, 50 ग्राम चीनी तथा 2 ग्राम हरे मीठे रंग का 2% का घोल प्रति लीटर गर्म पानी (175° से 180° फा.) मे घोलकर भर देते है। इसके बाद ढक्कन लगाकर वायु निष्कासन क्रिया कराकर अन्तिम रूप मे सील कर देते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फलों एवं शाको की डिब्बा बन्दी की सम्पूर्ण विधि का क्रम वार वर्णन करो।
2. सेम तथा मटर की डिब्बा बन्दी कैसे करते है ? समझाकर लिखिए।
3. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—
   (अ) ब्लांचिग।
   (ब) वायु-निष्कासन क्रिया।

अध्याय-26

फलों एवं शाकों का निर्जलीकरण
(Dehydration of Fruits & Vegetables)

कृत्रिम रूप से ताप देकर फलों एवं शाकों की नमी को इतना कम कर देना, जिससे वे आसानी से परिरक्षित किए जा सकें, निर्जलीकरण क्रिया कहलाता है।

निर्जलीकारक (Dehydrators) के प्रकार या सुखावक

(1) गृह-अनुमाप सुखावक (Home drier)—यह एक साधारण आलमारी की तरह बना होता है। जिसमें बीच के खाने में मोटे तार की जाली अथवा छिद्र युक्त टिन के चादर के बने होते है। सुखावक के ऊपरी भाग में ऊपर से 10–15 सेमी. नीचे दो छोटे रोशनदान होते हैं। जो ताप नियन्त्रण के काम आते हैं। ताप ज्ञात करने के लिए ताप माप लगा होता है। इस सुखावक में ताप देने के लिए अंगीठी, स्टोव या विद्युत चूल्हा का उपयोग करते हैं।

फलों या शाकों को निश्चित आकार के टुकड़ों में काटकर तार की जाली के बने ट्रे में रखकर सुखावक मे रख देते है। एक निश्चित अवधि तक निश्चित ताप पर फलों को निर्जलीकृत करते है। थोड़े-थोड़े समय के अन्तर पर ट्रे को ऊपर-नीचे करते रहते हैं ताकि सभी फल व सब्जियाँ समान रूप से निर्जलीकृत हो सकें।

(2) व्यावसायिक सुखावक (Commercial Dehydrators)—व्यावसायिक पैमाने पर फलों एवं शाकों को नमी रहित करने के लिए अनेकों प्रकार के सुखावक काम मे लाये जाते है, जिनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित है—

(1) किलन ड्रायर (Kiln drier)

(2) टावर या स्टेक टाइप (*Tower or Stack type*)

(3) ओरगोन टनेल यूनिट (Oregon Tunnel Unit)

(4) फोर्सड-ड्रॉट टनेल (Forced-draught Tunnel)

विभिन्न फलों एवं शाकों को निर्जलीकृत करने की विधि :

अंगूर—अंगूर को नमी रहित करने के लिए (SO_2) सल्फर डाइआक्साइड के हल्के घोल में लगभग 30 मिनिट तक रखने के बाद 65·5° से 82·2° से. पर 20 से 30 घण्टे तक सुखाना चाहिए।

ग्राम—ग्राम के रस व गूदे को 3 से 5 मि. मी. मोटी पर्त के रूप में फैला कर सुखाते हैं।

सेव—सेव को पानी में अच्छी तरह धोकर, उसके छिलका हटाने के बाद छोटे-छोटे टुकडों मे काट लेते हैं। इन टुकड़ों को गन्धक के हल्के घोल ('02%) में 15 से 30 मिनिट तक रखने के बाद 6 से 8 घण्टे तक 60° से. से 70° से. ताप पर नमी रहित करते है। सूखा पदार्थ 10 से 15% प्राप्त होता है।

करेला—करेले के ऊपर से खुरच कर लगभग 6 मि.मी. मोटे गोल टुकड़ों मे काट लेते हैं। इन कटे हुए टुकडो को उबलते हुए पानी में 5 से 7 मिनिट तक ब्लांच करके 65° से. से 70 से. ताप पर 7 से 9 घण्टे तक नमी रहित करते हैं। सूखा पदार्थ लगभग 14% प्राप्त होता है।

भिण्डी—भिण्डी को लगभग 6 मि.मी. मोटे टुकड़ो में काट कर 4-5 मिनिट तक उबलते हुए पानी में ब्लाच (Blanched) करके 62° से. 67° से. ताप पर 6 से 8 घण्टे तक नमी रहित करते है। सूखा पदार्थ लगभग 8 प्रतिशत प्राप्त होता है।

फूल गोभी—फूल गोभी को नमी रहित करने के लिये फूलों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर 4 से 5 मिनट तक उबलते हुए पानी मे रखने के बाद SO_2 के 0'5 प्रतिशत के घोल में 1 घण्टे तक रखते है। पुनः साफ पानी से अच्छी तरह धोने के बाद 60° से. से 62° से. ताप पर 10 से 12 घण्टे तक नमी रहित करते हैं। सूखा पदार्थ लगभग 3% प्राप्त होता है।

आलू—आलू को साफ पानी मे अच्छी तरह धोने के बाद पीलिंग चाकू या मशीन से उसके छिलका हटाने के पश्चात् 4'5 से 6 मि.मी मोटे घोल टुकड़ों में काट लेते हैं। इन टुकड़ो को साफ पानी मे अच्छी तरह धोने के पश्चात् इन टुकड़ों के 15 से 20 मिनिट तक 0'05% पोटेशियम मेटाबाइ सल्फाइट के घोल मे रखने के बाद पुनः 3 से 5 मिनिट उबलते हुए पानी मे रखकर ब्लांच कर लेते हैं। इसके बाद 60° से. मे 65° ताप पर 7 से 8 घण्टे तक नमी रहित करते है। सूखा पदार्थ लगभग 14% प्राप्त होती है।

सेम—मुलायम हरी सेम की फलियाँ लेकर, प्रत्येक फली को 3-4 टुकड़ों मे काट लेते हैं। 3 से 5 मिनिट तक उबलते हुए पानी मे रखने के बाद 55° से. से 60° से. ताप पर धीरे-धीरे नमी रहित करते हैं। सूखी फलियां हरी फलियों के भार का केवल 14% प्राप्त होती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निर्जलीकरण से क्या तात्पर्य है ? निम्नलिखित फलो एवं शाकों के निर्जलीकरण की विधि लिखिए—

   (अ) आम (ब) अंगूर (स) करेला (द) सेम।

2. गृह-अनुमाप सुखावक की बनावट तथा कार्य प्रणाली समझाकर लिखिए।

3. फलों एवं शाकों के निर्जलीकरण तथा सुखाने में क्या अन्तर है ? स्पष्ट करो।

अध्याय-27

सब्जी ताजा रखें

घरों में सब्जियों को हरा-भरा तथा ताजा रखने के लिए रेफ्रिजरेटरों या वातानुकूलित कमरों का उपयोग किया जाता है। परन्तु यह सुविधायें भारत में बहुत ही कम लोगों को उपलब्ध हैं। सब्जियों को भीगे कपड़े या टाट में भी कुछ समय तक ही ताजा रखा जा सकता है।

इस विषय को लेकर लेखकों ने कुछ प्रयोग किए जिससे यह निष्कर्ष निकला कि पॉलिथीन के थैले में अगर हरी सब्जी को रखा जाए तो वह 6 से 15 दिन तक हरी रह सकती है।

प्रयोग के लिए 400 गेज वाले पॉलिथीन के थैलों में विभिन्न सब्जियों को अलग-अलग रखा गया। उनमें कोई थैला फटा नहीं था। सब्जी रखने के बाद उनका मुंह रबड़ बैण्ड से बांध दिया गया। लेखकों द्वारा किए गए उक्त प्रयोग से पता चला कि विभिन्न सब्जियां निम्नलिखित काल तक पॉलिथीन थैले में हरी भरी रहती हैं—

सब्जी	दिन	सब्जी	दिन
हरा (कच्चा केला)	15	पालक	6
फूलगोभी	6	हरा धनियां	6
मूली (पत्ते सहित)	7	सलजम	10
मूली (बगैर पत्ते के)	15	गाजर	12
ग्वार की फली	10	भिण्डी	8
सेम की फली	7	लोबिया	6
हरी मर्च	10	पोदीना	6
बैंगन	10	हरी मटर	7

इस प्रकार पॉलिथीन के थैले में सब्जी रखने से थैले में नमी बनी रहती है और सब्जी भी हरी-भरी बनी रहती है। एक बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि अगर पत्तों का या सब्जी का कोई भाग रखने के एक दो दिन बाद ही खराब होने लगे तो उसे निकाल कर फेंक देना चाहिए। ऐसा करने से थैले में रखी और सब्जी खराब नहीं होती।

अध्याय—28

फलपाक (JAM)

पर्याप्त पेक्टिन, खटास व चीनी की उपस्थिति में फलों के रस व गूदे से पका कर तैयार किए गए गाढ़े अपारदर्शक पदार्थ को फलपाक कहते हैं।

फलपाक के लिए उपयुक्त फल–सेब, अमरूद, पपीता, करौंदा, आम, संतरा, माल्टा आदि पर्याप्त पेक्टिन वाले फल एवं अनन्नास, रसभरी, नाशपाती, आड़ू, आलूबुखारा, खुबानी, झरबेर, बेर आदि मध्यम या कम पेक्टिन वाले फल जैम के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। जैम एक या एक से अधिक किस्म के फलों को भी मिलाकर बनाया जाता है।

फलों का चुनाव तथा सफाई—फल पाक के लिए पके हुए स्वस्थ फलों का चुनाव करते हैं। यदि एक से अधिक किस्म के फलों को मिलाकर फल पाक बनाना है, तो अधिक पेक्टिन वाले फल के साथ में कम पेक्टिन वाले फल मिलाने चाहिए। कम खटास वाले फल के साथ में अधिक खटास वाले फल मिलाने चाहिए। इसीलिए सेब या रसभरी का मिश्रित फल पाक के लिए साधारण दबे हुए अथवा कटे हुए फलों को भी काम में लाया जा सकता है। सड़े-गले फलों को साफ पानी में अच्छी तरह धो लेते हैं।

रस व गूदे के लिए फलों को तैयार करना—चुने गए फलों को उनकी किस्म के अनुसार रस या गूदा प्राप्त करने के लिए तैयार करते है। गूदेदार फलों में जिनका छिलका कठोर या कड़ुवा हो, उनके छिलके को पीलिंग चाकू की सहायता से अलग कर लेते हैं। जैसे सेब, नाशपाती, पपीता, आम, आड़ू आदि। इसके बाद फलों के गूदे के छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं। यदि फलों के बीच में गुठली या बीज हो तो उसे निकाल कर अलग कर देते है। रसदार फलों से रस प्राप्त करने के लिए उनके छिलके उतार कर अलग कर लेते है। जैसे-संतरा, माल्टा आदि। रसदार फलों के रस निकालने वाली मशीन या अन्य उपकरण की सहायता से निकाल लेते हैं।

फलों के गूदे को मुलायम करना—मुलायम गूदे वाले फलों जैसे—आम, पपीता, आलूबुखारा के गूदे को बिना पकाये ही लकड़ी के चम्मच से कुचल कर मुलायम कर लेते हैं। किन्तु कठोर गूदे वाले फलों जैसे-सेब, नाशपाती, अमरूद, बेर आदि के फलों के गूदे को मुलायम करने के लिए कटे फलों के साथ निश्चित

अनुपात मे पानी मिलाकर प्रेसर कुकर या स्टेनलेस स्टील के भगूने मे मंद आंच पर पकाते हैं। सेव, नास्पाती, अमरूद आदि फलों के एक किलो गूदे के साथ 6(0 से 750 मि. लीटर पानी मिलाना चाहिए। जब तक कि गूदा पक कर सुलायम न हो जाय।

चीनी मिलाना—फल पाक में चीनी की मात्रा फल किस्म, खटास तथा फल में पेक्टिन की मात्रा पर निर्भर करता है। सामान्य रूप से खट्टे फलों मे बराबर अनुपात में तथा मीठे फलों में एक किलो गूदे के ¾ कि.ग्राम चीनी मिलाते हैं।

खटास रंग तथा सुगन्ध मिलाना :

खटास—फल पाक के लिए चुने गये फलो मे खटास की कमी होने पर अलग से खटास मिलाने की आवश्यकता होती है। क्योंकि जैम व जैली के जमने के लिए पेक्टिन खटास चीनी का एक निश्चित अनुपात में होना आवश्यक है। इसके लिए सामान्यतया साइट्रिक, टारटेरिक या मैलिक एसिड काम में लाते है। खटास मिलाने का कार्य फलपाक के गाढा होने पर करना चाहिए। खटास प्रति किलो फल के साथ 2 से 5 ग्राम तक मिलाना चाहिए।

रंग—सामान्य फल पाक मे रंग नही मिलाया जाता। किन्तु यदि रग मिलाना चाहें तो फल की आकृति के रंग के अनुसार खाने वाला मीठा रंग, फलपाक के पक कर तैयार होने के समय मिलाना चाहिए।

सुगन्ध—फलपाक में सुगन्ध भी प्रायः नही मिलाया जाता। यदि सुगन्ध मिलाना चाहे तो फल की किस्म के अनुसार खुशबू फलपाक के लगभग तैयार हो जाने पर मिलाना चाहिए।

फलपाक को पकाना—चीनी मिलाने के बाद पुनः मंद आंच पर पकाने का कार्य करते हैं। पकाते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं कि कही फलपाक बर्तन की पेंदी में जलने न पाये। पकाने का कार्य तब तक जारी रखते हैं जब तक कि फल पदार्थ पककर पूर्णरूप से गाढ़ा न हो जाय और जमने की स्थिति मे न पहुँच जाय।

तैयार फलपाक का परीक्षण—फलपाक पककर तैयार हो गया अथवा नही इस बात का पता लगाने के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनायी जाती हैं—

(1) **तापमापी द्वारा**—पकाये जा रहे फल पदार्थ का ताप जब 222·5° फा. (समुद्र तल पर) पहुँच जाय तो फलपाक पककर तैयार समझना चाहिए। समुद्र तल से प्रत्येक 500 फुट [illegible] ताप कम हो जाता है।

(2) **भार द्वारा**— [illegible] पर तैयार फलपाक का भार चीनी के भार के लग[illegible]

(3) रिफ्रेक्टोमीटर द्वारा—इस यन्त्र की सहायता से फलपाक में उपस्थित घुले ठोस की प्रतिशत मात्रा ज्ञात करते हैं। यदि पाक में घुले ठोस की प्रतिशत मात्रा 50 से 70 प्रतिशत तक पहुँच जाय तो फलपाक तैयार समझना चाहिए।

पैकिंग—तैयार फलपाक को लगभग 200 फा. तक ठण्डा करने के पश्चात् जीवाणु रहित गर्म बोतलों या डिब्बों में भरकर परिरक्षित कर लेते है। जैम की भराई करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं कि फलपाक के बीच में किसी तरह हवा न रहने पाये। फलपाक को वायुरोधित करने के लिए उसके ऊपरी सतह पर पिघले मोम की पतली पर्त डाल देनी चाहिए। पुनः बोतलों या डिब्बों का ढक्कन अच्छी तरह लगाकर नमी ठण्डे स्थानों में संग्रहीत कर लेना चाहिए।

अध्याय—29

अवलेह (JALLIES)

फलों से प्राप्त रस को पर्याप्त पेक्टिन, खटास व चीनी की उपस्थिति में पकाकर तैयार किए गए गाढ़े अल्प पारदर्शक पदार्थ को अवलेह कहते है।

जेली के लिए उपयुक्त फल—अवलेह या जेली के लिए ऐसे सभी फल उपयुक्त माने जाते है, जिनमें पेक्टिन की मात्रा पर्याप्त हो। फल ताजे, स्वस्थ एवं पके हुए होने चाहिए।

पर्याप्त पेक्टिन वाले फल—अमरूद, सेब, नास्पाती, सतरा (खट्टे किस्म के) नीबू, अंगूर इत्यादि।

मध्यम या सम पेक्टिन वाले फल—लोकाट, अनन्नास, रसभरी, खुबानी, आड़ू इत्यादि।

फलो का चुनाव—जेली के लिए ताजे, स्वस्थ कुछ अधपके फल चुनने चाहिए। क्योंकि अधपके फलो मे पेक्टिन अधिक पके फलो की तुलना में अधिक पायी जाती है। अधपके फलों के साथ मे कुछ पूर्ण पके फल भी चुनने चाहिए। इससे अवलेह मे उस फल का प्राकृतिक महक व स्वाद बढ़ जाता है।

फलों को तैयार करना—चुने गए फलों के साथ लगी हुई पत्तियाँ, डंठल आदि तोड़कर अलग कर देना चाहिए। सभी फलों को साफ पानी मे अच्छी तरह धो लेना चाहिए। अमरुद एवं सेव जैसे फलो को बिना छिलका अलग किए ही छोटे-छोटे एवं बारीक टुकडों में काट लेते हैं। संतरा एवं नीबू जैसे रसदार फलों के बाहरी पीले छिलके को अलग कर लेते हैं।

पेक्टिन प्राप्त करना—फलो की कोशिकाओं से पेक्टिन अलग करने के लिए फलों के टुकड़ों को स्टेनलेस स्टील के भगोने मे रखकर फल की किस्म के अनुसार पानी मिलाकर पकाना प्रारम्भ करते है। अमरूद के 1 कि.ग्राम गूदे के साथ 2½ लीटर पानी, सेव मे प्रति किलो 1½ लीटर पानी मिलाते हैं। अंगूर के साथ पानी मिलाने की आवश्यकता नही होती। पकाने का कार्य एक निश्चित अवधि तक मन्द आँच पर करते है। अधिक समय तक तथा उच्च ताप पर (80° से. से अधिक) पकाने से पेक्टिन का ह्रास क्रमशः बढ़ता चला जाता है। कुछ प्रमुख फलों से पेक्टिन प्राप्त करने हेतु पकाने की अवधि अग्रलिखित हैं—

फलों के नाम	पकाने की अवधि
1. अमरूद	30 से 35 मिनिट
2. सेव, मीठा जामुन	20 से 25 „
3. अंगूर	5 से 10 „

निश्चित अवधि तक फलों को पकाने के बाद आँच से नीचे उतार लेते हैं। जेली बैग या मलमल की कई पर्त करके उसमें पकाये गये फलों को रखकर स्वतः रस को निथरने देते है। जब अधिक से अधिक पेक्टिन निथर जाय तो बैग को हटा देते हैं तथा निथरे हुए पेक्टिन को रात भर स्थिर होने के लिए छोड़ देते है। अच्छी जेली जमने के लिए प्राप्त रस में 0·5 से 0·1 प्रतिशत पेक्टिन होनी चाहिए।

पेक्टिन परीक्षण—फलों से प्राप्त रस में पेक्टिन की मात्रा ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनायी जाती हैं—

(1) जेलीमीटर द्वारा—यह एक बनी हुई नली होती है जिसका आधा ऊपरी भाग चौड़ा तथा शेष आधा निचला भाग संकरी नली का बना होता है। नली के दोनो सिरे खुले होते हैं। चौड़ी नली पर ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः $1\frac{1}{4}$, 1, $\frac{3}{4}$ व $\frac{1}{2}$ के अंशांकन होते है।

पेक्टिन परीक्षण के लिए जेली मीटर को बायें हाथ के अंगूठे व उसके निकट वाली अंगुली से पकड़ते हुए सबसे छोटी अंगुली से मीटर का निचला छिद्र बन्द कर लेते हैं। जेली मीटर में फलों से प्राप्त रस को भरने से पूर्व 70° फा. व 100° फा. के बीच ठंडा कर लेते है। यदि ताप 700° फा. से कम है तो उसे उपर्युक्त ताप तक गर्म कर लेते है। जेली मीटर में रस चम्मच की सहायता से ऊपर तक भर लेते हैं। इसके बाद 1 मिनिट समय के लिए निचले छिद्र से अंगुली को हटा लेते हैं। इस अवधि में रस जेली मीटर में जिस निशान के निकट रुकता है। वही उस रस में पेक्टिन की मात्रा मानी जाती है।

(2) मेथाइलेटेड स्प्रिट द्वारा—फलों से प्राप्त रस एक भाग ले कर किसी साफ बीकर या परखनली में डाल लेते हैं। पुनः तीन भाग मेथाइलेटेड स्प्रिट परखनली या बीकर की दीवार के सहारे धीरे-धीरे डाल के मिलाते हैं। दोनों को आपस में अच्छी तरह मिलाने के बाद कुछ समय तक स्थिर अवस्था में रखते हैं। इसके बाद जमे हुए पदार्थ को बाहर निकालते हैं। यदि पदार्थ एक साथ बाहर आये तो उस रस में पेक्टिन की मात्रा पर्याप्त मानी जाती है, दो-तीन टुकड़ों में जमा हुआ निकले तो पेक्टिन मध्यम और कई टुकड़े अथवा द्रव अवस्था में ही रहे तो पेक्टिन की कमी मानी जाती

चीनी मिलाना तथा अवलेह को पकाना—पेक्टिन परीक्षण से प्राप्त परिणाम के आधार पर चीनी मिलायी जाती है। यदि रस में पेक्टिन पर्याप्त हो तो चीनी रस के बराबर मात्रा में मिलानी चाहिए। यदि पेक्टिन मध्यम ($\frac{3}{4}$) हो तो 1 लीटर रस में $\frac{3}{4}$ कि. ग्राम चीनी मिलानी चाहिए।

चीनी मिलाने के बाद अवलेह को मंद आंच पर धीरे-धीरे पकाना चाहिए। पकाने का कार्य तब तक जारी रखते हैं, जब तक कि अवलेह जमने की स्थिति में न पहुँच जाय।

तैयार अवलेह का परीक्षण—अवलेह पककर तैयार हो गई अथवा नहीं, इसकी जांच निम्नलिखित विधियों से की जा सकती है—

(1) **बूंदी परीक्षण (Drop test)**—पकाये जा रहे फलपाक को एक चम्मच में लेकर कुछ समय तक ठण्डा करने के पश्चात् बीकानेर में पानी लेकर बूँद-बूँद करके गिराते हैं। यदि ये बूँदें पानी में बिना घुले बीकर की पेंदी में जाकर जम जायें तो जेली तैयार समझना चाहिये।

(2) **चम्मच द्वारा जांच (Spoon test)**—पकायी जा रही जेली को एक चम्मच में लेकर कुछ समय तक ठण्डा करने के पश्चात् नीचे गिराते हैं। यदि जेली चम्मच के साथ त्रिभुजाकार रचना बनाये तो जेली तैयार समझना चाहिये।

(3) **पर्त परीक्षण (Sheet test)**—पकायी जा रही जेली को किसी प्लेट में डालकर कुछ समय तक ठण्डा करते हैं। यदि ठण्डा होने पर जेली जम जाये तो, जेली तैयार समझनी चाहिये।

(4) **जेली थर्मामीटर द्वारा**—जेली थर्मामीटर द्वारा पकाये जा रहे पदार्थ का ताप देखते रहते है। पकाये जा रहे पदार्थ का ताप 221° फा. तक पहुँच जाने पर जेली तैयार समझना चाहिये।

(5) **रिफ्रैक्टोमीटर द्वारा**—रिफ्रैक्टोमीटर की सहायता से पकाये जा रहे पदार्थ में चीनी की प्रतिशत मात्रा का पता लगाते है। चीनी की प्रतिशत मात्रा 65% तक पहुँच जाने पर जेली तैयार समझना चाहिये।

(6) **भार द्वारा**—तैयार अवलेह का भार रस में मिलायी गई चीनी के भार के 1½ गुना तक हो जाने पर जेली तैयार समझना चाहिये।

पैकिंग—तैयार जेली को कुछ ठण्डा कर लेते है तथा जीवाणु रहित बोतलों को यदि ठण्डे हैं तो उन्हे पुनः गर्म पानी में रखकर गर्म कर लेते हैं। ताकि जेली भरते समय ताप में भिन्नता के कारण बोतल टूटने न पाये। 24 घण्टे बाद उनके ऊपरी सतह पर पिघले हुए मोम की पतली पर्त डालकर, अच्छी तरह ढक्कन लगाकर नमी रहित ठण्डे स्थान पर संग्रहीत कर लेते हैं।

व्यावसायिक स्तर पर गर्म जेली डिब्बों के अन्दर भर कर, सील करने के पश्चात पुनः 25 से 30 मिनिट तक 180° फा. पर पेश्चुराइज करते है ।

अच्छी जेली की पहचान—अच्छी जेली मे निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं—

( ) अच्छी जेली चमकदार, पारदर्शक या अल्प-पारदर्शक दिखाई देती है । (2) छूने पर हाथ से चिपकती नहीं तथा दबाने पर रबर की तरह लचीली दिखाई देती है । (3) अच्छी जेल मे, जिस फल से जेली बनाई गई है, उसका स्वाद व खुशबू उसमें पूर्ण रूप से पाया जाता है । (4) अच्छी जेली को चाकू से छोटे-छोटे टुकड़ो मे काटा जा सकता है । काटते समय चाकू के साथ चिपकेगी नही । (5) अच्छी जेली को जमने के बाद यदि बोतल से बाहर गिराया जाय तो सारी जेली बोतल की दीवार से बिना चिपके जमी हुई अवस्था मे एक साथ बाहर आ जायेगी ।

जेली से सम्बन्धित तकनीकी शब्द :

(1) **वीपिंग जेली** (Weeping Jellies)—जब फलो से प्राप्त रस मे पेक्टिन कम मात्रा में हो व चीनी पेक्टिन के अनुपात मे अधिक मात्रा मे मिला दी जाय, तो जेली शहद की तरह चिपचिपी बन जाती है। इस प्रकार की जेली को वीपिंग जेली कहते हैं ।

(2) **कठोर जेली** (*Hard Jellies*)—फलो से प्राप्त रस मे पेक्टिन की अधिकता या पर्याप्त मात्रा होने पर यदि चीनी अनुपात मे कम मात्रा मे मिलायें तो जेली जमने के बाद सख्त हो जाती है । ऐसी जेली को कठोर जेली कहते है ।

अवलेह (जेली) व फल पाक (जैम) में अन्तर

अवलेह	फलपाक
1. अवलेह केवल एक ही किस्म के फलों से बनाया जाता है ।	1. फल पाक एक या एक से अधिम किस्म के फलो को एक साथ मिलाकर बनाया जाता है ।
2. अवलेह फलों की कोशिकाओं से अलग किए हुए पेक्टिन युक्त रस तैयार किया जाता है ।	2. फलपाक फलों के गूदे व रस दोनों से तैयार किया जाता है ।

अवलेह	फलपाक
3. अवलेह में कटे हुए या साधारण दबे हुए फलो को काम में नही लाया जाता ।	3. फल पाक बनाने में साधारण कटे व दबे हुए फलो के खराब भाग को निकालकर फल के शेष भाग को काम मे लाया जा सकता है ।
4. अवलेह एक अल्प पारदर्शक गाढा पदार्थ है ।	4. फल पाक अपारदर्शक गाढ़ा पदार्थ होता है ।
5. अवलेह में रंग नही मिलाया जाता ।	5. फल पाक मे फल के प्राकृतिक रंग के अनुसार मीठा रंग मिलाया जा सकता है ।
6. अवलेह रबर की तरह लचीली होती है ।	6. फल पाक रबर की तरह लचीला नही होता ।

अध्याय 30

पानक

(Squash)

फलों के रस जो विभिन्न अनुपातों मे चीनी के साथ परिरक्षित पेय पदार्थ बनता है और जिसमे एक निश्चित अनुपात में रासायनिक परिरक्षण पदार्थ भी मिलाया जाता है, ताकि पानक अधिक दिनों तक परिरक्षित रह सके।

पानक के लिए उपयुक्त फल—पानक विभिन्न रसदार फलों से तैयार किया जाता है जिनमे से प्रमुख फल निम्नलिखित हैं—संतरा, माल्टा, नीबू, रसदार आम, अनन्नास, फालसा इत्यादि।

फलों का चुनाव—पानक के लिए पूर्ण रूप से पके हुए स्वस्थ फलों का चुनाव करना चाहिए। जिन फलों में सड़ने, गलने या खमीरीकरण की क्रिया प्रारम्भ हो गई हो ऐसे फलों को चुनकर बाहर निकाल देना चाहिए।

फलों से रस प्राप्त करना—विभिन्न फलों से अलग-अलग ढंग से भिन्न-भिन्न उपकरणों की सहायता से रस प्राप्त करते हैं। संतरा का रस निकालने के लिए सर्वप्रथम उसके छिलके को अलग कर लेते हैं। फिर रस निकालने वाली मशीन की सहायता से रस अलग कर लेते हैं। माल्टा, मौसमी आदि से रस प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम सभी फलों को दो-दो टुकड़ों में काट लेते हैं। इसके बाद बर की सहायता से रस अलग कर लेते हैं। नीबू का रस निकालने के लिए प्रत्येक नीबू को दो-दो टुकड़ों में काट लेते हैं तथा नीबू निचोड़क की सहायता से रस अलग कर लेते हैं। रसदार आम का रस हाथ से निचोड़कर अलग करते हैं। संतरा, माल्टा, नीबू आदि फलों के रस को बारीक कपड़े से छान लेते हैं।

चीनी का शर्बत तैयार करना—फलों से प्राप्त रस की मात्रा ज्ञात करके रस के बराबर मात्रा में चीनी लेकर, चीनी की आधी मात्रा में पानी मिलाकर मंद आंच पर तब तक गर्म करते है जब तक कि चीनी के रवे पानी मे अच्छी तरह न घुल जायें। जब चीनी पानी मे अच्छी तरह घुल जाय तो शर्बत (Syrup) को आंच से नीचे उतार लेते हैं।

फल के रस तथा चीनी के शर्बत को आपस में मिलाना—जब चीनी का शर्बत कुछ ठंडा हो जाय तो फल के रस के साथ शर्बत को धीरे-धीरे मिलाते हैं।

खटास, रंग, खुशबू तथा परिरक्षण पदार्थ मिलाना—नीबू के पानक में खटास मिलाने की आवश्यकता नहीं होती। अन्य फलों के पानक में निश्चित अनुपात में खटास फल की थोड़ी सी मात्रा में घोल कर मिलाते हैं।

फल के प्राकृतिक रंग के अनुसार पर्याप्त मीठा रंग भी रस की थोड़ी सी मात्रा में घोल कर सम्पूर्ण पानक में आवश्यकतानुसार मिलाते हैं।

पानक में पोटेशियम मेटाबाई सल्फाइट या सोडियम बेन्जोएट रासायनिक परिरक्षण पदार्थ के रूप में मिलाते हैं। इन्हें भी पानक की थोड़ी सी मात्रा में अलग से घोल कर पुनः सम्पूर्ण पानक में मिलाते हैं।

तालिका सं० 54

सम्पूर्ण पानक के सूत्र

फलों का नाम	रस की मात्रा	चीनी की मात्रा	खटास	मीठा रंग	सो.बो.या पो.मेटाबाई सल्फाइट	खुशबू
1. संतरा	1कि ग्रा.	1 कि.ग्रा.	10 ग्राम	नारंगी रंग	1 ग्राम	फल की किस्म के अनुसार पर्याप्त
2. माल्टा	"	"	"	पीला रंग	"	
3. नींबू	"	"	×		"	
4. आम	"	"	12 ग्राम	"	"	
5. अनानास	"	"	10 ग्राम	"	"	"

बोतलों की भराई—बोतलों को पहले गर्म पानी से अच्छी तरह धोकर साफ कर लेना चाहिए। इसके बाद उन्हें 212°F ताप पर लगभग 30 मिनट तक गर्म पानी में रखकर जीवाणु रहित कर लेना चाहिए। पुनः बोतलों को नमी रहित कर के पानी की भराई करके ऊपर से कार्क या ढक्कन लगाकर, पिघला हुआ मोम लगा देना चाहिए ताकि वायु अन्दर प्रवेश न कर सके।

अध्याय–31

शर्बत
(Sharbat)

शर्बत भी एक पेय पदार्थ है जिसमें फलों का रस बहुत कम मात्रा में अथवा रस के स्थान पर केवल खुशबू मिलाया जाता है। इसीलिए शर्बत को दो भागों में बांटा जा सकता है—

1. फलों के रस युक्त शर्बत (Fruit Syrup)

2. खुशबूदार शर्बत (Synthetic Syrup of Sharbat)

फलों के रस युक्त शर्बत— इसमें रस की प्रतिशत मात्रा कम होती है। चीनी की प्रतिशत मात्रा बढ़ा देते हैं। चीनी की प्रतिशत मात्रा 65% से अधिक होने पर रासायनिक परिरक्षण पदार्थ मिलाने की आवश्यकता नहीं होती। फलों से रस प्राप्त करने, चीनी का शर्बत (Syrup) तैयार करने एवं उनको मिलाने का तरीका पानक के समान है।

सूत्र—फलों का रस–1 किलोग्राम, चीनी–3 किलोग्राम, पानी 1½ लीटर, सो. बेन्जोएट—आवश्यकतानुसार, पो. मेटाबाई सल्फाइट—आवश्यकतानुसार, मीठा रंग—फल की किस्म के अनुसार, तैयार पदार्थ—5 लीटर पर्याप्त, खुशबू (Essance)—10 मि. लीटर।

खुशबूदार शर्बत (Synthetic Syrup or Sharbat)

सूत्र—फलों का रस—नहीं, चीनी—1 कि. ग्राम. पानी—½ लीटर, साइट्रिक—केवल संतरा, माल्टा, मौसमी और एसिड आदि का शर्बत बनाने पर 7 से 10 ग्राम, एसेंस—पर्याप्त, मीठा रंग—पर्याप्त।

विधि—चीनी के साथ निश्चित अनुपात में पानी मिलाकर मंद आँच पर तब तक गर्म करते हैं जब तक कि चीनी पानी में अच्छी तरह न घुल जाय। एक-तार की चाशनी बनने से पूर्व ही शर्बत को पकाना बंद कर देते हैं।

शर्बत को थोड़ासा ठंडा करने के बाद उसमे क्रमश; खटास (यदि नींबू, संतरा, माल्टा आदि का शर्बत तैयार कर रहे हैं), खुशबू, मीठा रंग बारी-बारी से चम्मच में थोड़ा-सा शर्बत लेकर उसमें घोल कर मिला देते हैं। इस प्रकार तैयार शर्बत को जीवाणु रहित साफ बोतल में भरकर संग्रहीत कर लेते हैं।

खटास, रंग, खुशबू तथा परिरक्षण पदार्थ मिलाना—नीबू के पानक में खटास मिलाने की आवश्यकता नहीं होती। अन्य फलों के पानक में निश्चित अनुपात में खटास फल की थोड़ी सी मात्रा में घोल कर मिलाते हैं।

फल के प्राकृतिक रंग के अनुसार पर्याप्त मीठा रंग भी रस की थोड़ी सी मात्रा में घोल कर सम्पूर्ण पानक में आवश्यकतानुसार मिलाते हैं।

पानक में पोटेशियम मेटाबाई सल्फाइट या सोडियम बेन्जोएट रासायनिक परिरक्षण पदार्थ के रूप में मिलाते हैं। इन्हें भी पानक की थोड़ी सी मात्रा में अलग से घोल कर पुनः सम्पूर्ण पानक में मिलाते हैं।

तालिका सं० 54

सम्पूर्ण पानक के सूत्र

फलों का नाम	रस की मात्रा	चीनी की मात्रा	खटास	मीठा रंग	पो.बो.या पो.मेटाबाई सल्फाइट	खुशबू
1. संतरा	1कि ग्रा.	1 कि.ग्रा.	10 ग्राम	नारंगीरंग	1 ग्राम	फल की
2. माल्टा	,,	,,	,,	पीला	,,	किस्म के
3. नीबू	,,	,,	×	रंग	,,	अनुसार
4. आम	,,	,,	12 ग्राम	,,	,,	पर्याप्त
5. अनान्नास	,,	,,	10 ग्राम	,,	,,	,,

बोतलों की भराई—बोतलों को पहले गर्म पानी से अच्छी तरह धोकर साफ कर लेना चाहिए। इसके बाद उन्हें 212°F ताप पर लगभग 30 मिनट तक गर्म पानी में रखकर जीवाणु रहित कर लेना चाहिए। पुनः बोतलों को नमी रहित कर के पानी की भराई करके ऊपर से कार्क या ढक्कन लगाकर, पिघला हुआ मोम लगा देना चाहिए ताकि वायु अन्दर प्रवेश न कर सके।

अध्याय-31

शर्बत
(Sharbat)

शर्बत भी एक पेय पदार्थ है जिसमें फलों का रस बहुत कम मात्रा में अथवा रस के स्थान पर केवल खुशबू मिलाया जाता है। इसीलिए शर्बत को दो भागों में बांटा जा सकता है—

1. फलों के रस युक्त शर्बत (Fruit Syrup)
2. खुशबूदार शर्बत (Synthetic Syrup of Sharbat)

फलों के रस युक्त शर्बत— इसमें रस की प्रतिशत मात्रा कम होती है। चीनी की प्रतिशत मात्रा बढ़ा देते हैं। चीनी की प्रतिशत मात्रा 65% से अधिक होने पर रासायनिक परिरक्षण पदार्थ मिलाने की आवश्यकता नहीं होती। फलों से रस प्राप्त करने, चीनी का शर्बत (Syrup) तैयार करने एवं उनको मिलाने का तरीका पानक के समान है।

सूत्र—फलों का रस–1 किलोग्राम, चीनी–3 किलोग्राम, पानी 1½ लीटर, सो. बेन्जोएट—आवश्यकतानुसार, पो. मेटाबाई सल्फाइट—आवश्यकतानुसार, मीठा रंग—फल की किस्म के अनुसार, तैयार पदार्थ—5 लीटर पर्याप्त, खुशबू (Essance)—10 मि. लीटर।

खुशबूदार शर्बत (Synthetic Syrup or Sharbat)

सूत्र—फलों का रस—नहीं, चीनी—1 कि. ग्राम, पानी—½ लीटर, साइट्रिक—केवल संतरा, माल्टा, मौसमी और एसिड आदि का शर्बत बनाने पर 7 से 10 ग्राम, एसेंस—पर्याप्त, मीठा रंग—पर्याप्त।

विधि—चीनी के साथ निश्चित अनुपात में पानी मिलाकर मंद आंच पर तब तक गर्म करते हैं जब तक कि चीनी पानी में अच्छी तरह न घुल जाय। एक-तार की चाशनी बनने से पूर्व ही शर्बत को पकाना बंद कर देते हैं।

शर्बत को थोड़ासा ठंडा करने के बाद उसमें क्रमशः खटास (यदि नींबू, संतरा, माल्टा आदि का शर्बत तैयार कर रहे हैं), खुशबू, मीठा रंग बारी-बारी से चम्मच में थोड़ा-सा शर्बत लेकर उसमें घोल कर मिला देते हैं। इस प्रकार तैयार शर्बत को जीवाणु रहित साफ बोतल में भरकर संग्रहीत कर लेते हैं।

शर्बत तथा पानक (Squash) में अन्तर

शर्बत	पानक
1. शर्बत में फलों का रस 25% से भी कम या बिलकुल नहीं मिलाते।	1. पानक में फलों का रस अनिवार्य रूप से मिलाया जाता है जिसकी प्रतिशत मात्रा 25% या इससे अधिक होती है।
2. शर्बत में खुशबू पर्याप्त मात्रा में मिलायी जाती है।	2. पानक में खुशबू मिलाना कोई आवश्यक नहीं है।
3. शर्बत में रासायनिक परिरक्षण पदार्थ नहीं मिलाते।	3. पानक में रासायनिक परिरक्षण पदार्थ मिलाते हैं।

अचार (Pickles)

अचार के रूप में फलों एवं शाकों का परिरक्षण ग्रामीण एवं शहरी सभी क्षेत्रों में काफी प्रचलित है। शाकाहारी आहार में अन्य परिरक्षित फल पदार्थों की तुलना में अचार अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अचार का अत्यधिक प्रचलन होने के कारण ही इसकी अनेकों विधियाँ भी प्रचलित हैं, किन्तु स्थाई परिरक्षण के लिए सरसों के तेल या सिरका का अचार में होना आवश्यक होता है।

अचार के लिए उपयुक्त फल एवं सब्जियाँ—अचार प्रायः कच्चे या अधपके किन्तु पूर्ण विकसित फलों एवं सब्जियों से तैयार किया जाता है। अचार के लिए खट्टे फल ज्यादा उपयुक्त माने जाते हैं। जैसे आम, इमली, आँवला, करोंदा, कैंत, अमड़ा, नीबू आदि। इनके अतिरिक्त फूल गोभी, गाजर, मूली, सेम, मिर्च, कटहल, सैंजन, लिसोड़ा आदि सब्जियों एवं फलों से भी अचार तैयार किया जाता है।

अचार के लिए आवश्यक अवयव—अचार बनाने के लिए प्रमुख रूप से निम्नलिखित अवयवों की आवश्यकता होती है—

1. सरसों का तेल, 2. सिरका, 3. नमक, 4. मसाले, 5. चीनी (मीठे अचार में) 6. उपचारक पदार्थ–नमक, फिटकरी, सुहागा एवं छाछ या लस्सी व चने का पानी।

अचार बनाने की सामान्य विधि

फलों एवं शाकों का चुनाव एवं सफाई—अचार के लिए हरे या अधपके (पूर्ण विकसित, स्वस्थ, रोग एवं कीट रहित) फलों एवं सब्जियों का चुनाव करते हैं। अचार नमी रहित किए गए फलों एवं सब्जियों से भी तैयार किया जा सकता है। चुने गए फलों एवं सब्जियों को साफ पानी अथवा 1 लाल दवा के घोल में धो लेना चाहिए। धुलाई के बाद उन्हें बाहर से नमी रहित कर लेते हैं।

फलों को तैयार करना—अचार के लिए विभिन्न फलों एवं शाकों को अचार बनाने की विधि एवं अचार की किस्म के अनुसार अलग-अलग तरीके से तैयार करते हैं। बड़े आकार के फलों एवं शाकों को दो-चार या इससे अधिक टुकड़ों में काट लेते हैं। आँवला, लिसोड़ा, कटहल, सैंजन आदि को मसाला आदि मिलाने से पूर्व थोड़ा सा उबाल लेते हैं जिससे अचार शीघ्र तैयार हो सके

मसाला, मिर्च, सिरका, या तेल आदि मिलाने से पूर्ण नमक, चूने के पानी या दाख आदि में फलों एवं शाकों को उपचारित कर लेने से अचार का स्वाद बढ़ जाता है।

इसके पश्चात् मसाले के चूर्ण नमक, पिसी हुई लाल मिर्च, हल्दी आदि मिलाकर पर्याप्त सरसों का तेल व सिरका मिलाकर शीशे अथवा चीनी मिट्टी के जार में भरकर तैयार होने के लिए रख देते हैं।

—आम का अचार (Mango pickles)

1. **आम का मीठा अचार**—आम का मीठा अचार तैयार करने के लिए पूर्ण विकसित अधपके आम लेकर फलों को साफ पानी में अच्छी तरह धो लेते हैं। इसके बाद प्रत्येक फल को स्टेनलेस स्टील के चाकू से चार-चार टुकड़ों में काट लेते हैं। बीच की गुठली को अलग कर देते हैं। आम के कटे टुकड़ों को 2 से 3% नमक के घोल में 24 घण्टे तक रखते हैं। इसके पश्चात् उन्हें साफ पानी से से धोकर साफ कपड़े से नमी रहित कर लेते हैं। आम के कटे हुए टुकड़ों को चीनी की चासनी के साथ मन्द आंच पर 15 से 20 मिनिट तक पकाते समय कटी हुई अदरक, लाल मिर्च एवं सिरका निश्चित मात्रा में मिला देते हैं। जब चासनी गाढ़ी हो जाय तो पकाने का कार्य बन्द कर देते हैं। तैयार पदार्थ को चीनी, मिट्टी या शीशे के जार में भरकर परिरक्षित कर लेते हैं।

सूत्र—कटे हुए आम 1 कि. ग्राम, कटे हुए अदरक 250 ग्राम, लाल मिर्च 50 ग्राम, चीनी 250 ग्राम, सिरका 500 मि. लीटर।

2. **आम का तीखा या मसालेदार अचार**—पूर्ण विकसित हरे आम को लेकर साफ पानी में अच्छी तरह धोकर 4–4 टुकड़ों में काट लेते हैं। गुठली को बाहर निकाल देते हैं। कटे हुए टुकड़ों का 2% नमक के घोल में 24 से 26 घण्टे तक रखने के बाद पुनः साफ पानी से धोकर नमी रहित कर लेते हैं। तत्पश्चात उसमें मसाला मिर्च, नमक, तेल एवं हल्दी आदि मिलाकर शीशे या चीनी मिट्टी के जार में भरकर लगातार 15 दिन तक दिन में धूप में एवं रात में ओस में रखते हैं। अचार को प्रतिदिन हिलाते रहते हैं।

(i) सूत्र—कटे हुए आम 1 किलो ग्राम, पिसा हुआ नमक 150 ग्राम, मेथी (मोटी पिसी हुई) 125 ग्राम, कलौंजी (मोटी पिसी हुई) 30 ग्राम, पिसी हुई हल्दी 30 ग्राम, लाल मिर्च (पिसी हुई) 30 ग्राम, काली मिर्च (पिसी हुई) 30 ग्राम, सौंफ 30 ग्राम, सिरका 500 मि. लीटर।

(ii) सूत्र—कटे हुए आम 1 कि. ग्राम, ... धनियां (... काली मिर्च इत्यादि) 250 ग्राम, नमक 150 ... 50 ... 100 ग्राम, हल्दी 25 ग्राम, राई 100 ग्राम, ... इससे अधिक।

नीबू का अचार (Lemon pickles)

नीबू का अचार बनाने की अनेको विधियाँ प्रचलित हैं। कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं—

1. नीबू का सादा अचार—पके हुए नीबुओं को लेकर उनमे से आधे नीबुओ को 2–2 टुकडो मे काट लेते है। उनका रस निचोड़ कर चीनी मिट्टी या शीशे के जार मे एकत्र कर लेते हैं। शेष नीबुओं को भी 2–2 टुकड़ो मे काट कर सभी नीबू के टुकड़ों को नीबू के रस मे डाल देते हैं, तथा उसमें पूर्ण विकसित हरी मिर्च को लम्बाई मे चीर कर डाल देते हैं। ऊपर पर्याप्त मात्रा मे पिसा हुआ नमक भुरक कर जार को 15 दिन के लिए दिन मे धूप मे तथा रात में ओस में रखते हैं।

सूत्र—पके हुए नीबू 1 किलो ग्राम, नमक 250 ग्राम, हरी मिर्च 125 ग्राम।

2. नीबू का मसालेदार अचार—पके हुए नीबुओं को लेकर प्रत्येक नीबू को 4-4 टुकडों में इस प्रकार काट लेते हैं कि चारों टुकडे अलग-अलग न होने पाये। इन टुकड़ो के ऊपर पिसा हुआ नमक भुरककर 24 घण्टे तक के लिए रख देते हैं। बीच-बीच मे नीबू के टुकड़ो को पलटते रहते हैं। इसके बाद उन्हें जार में रख कर कटी हुई अदरक, पिसी हुई मिर्च, सरसो या राई, हल्दी आदि मिलाकर ऊपर से सिरका या तेल अथवा दोनों निश्चित मात्रा में मिला देते हैं।

(i) सूत्र—पके हुए नीबू 1 किलोग्राम, नमक 250 ग्राम, हल्दी 25 ग्राम, कटा हुआ अदरक 100 ग्राम, लाल मिर्च (पिसी हुई) 30 ग्राम, सरसो या राई 100 ग्राम, सिरका 500 मि. लीटर, सरसों का तेल 100 मि. लीटर।

(ii) सूत्र—पके हुए नीबू 1 किलोग्राम, सरसो का तेल 1½ लीटर, मसाला 250 ग्राम, नमक 200 ग्राम।

इस विधि मे पके हुए छोटे नीबुओं को पहले 10% नमक के घोल में एक सप्ताह तक रखते हैं। इसके बाद पुनः उन नीबुओ को दूसरे नमक के घोल मे एक सप्ताह तक रखते है। तत्पश्चात सभी नीबुओ को नमी रहित करके जार मे डाल देते हैं। ऊपर से पर्याप्त मात्रा मे सरसो का तेल या सिरका डालते हैं। स्वाद के लिए मसाला भी मिलाया जाता है।

गाजर का अचार

सूत्र—गाजर 1 किलोग्राम, राई 100 ग्राम, नमक 80 ग्राम।

गाजरों को अच्छी तरह साफ पानी से धो कर उस पर लगे हुए बारीक जड़ें आदि को खुरच कर लम्बे व पतले टुकड़ों में काट लेते हैं। इन टुकड़ों को

कुछ देर तक उबालने के पश्चात् नमी रहित करके उनके ऊपर पिसा हुआ नमक व पिसी हुई राई बुरक कर जार में भर देते हैं। जार को एक दिन धूप में रखने के बाद दूसरे दिन उसमें थोड़ासा गर्म पानी डाल कर पुनः 4 से 5 दिन तक में दिन धूप में व रात में ओस में रखते हैं। इसके बाद अचार खाने योग्य हो जाता है।

कटहल का अचार

सूत्र—हरा कटहल (कटा हुआ) 1 किलोग्राम, राई या सरसों 60 ग्राम, नमक 125 ग्राम, लाल मिर्च (पिसी हुई) 60 ग्राम, हल्दी 50 ग्राम, सौंफ 20 ग्राम, जीरा 30 ग्राम, सरसों का तेल पर्याप्त।

अध्याय – 33

चटनी (Chutneys)

चटनी भी भारतीय भोजन में एक अत्यन्त प्रचलित भोज्य पदार्थ है। हमारे देश में आम तौर से विभिन्न खट्टे फलों एवं शाकों को नमक, मिर्च व धनिया के साथ कूट पीस कर तैयार किया जाता है। किन्तु कूटी हुई चटनी अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रक्खी जा सकती। इसलिए परिरक्षण की दृष्टि से पकाई हुई चटनी का अध्ययन करते हैं।

चटनी सामान्य रूप से आम, इमली, आलू बुखारा, करौदा, फूलगोभी, टमाटर, अदरक आदि फलों एवं शाकों से बनाया जाता है। कुछ प्रमुख फलो एवं शाकों की चटनी बनाने की विधि निम्न प्रकार से है—

आम की चटनी

1. आम की चटनी—

सूत्र—(आम हरे कटे हुए) 1 कि. ग्राम, नमक 75 ग्राम, कटी हुए अदरक 100 ग्राम, लाल मिर्च 25 ग्राम या अधिक, तेजपात 2, ग्राम चीनी 250 ग्राम, सिरका 200 मि. लीटर, मुनक्का 100 ग्राम।

विधि—आम के फलों को साफ पानी मे धोकर, पीलिंग चाकू की सहायता से उसका छिलका उतार कर अलग कर लेते हैं। तत्पश्चात गूदे को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं तथा गुठली को अलग कर लेते है। पुनः पिसी हुई मिर्च, चीनी आदि मिलाकर मन्द आँच पर पकाते हैं। गाढ़ा होने से कुछ समय पूर्व सिरका मिलाकर पुनः तब तक पकाते है, जब तक कि चटनी गाढ़ी न हो जाय। चटनी के गाढ़ी हो जाने पर उसे आँच से नीचे उतार लेते हैं और जीवाणु रहित बोतलों में भर कर परिरक्षित कर लेते है।

सूत्र (ii)—आम (कटे हुए एवं हरे) 1 कि.ग्राम, चीनी 1 किलोग्राम, नमक 60 ग्राम, मसाला (जीरा, इलायची, दाल चीनी इत्यादि) 30 ग्राम, लहसुन (पिसी हुई) 5 ग्राम, प्याज (पिसी हुई) 30 ग्राम, अदरक (कटा हुआ) 120 ग्राम, लाल मिर्च (पिसी हुई) 15 ग्राम, सिरका 125 मि. लीटर।

कुछ देर तक उबालने के पश्चात् नमी रहित करके उनके ऊपर पिसा हुआ नमक व पिसी हुई राई बुरक कर जार में भर देते हैं। जार को एक दिन धूप में रखने के बाद दूसरे दिन उसमें थोड़ासा गर्म पानी डाल कर पुनः 4 से 5 दिन तक में दिन धूप में व रात में ओस में रखते हैं। इसके बाद अचार खाने योग्य हो जाता है।

कटहल का अचार

सूत्र—हरा कटहल (कटा हुआ) 1 किलोग्राम, राई या सरसों 60 ग्राम, नमक 125 ग्राम, लाल मिर्च (पिसी हुई) 60 ग्राम, हल्दी 50 ग्राम, सौंफ 20 ग्राम, जीरा 30 ग्राम, सरसों का तेल पर्याप्त।

टमाटर का सॉस

(Tomato Sauce)

सूत्र—टमाटर का रस 1 कि. ग्राम, नमक 25 ग्राम, चीनी 50 ग्राम, मिर्च 10 ग्राम, मसाला (पिसा हुआ) 5 ग्राम, (लौंग, बड़ी इलायची, जीरा, काली मिर्च, व दाल चीनी) प्याज (कुटी हुई) 20 ग्राम सिरका 50 मि लीटर।

विधि—पके हुए टमाटरों को लेकर, उन के डंठल आदि को तोड़ देते हैं तथा उन्हें साफ पानी में धो लेते हैं। इन टमाटरों को उबलते हुए पानी में 2 से 5 मिनिट तक रखकर पुनः ठण्डे पानी में डाल देते हैं। इस क्रिया को ब्लांचिंग (Blanching) क्रिया कहते हैं।

इसके बाद पीलिंग चाकू की सहायता से टमाटर के छिलके को अलग कर लेते हैं। पुनः सभी फलों को लकड़ी के चम्मच से अच्छी तरह कुचलकर नाइलोन या स्टेनलेस स्टील की चालनी से छान लेते हैं। प्राप्त रस का भार ज्ञात कर लेते हैं।

सॉस को पकाना—प्राप्त टमाटर के रस में निश्चित अनुपात में चीनी, नमक व लाल मिर्च मिलाकर पकाना प्रारम्भ करते हैं। प्याज व मसाले की पोटली बना कर वाष्प में लटका देते हैं। जब सॉस पककर गाढ़ा होने लगे तो उसे आंच से नीचे उतार लेते हैं। मसाले व प्याज की पोटली का रस निचोड़ कर सॉस में मिला देते है। इसी समय सिरके की निश्चित मात्रा मिलाकर पुनः 5 से 7 मिनट तक पकाते है। जब सॉस पककर गाढ़ा हो जाय, उस समय उसे आंच से नीचे उतार कर जीवाणु रहित बोतलों में भर कर परिरक्षित कर लेते है। सॉस पकाने का कार्य स्टेनलेस स्टील या तामचीनी के बर्तन में करते हैं।

विधि—अधपके आम के छिलके उतार कर उसके गूदे को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं। इन टुकड़ो को मन्द आंच पर कुछ समय तक पानी में उबाल लेते हैं, जिससे गदा मुलायम हो जाय। इसके बाद नमक, मिर्च व चीनी मिलाकर चटनी को पकाना प्रारम्भ करते हैं। मसाला, प्याज व लहसुन की पोटली बनाकर लटका देते है। जब चटनी पककर गाढ़ी होने लगे उस समय सिरका मिलाकर मसाला, प्याज व लहसुन का रस निचोड़ कर चटनी में मिला देते हैं। पुनः लगभग 5 मिनिट तक पकाने के बाद आंच से नीचे उतार लेते हैं। तैयार पदार्थ को जीवाणु रहित जार में भर कर परिरक्षित कर लेते हैं।

टमाटर की चटनी

सूत्र—टमाटर (पके हुए) 1 कि. ग्राम, चीनी (देशी) 500 ग्राम, राई या सरसों 30 ग्राम, लहसुन 30 ग्राम, लाल मिर्च (पिसी हुई) 20 ग्राम, सिरका 250 मि. लीटर, मुनक्का (पिसा हुआ) 175 ग्राम।

विधि—टमाटर को लकड़ी के चम्मच से अच्छी तरह कुचल कर बीच के कठोर भाग को निकाल देना चाहिए। चीनी को एक चौथाई बोतल सिरका में डाल कर पकाते हैं। साथ में टमाटर को भी पका लेते हैं। मिर्च, सरसो राई, आदि को एक साथ बारीक करके शेष सिरके की मात्रा के साथ चटनी में मिला कर पुनः तब तक पकाते है। जब तक कि चटनी गाढ़ी न हो जाय। चटनी के तैयार हो जाने पर जीवाणु रहित बोतलो के अन्दर भर कर परिरक्षित कर लेते हैं।

अध्याय 34

टमाटर का सॉस
(Tomato Sauce)

सूत्र—टमाटर का रस 1 कि ग्राम, नमक 25 ग्राम, चीनी 50 ग्राम, मिर्च 10 ग्राम, मसाला (पिसा हुआ) 5 ग्राम, (लौंग, बड़ी इलायची, जीरा, काली मिर्च, व दाल चीनी) प्याज (कुटी हुई) 20 ग्राम सिरका 50 मि लीटर।

विधि—पके हुए टमाटरों को लेकर, उन के डंठल आदि को तोड़ देते हैं तथा उन्हें साफ पानी में धो लेते हैं। इन टमाटरों को उबलते हुए पानी में 2 से 5 मिनिट तक रखकर पुनः ठण्डे पानी में डाल देते हैं। इस क्रिया को ब्लांचिंग (Blanching) क्रिया कहते हैं।

इसके बाद पीलिंग चाकू की सहायता से टमाटर के छिलके को अलग कर लेते हैं। पुनः सभी फलों को लकड़ी के चम्मच से अच्छी तरह कुचलकर नाइलोन या स्टैनलेस स्टील की चालनी से छान लेते है। प्राप्त रस का भार ज्ञात कर लेते हैं।

सॉस को पकाना—प्राप्त टमाटर के रस में निश्चित अनुपात में चीनी, नमक व लाल मिर्च मिलाकर पकाना प्रारम्भ करते हैं। प्याज व मसाले की पोटली बना कर वाष्प में लटका देते हैं। जब सॉस पककर गाढ़ा होने लगे तो उसे आँच से नीचे उतार लेते हैं। मसाले व प्याज की पोटली का रस निचोड़ कर सॉस में मिला देते है। इसी समय सिरके की निश्चित मात्रा मिलाकर पुनः 5 से 7 मिनट तक पकाते हैं। जब सॉस पककर गाढ़ा हो जाय, उस समय उसे आँच से नीचे उतार कर जीवाणु रहित बोतलों में भर कर परिरक्षित कर लेते हैं। सॉस पकाने का कार्य स्टेनलेस स्टील या तामचीनी के बर्तन में करते हैं।

— —

अध्याय 35

टमाटर कैचप

(Tomato Katchup)

द्रव्य—टमाटर का रस–1 कि. ग्राम, नमक–25 ग्राम, चीनी–75 ग्राम, लहसुन (कुटी हुई) 5 जवे, प्याज (कुटी हुई) 20–ग्राम, मसाला (पिसा हुआ)–5 ग्राम, दालचीनी-1 ग्राम, लाल मिर्च-आवश्यकतानुसार, सिरका-100 मि. लीटर।

विधि—पके हुए टमाटरों को साफ पानी में अच्छी तरह धोकर कुचल लेते हैं। पुनः स्टेनलेस स्टील या तामचीनी के भगोने में रखकर मंद आँच पर तब तक पकाते हैं, जब तक कि गूदा पूर्ण रूप से मुलायम न हो जाय। जब गूदा मुलायम हो जाय तो उसे आँच से नीचे उतार कर पुनः कुचल लेते हैं। इसके बाद चालनी से छानकर रस व गूदे से बीज तथा छिलके को अलग कर लेते हैं। प्राप्त रस का भार ज्ञात कर लेते है।

प्राप्त रस के भार के अनुपात में चीनी, नमक व मिर्च मिलाकर कैचप को पकाना प्रारम्भ करते हैं। प्याज, लहसुन व मसाले को एक साथ कूट कर, बारीक कपड़े में रखकर, पोटली बना लेते हैं। इस पोटली को पकाये जा रहे पदार्थ के वाष्प में लटका देते है। जब कैचप पककर गाढ़ा होने लगे उस समय मसाला, प्याज व लहसुन का पोटली का रस निचोड़ कर पकाये जा रहे पदार्थ में मिला देते है। इसी समय सिरका भी निश्चित मात्रा में मिलाकर कैचप को तब तक पकाते हैं, जब तक कि वह पककर गढ़ा न हो जाय। तैयार पदार्थ को जीवाणु रहित बोतलों में भर कर परिरक्षित कर लेते है।

मुरब्बा
(Morabbas)

मुरब्बा बनाने के लिए विशेष अनुभव की आवश्यकता होती है। क्योंकि चासनी की सही स्थिति आये बिना फलों को चासनी में पकाने पर फल या तो अधिक पककर गल जायेगा अथवा कम पकाये जाने पर सख्त रह जायेगा।

मुरब्बा अधिकतर आंवला (बड़ा), आम, सेब, कटहल, पेठा (सफेद), बेलगिरी, गाजर, अदरक, अनन्नास आदि फलों एवं शाकों से तैयार किया जाता है।

फलों का चुनाव तथा फलों को तैयार करना—मुरब्बा के लिए स्वस्थ, ताजे, अधपके या हरे पूर्ण विकसित शाकों एवं फलों को चुनते हैं। चुने हुए फलों को साफ पानी में अच्छी तरह धो लेते हैं। कड़वे या सख्त छिलके वाले फलो के छिलके उतार कर अलग कर देते हैं। बड़े आकार के फलों एवं शाकों को निश्चित आकार के छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं। जैसे—आम, सेब, सफेद पेठा, बेल इत्यादि। फलों या फलों के आन्तरिक भाग शर्बत अधिक से अधिक व आसानी से सोखा जा सके, इसके लिए फलों में स्टेनलेस स्टील के कॉंटे से गोदाई करके सुराख बना लेते हैं।

फलों को उपचारित करना (Curing)—फलों एवं शाकों को गोदाई के बाद चूने के पानी, नमक, फिटकरी के घोल या छाछ से आवश्यकतानुसार एक निश्चित अवधि तक उपचारित करने के बाद पुनः फलो को साफ पानी से धोकर शुष्क कर लेते हैं। इस क्रिया के फलस्वरूप फलों का कसैला या कड़ुवापन दूर हो जाता है।

कभी-कभी सख्त गूदे वाले फलों को चासनी मे पकाने से पूर्व उबलते हुए पानी में कुछ समय तक रखते हैं। इससे गूदा मुलायम हो जाता है। फल चासनी में पकाने पर सिकुड़ने नहीं पाता तथा फलों के आन्तरिक-भाग में चासनी भलीभाँति सोख जाती है।

मुरब्बा को पकाना—एक निश्चित मात्रा में शक्कर लेकर, थोड़ासा साइट्रिक एसिड मिलाकर एक निश्चित अनुपात मे पानी मिलाकर हल्की चासनी तैयार कर लेते हैं। इस चासनी में अलग-अलग किस्म के फलों को अलग-अलग समय तक

पकाते हैं। कुछ फलों को या उनके टुकड़ों को सीधे शुष्क चीनी के साथ 24 घण्टे तक रखने के बाद पुनः पकाने का कार्य करते हैं। जब शर्बत गाढ़ा हो जाय तो पकाने का कार्य बन्द कर देते हैं।

आम का मुरब्बा

सूत्र— आम (हरे) 1 कि. ग्राम, चीनी $1\frac{1}{2}$ कि. ग्राम, नमक 25 ग्राम, चूना 35 ग्राम।

विधि—चुने हुए आम के फलों को साफ पानी में अच्छी तरह धोकर, सीलिंग नाइफ से उसके छिलके उतार लेते हैं। तत्पश्चात गूदे को घनाकार छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं। फॉर्क से इन टुकडों में छिद्र बनाकर चूने के पानी में लगभग उसे 4 घण्टे तक रखते हैं। तत्पश्चात साफ पानी में धोकर, पिसा हुआ नमक बुरक कर लगभग $1\frac{1}{2}$ घण्टे तक रखते हैं। पुनः साफ पानी में धोकर तब तक मन्द आंच पर पानी में रखकर उबालते हैं जब तक कि फलों के टुकड़े कुछ मुलायम नहीं हो जायें। पुनः उन टुकड़ों को नमी बाहर से रहित करके, चीनी की हल्की चासनी में रखकर, मंद आँच पर तब तक पकाते हैं, जब तक चासनी गाढ़ी न हो जाय। मुरब्बा के तैयार हो जाने पर चीनी मिट्टी या शीशे के जार में भर कर परिरक्षित कर लेते हैं।

आँवले का मुरब्बा

सूत्र—आंवला 1 कि. ग्राम, चीनी $1\frac{3}{4}$ कि. ग्राम, नमक 60 ग्राम, चूना 15 ग्राम, लस्सी (छाछ) $\frac{1}{2}$ लीटर।

विधि—फलों को साफ पानी में अच्छी तरह धोने के बाद फॉर्क से सभी फलों के चारों तरफ से छिद्र बना लेते हैं। इन फलों को पहले चूने के पानी में 3 घण्टे तक रखते हैं। पुनः सभी फलों को साफ पानी में धोकर हल्की छाछ या लस्सी के घोल में लगभग $1\frac{1}{2}$ घण्टे तक रखते हैं। इसके बाद साफ पानी में धोकर नमक के घोल में उसे 4 घण्टे तक रखते हैं। तत्पश्चात साफ पानी से धोकर उबलते हुए पानी में गूदे के मुलायम होने तक पकाते हैं।

अब फलों को नमी रहित करके चीनी की एक तार की चासनी में तब तक पकाते हैं, जब तक की चासनी गाढ़ी न हो जाय। कभी-कभी पकाने का कार्य थोड़े थोड़े समय के अन्तर पर 2–3 बार में पूरा करते हैं।

पेठे का मुरब्बा

सूत्र—सफेद पेठा 1 कि.ग्राम, चीनी 1 कि.ग्राम, फिटकरी 10 ग्राम, छोटी इलायची 5 ग्राम, गुलाब जल 15 ग्राम, चावल का आटा 60 ग्राम।

विधि—सफेद पेठे का छिलका हटाकर गूदे को छोटे-छोटे चौकोर टुकड़ों में काट लेते हैं। फॉर्क से उनमें सुराख बनाकर टुकड़ों को लगभग एक घण्टे तक साफ

पानी में रखते हैं। इसके बाद सभी पेठे के टुकड़ों को चावल का आटा लगाकर फिटकरी के घोल में उबालते हैं। जब टुकड़े कुछ मुलायम हो जायें तो उन्हें साफ पानी से धोकर चीनी की चासनी में मन्द आँच पर पकाते हैं। जब मुरब्बा तैयार हो जाय, तो उसमें इलायची का चूर्ण व गुलाब जल मिलाकर चौड़े मुँह की बोतलों या चीनी मिट्टी के वर्तमान में भर कर परिरक्षित कर लेते हैं।

सेव का मुरब्बा

सूत्र - सेव 1 कि.ग्राम, चीनी 1 कि.ग्राम, चावल का आटा 60 ग्राम, फिटकरी 10 ग्राम, छोटी इलायची 5 ग्राम, गुलाब जल 10 मि. लीटर।

विधि —अधपके खट्टे किस्म के सेव लेकर पीलिंग चाकू से छिलके अलग कर लेते हैं। इसके बाद फल को गोलाई में $1\frac{1}{2}$ सेमी. मोटे टुकड़ों में काट लेते हैं। इनमें फॉर्क से गोदाई करके साफ पानी में एक घण्टे तक रखते हैं। तत्पश्चात फिटकरी व चावल के आटे के घोल में सेव के टुकडों को तब तक पकाते हैं जब तक कि गूदा कुछ मुलायम न हो जाय। इसके बाद साफ पानी से अच्छी तरह धोकर चीनी की हल्की चासनी में मंद आँच पर तब तक पकाते हैं, जब तक कि चासनी शहद की तरह गाढ़ी न हो जाय। तैयार पदार्थ को चीनी मिट्टी या शीशे के जार में रख कर परिरक्षित कर लेते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फल पाक (Jam) किन-किन फलों से तैयार किया जाता है ? सेव का जैम बनाने की संक्षिप्त विधि लिखो।
2. पेक्टिन परीक्षण की विधियों का सविस्तार वर्णन करो।
3. अच्छी जेली की पहचान लिखिए।
4. निम्नलिखित में अन्तर स्पष्ट करिए—
   (अ) जेली तथा जैम। (ब) जैम तथा मुरब्बा। (स) शर्बत तथा पानक।
5. अमरूद की जेली तैयार करने की प्रयोगशाला विधि लिखिए।
6. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—
   (अ) जेल मीटर। (ब) मुरब्बा। (स) आम का तीखा अचार।
   (द) टमाटर की चटनी का सूत्र।
7. निम्नलिखित फल पदार्थों में प्रयोग किये जाने वाले पदार्थों की सूची तैयार करिए—
   (i) जैम, (ii) जेली। (ii) टमाटर का कैचप। (iv) पानक।
   (v) अचार।
